संस्कृत

निबन्ध-पथ-प्रदर्शक

Student's Guide to Sanskrit Composition

BY

VAMAN SHIVARAM APTE, M. A.



TRANSLATOR

RAM KRISHNA SHUKLA, M. A., B. T.

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186234
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—556—13-7-71—4,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. HA91.22 A755 Accession No. P.G. H2807

Author आप्टे, वामन शिवराम

Title संस्कृत निबन्ध पथप्रदर्शक

This book should be returned on or before the date last marked below.

1962

[यू० पी० बोर्ड, इलाहाबाद, आगरा, गोरखपुर, राजस्थान, पटना, बिहार,
सागर आदि विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत]

संस्कृत निबन्ध-पथ-प्रदर्शक

[The Student's Guide to Sanskrit Composition]

A Treatise on Sanskrit Syntax
For the use of Schools and Colleges

BY
VAMAN SHIVARAM APTE, M. A.

Translated Into Hindi
BY
RAM KRISHNA SHUKLA, M. A., B. T.

★

ALLAHABAD
RAM NARAIN LAL
BOOKSELLERS & PUBLISHERS
3rd Edition] 1962 [Price Rs. 4|-

मुद्रक :
केसरवानी प्रेस, प्रयाग

विषय-सूची

प्रथम भाग

पृष्ठ

अन्तर्दर्शन १

समन्वय

पाठ

प्रथम—कर्त्ता और क्रिया का समन्वय ५

द्वितीय—(१) विशेष्य और विशेषण का समन्वय ११

(२) सम्बन्धवाचक तथा सम्बन्धी का समन्वय १३

द्वितीय भाग

कारक

तृतीय—कर्मकारक १७

चतुर्थ—द्विकर्मक धातुएँ २७

पञ्चम—प्रेरणार्थक (णिजन्त) ३२

षष्ठ—तृतीया ४१

सप्तम—चतुर्थी ५०

अष्टम—पञ्चमी ६०

नवम—सप्तमी ७०

दशम—षष्ठी ७७

एकादश—भावे षष्ठी तथा सप्तमी ९१

तृतीय भाग

व्याकरण-सम्बन्धी रूपों और शब्दों का प्रयोग एवं अर्थ

द्वादश—सर्वनाम ९९

पुरुषवाचक सर्वनाम ९९

पाठ पृष्ठ

चतुर्थ भाग

वाक्य-विश्लेषण तथा वाक्य-संकलन

	२६५
साधारण वाक्य	२६६
मिश्रित वाक्य	२८०
संयुक्त वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण	२९१

द्वितीय खण्ड

वाक्यों में शब्दों का क्रम	२९५

तृतीय खण्ड

वाक्यों का संश्लेषण	३०२
साधारण वाक्य	३०२
मिश्रित वाक्य	३०९
संयुक्त वाक्य,	३११

चतुर्थ खण्ड

पत्र-लेखन	३१६
घरेलू पत्र	३१९
विविध	३२१
अभ्यास	३२४
कठिन शब्दों की व्याख्या	३२५
परिशिष्ट १—सूक्तियाँ तथा मुहाविरे	३६६
परिशिष्ट २—शुद्ध करने के लिए वाक्य	४०६
परिशिष्ट ३—शब्द-कोश	४१२
परिशिष्ट ४—शब्द-कोश	४४५

इस पुस्तक में प्रयुक्त संकेतों की सूची

अ० से अध्याय समझना चाहिये
श्लो० से श्लोक-संख्या समझना चाहिये
भर्तृ० से भर्तृहरि समझना चाहिये
"भर्तृ० २" से "भर्तृहरि-नीतिशतक" अभिप्रेत है।
२ के बाद वाले अंक से श्लोक-संख्या अभिप्रेत है।
"भर्तृ० ३" से "भर्तृहरि-वैराग्यशतक" अभिप्रेत है।
३ के बाद दिए हुए अंक से श्लोकसंख्या अभिप्रेत है।
श्रीमद्० से श्रीमद्भगवद्गीता समझना चाहिए।
भट्टि० से भट्टिकाव्य
अ० रा० से अनर्घ्यराघव
बा० रा० से बालरामायण
चाण० से चाणक्यशतक
दशकु० से दशकुमार-चरित समझना चाहिए तथा 'दशकु० प्र०' से दशकुमार-चरित, प्रथम भाग और 'दशकु० द्वि०' से दशकुमार-चरित द्वितीय भाग और तत्पश्चात् जो संख्या दी जाती है, उससे कहानी-संख्या अभिप्रेत है।
ग० म० से गणरत्न-महोदधि
हितो० से हितोपदेश
हर्ष० से हर्षचरित
कादम्ब० से कादम्बरी
किरात० से किरातार्जुनीय
कुमार० से कुमारसम्भव
मालवि० से मालविकाग्निमित्र नाटक
मालती० से मालती-माधव नाटक
मनु० से मनुस्मृति
महा० से महाभारत
म० भा० से महाभाष्य

मेघ० से मेघदूत
मृच्छ० से मृच्छकटिक नाटक
मुद्रा० से मुद्राराक्षस
महावीर० से महावीर-चरित्र नाटक
नागा० से नागानन्द
पंच० से पंचतन्त्र तथा पंच० त० से पंचतन्त्र तन्त्र-संख्या और पंच० क० से पंचतन्त्र कथा-संख्या
प्र० रा० से प्रसन्नराघव
रघु० से रघुवंश--सर्ग-संख्या—श्लोक-संख्या
राम० से रामायण
रत्ना० से रत्नावली नाटिका
शा० से शकुन्तला नाटक
शिशु० से शिशुपालवध -सर्ग-संख्या--श्लोक-संख्या
सि० कौ० से सिद्धान्तकौमुदी
श० म० से शंकराचार्य मोहमुद्गर
सुभाषित० से सुभाषितरत्नाकर
उत्तर० से उत्तररामचरित नाटक--अंक-संख्या--श्लोक-संख्या
विक्रमो० से विक्रमोर्वशीय नाटक--अंक-संख्या--श्लोक-संख्या
वार्तिक० से कात्यायन-वार्तिक
वासव० से वासवदत्ता
वेणी० से वेणीसंहार नाटक--अंक-संख्या--श्लोक-संख्या
याज्ञ० स्मृ० से याज्ञवल्क्य-स्मृति

—:०:—

संस्कृतनिबन्ध-पथ-प्रदर्शक

—:-:-:❀:-:—

भाग १

अन्तर्दर्शन

१—अँगरेजी भाषा में 'वाक्यरचना विधि' (Syntax) में वाक्य में प्रयुक्त शब्दों के क्रम का वर्णन किया जाता है और शब्दों के उचित प्रयोग के नियम बताये जाते हैं, परन्तु संस्कृत-जैसी प्रत्यय-प्रधान भाषाओं में 'वाक्यरचना विधि' का न तो कोई निश्चित क्षेत्र ही है, न उसका कोई विशेष महत्त्व ही है। प्रत्यय-निष्पन्न पदों से स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है कि वाक्य के अन्दर आए हुए एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ क्या सम्बन्ध है। इसलिए, यदि वाक्यरचना के साधारण क्रम का पालन न किया जाय, तो भी अँगरेजी के एक वाक्य के विपरीत संस्कृत वाक्य में कोई क्षति अथवा अशुद्धि नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ यदि अँगरेजी का वाक्य 'Ram saw Govind' लें और उसमें 'Ram' की जगह 'Govind' और 'Govind' की जगह 'Ram' लिखें तो अर्थ में पूर्ण परिवर्तन हो जावेगा। इसके विपरीत हिन्दी का एक वाक्य लीजिए—"राम ने गोविन्द को देखा" यहाँ पर यदि शब्दों के विन्यास का स्थान बदल दिया जाय, तब भी अर्थ में कोई अन्तर न पड़ेगा। 'गोविन्द को राम ने देखा', 'देखा राम ने गोविन्द को,' 'देखा गोविन्द को राम ने'—इन सभी वाक्यों का अर्थ एक ही है। यही दशा संस्कृत में भी है। **'रामो गोविन्दमपश्यत्, गोविन्दं रामोऽपश्यत्, अपश्यद्रामो गोविन्दम्'**—इन सभी वाक्यों का एक ही अर्थ है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि संस्कृत-वाक्यों में, कुछ अपवादों को छोड़कर, शब्दों का क्रम कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वाक्य-रचना में पूर्ण स्वेच्छाचारिता बरती जा सकती है। कुछ ऐसे

स्थल हैं जहाँ शब्दों को एक क्रमविशेष के अनुसार रखना आवश्यक हो जाता है। संस्कृतव्याकरणों में **रचना** और **क्रम** के नियम बहुत कम दिये जाते हैं। साधारणतया यह समझा जाता है कि सिद्धान्त-कौमुदी के कारक-प्रकरण में वाक्य-रचना का विवेचन किया गया है, परन्तु ऐसा समझना ठीक नहीं। सिद्धान्त-कौमुदी के कारक-प्रकरण में वास्तविक वाक्य-रचना के केवल एक अङ्ग अर्थात् सम्बन्ध (Government) या अन्वय का विवेचन किया गया है। वाक्यों में शब्दों को जोड़ते समय उपसर्गों, अव्ययों और व्याकरणसम्बन्धी रूपों के प्रयोग और अर्थ भी ध्यान में रखने चाहिए। संस्कृतव्याकरणों में जहाँ शब्दों की रचना समझाई गई है, वहाँ साथ ही साथ उन शब्दों का प्रयोग भी समझाया और दिया गया है। उदाहरणार्थ 'लटःशतृशानचावप्रथमा समानाधिकरणे' (पाणिनि तृ०।२।१२४) सूत्र में यह बताया गया है कि शत्रन्त और शानजन्त शब्द किस प्रकार बनाए जाते हैं और उनका प्रयोग कब होता है। अतः संस्कृतभाषा में 'वाक्य-रचना' पर विचार करते समय प्रधानतः Concord (लिङ्ग, वचन, पुरुष इत्यादि की समानता) और Government (कारक या किसी वाक्य के अन्तर्गत संज्ञाओं का क्रिया से सम्बन्ध) तथा व्याकरण-संगत रूपों और शब्दों के प्रयोग और अर्थ पर विशेष ध्यान देना होगा। इस पुस्तक में पाठों का क्रम इसी विचार से किया गया है।

यह पहिले ही कहा जा चुका है कि संस्कृत में शब्दक्रम का कोई विशेष महत्त्व नहीं होता। परन्तु कतिपय ऐसे स्थल हैं जहाँ शब्द-क्रम पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस विषय पर चौथे भाग में कुछ नियम दिए जायँगे।

२—संस्कृत में तीन 'पुरुष' और तीन 'लिंग' होते हैं। संस्कृत में 'पुरुषों' का प्रयोग बिल्कुल वैसा ही होता है जैसा हिन्दी में। परन्तु संस्कृत में संज्ञाओं के लिंगों का अन्तर समझाने के लिए कोई निश्चित नियम नहीं बनाए जा सकते। संस्कृत में लिंग-वर्गीकरण बिल्कुल मनमाना है। अलबत्ता, जहाँ पुरुष और स्त्री बिल्कुल स्पष्ट मालूम पड़ते हैं और पुरुष तथा स्त्री का अन्तर स्वाभाविक है, वहाँ तो अवश्य कहा जा सकता है कि संज्ञाओं में किन्हीं विशेष नियमों का पालन किया गया है। उदाहरणार्थ 'चटकः' (नर गौरैया), 'चटका' (मादा गौरैया); इसी प्रकार 'हंसः, हंसी, अजः, अजा' इत्यादि। लिंग के बारे में

संस्कृत में कितना मनमानापन है--यह तो इसी से जाना जा सकता है कि एक ही वस्तु के लिए संस्कृत में तीन विभिन्न लिङ्गों के तीन-तीन शब्द पाये जाते हैं। 'स्त्री' के लिये संस्कृत में 'दार' (पुंलिंग), 'कलत्र' (नपुंसकलिंग) और 'भार्या' स्त्रीलिंग--ये तीन शब्द प्रयुक्त होते हैं। इसी प्रकार 'शरीर' के बोधक 'काय' (पुंलिंग), 'तनु' (स्त्रीलिंग) और 'शरीर' (नपुंसक लिंग)--ये तीन शब्द हैं। इसलिए लिंग का अध्ययन प्रायः कोष से किया जाना चाहिए।

संस्कृत में तीन वचन होते हैं। इनके प्रयोगों की कुछ विशेषताएँ नीचे दी जाती हैं :--

३--संस्कृत में तीन वचन होते हैं--एक वचन, द्विवचन, बहुवचन। एक वचन से 'एक' का बोध होता है, परन्तु प्रायः एक वचन से 'सम्पूर्ण जाति' का भी बोध होता है; जैसे 'नरः'--एक आदमी। **'सिंहः सर्वश्वापदेषु बलिष्ठः'**—सिंह सब जानवरों से बली होता है।

टिप्पणी :—'सम्पूर्ण जाति' या 'वर्ग' का बोध कराने के लिए एक वचन अथवा बहुवचन दोनों में से किसी का भी प्रयोग हो सकता है। 'ब्राह्मणों की पूजा की जानी चाहिए' इसे 'ब्राह्मणः पूज्यः' अथवा 'ब्राह्मणाः पूज्याः' किसी एक से व्यक्त कर सकते हैं।

४--द्विवचन से 'दो' का बोध होता है; 'अश्विनौ' का अर्थ हुआ 'दो अश्विन'; 'दम्पती' का अर्थ हुआ 'जोड़ा'--अर्थात् 'स्त्री और पुरुष'। परन्तु 'द्वय द्वितीय, युगल, युग, द्वन्द्व' इत्यादि 'दो' या 'जोड़ा' का अर्थ देने वाले शब्द सर्वदा एकवचन में रक्खे जाते हैं; जैसे **'बाहुद्वयम्'** जिसका अर्थ है 'एक जोड़ा भुजाएँ अर्थात दो भुजाएँ', **'सुकुमारचरणयुगलम्'** जिसका अर्थ है 'एक जोड़ा कोमल-कोमल चरण अथवा दो कोमल-कोमल चरण।' परन्तु जब कई जोड़ों का बोध कराना होता है तो उक्त शब्दों का प्रयोग द्विवचन या बहुवचन में होता है।

(अ) कभी-कभी द्विवचन जो कि एकशेषद्वन्द्वसमास के रूप में आता है एक ही वर्ग के स्त्री तथा पुरुष दोनों का बोधक होता है; जैसे 'जगतः **पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ**' (रघु० प्र० १)--मैं विश्व के माता-पिता पार्वती तथा परमेश्वर (शिव) को प्रणाम करता हूँ।

५--हिन्दी में बहुवचन में प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्दों का अनुवाद संस्कृत में द्विवचन से होना चाहिये; जैसे, 'उसने अपने हाथ-पाँव धोए' का अनुवाद **'हस्तौ पादौ च प्राक्षालयत्'** होगा; 'उसने आँखें मूँद लीं' का अनुवाद **'सा लोचने न्यमीलयत्'** होगा।

६—बहुवचन 'दो' से अधिक का बोध कराता है और एकवचन के समान 'सम्पूर्ण वर्ग या जाति' का भी प्रतीक हो सकता है; जैसे, **खगः** (चिड़ियाँ) अथवा (चिड़ियों का समूह)। परन्तु संस्कृत में कुछ ऐसे शब्द हैं जो आकार अथवा स्वरूप में तो बहुवचनान्त हैं परन्तु अर्थ में 'एक' ही के बोधक हैं; जैसे, दाराः (स्त्री); इसी प्रकार, अप्, वर्षा, सिकता, अक्षता, अम्बु, प्राण इत्यादि।

(अ) कभी-कभी बहुवचन का प्रयोग आदर दिखलाने के लिए होता है; जैसे, 'इति **श्री शंकराचार्याः**' श्री पूज्य शंकराचार्य जी का ऐसा मत है।

(ब) यदि वक्ता उच्चकोटि का व्यक्ति हो, तो **एकवचन** के स्थान पर भी उत्तम पुरुष बहुवचन का प्रयोग होता है; जैसे, **'वयमपि भवत्यौ सखीगतं किमपि पृच्छामः'** (शा० १) हम भी—अर्थात् मैं--आप दोनों से आपकी सखी के विषय में कुछ पूछते हैं। इसी प्रकार **'वयमपि स्वकर्मण्यभियुज्यामहे'** (मुद्रा० ३) हम भी—अर्थात् मैं—अपने कार्य में तत्पर होंगे। परन्तु यह विधि सर्वथा आवश्यक अथवा अनिवार्य नहीं है; जैसे, **किंत्वरण्यसदो वयमनभ्यस्तरथचर्याः** (उत्तर० ५)।

७—संस्कृत में देशों के नाम सर्वदा बहुवचनान्त होते हैं क्योंकि वे वहाँ के निवासियों के नाम पर बने होते हैं; जैसे, **'अहं गतः कदाचित् कलिंगान्'** (दशकु० द्वि० ७)—एक बार मैं कलिंगदेश गया अर्थात् कलिंग लोगों के देश गया।

टिप्पणी :—जब देशों के नाम के साथ 'देश' 'विषय' इत्यादि शब्द लगे रहते हैं तब एकवचन का ही प्रयोग होना चाहिए; जैसे 'मगधदेशे पाटलिपुत्रं नाम नगरम्'--मगध देश में पाटलिपुत्र नाम का एक नगर है।

८—व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का बहुवचन प्रायः वंश अथवा परिवार का बोध कराता है; जैसे, **'रघूणामन्वयं वक्ष्ये'** (रघु० प्र०।६)—मैं रघुवंशियों का परिवार-वर्णन करूँगा। **'जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः'** (उत्तर० १)—जनकवंशियों और रघुवंशियों का सम्बन्ध किसे प्रिय नहीं लगता।

प्रथम पाठ

९—"जब दो सम्बद्ध शब्द एक ही लिंग, वचन, पुरुष अथवा काल के होते हैं, तब वे एक दूसरे के **अन्वयी** अथवा **परस्पर समन्वित** कहे जाते हैं। किसी एक पुरुष अथवा स्त्री के विषय में हम 'वह' का प्रयोग करेंगे, परन्तु जब बहुत से पुरुषों अथवा स्त्रियों के विषय में बोलना होगा तब 'वे' का प्रयोग करेंगे"—**बेन**।

संस्कृत में तीन प्रकार के **समन्वयों** पर ध्यान देना चाहिये :—

(१) कर्त्ता और क्रिया का समन्वय, (२) संज्ञा और विशेषण का समन्वय और (३) सम्बन्धी और सम्बन्धवान् का समन्वय।

कर्त्ता और क्रिया का समन्वय

१०—जिसके विषय में कुछ कहा जाता है उसे वाक्य का कर्त्ता कहते हैं और उसे प्रथमा विभक्ति में रखते हैं। क्रिया का वचन और पुरुष कर्त्ता के अनुसार होता है अर्थात् जिस वचन और जिस पुरुष का कर्त्ता होगा उसी वचन और उसी पुरुष की क्रिया भी होगी; जैसे, **'आसीद्राजा शूद्रको नाम'** (कादम्० ५)—शूद्रक नाम का एक राजा था। **'साधयामो वयम्** (शा० २)—हम लोग जाते हैं (अपना रास्ता लेते हैं)।

११—**विधेय** (अथवा उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाता है वह) या तो क्रियापद होगा जैसा कि ऊपर के उदाहरण में है या संज्ञापद होगा या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अस्धातु से युक्त कोई विशेषण होगा। इन दशाओं में संज्ञापद अपने स्वाभाविक लिंग में प्रयुक्त होगा और कारकमात्र में, उद्देश्य अथवा कर्त्ता का अनुगामी होगा; जैसे, **'सा कुलपतेरुच्छ्वसितमिव** (शा० ३)—वह (कन्या) मानो कुलपति का प्राण है। [यहाँ विधेय **उच्छ्वसितम्** का प्रयोग अपने स्वाभाविक लिंग अर्थात् नपुंसकलिंग में हुआ है और यह शब्द कर्त्ता **'सा'** का अनुगामी केवल कारक में हुआ है, न कि लिंग में भी अर्थात्, जैसे कर्त्ता **'सा'** प्रथमा विभक्ति में है उसी प्रकार विधेय **'उच्छ्वसितम्'** भी प्रथमा विभक्ति में

है।] **'ककुदं वेदविदाम्'** (मृच्छ० १)—जो कि वेद जानने वालों के कूबड़ (अग्रणी) हैं।

(विशेषण का समन्वय द्वितीय पाठ में दिया जायगा)

(क) ऐसी दशाओं में क्रिया सर्वदा कर्ता (उद्देश्य) की अनुगामिनी होती है; जैसे, **'तस्मात्सखा त्वमसि'** (उत्तर० ५)—इसलिए तू मित्र है।

(ख) जब **पात्र, आस्पद, स्थान, पद, प्रमाण,** और **भाजन** इत्यादि शब्द विधेय के तौर पर प्रयुक्त होते हैं, तब ये सर्वदा एक वचन और न पुंसकलिंग में होते हैं चाहे कर्ता (उद्देश्य) किसी भी लिंग या वचन में हो और क्रियापद कर्ता का अनुगामी होता है, न कि विधेयस्थानीय संज्ञा का, चाहे यह विधेयस्थानीय संज्ञा जिस भी स्थान पर हो, जैसे **'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु** (उत्तर० ४)—गुणी पुरुषों में गुण ही पूजा का हेतु होता है; **'आर्यमिश्राः प्रमाणम्'** (मालविका० १)—आप (श्रीमान्) प्रमाण हैं अर्थात् आपकी सम्मति मान्य है; **सम्पदः पदमापदाम्** (हित० १)—धन विपत्तियों का घर है; **'त्वमसि महसां भाजनम्'** (मालती० १)—आप तेज के आधार हैं; **'विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानाम्'** (मालती० १)—मैं अनेक प्रकार से उस (स्त्री) की दृष्टि का विषय हुआ।

यहाँ पर **'गुणाः पूजास्थानमस्ति'** और **'अहं पात्रमभूत्'** कहना अशुद्ध होगा यद्यपि **'स्थानम्'** और **'पात्रम्'** शब्द वाक्य में किसी भी स्थान पर रखे जा सकते हैं।

१२—'होना' 'मालूम पड़ना' 'दिखाई पड़ना' इत्यादि अपूर्ण-विधेय वाली क्रियाओं का अर्थ पूरा करने के लिए जो संज्ञा अथवा विशेषण शब्द प्रयुक्त होता है वह प्रथमा विभक्ति में रक्खा जाता है; जैसे **'यदि सर्ग एष ते'** (रघु० ३।३१)—यदि आप का यह संकल्प है। **'प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य'** (शिशु० १।४६)—तीनों लोकों का स्वामी होने की इच्छा करता हुआ। **'मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते'** (शा० ३)।

(क) 'पुकारना', 'नाम रखना', 'बनाना', 'सोचना', 'चुनना', 'नियुक्त करना' इत्यादि अपूर्ण विधेय वाली **सकर्मक** क्रियाओं के कर्मवाच्य में भी उपर्युक्त ही नियम लगता है; जैसे, **'कुक्कुरो व्याघ्रः कृतः'** (हितो० ४)—

कुत्ता बाघ बना दिया गया। **'नायं मूर्खो मन्द...** —वह मूर्ख नहीं समझा जाना चाहिए इत्यादि।

१३—**"और"** द्वारा जुड़े हुए दो या दो से अधिक संज्ञापद जब कर्ता होते हैं, तब क्रिया कर्तृपदों के संयुक्तवचन की अनुगामिनी होती है; जैसे, **'तयोर्जगृहतुः पादान् राजा राज्ञी च मागधी'** (रघु० १।१७)—राजा और रानी मागधी—दोनों ने उनके पाँव पकड़े।

(क) जब संज्ञाएँ इकट्ठा नहीं मानी जातीं, बल्कि प्रत्येक पृथक्-पृथक् समझी जाती हैं, अथवा वे सब एक साथ मिलकर केवल एक विचार-विशेष की वाचक होती हैं तब क्रिया एकवचन की होती है; जैसे, **'न मां त्रातुं तातः प्रभवति न चाम्बा न भवती'** (मालती० २)—मुझे न तो मेरे पिता बचा सकते हैं, न मेरी माता, न आप ही। **'पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते'** (हितो० १)—निपुणता और सत्यवादिता वार्तालाप से प्रकट होती है।

(ख) कभी-कभी क्रिया आसन्नतम कर्तृपद के अनुरूप होती है और शेष कर्तृपदों के साथ समझ लिए जाने के हेतु छोड़ दी जाती है; **'अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मोऽपि जानाति नरस्य वृत्तम्'** (पंच० १।४)—दिन और रात, दोनों गोधूलियाँ और धर्म भी मनुष्य के कार्य को जानते हैं।

लैटिन भाषा में भी ऐसा ही होता है। इन वाक्यों को देखिए, *'Tempus necessitaque postulat'* समय और आवश्यकता की माँग *Filia et unus e filiis captus est'* एक पुत्री को और पुत्रों में से एक को कारागार में भर दिया।

१४—**'अथवा' 'या' 'वा'** द्वारा जुड़े हुए एकवचनान्त कर्तृपद के लिए एक वचन की क्रिया आती है, जैसे, **रामो गोविन्दः कृष्णो वा गच्छतु**—राम या गोविन्द या कृष्ण जाय। **'शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्योऽसि जगताम्'** (उत्तर० ४)।

(क) जब कर्ता भिन्न-भिन्न वचन के कर्तृपदों से युक्त होता है, तब क्रिया आसन्नतम कर्तृपद के अनुरूप होती है; जैसे, **ते वा अयं वा पारितोषिकं गृह्णातु**—चाहे वे लोग चाहे यह आदमी इनाम ले।

१५—जब भिन्न-भिन्न पुरुषों के दो या दो से अधिक कर्त्ता "और" द्वारा जुड़े होते हैं तब क्रिया उनके संयुक्त वचन के अनुरूप होती है तथा उत्तम मध्यम एवं अन्य (प्रथम) पुरुष के योग में उत्तम पुरुष की क्रिया और मध्यम तथा अन्य के योग में मध्यम पुरुष की क्रिया होती है। जैसे, **त्वं चाहं च पचावः** (महाभाष्य)—तू और मैं पकाता हूँ। इसी प्रकार **'ते किंकरा अहं च श्वो ग्रामं प्रतिष्ठेमहि'** वे नौकर और मैं कल गाँव को चल दूँगा। **'त्वं चैव सोमदत्तिश्च कर्णश्चैव तिष्ठत'** (महा० ७।८७।१२)—तू और सोमदत्ति और कर्ण रहें।

१६—जब भिन्न-भिन्न पुरुषों के दो या दो से अधिक कर्त्ता 'अथवा' या 'वा' द्वारा जुड़े होते हैं तब क्रिया का वचन और पुरुष आसन्नतम पद के अनुरूप होता है; जैसे, उसने अथवा तुम लोगों ने यह काम किया है—**स वा यूयं वा एतत् कर्म अकुरुत**। या तो वे लोग या हम लोग इस कठिन कार्य को करते हैं—**ते वा वयं वा इदं दुष्करं कार्यं सम्पादयितुं शक्नुमः**।

१७—जब दो या दो से अधिक कर्तृपद किसी संज्ञा या सर्वनाम के समानाधिकरण होते हैं, तब विधेय संज्ञा अथवा सर्वनाम के अनुरूप होता है; जैसे, **'माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम्'** (हित० १)—माता, मित्र और पिता—ये तीनों स्वभाव से ही हितैषी होते हैं।

अभ्यास

१—उर्वशी सुकुमारं प्रहरणं मदेन्द्रस्य। प्रत्यादेशो रूपगर्वितायाः श्रियः। अलंकारः स्वर्गस्य। (विक्रमो० १)

२—सर्वत्रौदरिकस्याभ्यवहार्यमेव विषयः। (विक्रमो० ३)

३—हा कथं महाराजदशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौशल्या। क एतत् प्रत्येति मैवेयमिति। (उत्तर० ४)

४—सार्थवाहस्यार्थपतेर्विमर्दको बहिश्चराः प्राणाः (दशकु० २।२)

५—ममापि दुर्योधनस्य शंकास्थानं पांडवाः। (वेणी० २)

६—त्वं चाहं च वृत्रहन्नुभौ संप्रयुज्यावहै। (महा०)

७—प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि-
र्न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम्। (वेणी० १)

८—त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयम्
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमंगे (उत्तर० ३)
९—बलवानपि निस्तेजाः कस्य नाभिभवास्पदम्। (हितोप० २)
निःशंकं दीयते लोकैः पश्य भस्मचये पदम्।
१०—तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः। (उत्तर० १)
११—इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहितलक्षणोऽभूत्।
(रघु० ६।७१)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अस्ति तावदेकदा प्रसंगतः कथित एव मया माधवाभिधानः कुमारो यस्त्वमिव मामकीनस्य मनसो द्वितीयं निबन्धनम् (मालती० ३)।
२—एकस्मिन् जीर्णकोटरे जायया सह निवसतः पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य कथमपि पितुरहमेवैको विधिवशात्सूनुरभवम् (कादम्० २५)।
३—देव, काचिच्चाण्डालकन्यका शुकमादाय देवं विज्ञापयति। सकलभुवनतलसर्वरत्नानामुदधिरिवैकभाजनं देवः विहंगमश्चायमाश्चर्यभूतो निखिलभुवनतलरत्नमिति कृत्वा देवपादमूलमागताहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुमिति (कादम्० ८)।
४—आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च, पंचैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः (हितो० १)।
५—रहस्यभेदो याच्ञा च नैष्ठुर्यं चलचित्तता। कोपो निःसत्यता द्यूतमेतन्मित्रस्य दूषणम् (हितो० १)।
६—अदेयमासीत् त्रयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे (रघु० ३।१६)।
७—निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च (रघु० ६।२२)।
८—व्यतिकरितदिगन्ताः श्वेतभा नोर्यशोभिः
सुकृतविलसितानां स्थानमूर्जस्वलानाम्।
अकलितमहिमानः केतनं मङ्गलानाम्
कथमपि भुवनेऽस्मिन्तादृशाः सम्भवन्ति॥ (मालती० २)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—वंग के राजा ने युद्ध में प्राण दे दिए।

२—जब उस स्त्री ने वह भयंकर दृश्य देखा, तो उसके हाथ-पाँव काँपने लगे।

३—ऐ गोविन्द, तुम मेरे प्राण, मेरे आनन्द, मेरे गौरव के पात्र और मेरे सारे संसार हो।

४—वे लोग बिना अपराध के ही सन्देह के पात्र हो गए।

५—अच्छी पत्नियाँ सारे धार्मिक कृत्यों के मूल कारण होती हैं।

६—ऐ राजन्, भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, तू, बलशाली भोज, शकुनि, द्रौणि और मैं आप की सेना हूँ।

७—जब वह घोड़े पर से गिरा, उस समय राम, गोपाल और हम दोनों उपस्थित थे।

८—तुम और कृष्ण इस काम को पूरा करने का प्रयत्न क्यों नहीं करते? क्या यह बहुत कठिन है?

९—आज्ञाकारिता, सत्यवादिता, अभिमान का अभाव, अपने काम में परिश्रमशीलता—ये नौकर के गुण हैं।

१०—तुमने, राम ने और मैंने दण्डकारण्य में सुखपूर्वक समय बिताया।

११—इस संसार में धन असंख्य विपत्तियों का कारण है।

१२—हरि का पुत्र परशुराम अपनी कक्षा का रत्न तथा अपने कुल का आभूषण है।

१३—चाहे वह आदमी, चाहे ये लड़के इस फल को ले लें।

१४—उस आदमी को अथवा उन बच्चों को यह फल ले लेने दो।

१५—हरि और मैं, अथवा तुम और कृष्ण इस काम को कर सकते हो; न तो गोपाल, न उसके छोटे भाई इसे कर सकते हैं।

१६—तुम दोनों को, पुष्पमित्र के तीनों भृत्यों को और दो और आदमियों को राज दरबार (राज सभा) में जाना चाहिए।

द्वितीय पाठ

विशेष्य और विशेषण का समन्वय

१८—अंग्रेजी भाषा में विशेषण का प्रयोग बिना किसी रूप-परिवर्तन के किसी भी लिंग, वचन और कारक में सर्वदा समान रूप से होता है। परन्तु संस्कृत में विशेषण का वही लिंग, वही वचन और कारक होगा जो विशेष्य का होगा, चाहे विशेषण कृत्प्रत्ययनिष्पन्न हो, चाहे सार्वनामिक हो, चाहे साधारण हो; जैसे **गच्छन्ती नारी, का तृप्तिः, तत् सुखम्, शोभनानि गृहाणि**, 'सुन्दर घर'। **शोभनेभ्यो गृहेभ्यः**—'सुन्दर घरों से'। **शोभनाभ्यो वापीभ्यः**—'सुन्दर कुओं से'। **हरिं पश्यन् मुच्यते**। तात्पर्य यह कि संस्कृत में विशेषणों के रूप ठीक उसी प्रकार लिंग, वचन और कारक के कारण परिवर्तित होते हैं, जैसे कि संज्ञा अथवा सर्वनाम के।

विशेष—संख्याबोधक विशेषण साधारण विशेषणों से भिन्न होते हैं। उनके प्रयोग के विशेष नियम हैं जो व्याकरण की पुस्तकों में मिलेंगे।

१९—जब विशेषणों का प्रयोग समानाधिकरण अथवा बहुव्रीहि समास में होता है, तब उनका मौलिक तथा अविकृत रूप ही प्रयुक्त होता है; जैसे **कृष्ण-मृग**—काला हिरन; **रक्तनेत्रा**—लाल नेत्र वाली; **रूपवद्भार्या**—खूबसूरत पत्नी; **गृहीतधनुः**—लिया हुआ धनुष; **अन्यसंक्रांतहृदयो नरः**—ऐसा मनुष्य जिसका हृदय किसी दूसरी (स्त्री) में लगा हो।

(क) उपर्युक्त नियम के कुछ अपवाद भी हैं। जब स्त्रीलिंग विशेषण 'अभिधान' या 'नाम' माना जाता है अथवा जब पूरणी-संख्या-वाचक स्त्रीलिंग विशेषण किसी समास का पूर्वपद होता है, अथवा जब पूर्वपद किसी वर्गविशेष का वाचक होता है, तब स्त्रीलिंग का प्रत्यय लुप्त नहीं होता, बल्कि बना रहता है; जैसे—**दत्ताभार्यः, पञ्चमीभार्यः, सुकेशीभार्यः, स्त्रौघ्नीभार्यः**। विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए सिद्धान्त-कौमुदी में पाणिनीय सूत्र ६।३।३४-४१। पर गई व्याख्या पढ़िए।

२०—जब कृत्प्रत्ययनिष्पन्न विशेषण विधेय के तौर पर प्रयोग में आते हैं और विधेय के तौर पर प्रयुक्त की हुई एक समानाधिकरण संज्ञा उद्देश्य के बाद आती है, तब कृत्प्रत्ययनिष्पन्न विशेषण उद्देश्य के अनुसार होता है (११ अनुच्छेद देखिए); जैसे 'मालविकोपायनं प्रेषिता' (मालविका० १)—मालविका उपहार के तौर पर भेज दी गई।

२१—जब एक ही विशेषण दो या अधिक विशेष्यों की विशेषता बतलाता है, तब विशेषण का वही वचन होता है, जो कि सब विशेष्यों का इकट्ठा मिलकर होता है। रही लिंग की बात, जब विशेष्य पुंल्लिंग और स्त्रीलिंग होंगे, तब विशेषण पुंल्लिंग होगा। परन्तु जब विशेष्यों में पुंल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिङ्ग सभी मिले रहेंगे, तब विशेषण नपुंसकलिंग होगा; जैसे, 'पक्षपातिनौ अनयोः अहं देवी च' (मालविका० १)—मैं और रानी इन दोनों के पक्षपाती हैं। 'तस्मिन्सत्यं धृतिर्ज्ञानं तपः शौचं दमः शमः। ध्रुवाणि पुरुषव्याघ्रे लोकपालसमे नृपे' (महा० ३।५८।१०)—लोकपालों की समता करनेवाले तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ उस राजा में सत्य, साहस, ज्ञान, तपस्या, पवित्रता, इन्द्रियनग्रह; और शान्ति दृढ़ (रूप से वर्तमान) हैं।

विशेष—यह नियम पाणिनीय सूत्र १।२।७२। 'त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्' के आधार पर बना है। इस पर एक यह वार्तिक है—"त्यदादितः शेषे पुंनपुंसकतो लिंगवचनानि; सा च देवदत्तश्च तौ; तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्ता च तानि; तच्च देवदत्तश्च ते।"

लैटिनभाषा में भी उपर्युक्त नियम की समता पाई जाती है। इस वाक्य को देखो '*Pater mihi et mater mortui sunt*'—मेरे पिता और माँ मर गए।

२२—प्रायः संस्कृत में विशेषण निकटतम विशेष्य के अनुरूप होता है; जैसे, 'यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च' (उत्तर० १)—जिसकी वीरता से हम तथा तीनों लोक सुखी हैं; (यदि भुवनानि समीप होता तो 'भुवनानि कृतीनि' होता)। 'कामश्च जृम्भितगुणो नवयौवनं च' (मालविका० १)—कामदेव तथा नई युवावस्था दोनों ने अपनी-अपनी शक्ति प्रदर्शित की। वहाँ हम लोगों को "लिंगविपरिणाम" की विधि स्मरण रखनी चाहिए। लिंग

विपरिणाम विधि का अर्थ यह हुआ कि जो दूसरा विशेष्य प्रयोग में आया है उसके अनुसार विशेषण का लिंग समझकर लगा लेना चाहिए।

सम्बन्धवाचक तथा सम्बन्धी का समन्वय

२३—संस्कृत में सम्बन्धवाचक सर्वनाम तथा उसके सम्बन्धी के सम्बन्ध में कोई विचित्र विशेषताएँ नहीं हैं। सम्बन्धवाचक सर्वनाम के लिंग, वचन और कारक उसके सम्बन्धी के लिंग, वचन और कारक के अनुसार होते हैं और सम्बन्ध वाचक का जैसा भी सम्बन्ध उसके उपवाक्य के साथ होगा उसी सम्बन्ध द्वारा अथवा उसी सम्बन्ध के आधार पर सम्बन्धवाचक का कारक निर्णीत होगा। संस्कृत के अन्य सर्वनामों की भाँति सम्बन्धवाचक अकेला भी आ सकता है अथवा विशेषण के तौर पर भी। सम्बन्धवाचक सर्वनाम का जिस संज्ञा के साथ सम्बन्ध होता है, प्रायः उसके पहिले ही वह आता है। अथवा सम्बन्धवाचक सर्वनाम अकेला आ सकता है और उससे सम्बन्ध रखने वाली संज्ञा संकेतवाचक सर्वनाम के साथ आ सकती है। कभी-कभी तो सम्बन्धवाचक से सम्बन्ध रखने वाली संज्ञा बिल्कुल प्रकट ही नहीं की जाती; **'अन्तर्यो मृग्यते स स्थाणुर्वो निःश्रेयसायास्तु'** (विक्रमो० १)—वह स्थाणु जो अन्तःकरण में खोजे जाते हैं तुम लोगों को सर्वोच्च सुख दें। **'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य'** (पंच १।६)—जिसके पास बुद्धि होती है उसके पास बल होता है। **धिगस्मान् सर्वान् ये एकाकिना बटुना सह युध्यामहे**—हम सबों को धिक्कार है जो अकेले लड़के के साथ लड़ रहे हैं।

२४—जब सम्बन्धवाचक सर्वनाम का विधेय कोई ऐसा संज्ञा शब्द होता जिसका लिंग उसके सम्बन्धी के लिंग से भिन्न होता है, तब सम्बन्धवाचक सर्वनाम साधारणतया विधेय के अनुरूप होता है; जैसे, **'शैत्यं हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य'** (रघु० ५।५४)—क्योंकि जो शीतलता है वह जल का स्वाभाविक धर्म है। इसी प्रकार—**मातुस्तु यौतकं यत् स्यात् कुमारीभाग एव सः** (मनु०।९।१३१)।

विशेष—इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो गया कि सम्बन्धवाचक सर्वनाम का लिंग उस [illegible] के अनुसार होता है जिसकी वह विशेषता बताता है। परन्तु

सूत्र संख्या १।४।३२ में पाणिनि ने 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' ऐसा प्रयोग किया है, 'तत् सम्प्रदानम्' ऐसा प्रयोग नहीं किया है।

२५—जब सम्बन्धवाचक सर्वनाम किसी सम्पूर्ण वाक्य का वाचक होता है, तब वह सदा नपुंसकलिंग एकवचन में आता है; जैसे, **'ननु वज्रिण एव वीर्यमेतद्विजयंते द्विषतो यदस्य पक्ष्याः** (विक्रमो० १)—क्या वस्तुतः यह इन्द्र की वीरता नहीं है कि उसके मित्र पक्षवाले अपने शत्रुओं को हरा देते हैं। **'मम तु यदियं याता लोके विलोचन-चन्द्रिका। नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः**' (मालविका० १)—लेकिन मेरे नेत्रों की चाँदनी वह कन्या (या स्त्री) मेरे नेत्रों के विषय में आई—यह बात मेरे सारे जीवन का एकमात्र सर्वश्रेष्ठ उत्सव है।

ऐसे प्रयोगों में, प्रधान वाक्य में संकेतवाचक सर्वनाम का लिंग वही होता है जो कि सम्बन्धी संज्ञा (महोत्सवः) का। यदि यह कहा जाय कि 'यत्' नपुंसक लिंग है इसलिए संकेतवाचक सर्वनाम भी नपुंसकलिंग होना चाहिए तो ऐसा कहना ठीक नहीं।

अभ्यास

१—तयैव देवतया तयोः कुशलवाविति नामनी प्रभावश्चाख्यातः। (उत्तर० २)।

२—यदेते चन्द्रसरोरुहकास्त्वया निःसारितास्तदनुचितं कृतम् (हित० ३)।

३—यस्मिन्नेवाधिकं चक्षुरारोपयति पार्थिवः।
अकुलीनः कुलीनो वा स श्रियो भाजनं नरः (पंच० १।८)।

४—कृताः शरण्यं हरिणा तवासुराः।
शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम् (शा० ६)।

५—स सुहृद् व्यसने यः स्यात् स पुत्रो यस्तु भक्तिमान्।
स भृत्यो यो विधेयज्ञः सा भार्या यत्र निर्वृतिः॥ (पंच० १।१५।)

६—पाण्डवाश्च महात्मानो द्रौपदी च य यशस्विनी।
कृतोपवासाः कौरव्य प्रययुः प्राङ्मुखास्ततः॥(महा० १७।१।२६)

७—धर्मः कामश्च दर्पश्च हर्षः क्रोधः सुखं वयः।
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते न संशयः॥ (राम० ६।६२।३७)

८—उमावृषांकौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ (रघु० ३ । २३) ।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—धन्या सा याऽऽर्यपुत्रेण बहु मन्यते या चार्यपुत्रं विनोदयत्याशानिबन्धनं जाता जीवलोकस्य (उत्तर० ३) ।

२—सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता ।
यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्य जातः ॥ (उत्तर० ३) ।

३—न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः ।
नाहं न जनको नाग्निर्नानुवृत्तिर्न संततिः ॥ (उत्तर० ७) ।

४—यं ब्राह्मणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते ।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयुज्यते ॥ (उत्तर० १) ॥

५—चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्धानो रणे हताः ॥ (उत्तर० २) ॥

६—योगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसथशायी ।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः ॥ (हितो० १) ॥

७—मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः
पात्रं यत्सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तद्दुर्लभम् ।
ये चान्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुला-
स्ते सर्वत्र भिलन्ति तत्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत् ॥ (हितो० १) ॥

८—यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमांल्लोके यस्यार्थाः स हि पण्डितः ॥ (हितो० १) ॥

९—हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरुत्कल्पितम्
व्यालानां पशवस्तृणाङ्कुरभुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः ।
संसारार्णवलंघनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणाम्
यामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः ॥ (भर्तृ० २) ॥

१०—महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः ।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया ॥ (रघु० १० । ३२) ॥

११—यस्मिन् सत्यं च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभे ।
अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ।। (महा० ६ । ६। २६) ।।

संस्कृत में अनुवाद कीजिये

१—पाटलिपुत्र का राजा तथा उसकी रानी दोनों बहुत ही उदार हैं ।

२—कल मैंने तीन सुन्दर झील, छः गहरे कुएँ और छप्पन विशाल बागीचे देखे ।

३—जो अपने अपराध को छिपाने के लिए असत्य बोलता है, वह दो अपराध करता है ।

४—तुम ऐसी बात कह रहे हो—यह आश्चर्य है ।

५—मनुष्य को सर्वदा पुण्यात्मा होना चाहिए—यह प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी दार्शनिकों का मत है ।

६—ये मीठे आम मेरे छोटे भाई द्वारा उपहार के तौर पर भेजे गये हैं (कृत्प्रत्ययनिष्पन्न विशेषण का प्रयोग कीजिये) ।

७—दुष्ट लोग पुण्यात्माओं से घृणा करें—यह तो उनका जन्मसिद्ध स्वभाव है ।

८—जो लोग प्रत्युत्पन्नमति होते हैं, वे कठिनाइयों को पार कर सकते हैं ।

९—इस घटना के कारण मैं उनकी ईर्ष्या का पात्र बन गया (जन् धातु-निष्पन्न विशेषण का प्रयोग कीजिये) ।

१०—धैर्य, परिश्रम और ईमानदारी सर्वदा प्रशंसनीय हैं; परन्तु जल्दबाजी, आलस्य और विश्वासघात निन्दनीय हैं ।

द्वितीय भाग

कारक

तृतीय पाठ

कर्मकारक

२६—वाक्यों में शब्दों के व्याकरणात्मक मेल के नियामक सिद्धान्त को 'सम्बन्ध' कहते हैं। इस पाठ में इसी 'सम्बन्ध' का निरूपण होगा। किसी भी शब्द की उस शक्ति को सम्बन्ध कहते हैं जिसके द्वारा वह किसी संज्ञा या सर्वनाम शब्द के कारक की व्यवस्था करता है। इस भाग में जितने पाठ दिए जायँगे उनमें इसी शक्ति की व्याख्या की जायगी और इसके उदाहरण दिए जायँगे।

२७—किसी भी वाक्य में संज्ञा तथा क्रिया के बीच जो सम्बन्ध होता है उसे कारक कहते हैं। जिन शब्दों का क्रिया के साथ कोई भी सीधा सम्बन्ध नहीं होता उनके बीच चाहे जो भी सम्बन्ध हो, वह कारक नहीं कहलायेगा। संस्कृत में छः कारक होते हैं—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। 'सम्बन्ध' को कारक नहीं कहते, इसीलिये इस सूची में 'सम्बन्ध' को स्थान नहीं दिया गया है। इन कारकों का बोध कराने वाली क्रमशः प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी और सप्तमी विभक्तियाँ हैं। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि संस्कृत में 'कारक' और 'विभक्ति' पर्यायवाची शब्द नहीं हैं; प्रत्युत 'कारक' और 'विभक्ति' में बड़ा अन्तर है। साधारणतया लोग समझते हैं कि कर्ताकारक सर्वदा प्रथमाविभक्ति में रक्खा जाता है और जो शब्द प्रथमाविभक्ति में रक्खा दिखाई पड़े वह अवश्य ही कर्ता कारक होगा। पर ऐसा समझना ठीक नहीं है। अनेक ऐसे प्रयोग आते हैं जिनमें कर्ताकारक प्रथमाविभक्ति में नहीं रक्खा जाता है। इसी प्रकार, अनेक ऐसे प्रयोग मिलते हैं जिनमें कर्मकारक द्वितीया-विभक्ति में नहीं रक्खा जाता, बल्कि प्रथमाविभक्ति में रक्खा जाता है। इसलिये यह न समझना चाहिये कि जो शब्द प्रथमाविभक्ति में हो वह अवश्य ही

कर्ताकारक होगा । उदाहरणार्थ, **रावणो रामेण हतः** । यहाँ हननक्रिया का करनेवाला 'राम' है, पर वह प्रथमाविभक्ति में नहीं रक्खा गया है, बल्कि तृतीयाविभक्ति में रक्खा गया है । इसी प्रकार, हननक्रिया का वास्तविक कर्म 'रावण' है, पर वह द्वितीयाविभक्ति में नहीं रक्खा गया है, बल्कि प्रथमा विभक्ति में रक्खा गया है ।

'कर्ता' का अर्थ है 'करने वाला' । संस्कृत में **प्रथमाविभक्ति** केवल नाम बताने के लिए प्रयोग में लाई जाती है । पाणिनीय सूत्र २ । ३ । ४६ । **'प्रातिपदिकार्थलिंग-परिमाणवचनमात्रे प्रथमा'** के अनुसार प्रथमा का प्रयोग केवल किसी शब्द का मूलरूप, लिंग, वजन, और वचन बतलाने के लिये होता है; जैसे, **नीचः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्, तटी, तटः, तटम्, द्रोणो, व्रीहिः, एकः, द्वौ, बहवः,** इत्यादि ।

टिप्पणी—संस्कृत में अनेक अव्यय शब्द ऐसे हैं जिनके योग में किसी न किसी विभक्ति का प्रयोग होता है । ऐसी दशा में उन विभक्तियों को **उपपदविभक्ति** अर्थात् अव्ययसम्बद्ध-विभक्ति कहते हैं । ये **उपपदविभक्तियाँ कारकविभक्तियों** से भिन्न हैं । **कारकविभक्ति** उसे कहते हैं जो किसी संज्ञा या सर्वनाम का सीधा सम्बन्ध किसी क्रिया के साथ बतावे । **उपपदविभक्ति** के उदाहरण **'नमो नृसिंहाय, मामन्तरा, ग्रामादुत्तरम्'** इत्यादि हैं । जहाँ दोनों प्रकार की विभक्तियाँ प्रयुक्त हो सकती हैं वहाँ उपपदविभक्ति न आकर कारक-विभक्ति ही प्रयोग में आती है (**उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी**) ।

२८—जिस पुरुष या वस्तु के ऊपर किसी क्रिया का फल या प्रभाव पड़ता है वह उस क्रिया का कर्म कहलाता है । कर्मवाच्य को छोड़कर शेष सभी स्थलों पर कर्म द्वितीयाविभक्ति में रक्खा जाता है; जैसे, **स हरिमपश्यत्**—उसने हरि को देखा । **ओदनं बुभुक्षुः विषं भुङ्क्ते** (सि० कौ०)—भात खाने की इच्छा करता हुआ जहर खाता है । यहाँ **'अपश्यत्'** क्रिया का कर्म **हरिम्** तथा **भुङ्क्ते** क्रिया का कर्म **विषम्** है; परन्तु **हरिः सेव्यते** में **सेव्यते** पद क्रिया और कर्म के उस सम्बन्ध को बता रहा है जो कि **हरिं** और **सेव्** के बीच में है । इसीलिए हरि को द्वितीयाविभक्ति में रखने की आवश्यकता नहीं । परन्तु **हरिं सेवते** में कर्मवाच्य का प्रत्यय नहीं है, इसलिए संज्ञाशब्द हरि द्वितीयाविभक्ति में रक्खा गया है ।

२६—नाम धराना, चुनना, बनाना, नियुक्त करना, निर्वाचित करना, पुकारना, जानना, समझना इत्यादि अर्थों का बोध करानेवाली क्रियाएँ दो कर्म लेती हैं, जिनमें एक प्रत्यक्ष कर्म होता है और दूसरा अप्रत्यक्ष; जैसे **त्वामामनन्ति प्रकृतिम्** (कुमार० २।१३)—वे लोग तुम्हें प्रकृति समझते हैं। **जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषम्** (मेघ० ६)—मैं तुम्हें प्रधान पुरुष समझता हूँ।

३०—गत्यर्थक धातुओं के योग में द्वितीया होती है, जैसे, **गतोऽहं कामदेवायतनम्** (मालती० १)—मैं कामदेव के मन्दिर में गया था। **अहमपि महीमटन्** (दशकु० २।२)—मैं भी पृथ्वी पर भ्रमण करता हुआ **यमुनाकच्छमवतीर्णः** (पंच० १।१)—यमुना के तट को गया। इसी प्रकार **विचचार दावम्** (रघु० २।८)। परन्तु जहाँ वास्तविक गति नहीं होती, केवल गति की कल्पना की जाती है, वहाँ गति का भाव अनेक मुहाविरों द्वारा व्यक्त किया जाता है। जैसे **'परं विषादमगच्छत्'** (पंच० १।१)—महान् शोक को प्राप्त हुआ। **अश्वत्थामा किं न यातः स्मृतिं ते** (वेणी० ३)—क्या अश्वत्थामा तुम्हारे द्वारा स्मरण नहीं किया गया था। **पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम** (कुमार० १।२६)—सुन्दर मुखड़े वाली वह स्त्री पीछे से उमा नाम से विख्यात हुई। ऐसे ही **नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके** (पंच० १।२); **न तृप्तिमाययौ** (रघु० ३।३)।

(क) प्रायः उपसर्गपूर्वक अकर्मक धातुएँ अर्थतः सकर्मक हो जाती हैं। ऐसी धातुओं के योग में द्वितीया आती है; जैसे, वृत्—होना। अनुवृत्—किसी के अनुसार कार्य करना अथवा अनुसरण करना; जैसे, **'प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते** (शिशु० १५।४१)—प्रजा वस्तुतः अपने राजा के चित्त का अनुसरण करती है। **अचलतुङ्गशिखरमारुरोह** (कादम्० १२०)—पर्वत की ऊँची चोटी पर चढ़ गया। इसी प्रकार, **यन्ता गजस्याभ्यपतद्गजस्थम्** (रघु० ७।३७); **नोत्पतति वा दिवम्** (कादम्०१३२)। **ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति** (उत्तर० १)।

३१[1]—अधि उपसर्गपूर्वक 'शी' 'स्था' तथा 'आस्' धातुओं के योग में

१—अधिशीङ्स्थासां कर्म (१।४।४६)

आधारवाचक स्थान या वस्तु में द्वितीया होती है; जैसे–चन्द्रापीडो मुक्ताशिला-पट्टमधिशिश्ये (कादम्० २०६)—चन्द्रापीड मोती की पटरी पर सो गया। अर्धासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ (रघु० ६।७३)–इन्द्र के आधे आसन पर बैठता था। अध्यास्य पर्णशालाम् (रघु० १।६५)—पत्तियों की बनी हुई झोपड़ी में लेटकर।

(क)[1] अभि तथा नि पूर्वक 'विश्' धातु का आधार कर्मकारक होता है; जैसे, अभिनिविशते सन्मार्गम्—(सि० कौ०) वह अच्छे मार्ग का आश्रय लेता है। भयं तावत्सेव्यादभिनिविशते सेवकजनम् (मुद्रा० ५)।

३२[2]—उप, अनु, अधि अथवा आ पूर्वक 'वस्' (निवास करना धातु का) आधार कर्मकारक होता है; जैसे, उपवसति वैकुण्ठं हरिः, अनुवसति वैकुण्ठं हरिः, आवसति वैकुण्ठं हरिः, अधिवसति वैकुण्ठं हरिः (सि० कौ०)—हरि वैकुण्ठ में रहते हैं।

३३[3]—उभयतः, सर्वतः, धिक्, उपर्युपरि, अधोधः, अध्यधि, इन शब्दों की जिससे सन्निकटता पाई जाती है, उसमें द्वितीया होती है; जैसे उभयतः कृष्णं गोपाः (सि० कौ०)—कृष्ण के दोनों तरफ ग्वाले हैं। सर्वतः कृष्णम्—कृष्ण के सब तरफ। उपर्युपरि लोकं हरिः—हरि संसार के ठीक ऊपर हैं। अधोऽधो लोकम्—संसार के ठीक नीचे। धिग्जाल्मान् (उत्तर० ५)—बदमाशों को धिक्कार है। न मे संशीतिरस्या दिव्यतां प्रति (कादम्० १३२)—उस स्त्री के स्वर्गीय होने के विषय में मुझे बिल्कुल सन्देह नहीं है। इसी प्रकार, बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् (म० भा०)। जब सन्निकटता नहीं पायी जाती, तब षष्ठी का प्रयोग किया जा सकता है; जैसे—उपर्युपरि सर्वेषामादित्य इव तेजसा (महा०)—सूर्य के समान अपनी कान्ति के कारण सब से बढ़कर अथवा सब से ऊँचे।

१—अभिनिविशश्च (१।४।४७)

२—उपान्वध्याङ्वसः (१।४।४८)

३—उभसर्वतसोः कार्या धिग्उपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥ (वार्ति०)

(क) कभी-कभी **धिक्** के योग में प्रथमा अथवा सम्बोधन का प्रयोग होता है; जैसे, **धिङ् मूढ**—ऐ मूर्ख, धिक्कार है। **धिगियं दरिद्रता** (पञ्च० २)—इस गरीबी को धिक्कार है।

३४[1]—**अभितः** (चारों ओर), **परितः** (चारों ओर), **समया, निकषा** (पास या सन्निकट), **हा** (धिक्कार है या विपत्ति पड़े) और **प्रति** (तरफ या ओर) के योग में द्वितीया होती है; जैसे, **परिजनो राजानमभितः स्थितः** (मालविका० १)—नौकर राजा के चारों ओर खड़े हो गये। **रक्षांसि वेदीं परितो निरास्थत्** (भट्टि० १।१२)—वेदी के चारों ओर बैठे हुए राक्षसों को नष्ट कर दिया। **ग्रामं समया—निकषा** (सि० कौ०)—गाँव के निकट। ऐसे ही **निकषा सौभित्तिम्** (दशकु०); **पयोधिं विलंघ्य लङ्का निकषा हनिष्यति** (शिशु० १।६८)। **हा कृष्णाभक्तम्** (शिशु०)—जो कृष्ण का भक्त नहीं है उसके ऊपर विपत्ति पड़े।

कभी-कभी 'हा' के योग में सम्बोधन का प्रयोग होता है; जैसे, **'हा भगवत्यरुन्धति'** (उत्तर० १)—हाय भगवती अरुन्धती।

३५[2]—**अन्तरेण** (जिस का अर्थ होता है 'बिना', 'छोड़कर', 'बारे में') के योग में भी द्वितीया आती है; जैसे, **कोऽन्यस्त्वामन्तरेण शक्तः प्रतिकर्तुम्** (वेणीसं० ३)—तुम्हें छोड़कर दूसरा कौन बदला लेने में समर्थ है। **भवन्तमन्तरेण कीदृशोऽस्या दृष्टिरागः** (शा० २)—आप के बारे में इसके नेत्रों का प्रेम कैसा है?

(क) इसी प्रकार **अन्तरा** (बीच में) के योग में भी द्वितीया होती है; जैसे, **अन्तरा त्वां च मां च कमण्डलुः** (महा०)। **पांचालास्तव पश्चिमेन त इमे वामा गिरां भाजनाः, त्वद्दृष्टेरतिथीभवंतु यमुनां त्रिस्रोतसं चान्तरा** (बा० रा० १०)।

३६—जितने समय तक अथवा जितनी दूरी तक कोई क्रिया होती रहे या कोई वस्तु लगातार किसी विशेष प्रकार की हो तो समयवाचक् तथा मार्गवाचक् शब्द में द्वितीया होती है; जैसे, **नववर्ष वर्षाणि द्वादश दशशताब्दः** (दशकु०

१—अभितः परितः समया निकषा हा प्रति योगेऽपि। (वार्तिक)

२—अन्तरान्तरेण युक्ते २।३।४।

२।६)--सहस्र नेत्रवाले इन्द्र बारह वर्ष तक नहीं बरसे। **क्रोशं कुटिला नदी** (सिद्धान्त०)--नदी कोस भर टेढ़ी-मेढ़ी बही है। **सभा वैश्रवणी राजन् शतयोजनमायता** (महा० २।१०।१)--हे राजन्, विश्रवण की सभा १०० योजन लम्बी है।

३७--कभी-कभी **अनु** (पीछे, फलस्वरूप, किसी के द्वारा प्रकट की हुई, मिलती-जुलती हुई अर्थ में) के योग में द्वितीया होती है; जैसे, **जपमनुप्रावर्षत्** (सिद्धान्त०)--जप के बाद वर्षा हुई। **सर्वं मामनु ते** (विक्रमो० ४)--तेरी प्रत्येक वस्तु मुझसे मिलती-जुलती है।

विशेष--पाणिनि ने अभि, उप, अनु और अति को **कर्मप्रवचनीय** कहा है। **कर्मप्रवचनीय** का अर्थ है 'ऐसे उपसर्ग जो स्वतः अर्थात् किसी भी क्रिया के साथ में आए बिना ही प्रयोग में आते हैं और जिनके योग में द्वितीया आती है।' अभि--पूर्व, पेश्तर, बिल्कुल समीप में। उप--निकट, घट कर। अनु--बगल में, किनारे-किनारे, घटिया। अति--बढ़ कर। जैसे, **भक्तो हरिमभि** (भक्त हरि के बिल्कुल समीप है)। **उप हरिं सुराः** (देवता लोग हरि से घट कर हैं अथवा हरि के समीप हैं)। **अति देवान् कृष्णः** (कृष्ण देवताओं से बढ़कर हैं)। **नदीमन्ववसिता सेना** (सेना नदी के किनारे टिकी है)। **अनु हरिं सुराः** (सिद्धान्त०) देवता लोग हरि से छोटे हैं।

अभ्यास

१—धारिणीभूतधारिण्योर्भव भर्ता शरच्छतम् (मालविक० १)।

२—बिन्दूत्क्षेपान् पिपासुः परिपतति शिखी भ्रान्तिमद्वारियंत्रम् (मालविका० २)।

३—मन्दौत्सुक्योस्मि नगरगमनं प्रति (शा० १)।

४—एषा मे मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यामन्वास्यते (शा० ३)।

५—सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति। क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते (शा० ३)।

६—स राजर्षिरिमानि दिवसानि प्रजागरकृशो लक्ष्यते (शा० ३)।

७—धिङ् मामुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम् (शा० ६)।

८—धिगिमां देहभृतामसारताम् (रघु० ८।५१)।
९—इष्टान् देशान् विचर जलद प्रावृषा संभृतश्रीः (रामा० २।९८)।
१०—कृतकार्यमिदं दुर्गं वनं व्यालनिषेवितम्।
यदध्यास्ते महाराजो रामः शस्त्रभृतां वरः (रामा० २।९८)।
११—धिक् प्रहसनम्। अयमृष्यशृङ्गाश्रमादरुन्धतीपुरस्कृतान् महाराज-दशरथस्य दारानधिष्ठाय भगवान् वसिष्ठः प्राप्तः। तत्किमेवं प्रलपसि (उत्तर० ४)।
१२—तत्र च निखिलधरणितलपर्यटनखिन्नस्य निजबलस्य विश्रामहेतोः कतिपयान् दिवसानतिष्ठत् (कादम्० ११९)।
१३—अस्यां वेलायां किं नु खलु मामन्तरेण चिन्तयति वैशम्पायन इति चिन्तयन्नेव स निद्रां ययौ (कादम्० १७८)।
१४—अमी वेदीं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्धन्तः प्रांतसंस्तीर्णदर्भाः।
अपन्नतो दुरितं हव्यगन्धैर्वैतानास्त्वां वहयः पावयन्तु (शा० ४)।
१५—शक्रस्य दिव्या सभा—
विस्तीर्णा योजनशतं शतमध्यर्धमायता।
वैहायसी कामगमा पञ्चयोजनमुच्छ्रिता (महा० २।७।३)।
१६—रन्यां रघुप्रतिनिधिः स नवोपकार्याम्।
बाल्यात्परामिव दशां मदनोऽध्युवास (रघु० ५।६३)।
१७—तस्य पुत्रो महातेजाः सम्प्रत्येष पुरीमिमाम्।
आवसत्परमप्रख्यः सुमतिर्नाम दुर्जयः (रामा० १।४७।१७)।
१८—क्रमेण सुप्तामनु संविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत्।
(रघु० २।२४)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः। तदस्या देवी वसुमतीमन्तरेण महदुपालम्भनं गतोऽस्मि (शा० ५)।
२—कथय कथमियन्तं कालमवस्थिता मया विना भवती (विक्रमो० ४)।
३—भावप्रेषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लंकासमरसुहृदो महात्मानः प्लवंगराक्षसाः नानादिगंतागता ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च येषामाराधनायेयतो दिवसानुत्सव आसीत् (उत्तर० १)।

४—विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम् (कुमार० ५।८१)

५—धिग्विधातारमसदृशसंयोगकारिणम् (कादम्० १२)।

६—आर्य, आर्य, प्रणिपत्य देवश्चन्द्रगुप्तो विज्ञापयति क्रियान्तरान्तरायमन्तरेणार्थं द्रष्टुमिच्छामीति (मुद्रा० ३)।

७—मन्दोष्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः।
पंकच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः॥ (मालविका० २)।

८—भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहम् (मेघ० १०२)।

९—अथाधिशिश्ये प्रयतः प्रदोषे रथं रघुः कल्पितशस्त्रगर्भम् (रघु० ५।२८)।

१०—मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि।
विवेश मञ्चान्तरराजमार्गं पतिंवरा क्लृप्तविवाहवेषा (रघु० ६।१०)।

११—अभिन्यवित्त थास्त्वं मे यथैवाव्याहतं मनः।
तवाप्यध्यावसन्तं मां मा रौत्सीर्हृदयं तथा (भट्टि० ८।८०)।

१२—अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे।
आये दुःख व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः (पंच० १।४)।

१३—हा हा धिक् परगृहवासदूषणं यद्वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः। एतत् तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकादालकं विषमिव सर्वतः प्रसृतम् (उत्तर० १)।

१४—यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे
यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम्।
एतानि तानि बहुनिर्झरकन्दराणि
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि (उत्तर० ३)।

१५—को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा
यं देशं श्रयते तदेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम्।
यत् दंष्ट्रानखलांगुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः (हित० १)।

१६—धिक् सानुजं कुरुपतिं धिगजातशत्रुम्
धिग्भूपतीन् विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान्।
केशग्रहः खलु तदा द्रुपदात्मजाया
द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यैः॥ (वेणी० ३)।

१७—जलानि सा तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनु राजधानीम्
(रघु० १३ । ६१)।

१८—प्रमदामनु संस्थितः शुचा नृपतिः सन्निति वाच्यदर्शनात् ।
न चकार शरीरमग्निसात् सह देव्या न तु जीविताशया ॥
(रघु० ८ । ७२)।

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

१—पत्नी को सदा पति की इच्छानुगामिनी होना चाहिए ।

२—यह एक दूसरा पुरुष एक दूसरे कार्य के विषय में हम लोगों की सेवा करने के लिए आ रहा है ।

३—जब उस कन्या से बहुत जोरों से अनुरोध किया गया तब उसने उस स्त्री से तुम्हारी अशिष्टता (वैयात्य) बता दी ।

४—पुष्पपुर शहर के चारों ओर एक सुन्दर उद्यान है ।

५—हाय मेरा दुर्भाग्य ! कहा जा रहा है कि मेरा इकलौता पुत्र भी मर गया ।

६—उसने तीन वर्ष और पचहत्तर दिन न्याय पढ़ा और अब उसमें निपुण हो गया ।

७—अवन्ती के चारों ओर दो मील तक सुन्दर बगीचे दिखाई पड़ते हैं ।

८—क्या वह अभी तक होश में नहीं आई ? मैं समझता हूँ कि उत्कृष्टतर उपचार के प्रयोग के बिना यह असम्भव है ।

९—मेरे अतीत साहसपूर्ण वृत्तान्तों के बारे में मणिपुर के निवासी क्या सोचेंगे ?

१०—हम लोगों को उचित जान पड़ता है कि अब हम लोग अपने वादविवाद के विषय की ओर फिर आवें ।

११—जो लोग स्वार्थ के बिना ही दूसरों को सताना चाहते हैं उन्हें धिक्कार है ।

१२—जो लोग अनीति के मार्ग का अनुसरण करते हैं उनके ऊपर विपत्ति पड़े ।

१३—राम चित्रकूट पर्वत पर बहुत दिन रहे (अधि+वस्)।

१४—भृत्य ने रानी से निवेदन किया कि महाराज क्रीड़ापर्वत पर बैठे हैं (अधि+आस्) और आप को शीघ्र ही बुला रहे हैं।

१५—जब वह फिर से होश में आ गई तब उसने अपने मरे हुए भाई का शरीर जला दिया और सारी रात एक चटाई पर सोई रही।

१६—गाय अब पाताल में रहती है (अधि+स्था) जिसके दरवाजे बड़े-बड़े साँपों द्वारा सुरक्षित हैं।

१७—आम्रमंजरियों के अस्तित्व के बिना वसन्त ऋतु सुन्दर नहीं प्रतीत होता।

१८—उस युवा ऋषि के प्रस्थान के अनन्तर तुमने मुझसे जो कुछ कहा था वह मुझे स्मरण नहीं।

१९—क्या तुम लोग कहते हो कि तुम्हारे महाराज को छोड़ कर कोई क्षत्रिय नहीं है? तुम सबों को धिक्कार है। देखो, मैं तुम्हारा झंडा अपहरण कर रहा हूँ। यदि इसे बचा सकते हो तो बचाओ।

चतुर्थ पाठ

द्विकर्मक धातुएँ

३८—संस्कृत में कुछ धातुएँ ऐसी हैं जो साधारण कर्म के अतिरिक्त एक कर्म और लेती हैं जिसे **अकथित कर्म** कहते हैं। जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट है, **अकथित कर्म** उसे कहते हैं जो अपादान, अधिकरण इत्यादि अन्य कारकों का अर्थ रखता है और उन्हीं के द्वारा प्रकट किया जाना चाहिए, पर जब वक्ता इन कारकों का प्रयोग नहीं करना चाहता तो वह उसे द्वितीया विभक्ति द्वारा प्रकट करता है। इसी से यह कर्म वैकल्पिक होता है। जो संज्ञा अकथित कर्म में रक्खी जाने योग्य होती है वह यदि किसी अन्य कारक में विवक्षित नहीं होती है तो द्विकर्मक धातुओं के योग में द्वितीया में रक्खी जाती है; जैसे, **धेनुं दोग्धि पयः**—गाय से दूध दुहता है। **व्रजमवरुणद्धि गाम्**—गाय को बाड़े में घेरता है। यहाँ पर '**धेनुम्**' और '**व्रजम्**' **अकथित** अथवा वैकल्पिक कर्म हैं। यदि वक्ता इस कर्म को न रखना चाहे तो ये शब्द अपने स्वाभाविक अथवा साधारण कारक में रक्खे जायँगे; जैसे, **धेन्वाः (पञ्चमी) दोग्धि पयः। व्रजे अवरुणद्धि गाम्** (व्रजे—सप्तमी)।

३९—निम्नलिखित कारिका में प्रायः सभी द्विकर्मक धातुएँ आ जाती हैं—

दुह्याच् पच् दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रू शासुजिमथ्मुषाम्।
कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

दुह् (दुहना), याच् (माँगना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना), रुध् (रोकना, रूँधना), प्रच्छ् (पूछना), चि (इकट्ठा करना), ब्रू (कहना, बोलना), शास् (शासन करना), जि (जीतना), मन्थ् (मथना), मुच् (चुराना), नी (ले जाना), हृ (हरना), कृष् (खींचना), वह् (ढोना), तथा इन धातुओं के समान अर्थ रखने वाली अन्य धातुओं के योग में आने वाले साधारण कर्म के अतिरिक्त अन्य संज्ञा

शब्द को भी जिस पर क्रिया का प्रभाव पड़ता है द्वितीया विभक्ति में रखते हैं; जैसे, **गां दोग्धि पयः** (सि० कौ०)--गाय से दूध दुहता है। **बलि याचते वसुधाम्** (सि० कौ०)--बलि से पृथ्वी माँगता है। इसी प्रकार **तण्डुलान् ओदनं पचति, गर्गान् शतं दण्डयति, व्रजमवरुणद्धि गाम्, माणवकं पन्थानं पृच्छति, वृक्षमवचिनोति फलानि, माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति, शतं जयति देवदम्, सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति, देवदत्तं शतं मुष्णाति, ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा** अन्य द्विकर्मक धातुओं के क्रमशः उदाहरण ये हैं--**माणवकं धर्मं भाषते वक्ति वा। बलिं वसुधां भिक्षते-तां त्वां संवरणस्यार्थे वरयामि विभावसो** (महा० १। १७१।२१) इसी प्रकार के कर्म कारक के उदाहरण हैं, क्योंकि **भाष** या **वच्** और **भिक्ष्** या **वृ** के वही अर्थ हैं जो उपरोक्त कारिका में दिये गए **ब्रू** और **याच्** धातुओं के दिए गए हैं।

विशेष—चि, मुष्, पच्, मंथ्, रुध्, जि, कृष्, हृ और वह् धातुएँ संस्कृत साहित्य में द्विकर्मक के रूप में बहुत कम प्रयोग में आती हैं।

४०--ऊपर लिखी हुई धातुएँ तथा उनके समान अर्थ रखने वाली धातुएँ दो कर्म लेती हैं। उनमें से एक मुख्य कर्म कहलाता है और दूसरा गौण। पहिली बारह धातुओं (दुह् से लेकर मुष् तक) के योग में जो **पयः, वसुधाम्, फलानि, सुधाम्** इत्यादि आए हैं वे मुख्य कर्म हैं। **गाम्, बलिम्, वृक्षम्, क्षीरनिधिम्** इत्यादि गौण कर्म हैं क्योंकि वे वक्ता की इच्छा के अनुसार दूसरे कारकों में रक्खे जा सकते हैं। अन्तिम चार धातुओं के योग में जो **अजाम्** और **ग्रामम्** आए हैं उनमें **अजाम्** मुख्य कर्म है और **ग्रामम्** गौण कर्म है। सारांश यह कि जो शब्द क्रिया का अर्थ पूरा करने के लिए अनिवार्य रूप से द्वितीया में रक्खा जाता है वह मुख्य कर्म है और जो वक्ता की इच्छा के अनुसार द्वितीया में रक्खा जाता है वह गौण कर्म है।

४१[1]--ऊपर कही हुई द्विकर्मक धातुओं का कर्मवाच्य बनाने में **दुह्** से लेकर **मुष्** तक की प्रथम बारह धातुओं के गौण कर्म और अन्तिम चार धातुओं

१--गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नी हृकृष्वहाम्। लादयो मताः॥ (सिद्धान्त०)
(विभक्तिः प्रथमा ज्ञेया द्वितीया च तदन्यतः)

अर्थात् नी, हृ, कृष्, वह् के प्रधान कर्म प्रथमा में रक्खे जाते हैं; शेष कर्म वैसे ही रहते हैं जैसे कर्तृवाच्य में;

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
स धेनुं पयो दोग्धि ।	तेन धेनुः पयः दुह्यते ।
देवाः समुद्रं सुधां ममन्थुः ।	देवैः समुद्रः सुधां ममन्थे ।
सोऽजां ग्रामं नयति, हरति, कर्षति, वहति वा ।	तेन अजा ग्रामं नीयते, ह्रियते, कृष्यते, उह्यते वा ।

अभ्यास

१—आज्ञप्तास्मि देव्या धारिण्या अचिरप्रवृत्तोपदेशं चलितं नाम नाट्यमन्तरेण कीदृशी मालविकेति नाट्याचार्यमार्यगणदासं प्रष्टुम् । (मालविका० १) ।

२—ह्यस्तत्र भवतीरावती देवी सुखं प्रष्टुमागता । (मालविका० ४) ।

३—महाश्वेता कादम्बरीमनामयं पप्रच्छ । (कादम्० १९२) ।

४—हिमालयं सर्वशैला वत्सं परिकल्प्य
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च ।
पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् । (कुमार० १ । २)

५—संकल्पितार्थे विकृतात्मशक्तिमाखण्डलः काममिदं बभाषे । (कुमार० ३।११)

६—सोऽहं तृष्णातुरैर्वृष्टिं विद्युत्वानिव चातकैः ।
अरिविप्रकृतैर्देवैः प्रसूतिं प्रति याचितः ॥ (कुमार० ६।२७)

७—किमत्र चित्रं यदि कामसूभूर्वृत्ते स्थितस्याधिपतेः प्रजानाम् ।
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा ॥
(रघु० ५ । ३३) ।

८—तमरण्यसमाश्रयोन्मुखं शिरसा वेष्टनशोभिना सुतः ।
पितरं प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः ॥
(रघु० ८ । १२) ।

९—अथ ज्येष्ठां सुराः सर्वे देवकार्यचिकीर्षया ।

शैलेन्द्रं वरयामासुर्गंगां त्रिपथगां नदीम् ॥

(रामा० १ । ३५ । १६ ।)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—तमातिथ्यक्रियाशान्तरथ-क्षोभ-परिश्रमम् ।
पप्रच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः ॥ (रघु० १ । ५८)

२—सं क्रमेण जन्मभूमिं जातिं विद्यां कलत्रमपत्यानि विभवं वयः प्रमाणं प्रव्रज्याकारणं च स्वयमेव पप्रच्छ चन्द्रापीडः (कादम्० २२८) ।

३—कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशान्तये ।
काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ॥ (रघु० ११ । १)

४—तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ (श्रीमद्० २ । १)

५—भर्तुस्तथा कलुषितां बहुवल्लभस्य
मार्गं कथंचिदवतार्य तनूभवन्तीम् ।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती
गङ्गा शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम् । (मुद्रा० ३)

६—तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुम्
ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः ।
अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ (मेघ० १०४)

७—सोऽपृच्छल्लक्ष्मणं सीतां याचमानः शिवं सुरान् ।
रामं यथास्थितं सर्वं भ्राता ब्रूते स्म विह्वलः ॥
सन्दश्य शरणं शून्यं भिक्षमाणो वनं प्रियाम् ॥
प्राणान्दुहन्निवात्मानं शोकं चित्तमवारुधत् ।
गता स्यादवचिन्वाना कुसुमान्याश्रमद्रुमान् ।
आ यत्र तापसान् धर्मं सुतीक्ष्णं शास्ति तत्र सा ॥ (भट्टि० ६ । ८ । १०)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१—मैंने उससे दस प्रश्न पूछे परन्तु उसने उनमें से एक का भी उत्तर न दिया ।

२—जो धनी पुरुष बहुत उदार कहा जाता था उससे भिखमंगे ने पचास रुपये माँगे।

३—राजा ने अपराधी पर तीन सौ साठ रुपए जुर्माना किये।

४—आचार्य इन शिष्यों को न्याय और व्याकरण के सिद्धान्त सिखाता है।

५—नौकर का अपराध क्षमा करने के लिए मंत्री द्वारा राजा से प्रार्थना की गई।

६—वह मुझसे कहता है (ब्रू) कि गोपाल ने अपनी गाएँ दुह ली हैं।

७—महाशय जी, मेरे द्वारा आप से आप का नाम और वंश पूछा गया था, न कि यह कि आप के पास कितना धन है।

८—क्षीरसागर से चौदह रत्न मथे गए थे।

९—गड़रिया सब भेड़ों को बाजार ले गया और उन्हें बेंच दिया।

१०—कल गाएँ मेरी सबसे छोटी पुत्री द्वारा दुही गई थीं।

११—देवता लोग ब्रह्मा के पास गए और उनसे एक ऐसा पुरुष माँगा जो तारकासुर से उनकी रक्षा करे।

पञ्चम पाठ

प्रेरणार्थक (णिजन्त)

४२—"किसी धातु का **प्रेरणार्थक रूप** यह द्योतित करता है कि कोई व्यक्ति या वस्तु किसी दूसरे व्यक्ति या वस्तु से वह कार्य कराता है जो कि उस धातु से सूचित होता है"—डाक्टर कीलहोर्न का व्याकरण (सेक्शन ४१६)। उदाहरणार्थ—**गम्** 'जाना' **गच्छति**—'जाता है। **गमयति**—'जाने को प्रेरित करता है।

अश्-'खाना'—**अश्नाति**—'खाता है'—**आशयति**—खाने को प्रेरित करता है।

४३—धातु की सादी दशा में जो कर्ता होता है, वह **प्रेरणार्थक** दशा में **तृतीया** में रक्खा जाता है, और कर्म में कोई परिवर्तन नहीं होता; जैसे—

सादी दशा	प्रेरणार्थक दशा
देवदत्त ओदनं पचति	**(स) देवदत्तेन ओदनं पाचयति।**
(देवदत्त भात पकाता है)	(वह देवदत्त से भात पकवाता है)
रामो भार्यां त्यजति	**(स) रामेण भार्या त्याजयति।**
(राम अपनी पत्नी को छोड़ते हैं)	(वह राम से उनकी स्त्री छुड़वाता है)

४४[1]—**गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक** या **ज्ञानार्थक** या कुछ **भक्षणार्थक** तथा इसी अर्थ को व्यक्तित करने वाली अन्य धातुओं में, जिनका कर्म कोई 'शब्द' या 'साहित्यिक विषय' हो, उन धातुओं में, और अकर्मक धातुओं में, जो सादी दशा में कर्ता रहता है वह **प्रेरणार्थक** अथवा **णिजन्त** दशा में कर्म हो जाता है, परन्तु कर्म में कोई परिवर्तन नहीं होता; जैसे,

---

१—गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ।

[शत्रूनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्। आशयच्चामृतं देवान् वेदमध्यापयद्विधिम्। आसयत्सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः]।

२—ये उदाहरण निम्न पद्य में एक साथ व्यक्त किए गए हैं।

सादा रूप	प्रेरणार्थक रूप
[1]शत्रवः स्वर्गमगच्छन्	शत्रून् स्वर्गमगमयत
स्वे वेदार्थम् अविदुः	स्वान् वेदार्थमवेदयत्
देवा अमृतमाश्नन्	देवानमृतमाशयत्
विधिर्वेदमध्यैत	विधिं वेदमध्यापयत्
पृथ्वी सलिले आस्त	पृथ्वीं सलिले आसयत्

परन्तु **गमयति रामो गोविन्दम्** में यदि कोई दूसरा व्यक्ति (विष्णुमित्र) राम से ऐसा कराने की प्रेरणा करता है, तब वाक्य यों होगा—**विष्णुमित्रो रामेण गोविन्दं गमयति**—विष्णुमित्र राम को प्रेरित करता है कि वह गोविन्द को जाने के लिए कहे। यहाँ राम द्वितीया में नहीं रक्खा गया, क्योंकि वह प्रेरणार्थक क्रिया का कर्ता है, न कि सादी क्रिया का।

टिप्पणी—**गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ** सूत्र में आए हुए 'शब्दकर्म' का अर्थ करते हुए महाभाष्यकार पतञ्जलि ने यह व्याख्या लिखी है। 'शब्दकर्म' का अर्थ या तो यह हो सकता है कि **'शब्दो येषां क्रिया'** 'शब्दो येषां कर्म'! यदि पहला अर्थ लिया जाय तो **ह्वयति** (**ह्वे**), **क्रन्दति** (**क्रन्द्**) और **शब्दायते** (शब्द से निष्पन्न नामधातु) धातुएँ इस नियम में से निकल जायँगी; जैसे, **ह्वयति देवदत्तः-ह्वाययति देवदत्तेन। क्रन्दति-शब्दायते-देवदत्तः—क्रन्दयति शब्दाययति देवदत्तेन।** साथ ही, 'श्रु' धातु, वि पूर्वक 'ज्ञा' धातु तथा उप पूर्वक 'लभ्' धातु इस नियम में आ जायँगी; जैसे, **शृणोति-विजानाति-उपलभते-देवदत्तः—श्रावयति-विज्ञापयति-उपलम्भयति-देवदत्तम्।** यदि दूसरी व्याख्या को अपनाया जावे तो 'जल्प्' धातु; आ पूर्वक 'भाष्' धातु और वि पूर्वक 'लप्' धातु अवश्य इस नियम के अन्तर्गत आयेंगी। **जल्पति-विलपति-आभाषते-देवदत्तः, जल्पयति-विलापयति-आभाषयति-देवदत्तं।**

४५—पिछले नियम के अनेक अपवाद और प्रतिप्रसव हैं जो बहुत ही महत्व रखते हैं :—

१—ये उदाहरण निम्न पद्य में एक साथ व्यक्त किए गए हैं :—शत्रूनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्। आशयच्चामृतं देवान् वेदमध्यापयद्विधिम्। आसयत्सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः।

(क)[1] 'नी' रास्ता दिखाना, ले जाना और 'वह' ढोना या ले जाना धातुओं का 'कर्ता' प्रेरणार्थक अथवा णिजन्त प्रयोग द्वितीया में नहीं रखा जाता प्रत्युत तृतीया विभक्ति में रखा जाता है जैसे,

भृत्यो भारं नयति वहति वा। भृत्येन भारं नाययति वाहयति वा।

नौकर भार ले जाता है [सिद्धान्त] (वह) नौकर से भार ढोवाता है।

लेकिन 'वह्' के योग में यदि णिजन्त कर्ता ऐसा कोई शब्द हो जिसका अर्थ **वाहक** हो तो सामान्य नियम ही लागू होगा; जैसे,

वाहा रथं वहन्ति	**सूतो वाहान् रथं वाहयति।** (सिद्धान्त)
घोड़े रथ खींचते हैं।	सारथी घोड़ों को रथ खींचने को प्रेरित करता है।
वहन्ति यवान् बलीवर्दाः।	**वाहयति यवान् बलीवर्दान्** (म० भा०)

(ख)[2] 'अद्' धातु और 'खाद्' धातु के **प्रेरणार्थक** प्रयोग में णिजन्तकर्ता तृतीया विभक्ति में होता है; जैसे,

बटुरन्नमत्ति खादति वा	**बटुनाऽन्नमादयति खादयति वा**
लड़का अन्न खाता है।	(वह) लड़के से अन्न खिलवाता है।

(ग)[3] जब भक्ष् धातु का अर्थ **'हिंसा करना'** नहीं होता तो उसके योग में तृतीया होती है; जैसे, **भक्षयति पिंडीं देवदत्तः, भक्षयति पिंडीं देवदत्तेन; परन्तु भक्षयन्ति यवान् बलीवर्दाः, भक्षयति बलीवर्दान् यवान्** (म० भा०)

(घ) विशिष्ट प्रकार के ज्ञान या अनुभूति को बोध कराने वाली 'स्मृ' और 'घ्रा' जैसी धातुओं का प्रयोग **द्वितीया** के साथ नहीं होता; जैसे, **स्मरति-जिघ्रति देवदत्तः स्मारयति-घ्रापयति देवदत्तेन।**

परन्तु कभी-कभी 'स्मृ' धातु के योग में **द्वितीया** का भी प्रयोग होता है, विशेषकर उस दशा में जब कि 'स्मृ' का अर्थ होता है 'किसी के विषय में सोचना' या 'पश्चात्तापपूर्वक किसी को याद करना'; जैसे, **अपि चन्द्रगुप्तदोषा**

१—नीवह्योर्न (वार्तिक) नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः। वार्तिक

२—आदिखाद्योर्न। (वार्तिक)

३—भक्षेरहिंसार्थस्य न। (वार्तिक)

अतिक्रान्तपार्थिवगुणान् स्मारयन्ति प्रकृतीः (मुद्रा० १); शिशु० ६ । ५६ भी देखिए ।

(ङ)[1] दृश् का **प्रेरणार्थक** रूप **द्वितीया** के साथ प्रयुक्त होता है; **जैसे, भक्ता हरिं पश्यन्ति, दर्शयति भक्तान् हरिम्** (सि० कौ०) ।

विशेष—संस्कृत साहित्य में 'दृश्' का प्रयोग कभी-कभी द्वितीया की जगह चतुर्थी के साथ मिलता है: जैसे, **प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामायादर्शयत् कृती** (रघु० १२ । ६४) ।

(च)[2] हृ, कृ धातुओं के साधारण रूपों का कर्ता, और अभिवद् तथा दृश् के **आत्मनेपद** के रूपों का कर्ता, **प्रेरणार्थक** में **द्वितीया** अथवा **तृतीया** में रक्खा जाता है, जैसे, **भृत्यः कटं करोति हरति वा** (नौकर चटाई बनाता है या ले जाता है) ।

भृत्यं भृत्येन वा कटं कारयति हारयति वा—वह नौकर से चटाई बनवाता है या ढोवाता है । (सि० कौ०)

इसी प्रकार, **अभिवादयते—दर्शयते देवं भक्तं-भक्तेन वा** (सि० कौ०) वह भक्त से देवता को प्रणाम करवाता है या भक्त को प्रेरित करता है कि देवता को प्रणाम करे ।

४६—धारा ४४ में जिन अकर्मक धातुओं का उल्लेख किया गया है उनमें ऐसी धातुओं का अभिप्राय है जो स्वभावतः कालवाची, स्थानवाची इत्यादि कर्मों के अतिरिक्त अन्य कोई कर्म ले ही नहीं सकतीं । धारा ४४ में उल्लिखित अकर्मक धातुओं से ऐसी धातुएँ अभिप्रेत नहीं हैं जो सकर्मक होते हुए भी कभी-कभी वक्ता की इच्छा के अनुसार अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त कर दी जाती हैं, अथवा वे धातुएँ जिनका अर्थ बिल्कुल स्पष्ट रहता है; जैसे, **किंकरः पचति** । यहाँ **'पचति'** सकर्मक होते हुए भी बिना कर्म के प्रयुक्त हुई है क्योंकि यह बड़ी सरलता से समझी जा सकती है । अतएव **'किंकरेण पाचयति'** होगा, न कि **'किंकरं पाचयति'** परन्तु **'मासमासयति देवदत्तम्'** होगा ।

१—दृशेश्च । (वार्तिक) ।

२—हृकोरन्यतरस्याम् । (१ । ४ । ५३) अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् ।

४७—[1]प्रेरणार्थक क्रियाओं का कर्मवाच्य बनाने में प्रेरणार्थक का प्रधान कर्म जो कि मौलिक (साधारण) दशा में क्रिया का कर्ता रहता है प्रथमा विभक्ति में रक्खा जाता है, और दूसरा (गौण) कर्म ज्यों का त्यों रह जाता है, उदाहरणार्थ--

साधारण दशा	प्रेरणार्थक कर्तृवाच्य	प्रेरणार्थक कर्मवाच्य
रामो ग्रामं गच्छति । राम गाँव को जाता है ।	**रामं ग्रामं गमयति ।** (वह) राम को गाँव जाने की प्रेरणा करता है ।	**रामो ग्रामं गम्यते** राम उसके द्वारा गाँव जाने को प्रेरित किया जाता है ।
भृत्यः कटं करोति । नौकर चटाई बनाता है ।	**भृत्येन भृत्यं वा कटं कारयति ।** (वह) नौकर से चटाई बनवाता है ।	**भृत्यः कटं कार्यते ।** नौकर उसके द्वारा चटाई बनाने के लिए प्रेरित किया जाता है ।
गोविन्दो मासमास्ते गोविंद महीने भर बैठता है ।	**गोविन्दं मासमासयति** (वह) गोविन्द को महीने भर बैठाता है ।	**गोविन्दो मासमास्यते ।** गोविन्द उसके द्वारा महीने भर बैठाया जाता है ।

(क) परन्तु **बुद्ध्यर्थक, भक्षार्थक** तथा **शब्दकर्मा** धातुओं का **कर्मवाच्य** बनाने में, प्रधान कर्म प्रथमा विभक्ति में रक्खा जाता है और गौण कर्म द्वितीया में अथवा प्रधान कर्म द्वितीया में और गौण कर्म प्रथमा में, जैसे, **माणवकं धर्मं बोधयति** (वह माणवक को उसका कर्तव्य समझाता है)। इसका कर्मवाच्य इस प्रकार होगा—**माणवको धर्मं बोध्यते अथवा माणवकं धर्मो बोध्यते** (माणवक को उसका कर्तव्य समझाया जाता है अथवा कर्तव्य माणवक को

१—बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मणां च निजेच्छया ॥
प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मतः ॥ (सिद्धान्तः)

समझाया जाता है।) इसी प्रकार **बटुमोदनं भोजयति**—वह लड़के को भोजन कराता है। इसका कर्मवाच्य यों होगा—**बटुरोदनं भोज्यते** अथवा **बटुमोदनो भोज्यते** (सि० कौ०)।

४८—**चुरादिगण** की धातुओं के **प्रेरणार्थक** के रूप ठीक वैसे ही होते हैं जैसे साधारण रूप। इसलिए प्रकरण से अर्थ का निर्णय किया जाना चाहिए; जैसे, **रामो धनं चोरयति**—राम धन चुराता है। **रामो गोविन्देन धनं चोरयति**—राम गोविन्द से धन चुरवाता है या राम गोविन्द को धन चुराने के लिए प्रेरित करता है। **रामः शिवं पूजयति** (राम शिव को पूजता है) : **रामो गोविन्देन शिवं पूजयति** (राम गोविन्द से शिव को पुजवाता है)। यहाँ दूसरा वाक्य **प्रेरणार्थक** है।

४९—धारा ४३ तथा ४४ में उल्लिखित नियम **द्विकर्मक** धातुओं में भी लगते हैं; अर्थात् गत्यर्थक धातुओं के योग में मूल (साधारण) क्रिया का कर्ता **द्वितीया** में रक्खा जाता है और अन्य धातुओं के योग में, धारा ४५ में उल्लिखित नियम का पालन करते हुए, मूल (साधारण) क्रिया का कर्ता **तृतीया** में भी रक्खा जाता है; जैसे, **वामनो बलिं वसुधां याचते**, इसका प्रेरणार्थक (ईश्वरः) **वामनेन बलिं वसुधां याचयति**, होगा (ईश्वर वामन को बलि से पृथ्वी माँगने की प्रेरणा करते हैं। 'गोपोऽजां नगरं हरति' का प्रेरणार्थक होगा (स्वामी) **गोपं गोपेन वा अजां नगरं हारयति** (मालिक) गोप द्वारा बकरा को शहर में पहुँचवाता है।

अभ्यास

१—**अभिमन्युतनयं परीक्षितमुदरादुपरतमेव निर्गतमुत्तराप्रलापोपजनितकृपो भगवान् वासुदेवो दुर्लभानसून् प्रापितवान्।**
(कादम्० १७५)।

२—**अयं शिशुर्न शक्नोति शिरोधरां धारयितुम्। तदेहि गृहाणेममवतारय सलिलसमीपमित्यभिधाय तेनर्षिकुमारेण मां सरस्तीरमनाययत्। उपसृत्य च जलसमीपं स्वयं मामादाय मुक्तप्रयत्नमुत्तानितमुखमंगुल्या कतिचित्सलिलबिंदूनपाययत्।**
(कादम्० ३८८)

३—काम इदानीं सकामो भवतु येनासत्यसंधे जने सखी पदं कारिता। (शा० ४)।

४—महेन्द्रभवनं गच्छतोपाध्यायेन त्वमासनं प्रतिग्राहितः। (विक्रमो० ३)।

५—तौ कुशलवौ भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्मवस्तुतः परिगृह्य पोषितौ परिरक्षितौ च। वृत्तचूडौ च त्रयीवर्जमितरा विद्याः सावधानेन परिपाठितौ। समनंतरं च गर्भादेकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय गुरुणा त्रयीविद्यामध्यापितौ। (उत्तर० २)।

६—नलिनिके पायय कमलमधुरसं कलहंसान्। पल्लविके भोजय मरिचाग्रपल्लवदलानि भवनहारीतान्। (कादम्० १८४)।

७—आर्यो दापयतु मे वैशम्पायनानयनाय गमनाभ्यनुज्ञां तातेन। नान्यथा मे दोषशुद्धिर्भवति। (कादम्० २०२)।

८—तौ दंपती स्वां प्रति राजधानीं
प्रस्थापयामास वशी वसिष्ठः। (रघु०२।७०)।

९—ततो द्रोणोऽर्जुने भूयो रणशिक्षामशिक्षयत्। (महा० १।१३०।२५)।

१०—तौ दंपती बहु विलप्य शिशो प्रहर्त्रा
शल्यं निखातमुदहारयतामुरस्तः। (रघु० ९।७८)।

११—वाल्मीकिस्तौ कुशलवौ
सांगं च वेदमध्याप्य किंचिदुत्क्रांतशैशवौ।
स्वकृतिं गापयामास कविप्रथमपद्धतिम्। (रघु० १५।३३)।

१२—स सेतुं बंधयामास प्लवगैर्लवणांभसि।
तेनोत्तीर्य पथा लंकां रोधयामास पिंगलैः।
द्वितीयं हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव वानरैः॥ (रघु० १२।७०)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—एवं क्रियते युष्मदादेशः। किंतु या यस्य युज्यते भूमिका तां तथैव भावेन सर्वे वर्ग्याः पाठिताः। (मालती० १)।

२--स कातीतिकस्तां विलोक्य स्निग्धदृष्टिराचष्ट । भद्रं, अस्ति कौशलं शालि-
प्रस्थेनानेन संपन्नमाहारमस्मानभ्यवहारयितुमिति । (दशकुमार० २।६)।

३--ततो मया पाटलिपुत्रं गत्वा श्रावितोऽमात्यसंदेशं वैतालिकः स्तनकलशः ।
(मुद्रा० ४)।

४--रजनीतिमिरावगुंठिते पुरमार्गे घनशब्दविक्लवाः ।
वसतिं प्रिय कामिनां प्रियास्त्वदृते प्रापयितुं क ईश्वरः ॥
(कुमार० ४।११)।

५--तामर्चिताभ्यः कुलदेवताभ्यः कुलप्रतिष्ठां प्रणमय्य माता ।
अकारयत् कारयितव्यदक्षा क्रमेण पादग्रहणं सतीनाम् ॥
(कुमार० ७।२७)।

६--प्रियागुणसहस्राणामेकोन्मालनपेशलः ।
य एव दुःस्मरः कालस्तमेव स्मारिता वयम् ॥ (उत्तर० ६)।

७--शरैरुत्सवसंकेतान् स कृत्वा विरतोत्सवान् ।
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरान् ॥ (रघु० ४।७८)।

८--अथानाथाः प्रकृतयो मातृबंधुनिवासिनम् ।
मौलैरानाययामासुर्भरतं स्तम्भिताश्रुभिः ॥ (रघु० १२।१२)।

९--त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे ।
अदर्शयन् वक्तुमशक्नुवन्त्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः ।
(रघु० १३।२४)

१०--गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः
कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः ।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारये-
न्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् । (किरात० १।३१)

१--यः पयो दोग्धि पाषाणं स रामाद्भूतिमाप्नुयात् ।
रावणं गमय प्रीतिं बोधयन्तं हिताहितम् ॥
प्रीतोऽहं भोजयिष्यामि भवतां भुवनत्रयम् ।
किं विलापयसेऽत्यर्थं पार्श्वे शाययं रावणम् ॥
आज्ञां कारय रक्षोभिर्मां प्रियाण्युपहारय ।
कः शक्रेण कृतं नेच्छेदधिमूर्धानमञ्जलिम् ॥ (भट्टि० ८।८२-८४)

१२--विद्यामथैनं विजयां जयां च रक्षोगणं क्षिप्तुमविक्षितात्मा ।
अध्यापयद्गाधिसुतो यथावन्निघातयिष्यन्युधि यातुधानान् ॥ (भट्टि०२।२१)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१—हम लोगों ने उसे उसका धर्म (कर्तव्य) समझाया (विद्) और घर भेज दिया (प्र+स्था प्रेरणार्थक) ।

२—जब स्वतंत्रता की इच्छा मंत्री के हृदय में घुस जायगी, तब वह राजा को भी स्वयं प्राण छोड़ देने को प्रेरित करेगा (त्यज्) ।

३--युद्ध में अपने शत्रु को हराकर उसने अपने भाटों से अपने वीरकृत्यों का यश गवाया (गै) ।

४--उसने अपने नौकरों से बाजार से ईंधन मँगवाया (नी अथवा हृ) ।

५--यह कोई आश्चर्य नहीं है कि कर देने वाले राजों से सम्राट् अपनी आज्ञा पालन करवाता है ।

६--इन पुरुषों से कह दिया गया था कि उन नौकरानियों से मालाएँ तैयार करा लें ।

७--जब छात्र को किसी विषय के सिद्धान्त समझा दिये जाते हैं तब उसका अभ्यास सिखाया जाता है ।

८--अपने शत्रुओं को पराजित करो और उनसे कर दिलाओ (दा) ।

९--उसने अपने पुत्र के विवाह के लिए अपने नौकरों से एक विशाल मण्डप बनवाया (कृ) ।

१०—उसने लड़के को उसकी इच्छा के प्रतिकूल खवाया (अद् वा खाद्) ।

११—मैंने अपने सम्भ्रान्त अतिथि को अपना पुस्तकालय दिखाया (दृश् का प्रेरणार्थक) ।

१२--वह राम से यात्रियों से काशी का मार्ग पुछवाता है ।

१३--भेड़ें स्वामी द्वारा नौकर से गाँव में पहुँचाई गईं ।

१४--भृत्य को चाहिए कि छन्दोऽनुवर्तन द्वारा वह अपने स्वामी को पारितोषिक देने के लिए प्रेरित करे ।

१५—मैंने उन लोगों को राजा के चारों ओर खड़ा कराया और उनसे उसको प्रणाम करवाया (अभि+वद् प्रेरणार्थक) ।

षष्ठ पाठ

तृतीया

५०[1]—संस्कृत में तृतीया विभक्ति दो प्रधान अर्थों में प्रयुक्त की जाती है। तृतीया विभक्ति या तो किसी कार्य के कर्ता का बोध कराती है या जिस साधन से कार्य का सम्पादन होता है उसका; जैसे, **ततो देव्या किमभिहितम्**, तब रानी द्वारा क्या बात कही गई? ('यहाँ देव्या' में जो तृतीया हुई है वह 'अभिहितम्' के कर्ता का बोध कराती है।) **संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू** (वेणी० १)—क्या मैं अपनी गदा से दुर्योधन की जाँघों को चूर-चूर न कर डालूँ। (यहाँ 'गदया' की तृतीया बतलाती है कि 'चूर-चूर कर डालने' की क्रिया में 'गदा' से सहायता ली जायगी, अर्थात् 'गदा' साधन बनेगी।) **तामेव दिव्ययोषितं चक्षुषा पुनर्निरूपयामास** (कादम्० १३१)—फिर उस दिव्य स्त्री को तरफ अपनी आँख से देखा।

५१—तृतीया विभक्ति से जिस प्रकार के करणत्व (साधनत्व) का बोध होता है वह विविध सम्बन्धों द्वारा प्रकट किया जाता है :—

(क) किसी कार्य के करने का प्रकार विधि या ढङ्ग या वह प्राकृतिक गुण जिससे कोई संज्ञा युक्त हो; जैसे, **आत्मानुरूपां विधिनोपयेमे** (कुमार० १।१८)—उसने अपने योग्य भार्या को विधि से ब्याहा। **प्रकृत्या दर्शनीयः** (म०भा०)—प्रकृति से ही सुन्दर। **माठरोऽस्मि गोत्रेण** (म० भा०)—गोत्र से मैं माठर हूँ। **विषमेण धावति** (म० भा०)—ऊपर नीचे दौड़ता है। इसी प्रकार, **द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति; साहस्रेण पशून क्रीणाति, शतेनशतेन पाययति वत्सान्** इत्यादि।

(ख) जिस मूल्य पर कोई वस्तु खरीदी जाती है; जैसे, **कियता मूल्येन क्रीतं पुस्तकम्**—किस दाम पर पुस्तक खरीदी गई?

१—कर्तृकरणयोस्तृतीया (२।३।१८)

(ग) गत्यर्थक धातुओं के योग में वाहन साधन (करण) होता है; जैसे, **आत्मनः पदं विमानेन विगाहमानः** (रघु० १३।१) अपने स्थान को विमान द्वारा विचरते हुए।

(घ) वहनार्थक अथवा न्यासार्थक धातुओं के योग में, जिस पर कोई वस्तु ढोई जाती है अथवा रक्खी जाती है वह तृतीया में रक्खा जाता है; जैसे, **स श्वानं स्कन्धेनोवाह** (हित० ४) वह कुत्ते को कन्धे पर ढोता था। **भर्तुराज्ञां मूर्ध्ना आदाय** (कुमार० ३।२२) अपने स्वामी की आज्ञा को सिर पर धारण कर।

(ङ) शपथबोधक शब्दों के योग में, जिसके नाम से शपथ ली जाती है वह साधन (करण) होता है; जैसे, **जीवितेनैव शपामि ते** (कादम्० २३३) मैं तुमसे अपने प्राणों की कसम खाकर कहता हूँ।

(च) किसी स्थानविशेष तक जाने के लिए जिस मार्ग का अनुसरण किया जाता है उसकी दिशा साधन (करण) होती है; जैसे, **कतमेन दिग्भागेन गतः स जाल्मः** (विक्रमो० १)--वह शठ किस दिशा में गया?

५२--उत्कर्षार्थक तथा सादृश्यार्थक धातुओं के योग में जिन गुणों की उत्कृष्टता होती है, अथवा जिन बातों में सादृश्य पाया जाता है, उनमें तृतीया होती है; जैसे, **पूर्वान् महाभाग तयातिशेषे** (रघु० ५।१४)—ऐ महाभाग, तुम उस (श्रद्धा) के कारण अपने पूर्वजों से बढ़ कर (उत्कृष्टतर) हो। **स्वरेण रामभद्रमनुहरति** (उत्तर० ४)--आवाज में राम से मिलता-जुलता है।

विशेष--कभी-कभी इसी अर्थ में सप्तमी का प्रयोग होता है; जैसे, **धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः** (राम० १।१६)—दानशीलता में कुबेर के समान और सत्यवादिता में दूसरे धर्म के समान।

(क) पृथक्त्वबोधक शब्दों का प्रयोग साधारणतः तृतीया के साथ होता है; जैसे, **अयमेकपदे तया वियोग उपनतः** (विक्रमो० ४)—यह उससे वियोग एकाएक आ पड़ा। इसी प्रकार **मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः** (मेघ० ११८)।

(ख) सादृश्यार्थबोधक तथा समानता-बोधक शब्द तृतीया विभक्ति के साथ प्रयुक्त होते हैं; जैसे, **धनदेन समस्त्यागे**— दानशीलता में कुबेर के समान।

अस्य मुखं सीताया मुखचंद्रेण संवदति (उत्तर० ४)—इसका मुखड़ा सीताजी के चन्द्रतुल्य मुख से मिलता-जुलता है। षष्ठी विभक्ति का भी प्रकरण देखिए।

५३[1]—अभीष्ट फल की प्राप्ति अथवा अभीष्ट कार्य की सिद्धि का बोध कराने में कालवाची तथा मार्गवाची शब्दों में तृतीया होती है. अर्थात् जितने 'समय' में या जितना 'मार्ग' चलते-चलते कोई कार्य सिद्ध हो जाता है, उस 'समय' और 'मार्ग' में तृतीया होती है, **द्वादशवर्षैर्व्याकरणं श्रूयते**। (पंच० १)--व्याकरण बारह वर्ष में अध्ययन किया जाता है। **क्रोशेन पाठस्तेनाधीतः** (सि० कौ०)—उसके द्वारा कोस भर में पाठ पढ़ लिया गया।

५४[2]—साधन अथवा करण से कारण या प्रयोजन भिन्न होता है। किसी वस्तु या किसी क्रिया के कारण या प्रयोजन का बोध कराने वाली संज्ञा तृतीया में रक्खी जाती है; जैसे, **गुरौ भक्त्या प्रीतास्मि ते** (रघु० २।६३)—गुरु के प्रति तेरी भक्ति से मैं तुझसे प्रसन्न हूँ। **अतिदवीयस्तया च तस्य प्रदेशस्य न किंचिद्ददर्श** (कादम्० १२६)—उस स्थान के बहुत दूर होने के कारण वह कुछ भी न देख सकी।

(क) प्रयोजन भी तृतीया विभक्ति में रक्खा जाता है; जैसे, **अध्ययनेन वसति** (सि० कौ०)—अध्ययन करने के प्रयोजन से रहता है।

विशेष—सन्तुष्ट, प्रसन्न, हर्षित, आश्चर्यचकित, लज्जित—इन अर्थों का बोध कराने वाली क्रियाओं के साथ प्रयुक्त होने वाली तृतीया इसी नियम के अन्तर्गत है; जैसे, **कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति** (पंच० १।१) नीच पुरुष थोड़ीसी वस्तु से भी प्रसन्न हो जाता है। **उभयानंतथालोकः प्रावीण्येन विसिष्मिये** (रघु० १५।६८)—लोग उन दोनों की चतुरता (कौशल) से इतने आश्चर्यान्वित नहीं हुए। **अनेन प्रागल्भ्येन लज्जे** (कादम्० १६३)—मैं इस धृष्टता से लज्जित हूँ।

१—अपवर्गे तृतीया २। ३। ६। फलप्राप्ति अथवा कार्यसिद्धि को 'अपवर्ग' कहते हैं।

२—हेतौ। २। ३। २३।

५५[1]—शरीर के जिस अंग में विकार होता है उसमें तृतीया होती है; जैसे, **अक्ष्णा काणः** (सि० कौ०)—एक आँख का काना। इसी प्रकार **पादेन खंजः, कर्णेन बधिरः** इत्यादि।

५६[2]—किसी दशा या अवस्था विशेष की सत्ता का बोध कराने वाला गुण तृतीया में रक्खा जाता है; जैसे, **जटाभिस्तापसः** (सि० कौ०)—जटाओं से वह तपस्वी प्रतीत होता है।

५७—'बस' या 'पर्याप्त हो चुका' का बोध कराने वाले **अलम्** तथा **कृतम्** के योग में तृतीया होती है, जैसे, **अलमतिविस्तरेण** (वेणी० १) बहुत विस्तार मत करो। **कृतमश्वेन** (उत्तर० ४) घोड़े से बाज आए, घोड़े को हटाओ। **तस्मात् कृतं चरणपातविडम्बनाभिः** (पंच० ४।१)

(क) इस अर्थ में **अलम्** शब्द प्रायः क्त्वा प्रत्ययान्त के साथ प्रयुक्त होता है; जैसे, **अलमन्यथा गृहीत्वा** (मालविका० १) उलटा-पुलटा न समझ लें। ऐसे प्रसङ्गों में **अलम्** शब्द निषेधार्थवाचक होता है।

५८[3]—'सह, साकं, सार्धं, समम्' प्रभृति शब्दों का अर्थ होता है 'साथ'। इनके प्रयोग में उस शब्द में तृतीया होती है जो किसी वाक्य के प्रधान कर्ता का साथ देता है; जैसे, **त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु** (उत्तर० २) मैं आप के साथ जंगलों में रहूँगी। **अमरसिन्धुः साधमस्मद्विधाभिः** (उत्तर० ३) हम जैसे पुरुषों के साथ देव नदी। **आस्स्व साकं मया सौधे** (भट्टि० ८।७६) मेरे साथ महल में बैठो।

५९—किं, कार्यं, अर्थः, प्रयोजनं, गुणः इत्यादि 'लाभ' अथवा 'आवश्यकता' वाचक शब्दों का तथा इसी अर्थ का बोध कराने वाली 'किम्' पूर्वक 'कृ' धातु का जब प्रयोग होता है, तब जिससे लाभ होना अथवा आवश्यकता पाई जाती है उसमें तृतीया होती है और जिसको लाभ होने वाला होता है अथवा जिसे आवश्यकता पड़ती है वह षष्ठी में रक्खा जाता है; जैसे, **देवपादानां सेवकैर्न प्रयोजनम्** (हित० १) श्रीमान् को

१—येनांगविकारः। २।३।२०

२—इत्थंभूतलक्षणे २।३।२१

३—सहयुक्तेऽप्रधाने। २।३।१९

नौकरों की आवश्यकता नहीं है। **तृणेन कार्यं भवतीश्वराणाम्** (पंच० १।१) धनी लोगों का कोई-कोई काम तिनके से भी सध जाता है। **किं तया क्रियते धेन्वा** (पंच० १) उस गाय से क्या करना है? **किं तया दृष्ट्या** (शा० २) उसे देखने से क्या लाभ? **अप्राज्ञेन सानुरागेण भृत्येन को गुणः** (मुद्रा० १) अनुरागयुक्त परन्तु मूर्ख नौकर से क्या लाभ?

विशेष—पाणिनि के नीचे लिखे हुए दो सूत्र हैं :—(१) **दिवःकर्मच** १।४।४३ अर्थात् 'खेलना' अर्थवाचक दिव् धातु के योग में द्वितीया अथवा तृतीया होती है, जैसे, **अक्षैरक्षान्वा दीव्यति**—वह कौड़ी खेलता है।

(२) **संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि** २।३।२२, **पित्रा पितरं वा संजानीते** —वह अपने पिता के साथ मेल से रहता है।

अभ्यास

१—अलमलं बहु विकत्थ्य। राज्ञः समक्षमेवावयोरधरोत्तर-व्यक्तिर्भविष्यति (मालविका० १)।

२—देवेन देव्या च परिगृहीतोहममुना हरदत्तेन प्रधान-पुरुषसमक्षमयं न मे पादरजसा तुल्य इत्यधिक्षिप्तः (मालविका० १)।

३—शापितासि मम लवंगिकावलोकितयोर्जीवितेन यदि वाचा न कथयसि (मालती० ८)।

४—आगंतुकतयाऽश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृत्तांतः (शा० ६)।

५—भगवति तमसे अयं (करिकलभकः) तावदीदृशः संपन्नः। तौ पुनर्न जाने कुशलवावेतावता कालेन कीदृशाविव भवतः (उत्तर० ३)।

६—चंद्रापीडस्य सहपांशुक्रीडिततया सहसंवृद्धतया च सर्वविश्रंभस्थानं द्वितीयमिव हृदयं वैशम्पायनःपरं मित्रमासीत् (कादम्० ७६)।

७—अलमतियंत्रणया। कृतमतिप्रसादेन। भगवति प्रसीद विमुच्यतामयमत्यादर इति तामब्रवीत् (कादम्० १३३)।

८—उषसि चोत्थाय तस्य जरद्विडधार्मिकस्येच्छया निसृष्टैर्धनविसरैः पूरयित्वा मनोरथमभिमतमभिरमणीयेषु प्रदेशेषु निवसन्नल्पैरेवाहोभिरुज्जयिनीमाजगाम (कादम्० २२६)।

९—अलमुपालभ्य । आर्य दैवेनेदमनुष्ठितं किमत्रार्यस्य (मुद्रा० ३)।

१०—अयि पंचालतनये अलं विषादेन । किं बहुना । यत्करिष्ये तच्छ्रूयताम् । अचिरेणैव कालेन सुयोधनशोणितशोणपाणिस्तव कचान् भीम उत्तंसयिष्यति (वेणी० १)।

११—स्वहृदयेनापि विदितवृत्तांतेनामुना जिह्मेमि (कादम्० २३३)।

१२—प्रवातशयने निषण्णा देवी परिजनहस्तगृहीतेन चरणेन परिव्राजिकया कथाभिर्विनोद्यमाना तिष्ठति (मृच्छ० ४)।

१३—मदनमपि गुणैर्विशेषयंती
रतिरिव मूर्तिमती विभाति सेयम् (मृच्छ० ४)

१४—शुद्धांतदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य ।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः (शा० १)।

११—शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपांडुना—
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ।

१६—यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते (श्रीमद्० १०।३)।

१७—किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न दुग्धदा ।
कोर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान् (पंच० १)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अधुनाऽन्या गतिर्नास्ति । अकथ्यमाने च महाननर्थोपनिपातो जायते प्राणपरित्यागेनापि रक्षणीयाः सुहृदसव इति कथयामि । (कादम्० १५२)।

२—तेषु तेषु रम्यतरेषु स्थानेषु तया सह तानि तान्यपरिसमाप्तान्यपुनरुक्तानि न केवलं चंद्रमाः कादंबर्या सह कादंबरी महाश्वेतया सह महाश्वेता तु

पुंडरीकेण सह पुंडरीकोऽपि चंद्रमसा सह परस्परावियोगेन सर्व एव सर्वकालं सर्वसुखान्यनुभवंतः परां कोटिमानंदस्याध्यगच्छन् (कादम्० ३६६)।

३—अवधूतप्रणिपाताः पश्चात्संतप्यमानमनसोऽपि।
निभृतैर्व्यपत्रपन्ते दयितानुनयैर्मनस्विन्यः॥ (विक्रमो० ३)।

४—कष्टं जनः कुलधनैरनुरंजनीयस्तथो यदुक्तमशिवं न हि तत्क्षमं ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि-
(उत्तर० १)।

५—अथ दुर्लंघ्यशासनतया भगवतो मनोभुवो मदजननतया च मधुमासस्यातिरमणीयतया च तस्य प्रदेशस्याविनयबहुलतया चाभिनवयौवनस्य चंचलप्रकृतितया चेंद्रियाणां दुर्निवारतया च विषयाभिलाषाणां तथा भवितव्यतया च तस्य तस्य वस्तुनः तमपि तरलतामनयदनंगः। (कादम्० १४३)

६—विनाप्यर्थैर्धीरः स्पृशति बहुमानोन्नतिपदं
समायुक्तोऽप्यर्थैः परिभवपदं याति कृपणः।
स्वभावादुद्भतां गुणसमुदयावाप्तिविषयां
द्युतिं सैंहीं किं श्वा धृतकनकमालोऽपि लभते॥ (हित० १)

७—अलं महीपाल तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्।
न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (रघु० २।३४)।

८—कुलेन कांत्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः।
त्वमात्मनस्तुल्यमलं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु कांचनेन (रघु० ६।७६)।

९—लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्।
सौजन्यं यदि किं गुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मंडनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना॥ (भर्तृ० २।५५)।

१०—अयमार्यचाणक्यस्तिष्ठति—
यो नंदमौर्यनृपयोः परिभूय लोक-
मस्तोदयौ प्रतिदिशन्नविभिन्नकालम्।
पर्यायपातितहिमोष्णमसर्वगामि
धाम्नातिशाययति धाम सहस्रधाम्नः (मुद्रा० ३)।

११--भूषणाद्युपचारेण प्रभुर्भवति न प्रभुः ।
परैरपरिभूताज्ञस्त्वमिव प्रभुरुच्यते ॥ (मुद्रा० ३) ।

१२--आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां ज्ञानं भोगा मित्रसंरक्षणं च
येषामेते षड्गुणान प्रवृत्ताः कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ॥ (भर्तृ० २।४८)

१३--न तेन सज्जं क्वचिदुद्यतं धनुः कृतं न वा कोपविजिह्माननम् ॥
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ॥
(किरात० १।२१) ।

१४--समुद्र इव गांभीर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव ।
विष्णुना सदृशो वीर्ये क्षमया पृथवीसमः ॥ (राम० १।१।१७) ।

१५—स बाल आसीद्वपुषा चतुर्भुजो मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचनः ।
युवा कराक्रांतमहो भृदुच्चकैरसंशयं संप्रति तेजसा रविः ॥
(शिशु० १।७०) ।

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

१--मनुद्वारा विहित नियमों के अनुसार राजा अपनी प्रजा का पालन करे ।

२—सदाचार कहता है कि अपने प्राण को संकट में डालकर भी मित्र की रक्षा करे ।

३—यह लोभ का अवतार है; यह कितना भी धन-संचय करे, पर कभी तृप्त न होगा ।

४—क्या तुम अज्ञान से लजाते नहीं हो और क्या अपने विद्याविहीन उच्चकुल का अभिमान करते हो ?

५--प्रजा को सन्तुष्ट रखने की कामना तथा ज्ञान और पराक्रम में यह राजा अन्य सबों से बढ़कर है ।

६--अन्य राजाओं द्वारा आप की आज्ञा सिर पर धारण की जाती है, यह आपकी महिमा का बहुत बड़ा चिह्न है ।

७--वह मनुष्य अजशावक को कन्धे पर ले कर इस मार्ग से कसाई-खाने गया ।

८—मैं अपने इष्ट देव की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैंने इसके पहिले आप की अँगूठी कभी नहीं देखी।

९—मैं जानता हूँ कि मेरे नौकर पन्द्रह दिन में लौट आवेंगे, क्योंकि उनके वहाँ अधिक ठहरने से क्या लाभ ?

१०—उत्कट श्रद्धा के साथ केवल एक बार भी ओंकार कहने से पापी भी अपने तमाम पापों से मुक्त हो जाता है।

११—इस आदमी के साथ टहलने से क्या लाभ ? वह दाहिने पाँव का लँगड़ा है और शीघ्रतापूर्वक नहीं चल सकता।

१२—इस विषय में शङ्का न कीजिए (अलम्); मेरे बहनोई द्वारा यह मामला स्वीकार कर लिया गया है।

१३—तुझ मूर्ख को धिक्कार है। यदि तू पुस्तकों को नहीं पढ़ता तो तुझे उनके बोझ से क्या लाभ ?

१४—मेरी निन्दा न कीजिए (अलम्); यह मुझसे नहीं किया गया।

१५—बच्चे मत रोओ (अलम्); जब तेरी माता यहाँ आवेगी तो मैं उससे तुझे खिलवाऊँगा।

१६—अपने प्रेमी के विषय में सोचते रहने के कारण शकुन्तला ने दुर्वासा का आगमन नहीं देखा।

१७—ऐ अन्धे आदमी, तुझे इस दीपक से क्या लाभ ?

सप्तम पाठ

चतुर्थी

६०—जिसको कोई वस्तु दी जाती है उसे सम्प्रदान कहते हैं। सम्प्रदान में चतुर्थी होती है; जैसे, **किं वस्तु विद्वन् गुरवे प्रदेयम्** (रघु० ५।१८)—हे विद्वान् पुरुष, गुरु जी को क्या देना है? जिस पुरुष या वस्तु के लिए अथवा जिसके उद्देश्य से कोई कार्य किया जाता है, वह भी सम्प्रदान होता है; जैसे, **युद्धाय सन्नह्यते** (म० भा०)—युद्ध के लिए तैयारी करता है। **तां नन्दनाय प्रार्थयते** (मालती०)—वह उसे नन्दन के लिए माँग रहा है।

(क)[1] **यज्** धातु (यज्ञ करना) के योग में, जिस व्यक्ति को यज्ञ अर्पण किया जाता है, वह द्वितीया में रक्खा जाता है; और जिस वस्तु या साधन द्वारा यज्ञ किया जाता है वह तृतीया में रक्खा जाता है; जैसे, **पशुना रुद्रं यजते** (सि० कौ०)—वह रुद्र को एक पशु चढ़ाता है।

६१[2]—**रुच्** धातु तथा रुच् के समान अर्थ रखने वाली धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाला चतुर्थी में रक्खा जाता है; जैसे, **यत् प्रभविष्णवे रोचते** (शा० २)—जो श्रीमान् को भावे। **यज्ञदत्ताय स्वदतेऽपूपः** (काशिका)—यज्ञदत्त को अपूप अच्छा लगता है।

६२[3]—**धृ** धातु (ऋणी होना, उधार लेना) के योग में ऋण देने वाले (महाजन) तथा 'स्पृह्' (चाहना) धातु के योग में जिस वस्तु की इच्छा की जाती है उसे चतुर्थी में रक्खा जाता है। जैसे, **वृत्तसेचने द्वे धारयसि मे** (शा० १)—तू मेरे दो वृक्षों की सिंचाई के जिम्मेदार है। **परिक्षीणो यत्नानां प्रसृतये स्पृहयति** (भर्तृ० ३।५५)—एक दरिद्र व्यक्ति मुट्ठी भर (पसरभर) जौ चाहता है।

१—यजेः कर्मणः करणसंज्ञा, सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा (वार्तिक)

२—रुच्यर्थानां प्रीयमाणः १।४।३३।

३—धारेरुत्तमर्णः स्पृहेरीप्सितः। १। ४। ३५-३६

विशेष—स्पृह् धातु से प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्दों के योग में कभी-कभी चतुर्थ्यन्त पद का प्रयोग होता है। जैसे, **भोगेभ्यः स्पृहयालवः** (भर्तृ० ३। ६४)—भोगों (आरामों) के इच्छुक। **कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम्** (वेणी० ३)। साधारणतया स्पृह् धातु से प्रत्ययनिष्पन्न शब्दों के योग में सप्तम्यन्तपद का प्रयोग होता है। जैसे, **स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी** (रघु० ६। ५.)।

६३[1]—क्रुध् (गुस्सा होना), द्रुह् (द्रोह करना, वैर करना), ईर्ष्य (डाह या जलन करना), असूय् (डाह या जलन करना)—इन धातुओं तथा इनके समान अर्थ रखने वाली अन्य धातुओं के योग में, जिसके ऊपर क्रोध किया जाता है, या जिससे घृणा या डाह इत्यादि की जाती है वह चतुर्थी में रक्खा जाता है; जैसे, **हरये क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति वा** (सि० कौ०) —वह हरि से गुस्सा होता है, द्रोह करता है अथवा डाह करता है।

परन्तु उपसर्गयुक्त क्रुध् तथा द्रुह् धातुएँ द्वितीयान्त पद लेती हैं; जैसे, **मच्छरीरमभिद्रोग्धुं** (मुद्रा० १) - मेरे शरीर पर आघात पहुँचाने के लिए। **न खलु तामभिक्रुद्धो गुरुः** (विक्रमो० ३)—क्या गुरु जी उस पर गुस्सा नहीं हुए!

६४[2]—प्रतिपूर्वक या आपूर्वक श्रु धातु का अर्थ होता है "प्रतिज्ञा करना" उसके योग में जिस पुरुष से प्रतिज्ञा की जाती है वह चतुर्थी में रक्खा जाता है; जैसे, **प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम्** (रघु० १२। ४)—काकुत्स्थ ने उन लोगों से विघ्नों को हटाने की प्रतिज्ञा की।

६५[3]—जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है, या जिसको बनाने के लिए कोई दूसरी वस्तु कायम रहती है या प्रयुक्त होती है वह चतुर्थी में रक्खा जाता है;। जैसे, **काव्यं यशसे** (काव्यप्रकाश)—काव्य यश के लिए होता है। **यूपाय दारु** (म० भा०)—खम्भा (बनाने) के लिए लकड़ी। **कुण्डलाय हिरण्यम्** (म० भा०)—सुवर्ण कुण्डल बनाने के काम आता है। **अवहननाय उलूखलम्** (म० भा०)—कूटने के लिए अथवा काणने के लिए ओखली।

१—क्रुध्द्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः क्रुध्द्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म १।४।३७-३८।

२—प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता। १। ४। ४०।

३—तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वार्तिक)।

(क)[1] जब किसी वाक्य में तुमुनन्त धातु का अर्थ या भाव छिपा या दबा-सा रहता है, तब तुमुनन्त का कर्म चतुर्थी में रक्खा जाता है। जैसे, **फलेभ्यो याति=फलान्याहर्तुं याति**—वह फलों के लिए जाता है अर्थात् फलों को **लाने के लिए** जाता है। **वनाय गां मुमोच=वनं गन्तुं गां मुमोच**—उसने गाय को जङ्गल के लिए छोड़ दिया अर्थात् जङ्गल को **जाने के लिए** छोड़ दिया। यहाँ **'आहर्तुम्'** का कर्म **'फल'** और **'गन्तुम्'** का कर्म **'वन'** चतुर्थी में रक्खा गया है।

(ख)[2] किसी धातु में तुमुन् प्रत्यय जोड़ने से जो अर्थ निकलता है, वही अर्थ पाने के लिए, उस धातु से बनी हुई भाववाचक संज्ञा में चतुर्थी प्रयुक्त होती है; जैसे, **यागाय** याति—यष्टुं याति—वह यज्ञ करने के लिए जाता है। **समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्** (शा० १)। **यतिष्ये वः सखीप्रत्यानयनाय** (विक्रमो० १)

६६[3]—**क्लृप्** (समर्थ होना या पैदा करना) के योग में तथा उसी प्रकार का अर्थ रखने वाली **संपद्, भू, जन्** सरीखी अन्य धातुओं के योग में, जो परिणाम निकलता है वह चतुर्थी में रक्खा जाता है; जैसे, **कल्पसे रक्षणाय** (शा० ५)—तुम प्रजाओं की रक्षा करने में समर्थ हो। **मूत्राय कल्पते-जायते सम्पद्यते यवागूः** (म० भा०)—माड़ पेशाब पैदा करता है। इसी अर्थ में, भू अथवा अस् के न रहने पर भी प्रायः चतुर्थी प्रयुक्त होती है; जैसे, **यतस्तौ स्वल्पदुःखाय** (पंच० १)—चूँकि वे दोनों बहुत कम दुःख देते हैं।

(क)[4] किसी अशुभसूचक घटना द्वारा जिस वस्तु का पूर्वरूप दिखाई देता है वह चतुर्थी में रक्खी जाती है। जैसे, **वाताय कपिला विद्युत्** (म० भा०)—चितकबरी बिजली तूफान की द्योतक है। **मांसौदनाय व्याहरति मृगः** (म० भा०)—हिरन की आवाज मांस के भोजन की प्राप्ति सूचित करती है।

(ख) 'हित' और 'सुख' के साथ चतुर्थी प्रयुक्त होती है; जैसे, **ब्राह्म-**

१—क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः। २। ३। १४।

२—तुमर्थाच्च भाववचनात्। २। ३। १५।

३—क्लृपि सम्पद्यमाने च (वार्तिक)।

४—उत्पातेन ज्ञापिते च (वार्तिक)।

ब्राह्मणाय हितम्—सुखम् (सि० कौ०)—ब्राह्मण के लिए हितकर वा सुखकर। **हितमाययाविने** (म० भा०)—रुग्ण पुरुष के लिए हितकर अथवा सुखकर।

विशेष—हित का प्रयोग सप्तमी तथा षष्ठी के साथ भी होता है।

६७[1]—**नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम्** (जोड़, काफी) और **वषट्** शब्दों के योग में चतुर्थी होती है। जैसे, नमो **विश्वसृजे तुभ्यम्** (रघु० १०।१६)—विश्व के रचने वाले आप को नमस्कार है। **स्वस्ति भवते** (मालविका० २)—आप का कल्याण हो। **अग्नये स्वाहा** (सि० कौ०)—अग्नि को यह बलि। इसी प्रकार **पितृभ्यः स्वधा, इन्द्राय वषट्, दैत्येभ्यो हरिरलम्** (सि० कौ०)—हरि दैत्यों के जोड़ के हैं। **अलमेषा क्षुधितस्य** (मे) तृप्त्यै (रघु० २। ३६)—मुझ भूखे को सन्तुष्ट करने के लिए यह गाय पर्याप्त है।

(क) अलम् (पर्याप्त, करने के लिए समर्थ) के अर्थवाचक 'प्रभु' और 'शक्त' शब्द के योग में तथा 'प्र' पूर्वक 'भू' धातु के योग में चतुर्थी होती है; जैसे, **प्रभुर्मल्लो मल्लाय, शक्तो मल्लो मल्लाय, प्रभवति मल्लो मल्लाय** (म० भा०)—पहलवान का जोड़ पहलवान होता है। **विधिरपि न येभ्यः प्रभवति** (भर्तृ० २।६४)—जिनके ऊपर ब्रह्मा का भी जोर नहीं चलता।

(ख) 'नमः' पूर्वक कृ धातु के साथ साधारणतया द्वितीया आती है, परन्तु कभी-कभी चतुर्थी भी; जैसे, **मुनित्रयं नमस्कृत्य** (सि० कौ०)—तीनों मुनियों को नमस्कार करके। परन्तु **नमस्कुर्मो नृसिंहाय** (सि० कौ०)—हम लोग नृसिंह को नमस्कार करते हैं।

(ग) 'प्रणाम करना'—इस **अर्थ** का बोध कराने वाली **प्रणिपत्** और **प्रणम्** इत्यादि धातुओं के साथ द्वितीया अथवा चतुर्थी आती है; जैसे, **धातारं प्रणिपत्य** (कुमार० २।३) - ब्रह्मा को प्रणाम कर। **तस्मै प्रणिपत्य नन्दी** (कुमार० ३।६०)। **आर्यं प्रणिपत्य** (मुद्रा० १)। इसी प्रकार **भक्ति-प्रवणेन चेतसा प्रणनाम** (कादम्० २२८)। **तां कुलदेवताभ्यः प्रणमय्य** (कुमार० ७।२७)। **प्रणम्य त्रिलोचनाय** (कादम्० १३१)।

टिप्पणी—संस्कृत-लेखक इन धातुओं से बने हुए संज्ञाशब्दों का भी प्रयोग समय-समय पर चतुर्थी के साथ करते हैं; जैसे, मूर्ध्ना प्रणामं वृषभध्वजाय चकार (कुमार० ३।६२)। अस्मै प्रणाममकरवम् (कादम्० १४२) तस्मै दण्डप्रणाम-मकरवम् (दशकु० १।२)

१—नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधाऽलंवषड् योगाच्च। २।३।१६।

(घ) आशीर्वाद प्रकट करने तथा स्वागत करने में **'स्वागतम्' 'कुशलम्'** आदि शब्दों के साथ चतुर्थी आती है; जैसे, **देवदत्ताय कुशलम्** (म० भा०); **स्वागतं देव्यै** (मालविका० १)—रानी का स्वागत। **'कुशलम्', 'भद्रम्' 'सुखम्'** इत्यादि शब्द षष्ठी के साथ भी आते हैं। दशम पाठ देखिए।

६८—'कहना'—इस अर्थ का बोध कराने वाली **कथ्, ख्या, शंस्,** और **चक्ष्** तथा 'नि' पूर्वक विद् धातु का प्रेरणार्थक और इसी अर्थ का बोध कराने वाली अन्य धातुओं के योग में वह व्यक्ति सम्प्रदान कहलाता है जिससे कुछ कहा जाता है; जैसे, **आर्ये कथयामि ते भूतार्थम्** (शा० १)—ऐ आर्ये, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। **स्वागतं देव्यै** (मालविका० १)—रानी का स्वागत। **एहि इमां वनस्पतिसेवां काश्यपाय निवेदयावः** (शा० ४)—आओ, चलो वृक्षों की इस सेवा को हम लोग काश्यप को बतला दें। **यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ** (उत्तर० ४)—जिससे उन्होंने वेद गाया (वेद का उद्घटन किया)। **यस्मै मुनिर्ब्रह्म परं विवव्रे** (महावीर० २)।

६९—'भेजना'-अर्थ का बोध कराने वाली धातुओं के योग में वह व्यक्ति सम्प्रदान में होता है जिसे कोई वस्तु भेजी जाती है, पर जिस स्थान पर वह वस्तु भेजी जाती है वह कर्म-संज्ञक होता है; जैसे **भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः** (रघु० ५। ३९)—रघु के पास भोजद्वारा एक दूत भेजा गया। **माधवं पद्मावतीं प्रहिण्वता देवरातेन** (मालती० १)—पद्मावती के पास माधव को भेजने वाले देवरात द्वारा।

७०[1]—जब अनादर दिखाना होता है तो मन् (समझना, दिवादि०) धातु का गौण कर्म, यदि वह प्राणी न हो, द्वितीया या चतुर्थी में रक्खा जाता है; जैसे, **न त्वां तृणाय तृणं वा मन्ये** (सि० कौ०)—मैं तुम्हें तिनके के भी बराबर नहीं समझता।

विशेष—जब निषेध या अनादर नहीं दिखाया जाता बल्कि केवल तुलना दिखाई जाती है, तब केवल द्वितीया आती है; जैसे, **त्वां तृणं मन्ये** (म० भा०)—मैं तुझे तिनके के तुल्य समझता हूँ। परन्तु, **हरिमप्यमंस्त तृणाय** (शिशु० १५।३१)।

१—मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु ।२। ३।१७।

७१[1]—जब गत्यर्थक धातुओं का कर्म मार्ग नहीं रहता और क्रिया के निष्पादन में शरीर से व्यापार करना पड़ता है, तो उस कर्म में द्वितीया या चतुर्थी होती है; जैसे, **ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति**। यहाँ पर 'ग्राम' मार्ग नहीं है, बल्कि स्थान है, और गाँव जाने में हाथ, पैर तथा शरीर के और अंगों को हिलाना-डुलाना पड़ता है, अर्थात् शारीरिक व्यापार करना पड़ता है, अतएव 'ग्रामम्' 'ग्रामाय' दोनों होता है।

परन्तु यदि गत्यर्थक धातु का कर्म "मार्ग" हो तो कर्म में केवल द्वितीया होगी, जैसे, **पन्थानं गच्छति**।

जहाँ शारीरिक व्यापार नहीं करना पड़ता वहाँ केवल द्वितीया होती है; जैसे; **मनसा हरिं भजति**। यहाँ हरि के पास जाने में मन से काम लेता है न कि शरीर के अवयवों से; इसमें जाने वाले को हाथ, पैर अथवा शरीर का और कोई अंग हिलाना-डुलाना नहीं पड़ता। इसलिए "हरि" में केवल द्वितीया हो सकती है, चतुर्थी कदापि नहीं।

इसी प्रकार—

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके।
तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ।
विद्या ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम्।
अश्वत्थामा किं न यातः स्मृतिं ते?
पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम?

टिप्पणी[2]—जिस पुरुष के विषय में कुशल-विषयक अथवा सुख-सौभाग्य-विषयक प्रश्न किये जाते हैं, वह राध् धातु (आराधना करना या खुश करना) तथा ईक्ष् धातु (कल्याण कामना करना) के योग में चतुर्थी में रक्खा जाता है; जैसे, कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा गर्गः अर्थात् पृष्टो गर्गः शुभाशुभं पर्यालोचयति—पूछे जाने पर गर्ग जी श्रीकृष्ण के शुभाशुभ का विचार कर रहे हैं।

१—गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि। २।३।१२। गत्यर्थक धातु उसे कहते हैं जिसका अर्थ हो 'जाना'—जैसे, गम्, चल् इण्, या इत्यादि।

२—राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः। १।४।३६।

जिस[1] मूल्य या बँधी हुई मजदूरी पर कोई पुरुष नियुक्त किया जाता है वह मूल्य या मजदूरी तृतीया अथवा चतुर्थी में रक्खी जाती है; जैसे, शतेन शताय वा परिक्रीतोऽयदासः—यह नौकर सौ रुपये में खरीद लिया गया है।

अभ्यास

१—नैतन्नयाय्यम्। सर्वज्ञस्याप्येकाकिनो निर्णयाभ्युपगमो दोषाय। (मालविका० १)

२—चपलोऽयं बटुः कदाचिदस्मत्प्रार्थनामंतःपुरेभ्यः कथयेत्। [शा० २]

३—अहमपि तैतानिकं शांग्युदकमस्मै गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि(शा०३)

४—स्नुषायामि खलु दुर्जनिताया अस्मै। मृगतृष्णिकेव नाममात्रप्रस्तावो मे विषादाय कल्पते। [शा० ७]

५—मूर्ख, नैष तव दोषः। साधोः शिक्षा गुणाय संपद्यते नासाधोः। [पंच० १।१८]

६—प्रमीद भगवति वसुंधरे शरीरसमि संसारस्य। तत्किमसंविदानेव जामात्रे कुप्यसि। [उत्तर० ७]

७—मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भरा न प्रणमंति देवताभ्यो, न मानयंति मान्यानात्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयंति सचिवोपदेशाय, कुप्यंति हितवादिने। [कादम्० १०८]

८—प्रतिश्रुतं तेन तस्मै स्वसुर्यंतिसुन्दर्याः प्रदानम्। [दशकु० २।१]

९—चंद्रापीडः समुपसृत्य पूर्ववदेव तां महाश्वेताप्रणामपुरःसरं दर्शितविनयः प्रणनाम। [कादम्० २१९]

१०—प्रणिपत्य सुरास्तस्मै शमयित्रे सुरद्विषाम्।
अथैनं तुष्टुवुः स्तुत्यमवाङ्मनसगोचरम्॥ [रघु० १०।१५]

११—रविमावसतं सतां क्रियायै सुधया तर्पयते सुरान् पितॄंश्च।
तमसां निशि मूर्च्छतां निहंत्रे हरचूडानिहितात्मने नमस्ते[विक्रमो०३]

१२—उमा वधूर्भवान् दाता याचितार इमे वयम्।
वरः शंभुरलं ह्येष त्वत्कुलाद्भृतये विधिः॥
[कुमार० ६।८२]

१—परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्। १।४।४४।

१३—चरतः किल दुश्चरं तपस्तृणबिंदोः परिशंकितः पुरा ।
प्रजिघाय समाधिभेदिनीं हरिरस्मै हरिणीं सुरांगनाम् [रघु० ८।७६]

१४—वाताय कपिला विद्युदातप्तायातिलोहिनी ।
पीता भवति सस्याय दुर्भिक्षाय सिता भवेत् ॥ [म० भा०]

१५—स्वस्त्यस्तु ते निर्गलितांबुगर्भम् ।
शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि । [रघु० ५।१७]

१६—तस्यां तदागतमुपेत्य तमेकपुत्र-
मज्ञानतः स्वचरितं नृपतेः शशंस । [रघु० ६।७७]

१७—परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे [श्रीमद्० ४।८]

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—तदाकर्ण्य तामहं दंडवत्प्रणम्य तस्यै मदुदंतमखिलमाख्याय विस्मयविकसिताक्षं जनकमदर्शयम् । (दशकु० १।४)

२—सखि वासंति दुःखायेदानीं रामस्य दर्शनं सुहृदाम् । तत्किंयच्चिरं त्वां मोदयिष्यामि तदनुजानीहि मां गमनाय । (उत्तर०६)

३—स्वयमेवोत्पद्यंत एवंविधाः कुलपांसवो निःस्नेहाः पशवो येषां क्षुद्राणां प्रज्ञा पराभिसंधानाय न ज्ञानाय । पराक्रमः प्राणिनामुपघाताय, नोपकाराय, धनपरित्यागः कामाय, न धर्माय । किं बहुना सर्वमेव येषां दोषाय न गुणाय । (कादम्० २८८)

४—श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा निर्वपन्ति गृहमेधिनः (उत्तर० ४)

५—दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम् ।
संपद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम् । (रघु० १।२६)

६—नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सतः केवलात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ॥ (कुमार० २।४)

७—स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः (विक्रमो० १)

८—सर्वः कल्ये वयसि यतते लब्धुमर्थान्कुटुम्बी
पश्चात्पुत्रैरपहृतभरः कल्पते विश्रमाय । (विक्रमो० २) ।

९—यदेवोपनतं दुःखात्सुखं तद्रसवत्तरम् ।
निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः (विक्रमो० ३) ।

१०—शुद्धांतसंभोगनितांततुष्टे न नैषधे कार्यमिदं निगद्यम् ।
अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगंधिः स्वदते तुषारा ॥(नैषधीय३।२५)

११—किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्द्धकशोभि वल्कलम् ।
वद प्रदोषे स्फुटचंद्रतारकाविभावरी यद्यरुणाय कल्पते (कुमार० ५।४४)

१२—पुंसामसमर्थानामुपद्रवायात्मनो भवेत्कोपः ।
पिटरं क्वणतिमात्रं निजपार्श्वानेव दहतितराम् ॥ (पंच १।१४) ।

१३—पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्द्धनम् ।
उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शांतये ॥ (हित० ३)

१४—प्रतिवाचमदत्त केशवः शपमानाय न चेदिभूभुजे ।
अनुहुंकुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी ॥ (शिशु० १६।२५) ।

१५—संतानकामाय तथेति कामं राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा ।
दुग्ध्वा पयः पत्रपुटे मदीयं पुत्रोपभुंक्ष्वेति तमादिदेश ॥ (रघु० २।६५) ।

१६—तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य ।
प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै शशंस वाचा पुनरुक्तयेव ॥ (रघु० २।६८)

१७—ततो यथावद्विहिताध्वराय तस्मै समयावेशविवर्जिताय ।
वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी विचक्षणः प्रस्तुतमाचचक्षे ॥ (रघु० ५।१६)

१८—वसन् स तस्यां वसतौ रघूणां पुराणशोभामधिरोपितायाम् ।
न मैथिलेयः स्पृहयांबभूव भर्त्रे दिवो नाप्यलकेश्वराय ॥ (रघु० १६।४२)

१९—तस्य स्पृहयमाणोऽसौ बहुप्रियमभाषत ।
सानुनीतिश्च सीतायै नाक्रुध्यन्नाप्यसूयत ॥
संक्रुध्यसि मृषा किं त्वं दिदृक्षुः मां मृगेक्षणे ।
ईक्षितव्यं परस्त्रीभ्यः स्वधर्मो रक्षसामयम् ॥
रावणाय नमस्कुर्याः स्यात् सीते स्वस्ति ते ध्रुवम् ।
अन्यथा प्रातराशाय कुर्याम स्वामलं वयम् ॥ (भट्टि० ८।७५।७६।९८)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—ऐ अभागे, क्या तुझे चाण्डाल के घर में नौकरी पसन्द है ?

२—ऐ आर्ये, मेरे विषय में गलत भावना न लाइये और व्यर्थ ही मुझ पर क्रोध न कीजिए।

३—मैं धन नहीं चाहता (स्पृह्), बल्कि अमर यश।

४—"मैं तुम्हारे साथ चलूँगा"—ऐसी प्रतिज्ञा लक्ष्मण से करके अब तुम उनसे यह क्यों कहते हो कि तुम ऐसा करने में असमर्थ हो ?

५—वृत्तान्त सुनने पर अत्यन्त प्रसन्न होकर उन लोगों ने अपने रहस्य भी उससे बता दिए (नि+विद्)।

६—इन पवित्र पुरुषों का दर्शनमात्र मेरी शुद्धि के लिए पर्याप्त होगा (क्त्वा); अतः अपने अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि के लिए मैं उनकी सेवा करूँगा।

७—मैंने अपने भाई द्वारा उनसे कहला दिया (आ+ख्या) कि आपके दर्शन से मुझे कोई प्रयोजन नहीं।

८—ऐ वृद्धे, ऐसे शोकप्रद विचारों से और भी अधिक दुःख पैदा होंगे; अतः थोड़ी देर तक ढाढ़स रक्खो।

९—इस संसार में विषयों का उपभोग केवल खेद पैदा करता है।

१०—मेरी प्रजा मुझसे घृणा करती है (असूय्) और मेरे प्राण लेने के लिए षड्यंत्र रचती है (द्रुह्)।

११—पहिले अपने गुरु को प्रणाम करो (प्रणम्), तब अपना पाठ आरम्भ करो।

१२—अपने तीसरे नेत्र की आग से कामदेव को भस्मसात् कर देने वाले त्रिनेत्र भगवान् को नमस्कार है।

१३—जब मनुष्य के पुत्र उत्पन्न होता है, तब अपने पूर्वजों (पितरों) के ऋण से उऋण (अनृणी) हो जाता है।

१४—शत्रु की सम्पूर्ण सेना को हराने के लिए तुम अकेले ही समर्थ हो (अलम्)।

१५—छोटा सा भी कारण दुर्भाग्यग्रस्त मनुष्य के नाश के लिए पर्याप्त होता है।

१६—विदेहराज के पास दूत भेजकर यह शुभ समाचार उनको बताऊँगा।

अष्टम पाठ

पंचमी

७२—पंचमी विभक्ति का मुख्य अर्थ होता है 'अपादान'। जिस पुरुष, स्थान या वस्तु से मनःकल्पित अथवा प्रत्यक्ष वियोग (पृथक्त्व) होता है, वह 'अपादान' होता है और पंचमी में रक्खा जाता है; जैसे, **ग्रामादायाति**—वह गाँव से आता है। यहाँ पर "ग्राम" से वियोग या पृथक्त्व पाया जा रहा है क्योंकि आने वाला पुरुष 'ग्राम' से अलग हो रहा है।

७३[1]—पंचम्यन्त संज्ञा प्रायः किसी कार्य का कारण बताती है और "कारण से" इस अर्थ का बोध कराती है, जैसे, **सौहृदादप्रथगाश्रयाम्** (उत्तर० १)—स्नेह के कारण अलग न रहने वाली को। जो संज्ञा स्त्रीलिंग न हो और किसी कार्य का कारण बताती हो वह तृतीया या पंचमी में रक्खी जाती है; जैसे—**जाड्येन जाड्यात् वा बद्धः** (सि० कौ०)—वह अपनी जड़ता (मूर्खता) के कारण बाँधा गया। **बुद्ध्या मुक्तः** (सि० कौ०)—वह अपनी बुद्धि (चतुरता) के कारण छूट गया। **भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च प्रीतास्मि ते** (रघु० २।६३)—मेरे ऊपर तूने जो कृपा तथा गुरु के प्रति जो श्रद्धा दिखाई उसके कारण मैं तुझ से प्रसन्न हूँ।

विशेष—कभी-कभी स्त्रीलिंग संज्ञा भी इसी अर्थ में पंचमी में प्रयुक्त होती है; जैसे, **नास्ति घटोऽनुपलब्धेः** (सि० कौ०)।

(क) वाद-विवाद में, युक्ति उपस्थापित करने अथवा उत्तर देने के लिए पंचमी विभक्ति प्रायः सम्पूर्ण कार्य-कारण-सम्बन्ध के अर्थ का बोध कराती है; जैसे, **पर्वतो वह्निमान् धूमात्** (तर्कसंग्रह)—पहाड़ में आग है, क्योंकि उसमें धुआँ है। **नेश्वरो, जगतः कारणमुपपद्यते। कुतः वैषम्यनैर्घृण्यप्रसंगात्** (शां० भा०)—(कोई वादी कहता है) ईश्वर संसार का कारण नहीं हो सकता। क्यों? क्योंकि वह पक्षपात करने वाला तथा निर्दय है।

१—विभाषागुणेऽस्त्रियाम्। २। ३। २५।

७४—तरप् और ईयसुन् प्रत्ययान्त शब्दों तथा तुलनार्थक शब्दों के योग में, वह शब्द पंचमी में रक्खा जाता है जिससे तुलना की जाती है; जैसे, **सत्याद्प्यनृतं श्रेयः** (वेणी० ३)—असत्य सत्य से भी बढ़ कर है। **मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः** (रघु० १४।५६)—चेतनावस्था मूर्च्छा से भी अधिक कष्टदायक हुई। **चैत्ररथादनूने वृन्दावने** (रघु० ६।५०)—जो वृन्दावन चैत्ररथ से किसी प्रकार भी घट कर नहीं है उसमें। **अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते** (हित० ४)—सत्य सहस्रों अश्वमेध यज्ञों से कहीं बढ़कर है। **श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते** (मनु० ३।२७८)—श्राद्ध के लिए पूर्व पहर की अपेक्षा दोपहर अधिक अच्छा है।

७५[1]—जब ल्यप् अथवा क्त्वा प्रत्ययान्त क्रिया वाक्य में प्रकट नहीं की जाती, किन्तु छिपी रहती है, तो उस क्रिया के कर्म और आधार पंचमी में रक्खे जाते हैं; जैसे, **प्रासादात् प्रेक्षते** (सि० कौ०)—**प्रासादमारुह्य प्रेक्षते**—महल से देखती है अर्थात् महल पर चढ़कर देखती है। इसी प्रकार **श्वशुराज्जिह्रेति** (सि० कौ०)—**श्वशुरं वीक्ष्य जिह्रेति**—ससुर से लजाती है। अर्थात् ससुर को देखकर लजाती है।

(क) जिस स्थान पर कोई कार्य सम्पादित किया जाता है उस स्थान को भी उपरोक्त दशाओं में पंचमी में ही रखते हैं; जैसे, **आसनात् प्रेक्षते**—**आसने उपविश्य प्रेक्षते**—आसन से देखता है अर्थात् आसन पर बैठकर देखता है।

(ख) प्रश्न और उत्तर में भी पंचमी आती है; जैसे, **कुतो भवान्—पाटलिपुत्रात्** (म० भा०)—आप कहाँ से आ रहे हैं—पाटलिपुत्र से (आ रहा हूँ)।

७६[2]—**जुगुप्सा** (घृणा), **विराम** (बन्द हो जाना, अलग हो जाना, छोड़ देना, हटना), **प्रमाद** (भूल)—इनका बोध कराने वाले तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों के साथ पंचमी आती है। (जिस से घृणा करे, जिससे हटे अर्थात् जिसे दूर कर दे, जिस काम में भूल करे, उन सबों में पंचमी होती है)। जैसे, **पापात् जुगुप्सते** (म० भा०)—पाप से घृणा करता है। **वत्सैतस्माद् विरम** (उत्तर० १)—बेटा, इस से दूर हटो। **स्वाधिकारात्**

१—ल्यब्लोपे कर्मण्युपसंख्यानम्। अधिकरणे च। प्रश्नाख्यानयोश्च (वार्तिक)

२—जगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् (वार्तिक)

प्रमत्तः (मेघ० १)—अपने कर्त्तव्य से पराङ्मुख होकर के। **प्राणाघातात् निवृत्तिः** (भर्तृ० २।२६)—जीवहिंसा से अलग हटे रहना। **धर्मात् मुह्यति** (म० भा०)।

विशेष—'किसी के विषय में असावधान रहना'—इस अर्थ में प्रमद् धातु सप्तमी के साथ आती है; जैसे, न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः (मनु० २।२१३) बुद्धिमान् लोग अपनी स्त्रियों के विषय में असावधानी नहीं करते।

७७[1]—जिस गुरु या अध्यापक या मनुष्य से कोई चीज नियमपूर्वक पढ़ी जाती है, अथवा मालूम की जाती है, वह गुरु या अध्यापक या अन्य मनुष्य अपादान होता है; जैसे, **उपाध्यायादधीते** (सि० कौ०)—गुरु से पढ़ता है। **मया तीर्थादभिनयविद्या शिक्षिता** (मालविका० १)—मैंने अभिनय करने की विद्या अध्यापक से सीखी।

[2]जन् (जन्म लेना) धातु के कर्ता का मूलकारण अपादान होता है; जैसे, **गोमयाद् वृश्चिको जायते** (म० भा०)—गोबर से बिच्छू पैदा होता है। **कामात् क्रोधोऽभिजायते**—काम से क्रोध उत्पन्न होता है। **प्राणाद् वायुरजायत** (ऋग्वेद १०।९०)—श्वास से हवा पैदा हुई।

भू[3]धातु के कर्ता का **उद्गमस्थान** अथवा **प्रादुर्भावस्थान** अपादान होता है; जैसे, **हिमवतो गंगा प्रभवति** (म० भा०)—गंगा हिमालय से निकलती है अर्थात् गंगा का उद्गमस्थान हिमालय पर्वत है। **लोभात् क्रोधः प्रभवति** (हित० १)—लालच से क्रोध का प्रादुर्भाव होता है।

विशेष—**'पैदा होना'** अर्थ का बोध कराने वाली धातुओं के 'उद्भव स्थान' में सप्तमी होती है; जैसे, **परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ** (मनु० ३। १७४)। **जातोऽपि दास्यां शूद्रेण** (याज्ञ० २।१३३)। **शुकनासस्यापि मनोरमायां तनयो जातः** (कादम्० ७३)। **सा तस्यामुदपादि** (कुमार० १।२२)।

१—आख्यातोपयोगे १।४।२९।

२—जनिकर्तुः प्रकृतिः १।४।३०।

३—भुवः प्रभवः। १।४।३१।

७८[1]--'भय' और 'आपत्ति से रक्षा' अर्थों का बोध कराने वाली धातुओं के योग में, भय या आपत्ति के उद्भवस्थान का बोध कराने वाली संज्ञा अपादान होती है; जैसे--न **भीतो मरणादस्मि** (मृच्छ० १०)--मैं मृत्यु से भयभीत नहीं होता । **कपेरत्राभिपुर्नादात्** (भट्टि० ६।११)--बन्दर के नाद से (वे लोग) डर गये । **तीक्ष्णादुद्विजते** (मुद्रा० ३)--उग्रप्रकृति पुरुष से डरता है । **भीमाद् दुःशासनं त्रातुम्** (वेणी० ३)—भीम से दुःशासन को बचाने के लिए। इसी प्रकार **लोकापवादाद् भयम्** (भर्तृ० २।६२) । **तृणबिन्दोः परिशंकितः** (रघु०८।७६) ।

(क)[2]जिससे कोई पुरुष दूर किया जाता है अथवा मना किया जाता है वह अपादान होता है; जैसे, **पापान्निवारयति** (भर्तृ० १७२) ।

७९[3] - 'परा' पूर्वक 'जि' धातु के योग में जो वस्तु या मनुष्य असहनीय होता है, वह अपादान होता है; जैसे, **अध्ययनात् पराजयते** (म० भा०) --अध्ययन से हार रहा है अर्थात् अध्ययन असहनीय हो रहा है ।

८०[4]--जिस स्थान से या जिस समय से किसी दूसरे स्थान या समय की दूरी नापी जाती है उस स्थान या समय में पंचमी विभक्ति लगती है। 'स्थान की दूरी' व्यक्त करने वाले शब्द में प्रथमा या सप्तमी विभक्ति लगती है और 'कालान्तर या समय की दूरी' व्यक्त करने वाले शब्द को सप्तमी विभक्ति में रखते हैं। **प्रयागात् प्रतिष्ठानपुरं क्रोशोऽस्ति** अथवा **प्रयागात् प्रतिष्ठानपुरं क्रोशेऽस्ति**—प्रयाग से प्रतिष्ठानपुर (झूंसी) एक कोस है। यहाँ जिस स्थान से दूरी दिखाई गई है वह 'प्रयाग' है, इसलिए 'प्रयाग' पंचमी विभक्ति में रक्खा गया है और जितनी दूरी दिखाई गई है वह 'कोस' है, इसलिए 'कोस' प्रथमा में अथवा सप्तमी में रक्खा गया है। कोस स्थानवाचक दूरी दिखलाता है, इसलिए इसमें प्रथमा या सप्तमी दोनों हो सकती हैं। इसी प्रकार और भी उदाहरण हो सकते हैं; जैसे, **गयोधुमतः सांकाश्यं चत्वारि योजनानि चतुर्षु**

१--भीत्रार्थानां भयहेतुः १।४।२५ ।

२--वारणार्थानामीप्सितः १।४।२७ ।

३--पराजेरसोढः १।४।२६ ।

४--यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पंचमी । तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ । कालात् सप्तमी न वक्तव्या (वार्तिक)

योजनेषु वा (म०भा०)—गवीधूम से सांकाशी चार योजन दूर है। **कार्तिक्या आग्रहायणी मासे** (म०भा०)—कार्तिकी पूर्णिमा से अगहन की पूर्णिमा एक महीने पर होती है। इसी प्रकार **समुद्रात्पुरी क्रोशौ वा क्रोशयोः**।

८१[1]—'**भिन्न**' अथवा '**अतिरिक्त**' अर्थ बोध कराने वाले '**अन्य**' '**पर**' '**इतर**' शब्द; '**समीप**' या '**दूर**'-वाचक '**आरात्**' शब्द; 'बिना' या 'छोड़कर' का अर्थ देने वाला '**ऋते**' शब्द, कालवाचक तथा दिशावाचक शब्द; 'अंच्' धातु से निष्पन्न '**प्रत्यक्**' और '**प्राक्**' जैसे दिशावाची शब्द, और 'आ' तथा 'आहि' में अन्त होने वाले शब्द—इन सबों के योग में **पंचमी विभक्ति** आती है; जैसे **कृष्णादन्यो भिन्न इतरो वा** (सि० कौ०)—कृष्ण से भिन्न। **आरात् वनात्** (सि० कौ०)—वन के समीप अथवा वन से दूर। '**विविक्ताद् ऋतेऽन्यच्छरणं नास्ति** (विक्रमो० २)—एकान्त स्थान को छोड़ कर दूसरा कोई आश्रय नहीं। **ग्रामात् पूर्वम् उत्तरो वा**—गाँव के उत्तर अथवा पूर्व। **चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः** (सि० कौ०)—फागुन का महीना चैत से पहिले होता है। **प्राक् प्रत्यक् वा ग्रामात्** (सि० कौ०)—गाँव के पूर्व अथवा पश्चिम। **दक्षिणा दक्षिणाहि वा ग्रामात्** (सि० कौ०)—गाँव के दक्खिन अथवा गाँव के दक्खिन दिशा में। **प्राङ् नाभिवर्धनात्** (मनु० २।२९)—नाभि काटने के पहिले।

८२—'**प्रभृति**', '**आरभ्य**,' '**बहिः**,' '**अनन्तरम्**,' '**परम्**,' '**ऊर्ध्वम्**' के साथ पंचमी आती है; जैसे—**शैशवात् प्रभृति पोषिताम्** (उत्तर० १)—बचपन से ही पाली पोसी हुई। **मालत्याः प्रथमावलोकदिवसादारभ्य** (मालती० ६)—मालती के प्रथम दर्शन के दिन से ही। **निवसन्नावसथे पुराद् बहिः** (रघु०८।१४)—नगर के बाहर किसी निवास-स्थान में रहते हुए। **पाणिपीडनविधेरनन्तरम्** (कुमार० ८।१)—उसके पाणिग्रहण के बाद। **अस्मात्परम्** (शा० ६)—इस पुरुष के बाद। **ऊर्ध्वं त्रिये मुहूर्ताद्धि** (भट्टि० १८।३६)—एक क्षण भर के बाद मर जाऊँगा।

१—अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदजाहि युक्ते। २।२९।३२

विशेष–(क) 'प्रभृति' और 'आरभ्य' शब्द प्रायः इसी अर्थ में कालवाचक क्रियाविशेषण अव्ययों के साथ आते हैं, जैसे, **पतः प्रभृति—ततः प्रभृति** (शा० ३) । **अद्यप्रभृति तवास्मि दासः** (कुमार० ५।८६) ।

(ख) कभी कभी 'अनन्तरम्' 'परम्' इत्यादि का अर्थ परोक्ष रहता है, जैसे, **बहोर्दृष्टं कालात्** (उत्तर० २)--बहुत समय के बाद देखा हुआ ।

८३[1] पृथक् (अलग, भिन्न), बिना और नाना शब्दों के साथ द्वितीया, तृतीया तथा पंचमी विभक्तियों में से कोई एक आ सकती है; जैसे, **रामात् रामेण, रामं वा बिना पृथग्, नाना वा** (सि०कौ०) **जीवितुं नोत्सहे**—राम के बिना मैं नहीं जी सकता । **नाना नारीं निष्फल लोकयात्रा** (बोपदेव) ।

८४—'तक' 'जहाँ तक' तथा 'से' अर्थ में 'आ' के योग में पञ्चमी विभक्ति लगती है; जैसे, **आपरितोषात् विदुषाम्** (शा० १)--विद्वानों को सन्तोष हो जाने तक । **आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि** (शा० १)—प्रारम्भ से सुनना चाहता हूँ । **आकैलासात्** (मेघ० ११)--जहाँ तक कैलास है ।

अव्ययीभाव समास बनाने के लिये भी कभी-कभी 'आ' को संज्ञा शब्दों के साथ जोड़ते हैं; जैसे, **आमेखलं संचरतां घनानाम्** (कुमार० १।५)—**मेखला** (करधनी या मध्यभाग) तक घूमते-फिरते हुए बादलों के ।

८५[2]—'छिपना' या 'छिपाना' अर्थ वाली धातुओं के योग में वह व्यक्ति जिससे कोई आँख बचाना चाहता है या जिससे कोई छिपाना या छिपना चाहता है अपादान होता है; जैसे, **मातुर्निलीयते कृष्णः** (सि० कौ०)--कृष्ण माता से छिपता है ।

८६[3]—'किसी के बदले में' या 'प्रतिनिधि' के अर्थ में प्रयुक्त 'प्रति' उपसर्ग के साथ, जिसके बदले में कोई चीज दी जाती है या जिसका प्रतिनिधित्व दिखाया जाता है, वह पञ्चमी में रक्खा जाता है; जैसे, **प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति** (सिद्धान्त०)—प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि हैं । **तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्** (सिद्धान्त०)— तिलों के बदले में उर्द देता है ।

१--पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम् २। ३। ३२,

२—अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति । १। ४। २८।

३--प्रतिनिधि प्रतिदाने च यस्मात् । २। ३। ११।

अभ्यास

१—अनुष्ठितनिदेशोऽपि सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये (शा० ७)।

२—अलमलमाक्रंदितेन। सूर्योपस्थानात् प्रतिनिवृत्तं पुरूरवसं मामुपेत्य कथ्यतां कुतो भवत्या परित्रातव्या इति (विक्रमो० १)।

३—रामः—एवमेतत्। एते हि हृदयमर्मभिदः संसारभावा येभ्यो बीभत्समानाः संत्यज्य सर्वान् कामान् मनीषिणोऽरण्ये विश्राम्यंति (उत्तर० १)।

४—नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम् (कादम्० ३५)।

५—नैव जानासि तं देवमैक्ष्वाकं यदेवं वदसि। तद् विरम्यतामतिप्रसंगात् (उत्तर० ५)।

६—कृतातिथ्यया महाश्वेतया परिपृष्टो दिग्विजयादारभ्य किन्नरमिथुनानुसरणप्रसंगेनागमनमात्मनः सर्वमाचचक्षे (कादम्० १३४)।

७—वत्से मालति, जन्मनः प्रभृति वल्लभा ते लवंगिका। तत् किमुज्जिहान जीवितां वराकीं नानुकम्पसे (मालती० १०)।

८—चाणक्यः—वृषल वृषलश्र लमुत्तरोत्तरेण। यद्यस्मत्तो वरीयान् राक्षसोऽवगम्यते तदिदं शस्त्रं तस्मै दीयताम् (मुद्रा० ३)।

९—तासां चतुर्दश कुलानि—एकं भगवतः कमलयोनेर्मनसः समुत्पन्नम्। अन्यद्वै देभ्यः संभूतम्। अन्यदग्नेरुद्भूतम्। अन्यत् पवनात्प्रसूतम्। अन्यदमृतादुन्मथ्यमानादुत्थितम्। अन्यज्जलाज्जातम्। अन्यदर्ककिरणेभ्यो निर्गतम्। अन्यत्सौदामिनीतः प्रवृत्तम्। (कादम्० १३६)।

१०—मां तावदुद्धर शुचो दयिताप्रवृत्त्या
स्वार्थात्सतां गुरुतरा प्रणयिक्रियैव। (विक्रमो० ४)।

११—निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां सुतां गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्।
उवाच मेना परिरभ्य वत्सला निवारयंती महतो मुनिव्रतात्।
(कुमार० ५।३)

१२—प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्द्धयति पार्थिवम्।
वर्द्धनाद्रक्षणं श्रेयस्तदभावे सदप्यसत् (हितो० ३)।
१३—त्वचं स मेध्यां परिधाय रौरवी-
मशिक्षतास्त्रं पितुरेव मंत्रवत्। (रघु० ३।३१)।
१४—अनभ्राणां समुद्धर्तुस्तस्मात्सिंधुरयादिव।
आत्मा संरक्षितः सुह्मैर्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम्।
(रघु० ४।३५)।
१५—ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ (श्रीमद्० २।६३)।
१६—हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥ (मनु० २।२१)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—जन्मकर्मतो मलिनतरजनं जनतो निस्त्रिंशतरलोकहृदयं लोकहृदयेभ्यो निर्घृणतरसर्वसव्यवहारमपुण्यकर्मैकापणं पक्वणमपश्यम्। (कादम्० ३५६)।
२—सा कुसुमघटितशिलीमुखमनोहरा-मदनचापादिव प्रमदवनात्स्यति जानकीव पीतरक्तेभ्यो रजनिचरेभ्य इव चंपकाशोकेभ्यो बिभेति (कादम्० २२५)।
३—तं नृपं वसुरक्षितो नाम मंत्रिवृद्ध एकदाऽभाषत्। तात अत्र भवति सर्वात्मसंपदभिजनात्प्रभृत्यन्यूनैव लक्ष्यते। बुद्धिश्च निसर्गपटवी तवेतरेभ्यः प्रतिविशिष्यते। (दशकु० २।८)
४—अहो दुराराध्या राजलक्ष्मीरात्मविद्भिरपि राजभिः—
तीक्ष्णादुद्विजते मृदौ परिभवत्रासान्न सन्तिष्ठते
मूर्खान् द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यंतविद्वत्स्वपि।
शूरेभ्योऽप्यधिकं बिभेत्युपहसत्येकांतभीरूनहो।
श्लिष्टलब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या भृशम्। (मुद्रा० ३)।
५—सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम्।
अहार्यत्वादनर्घ्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा॥ (हितो० १)।

६—प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥ (रघु० १।२४) ।
७—न नवः प्रभुराफलोदयात् स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः ।
न च योगविधेर्नवेतरः स्थिरधीरापरमात्मदर्शनात् ॥ (रघु० ८।२२)
८—रत्नैर्महार्हस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं न निश्चितार्थाद्विरमंति धीराः ॥ (भर्तृ० २।८०)
९—श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः (श्रीमद् ३।३५)
१०—लोभान्मोहाद्भयान्मैत्र्यात् कामात्क्रोधात्तथैव च ।
अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥ (मनु० ८।१८८) ।
११—वृक्षाद् वृक्षं परिक्रामन्रावणाद्बिभ्यती भृशम् ।
शत्रोस्त्राणमपश्यन्तीमदृश्यो जनकात्मजाम् ॥
तां पराजयमानां स प्रीते रक्ष्यां दशाननात् ।
अन्तर्दधानां रक्षोभ्यो मलिनां ध्याममूर्धजाम् ॥ (अपश्यत्)
(भट्टि० ८।७०,७१)
१२— पूर्वस्मादन्यवद्भाति भावाद्दाशरथिं स्तुवन् ।
ऋते क्रौर्यात्समायातो मां विश्वासयितुं किम् ॥
इतरो रावणादेष राघवानुचरो यदि ।
सफलानि निमित्तानि प्राक् प्रभातात्ततो मम ॥ (भट्टि० ।१०५,१०६)
१३—एतद्वोयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः ।
एतद्धि मत्तोधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनिः ॥ (मनु० १।५९)
१४—एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परं तपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात् सत्यं विशिष्यते ॥ (मनु० २।८३)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—गृहिणी के बिना गृह सूनसान में जङ्गल को मात कर देता है ।
२—इस वृक्ष की उत्तर दिशा में जाओ और मैं अभी तुम्हारा अनुसरण करूँगा ।
३—जिस कार्य को करने की एक बार प्रतिज्ञा कर चुके हो, उसको बन्द न करो ।

४--इन ऋषियों से वेद पढ़ने के लिए मैं बाल्मीकि के आश्रम से इस स्थान पर आया हूँ।

५--उस लड़की को संकट से बचाने के लिए उसने बहुत बड़े क्लेश सहे।

६--जो अपने मित्र के मन को पाप से हटाकर, सत्कर्म में प्रवृत्त करता है, वह सच्चा मित्र है।

७--क्या तुम नहीं जानते कि दुष्टों के पदचिह्नों पर चलने से नाना प्रकार के दुःख पैदा होते हैं?

८--तुम्हारी यह बीमारी तुम्हारे कल के कड़े परिश्रम के कारण पैदा हुई है। क्या इस समय तुम्हारी दशा में कुछ उत्तम परिवर्तन हुआ है?

९--हिमालय प्रदेश तक फैले हुए अपने राज्य को इस पराक्रमी राजा के अतिरिक्त और कौन बचा सकता है?

१०--अध्ययन प्रारम्भ करने के पहले वह व्याकरण और शब्दकोश अपने पास रख लेता है।

११--पाँच वर्ष हुए मैंने इसी रमणीय वन को देखा था; परन्तु इस समय इसमें बड़ा परिवर्तन हो गया है।

१२--जिस दिन मैंने उस स्त्री को देखा था, उसी दिन से मेरा मन उद्विग्न हो गया है और उसके विषय में निरन्तर चिन्तन करते रहने के कारण मैं भोजन तक करने की नहीं सोचता।

१३--कल सभापति के उत्कृष्ट भाषण के अनन्तर (ऊर्ध्वम्, अनन्तरम् वा) तुमने जो व्याख्यान दिया उसे मैं अनुमोदित नहीं करता।

१४--सीता जी राम को (षष्ठी का प्रयोग कीजिए) प्राणों से भी प्यारी थीं।

१५--ईमानदारी अन्य सभी गुणों से बढ़कर है। ईमानदारी के बिना मनुष्य किसी के भी हृदय में विश्वास नहीं पैदा कर सकता।

१६--भय के मारे अंगों के सिकुड़ जाने के कारण छोटे सुग्गे को दुष्ट बहेलिए ने नहीं देखा।

१७--भगवन्, हम लोग आप से इस सुग्गे का वृत्तान्त आदि से सुनना चाहते थे।

१८--मुम्बई पूना से १२० मील दूर है।

नवम पाठ

सप्तमी

८७—जिस स्थान पर कोई कार्य होता है उसे अधिकरण कहते हैं और वह सप्तमी विभक्ति में रक्खा जाता है; जैसे, **स्थाल्यामोदनं पचति**—बटुली में भात पकाता है। **आसने उपविशति**—आसन पर बैठता है।

(क) जिस समय कोई कार्य होता है वह सप्तमी में रक्खा जाता है; जैसे, **आषाढस्य प्रथमदिवसे** (मेघ० २)—आषाढ़ महीने की परिवा को। इसी प्रकार **शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्** (रघु० १।८)।

८८—'पर,' 'प्रति' और 'विषय में' का अर्थ बोध कराने के लिए प्रायः सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है; जैसे, **मयि मा भूः अकरुणा** (मालती० ६) —मुझ पर निर्दय न हो। **विषयेषु विनाशधर्मसु निःस्पृहोऽभवत्** (रघु० ८।१०)—नश्वर पदार्थों के प्रति अनिच्छुक हो गया।

८९[1]—यदि किसी वस्तुविशेष या व्यक्ति विशेष की, अपने समुदाय के अन्य अवयवों से, किसी विशेषण द्वारा, कोई विशिष्टता दिखाई जाती है, तो समुदायवाचक शब्द सप्तमी अथवा षष्ठी में रखा जाता है; जैसे, **गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा** (सिद्धान्त०)—गायों में काली गाय बहुत दूध देने वाली होती है। इसी प्रकार **नृणां नृषु वा द्विजः श्रेष्ठः** (सिद्धान्त०)।

९०[2]—समय अथवा मार्ग का अन्तर बोध कराने वाले शब्दों में पंचमी या सप्तमी होती है; जैसे, **अस्मिन् दिने भुक्त्वाऽयं त्र्यहात् त्र्यहे वा भोक्ता** (सिद्धान्त०)—आज भोजन करके वह फिर तीन दिन के अनन्तर भोजन करेगा। **इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत्** (सि० कौ०)—यहाँ खड़ा-खड़ा वह एक कोस के अन्तर पर स्थित लक्ष्य को भेद देगा।

१—यतः निर्धारणम् २। ३। ४१।

२—सप्तमी पंचम्यौ कारकमध्ये २। ३। ७।

९१--शब्द-कोषों में सप्तमी का प्रयोग 'के अर्थ में' का भाव दिखलाने के लिए होता है; जैसे, **बाणो बलिसुते शरे** (अमर०) 'बाण' शब्द 'बलि का पुत्र' तथा 'तीर' के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

९२—जिस प्रयोजन या अभिप्राय से कोई कार्य किया जाता है उसका बोध कराने के लिए सप्तमी का प्रयोग होता है; जैसे, **चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुंजरम्। केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः** (म० भा०) मनुष्य बाघ को (उसके) चमड़े के लिए हाथी को (उसके) दाँतों के लिए, चमरी को (उसके) बाल के लिए, और कस्तूरी-मृग को कस्तूरी के लिए मारता है।

९३—करना, व्यवहार करना, बर्तना या बर्ताव करना अर्थ रखने वाली धातुओं के योग में सप्तमी विभक्ति लगती है; जैसे, **आर्योऽस्मिन् विनयेन वर्तताम्** (उत्तर० ६)--श्रीमान् जी इस पुरुष के प्रति विनयपूर्वक व्यवहार करें। **कथं कार्यविनिमयेन व्यवहरति मय्यनात्मज्ञः** (मालविका० १)—ओह, क्या यह मूर्ख मेरे साथ कार्य की अदल-बदल के लिए व्यवहार करता है। **कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने** (शा० ४)--सवतों के प्रति प्रिय मित्र का सा बर्ताव करो।

९४—स्निह्, अभिलष्, अनुरंज् इत्यादि 'स्नेह', 'आसक्ति' तथा 'सम्मान' वाचक शब्दों के साथ, जिसके लिए स्नेह, आसक्ति अथवा सम्मान प्रदर्शित किया जाता है वह सप्तमी में रक्खा जाता है; जैसे, **किंनु खलु बालेऽस्मिन् स्निह्यति मे मनः** (शा० ७)--मेरा मन इस लड़के को क्यों प्यार करता है। **न तापसकन्यकायां शकुंतलायां ममाभिलाषः** (शा० २)--मुनिकन्या शकुंतला से मेरा स्नेह नहीं है। **स्वयोषिति रतिः**—(भर्तृ० २।६२) —अपनी पत्नी में आसक्ति। **दण्डनीत्यां नात्यादृतोऽभूत्** (दश० २।८) —राजनीति के प्रति (उसके हृदय में) कोई महान् सम्मान नहीं था। **देवे चन्द्रगुप्ते दृढमनुरक्ताः प्रकृतयः** (मुद्रा० १)--श्रीचन्द्रगुप्त के प्रति प्रजावर्ग का बहुत बड़ा अनुराग है। **अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु** (शा० १)—इनके प्रति (मेरे हृदय में) सगी-बहिन जैसा प्रेम है।

विशेष--'अनुरंज्' से प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्द कभी कभी द्वितीया के साथ प्रयुक्त होते हैं; जैसे **एषा भवन्तमनुरक्ता** (शा० ६)। **अपि वृषल-**

मनुरक्ताः प्रकृतयः (मुद्रा० १) ऐसे स्थलों पर 'अनु' को बिल्कुल अलग मानकर "कर्मप्रवचनीय" समझना चाहिए, 'कर्मप्रवचनीय' हो जाने पर उसके साथ द्वितीया आवेगी। (नियम ३७ देखिए)

९५—जब कारण-वाची शब्द का प्रयोग होता है, तब कार्य सप्तमी में रक्खा जाता है; जैसे, **दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम्** (भ० २।८४)—भाग्य ही मनुष्य की उन्नति तथा अवनति का कारण है।

९६—'युज्' धातु के साथ तथा 'युज्' से प्रत्ययद्वारा निष्पन्न शब्दों के साथ सप्तमी आती है; जैसे **असाधुदर्शी तत्रभवान् काश्यपो य इमामाश्रमधर्मे नियुंक्ते** (शा० १)—पूज्यपाद काश्यपजी महाराज बुद्धिमान् नहीं हैं जिन्होंने इसे आश्रम के कार्यों में नियुक्त कर रखा है।

(क) 'योग्यता' अथवा 'उपयुक्तता' इत्यादि अर्थों का बोध कराने वाले शब्दों के योग में, उस व्यक्ति का वाचक शब्द सप्तमी में रखा जाता है जिसके विषय में योग्यता अथवा उपयुक्तता प्रकट की जाती है; जैसे, **युक्तरूपमिदं त्वयि** (शा० २)—यह तुम्हारे लिए योग्य है। **त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं तस्मिन् युज्यते** (हित० ३)—तीनों लोकों का भी राज्य उसके लिए उपयुक्त है। **अथवोपपन्नमेतदृषिकल्पेऽस्मिन् राजनि** (शा० २)—अथवा इस ऋषितुल्य राजा के लिए यह सर्वथा उचित है। **ते गुणाः परस्मिन्** ब्रह्मण्युपपद्यन्ते (शंकरभाष्य १९०)—वे गुण परब्रह्म के लिए उपयुक्त हैं।

विशेष—प्रायः षष्ठी भी इसी अर्थ में आती है, जैसे, **उपपन्नमिदं विशेषणं वायोः** (विक्रमो० २)—यह विशेषण वायु के लिए उपयुक्त है।

९७—वस्तुतः सप्तमी विभक्ति स्थान का बोध कराती है। परन्तु अनेक स्थलों पर सप्तमी उस वस्तु या पात्र में भी प्रयुक्त होती है जिसको कोई चीज सुपुर्द की जाती है या दी जाती है; जैसे, **शुकनासनाम्नि मन्त्रिणि राज्यभारमारोप्य यौवनसुखमनुबभूव** (कादम्० ५७)—राज्य का भार (अपने) मंत्री शुकनास को सुपुर्द कर वह यौवन का सुख भोगने लगा। **वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे** (उत्तर० २)-गुरु जिस प्रकार से चतुर पुरुष को विद्या प्रदान करता है उसी प्रकार मूढ़ को भी। इसी प्रकार **योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः** (रत्ना० १)।

टिप्पणी—वि+तृ का प्रयोग चतुर्थी के साथ भी होता है; जैसे, मह्यं तं व्यतरन् (दश० १।१)--उसको मुझे दे दिया। इसी प्रकार—मारीचस्ते दर्शन वितरति (शा० ७)।

(क) ग्रहणार्थक तथा प्रहरार्थक धातुओं के योग में पकड़ा जाने वाला या प्रहार किया जाने वाला सप्तमी में होता है; जैसे, **आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि** (शा० १)--आप का शस्त्र दुःखितों की रक्षा करने के लिए है, न कि निरपराधों पर प्रहार करने के लिए। **केशेषु गृहीत्वा**—बाल पकड़ कर।

९८--'फेंकना' या 'किसी पर झपटना'--इस अर्थ का बोध कराने वाली 'क्षिप्', 'मुच्' और 'अस्' धातुओं के योग में, जिस पर कोई चीज फेंकी जाती है या झपटती है, वह सप्तमी में रखा जाता है; जैसे, **मृगेषु शरान् मुमुक्षोः** (रघु० ९।५८)--हिरनों पर बाण छोड़ने की इच्छा करने वाले का। **न बाणः सन्निपात्योऽस्मिन् मृगशरीरे** (शा० १)—हिरन के इस शरीर पर बाण नहीं छोड़ा जाना चाहिए।

(क) 'विश्वास', 'भरोसा' अर्थबोधक शब्दों के साथ, प्रायः जिसका विश्वास किया जाता है वह सप्तमी में रखा जाता है; जैसे, **पुंसि विश्वसिति कुत्र कुमारी**--भला, कुमारी कन्या कब पुरुष का विश्वास करती है!

विशेष--'श्रद्धा' के साथ द्वितीया आती है; जैसे, **कः श्रद्धास्यति भूतार्थम्** (मृच्छ० ३)—वास्तविक बातों का कौन विश्वास करेगा?

९९[1]--**'अधीतिन्'** (पढ़ चुकाने वाला) और **'गृहीतिन्'** (समझ चुकने वाला) के योग में इनका कर्म सप्तमी में रखा जाता है; जैसे **अधीती चतुर्ष्वाम्नायेषु** (दशकु० २।५)--चारों वेदों को पढ़ चुकने वाला। **गृहीती षट्स्वंगेषु** (दशकु० २।५)—छहों अंगों को पूर्णरूप से पढ़ चुकने वाला; छहों अंगों का प्रकाण्ड विद्वान्।

'साधु'[2] और **'असाधु'** शब्दों के योग में, जिसके प्रति साधुता अथवा असाधुता दिखाई जाती है, वह सप्तमी में रक्खा जाता है; जैसे, **मातरि साधुरसाधुर्वा** (सि० कौ०)--अपनी माता के प्रति सद्व्यवहार करता है अथवा दुर्व्यवहार।

१--तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् (वार्तिक)

२--साध्वसाधुप्रयोगे च (वार्तिक)

१००—**'संलग्न'** या **'तुला हुआ'** या **'कटिबद्ध'**—इस अर्थ के बोध कराने वाले **'व्यापृत'**, **'आसक्त'**, **'व्यग्र'**, **'तत्पर'**, इत्यादि शब्दों के साथ सप्तमी विभक्ति आती है; जैसे, **गृह-कर्मणि व्यापृता व्यग्रा वा** (पंच० २)—अपने घर के कामों में संलग्न।

'चतुर' या 'होशियार'—अर्थवाचक **'कुशल'**, **'निपुण'**, **'शौण्ड'**, **'पटु'**, **'प्रवीण'**, **'पंडित'** इत्यादि शब्दों के योग में, और **'धूर्त'** और **'कितव'** (ठग, बदमाश, छलिया) शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति आती है; जैसे, **रामोऽक्षद्यूते निपुणः प्रवीणो वा** (सि० कौ०) राम जुआ खेलने में होशियार है।

(क)[1] **'प्रसित'** (अत्यन्त इच्छुक) और **'उत्सुक'** (अत्यन्त इच्छुक) शब्दों के साथ सप्तमी अथवा तृतीया विभक्ति आती है; जैसे, **निद्रायां निद्रया वा उत्सुकः** (सि० कौ)--निद्रा के लिए अत्यन्त इच्छुक **मनो नियोग-क्रिययोत्सुकं मे** (रघु० ५। १९)।

टिप्पणी--अप+राध् (अपराध करना) धातु के कर्म में सप्तमी प्रयुक्त होती है और कभी-कभी षष्ठी; जैसे, कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला (शा० ४)—शकुन्तला ने किसी सम्माननीय व्यक्ति का अपराध किया है। इसी प्रकार अपराद्धोऽस्मि तत्रभवतः कण्वस्य (शा० ७)।

अभ्यास

१—प्रथितयशसां भास-कवि-सौमिल्लकविमिश्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं परिषदो बहुमानः (मालविका० १)।

२—यः पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः सोहमविप्रक्रियोपलम्भाय धर्मारण्यमिदमायातः (शा० १)

३—दृढं त्वयि बद्धभावोर्वशी। न सेतोगतमनुरागं शिथिलयति (विक्रमो०)।

४—एष देवो रघुपतिस्तिष्ठति। स च स्निह्यत्यावयोरुत्कण्ठते च युष्मत्स-न्निकर्षस्य (उत्तर० ६)।

१--प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च।२ ३। ४४।

५—दुर्जनत्वं च भवतो वाक्यादेव विज्ञातं यदनयोर्भूपालयोर्विग्रहे भवद्वचनमेव निदानम् (हित० ३)।

६—एष धृष्टद्युम्नेन द्रोणः केशेष्वाकृष्यासिपत्रेण व्यापाद्यते (वेणी० ३)।

७—न जानामि केनापि कारणेनाप्यहस्तितसकलमग्बीजनं त्वयि विश्वसिति मे हृदयम् (कादम्० २।३)।

८—उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥ (हित० २)।

९—न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मनि।
विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृन्मित्रे स्वभावजे ॥ (हित० १)

१०—क्षमा शत्रौ च मित्रे च यतीनामेव भूषणम्।
अपराधिषु सत्वेषु नृपाणां सैव दूषणम् ॥ (हित० २)।

११—वाच्छा सज्जनसंगमे गुणिगणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम्।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले-
ष्वेते येषु वसंति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥
(भर्तृ० २।६२)

१२—संतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे ॥ (रघु० १। ३४)।

१३—भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ (मनु० १।९६)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१४—अवैमि ते सारमतः खलु त्वां कायेन गुरुण्यात्मसमं नियोक्ष्ये।
व्यदिश्यते भूधरतामवेक्ष्य कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः ॥ (कुमार० २।१३)।

१५—अशुद्धप्रकृतौ राज्ञि जनता नानुरज्यते। (पंच० १।११)।

१६—जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमंगलम्।
तस्मिन्नकरुणे पापे वृथा वः करुणा मयि ॥ (उत्तर० ६)।

१७—निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
न हि संहरते ज्योत्स्नां चंद्रश्चांडालवेश्मनः ॥ (हित० १) ।

१८—इत्युक्तवंतं जनकात्मजायां नितांतरूक्षाभिनिवेशमीशम् ।
न कश्चन भ्रातृषु तेषु शक्तो निषेद्धु, मासीदनुमोदितुं वा ॥
(रघु० १४।४३) ।

१९—परकर्मापहः सोऽभूदुद्यतः स्वेषु कर्मसु ।
आवृणोदात्मनो रंध्रं रंध्रेषु प्रहरन् रिपून् ॥ (रघु० १७।२१) ।

२०—भगवति कमलालये भृशमगुणज्ञासि
आनंदहेतुमपि देवमपास्य नंदं
रक्तासि किं कथय वैरिणि मौर्यपुत्रे । (मुद्रा० २) ।

२१—साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वम्
चित्रार्पितां मुहुरिमां बहु मन्यमानः ।
स्रोतोवहां पथि निकामजलामतीत्य
जातः सखे प्रणयवान्मृगतृष्णिकायाम् ॥ (शा० ६) ।

२२—पोतो दुस्तरवारिराशितरणे दीपोऽधकारागमे
निर्वाते व्यजनं मदांधकरिणां दर्पोपशांत्यै शृणिः ।
इत्थं तद्भुवि नास्ति यस्य विधिना नोपायचिंता कृता
मन्ये दुर्जनचित्तवृत्तिहरणे धातापि भग्नोद्यमः ॥ (हित० २) ।

२३—चिरेणानुगुणं प्रोक्ता प्रतिपत्तिपराङ्मुखी ।
न मासे प्रतिपत्तासे मां चेन्मर्तासि मैथिलि ॥ (भट्टि० ८।९५)

२४—एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कालीनादसितनयने मय्यविश्वासिनी भूः । (मेघ० ११५)

२५—एवमात्मवचनात्स पौरुषं काकपक्षकधरेऽपि राघवे ।
श्रद्दधे त्रिदशगोपमात्रके दाहशक्तिमिव कृष्णवर्त्मनि ॥
(रघु० ११।४२)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—इस राजा की सारी प्रजा इसमें अनुरक्त है (अनु+रंज्) ।

२—जो निस्सहाय पुरुषों के प्रति करुणा दिखलाता है और जो देवताओं के लिए यज्ञ करता है, वे दोनों पुण्य में बराबर समझे जाते हैं।

३—मेरे पतिदेव मुझसे स्नेह नहीं करते, जो कुछ मैं उनसे कहती हूँ, उसमें विश्वास नहीं करते और मुझे अयोग्य कार्यों में नियुक्त करते हैं। ऐ सखी, क्या तुम मुझे बताओगी कि ऐसी परिस्थिति में मैं क्या करूँ?

४—ऋषि लोग इस सांसारिक जीवन के सुख तथा दुःख के प्रति निःस्पृह हो जाते हैं।

५—इस लड़के की शिक्षा के विषय में जरा भी चिन्ता न कीजिए।

६—कुटुम्ब का भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप कर और मित्रों तथा सम्बन्धियों से बिदा हो उसने अरण्यनिवास का आश्रय लिया।

७—बाल पकड़ कर वह नीचे खींच लिया गया; तब सारे दर्शकों ने उसके ऊपर पत्थर फेंके।

८—जो कुछ उस स्त्री के आस-पास हो रहा था, उस पर उसने अन्यमनस्का होने के कारण दृष्टि तक न डाली।

९—यह वृत्तान्त सर्वत्र विदित हो गया है। क्या यह आपके कानों तक नहीं पहुँचा कि राजा का प्रेम सागरिका पर लगा हुआ है?

१०—कैकेयी राम के चौदह वर्ष के वनवास का प्रधान कारण थी।

११—जो लोग द्यूतकला में निपुण हैं उनके साथ जुआ खेलने में वह सदा अपना समय बिताता है।

१२—इस बागीचे के सब वृक्षों से यह वृक्ष लम्बा है।

१३—मनुष्यों में सबसे प्रशंसनीय वही है जो परोपकार में तत्पर रहता है।

१४—भारतीय कवियों में कालिदास और भवभूति सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं।

१५—राक्षस अपना कुटुम्ब ऐसे पुरुषों को नहीं सौंपेगा, जो गौरव में उसी के समकक्ष नहीं हैं।

दशम पाठ

षष्ठी

१०१—जैसा कि तीसरे पाठ में बताया गया है, षष्ठी विभक्ति कारक नहीं है। वस्तुतः यह विभक्ति किसी वाक्य में प्रयुक्त एक संज्ञा शब्द का दूसरे संज्ञा शब्द के साथ सम्बन्ध बतलाती है।

इस पाठ में दिये हुए नियमों में षष्ठी का एक ही मुख्य अर्थ है और वह है "सम्बन्ध" का अर्थ। जहाँ कहीं षष्ठी के साथ क्रियापद का प्रयोग किया जाता है, वहाँ भी यही समझना चाहिए कि षष्ठी "सम्बन्ध" अर्थ में आयी है। परन्तु कई स्थलों पर इस विभक्ति का शिथिल प्रयोग उन सम्बन्धों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है, जो वास्तव में दूसरे कारकों द्वारा प्रकट होते हैं। संस्कृत-साहित्य के लेखकों ने भी ऐसे शिथिल या अशुद्ध प्रयोग किये हैं; जैसे, (१) **तं च व्यसृजद्भरतस्य** (उत्तर० ४)—उसको भरत के पास भेजा। यहाँ 'भरताय' की जगह 'भरतस्य' का प्रयोग हुआ है। (२) **जयसेनायास्तावत्संवेद्य गच्छ** (मालविका० ४)—यहाँ 'जयसेनायै' की जगह 'जयसेनायाः' का शिथिल प्रयोग हुआ है।

१०२—प्रायः षष्ठी विभक्ति किसी संज्ञा या सर्वनाम का किसी ऐसे शब्द का आश्रित होना सूचित करती है, जो बहुधा विशेष्य (संज्ञा) अथवा विशेषण होता है, परन्तु कभी-कभी क्रिया शब्द भी होता है।

(क) हिन्दी के 'का, की, के' का बोध कराने के लिए षष्ठी का प्रयोग होता है। परन्तु अनेक स्थलों पर षष्ठी विभक्ति के स्थान पर समास का प्रयोग होता है; जैसे, दशरथस्य पुत्रः अथवा दशरथपुत्रः—दशरथ का लड़का।

विशेष—ध्यान रहे कि संस्कृत में षष्ठी उन सभी सम्बन्धों और अर्थों का बोध नहीं करा सकती जिन्हें दिखाने के लिए हिन्दी में 'का' की, के,' प्रयुक्त किये जाते हैं। उदाहरणार्थ, विशेषण का अर्थ अथवा सामानाधिकरण का अर्थ दिखाने के लिए; जैसे, (१) 'सोने का बर्तन' का अनुवाद प्रायः समस्तपद 'हेमपात्रम्' अथवा प्रत्ययनिष्पन्न पद 'हैम' द्वारा 'हैमं पात्रम्' होता है। परन्तु हेम्नः पात्रम्' कभी नहीं होता (२)। मिट्टी का बर्तन—मृद्भाण्डम् अथवा मृण्मयं भाण्डम् परन्तु 'मृदः भाण्डम्' नहीं होगा। (३) बड़े मूल्य की मुक्ता—महार्घम् मुक्ताफलम्, (४) शक्ति वाला पुरुष—सबलो नरः, न कि बलस्य नरः। इसी प्रकार (५) वैशाख के महीने में—वैशाखे मासे या वैशाखमासे न कि वैशाखस्य मासे। (६) बम्बई का शहर—मुम्बापुरी अथवा मुम्बा नाम पुरी। 'मुम्बायाः पुरी' नहीं होता। 'मुम्बा' और 'पुरी' में समानाधिकरण सम्बन्ध है।

१०३—षष्ठी विभक्ति से 'रखने वाले' का अथवा 'स्वामी' का बोध होता है। जो चीज रखी जाती है अथवा जिस पर स्वामित्व होता है वह प्रथमा में रखी जाती है; **यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा (पंच०)**—जिसके स्वयं बुद्धि नहीं होती अथवा जो स्वयं बुद्धि नहीं रखता। **इमे नो गृहाः** (मृच्छ० १)—ये हमारे घर हैं। **स्खलनं मनुष्याणां धर्मः**—गलती करना मनुष्य का धर्म (स्वभाव, गुण) है, अर्थात् मनुष्यों से गलती होती ही है।

विशेष—यह अर्थ प्रायः प्रत्ययनिष्पन्न शब्दों द्वारा सूचित किया जाता है। जैसे, **पैतृकं रिक्थम्**—बाप-दादों की सम्पत्ति। इसी प्रकार, **अस्मदीयं गृहम् इत्यादि**।

१०४—जिनके सम्पूर्ण या समष्टि का बोध कराने के लिए एक अंशमात्र का नाम ले लिया जाता है उन विशेष्यों के साथ षष्ठी आती है; और उसे **अंशवाची षष्ठी** (Partitive genitive) कहते हैं; जैसे, **जलस्य बिन्दुः**—जल की बूँद। **अयुतं शरदां ययौ** (रघु० १०।१)—एक लाख वर्ष बीत गये। इसी प्रकार **गवां शतसहस्राणि**—हजारों गायें।

(क) पूरणोसंख्यावाचक सर्वनामों और विशेषणों के साथ तथा संख्यावाचक सर्वनामों और विशेषणों के साथ 'अंशवाची षष्ठी' (Paititive Genitive) आती है; जैसे, **त्वमेव कल्याणि तयोस्तृतीया** (रघु०६।३६)—

ऐ कल्याणि, तुम्हीं उनकी तीसरी हो। **गृह्यतामनयोरन्यतरा** (मालविका० ५)--दो में से एक स्वीकार कर ली जाय। **तासामन्यतमा** (मालती० १)--उन (लड़कियों) में से एक।

(ख) इसी प्रकार, **तमप् प्रत्ययान्त, इष्ठन् प्रत्ययान्त** विशेषणों के साथ, तथा **तमबन्त** और **इष्ठनेन्त** शब्दों जैसा अर्थ बोध कराने वाले शब्दों के साथ भी 'अंशवाची षष्ठी' आती है; जैसे, **द्विजानां ब्राह्मणः श्रेष्ठः। धौरेयः साहसिकानामग्रणीर्विदग्धानम्** (कादम्० ५)--साहसी तथा बुद्धिमानों में सब से आगे।

विशेष--षष्ठी के इस प्रयोग की विवेचना सेक्शन ७६ में पहिले हो चुकी है।

(ग) कभी-कभी 'में,' या 'में से' के अर्थ में षष्ठी के साथ 'मध्ये शब्द का प्रयोग होता है; जैसे, **एतेषां मध्ये केचिदरेः कोपदंडाभ्यामर्थिनः** (मुद्रा०-५)--इनमें से कुछ लोग शत्रु के कोष और सेना के इच्छुक हैं।

१०५—जब किसी कार्य के घटित होने की तिथि से किसी निश्चित अवधि का व्यतीत होना दिखाया जाता है या वर्णित किया जाता है तो कार्य अथवा घटना को व्यक्त करने वाले शब्दों में षष्ठी विभक्ति लगती है; जैसे, **अद्य दशमो मासस्तयोपरतस्य** (मुद्रा० ६)--पिता जी को मरे हुये आज दस महीने हो गए। **कतिपये संवत्सरास्तस्य तपस्तप्यमानस्य** (उत्तर० ४)--जब से उन्होंने तपस्या करना शुरू किया तब से कई वर्ष गुजर गये।

१०६—'प्रिय' अथवा इसका विपरीत (अप्रिय) अर्थ रखने वाले या भाव वाले शब्दों के योग में षष्ठी लगती है; जैसे, **प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीत्** (उत्तर० ६)--सीता जी स्वभाव ही से श्रीरामचन्द्र जी को प्यारी थीं। **कायः कस्य न वल्लभः** (पंच० १)--शरीर किसे प्यारा नहीं होता।

(क) **'विशेषः' 'अन्तरम्'**—जैसे अन्तर-बोधक या विशेषता प्रकट करने वाले शब्दों के साथ षष्ठी आती है; जैसे, **एतावानेवायुष्मतः शतक्रतोश्च** विशेषः (शा० ७)—आयुष्मान् (आप) तथा इन्द्र में इतना ही अन्तर है। **अत्रभवतो मम च समुद्रपल्वलयोरिवान्तरम्** (मालविका० १)। —श्रीमान् तथा मुझमें उतना ही अन्तर है जितना समुद्र और गड्ढ़ी में।

१०७[1] —**तव्यत्, तव्य, अनीयर्, यत्, ण्यत्, क्यप,** और **केलिमर्**—ये कृत्यप्रत्यय हैं। जिन शब्दों के अन्त में ये प्रत्यय लगे रहते हैं उनका प्रयोग होने पर, उनके कर्ता में तृतीया अथवा षष्ठी होती है, जैसे, **नास्ति असाध्यं नाम मनोभुवः** (कादम्० १५७)—निश्चय ही, कामदेव के लिए कोई चीज असाध्य नहीं है। इसी प्रकार **न वयमनुग्राह्याः प्रायो देवतानाम्** (कादम्० ६१)। **न वञ्चनीयाः प्रभवोनुजीविभिः** (किरात० १।४)। **राक्षसेन्द्रस्य संरक्ष्यं मया लव्यमिदं वनम्** (भट्टि० ८।१२६)—राक्षसाधिपति रावण के द्वारा रक्षणीय यह जङ्गल मुझसे अवश्य काट डाला जाना चाहिए।

१०८[2] जब 'हेतु' शब्द का प्रयोग होता है तो जो शब्द कारण या प्रयोजन रहता है वह और 'हेतु' शब्द—दोनों षष्ठी में रक्खे जाते हैं, जैसे, **अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्** (रघु० २।४७)—थोड़े से के लिए बहुत को त्यागने की इच्छा करता हुआ। **विस्मृतं कस्य हेतोः** (मुद्रा० १)—किस कारण यह भुला दिया गया ?

विशेष—पतञ्जलि का मत है कि 'निमित्त', 'कारण', 'हेतु' इत्यादि कारण वाचक शब्दों के योग में किसी भी विभक्ति और वचन का सर्वनाम आ सकता है, पर जिस विभक्ति और वचन में सर्वनाम रहेगा उसी विभक्ति और वचन में 'निमित्त' या 'कारण' या 'हेतु' भी रहेगा। परन्तु संस्कृतकाल के कवियों और गद्यलेखकों के लेखों से इस कथन की पुष्टि नहीं होती। केन निमित्तेन—कारणेन—हेतुना तथा कस्मात्—कारणान्निमितत्—हेतोः—ऐसे प्रयोग 'कारण'—अर्थ में साधारणतया मिलते हैं। परन्तु इसी अर्थ में 'को हेतुः वससि' या 'कं हेतुं वससि'—ये प्रयोग नहीं मिलते। 'कस्मै हेतवे वससि'—यह प्रयोग भी 'कारण'—अर्थ में नहीं आता, वरन् इसका अर्थ है—'किस प्रयोजन से रहते हो ?' अलबत्ता 'किंनिमित्तं—किंप्रयोजनम्—किंकारणम्—किमर्थम्'—ये प्रयोग साधारणतया मिलते हैं। इसलिए पतञ्जलि का नियम केवल विरले स्थलों में ही व्यवहृत किया जाना चाहिए।

१—कृत्यानां कर्तरि वा ।२।३।७१।

२—षष्ठी हेतुप्रयोगे ।२।३।६२।

१०६[1]--धातुओं में ति, तृ, अ, अन, इत्यादि 'कृत्' प्रत्यय लगाकर जो संज्ञाएँ बनाई जाती हैं उनका प्रयोग होने पर उनके कर्ता और कर्म में षष्ठी का प्रयोग होता है, जैसे, **क्रियामिमां कालिदासस्य** (विक्रमो० १)--कालिदास की यह क्रिया, अर्थात् कालिदास का यह ग्रन्थ । **भर्तुः प्रणाशात्** (रघु० १४।१)--पति की मृत्यु के कारण । **शास्त्राणां परिचयः** (कादम्० १८)--शास्त्रों का ज्ञान । **आहर्ता क्रतूनाम्** (कादम्० ५)--यज्ञों का करने वाला । **दुःखायेदानीं रामस्य सुहृदां दर्शनम्** (उत्तर० ३)--श्रीरामचन्द्र जी को मित्रों को देखने से, केवल दुःख ही पैदा होगा ।

विशेष--द्विकर्मक धातुओं के योग में उनके गौण कर्म में षष्ठी अथवा द्वितीया होती है; जैसे, **नेता अश्वस्य सृत्रं सृत्रस्य वा** (म० भा०)--सृत्र के पास घोड़े को ले जाने वाला । परन्तु ऐसा प्रयोग बहुत कम मिलता है । साधारणतया प्रधान तथा गौण--दोनों कर्मों में षष्ठी विभक्ति ही आती है; जैसे, **गवां दुग्धस्य दोहनम्, सागरस्य अमृतस्य मन्थनम्** । इन दोनों प्रयोगों में 'गवाम्' और 'सागरस्य'--इन दोनों पदों में षष्ठी पञ्चमी के अर्थ में प्रयुक्त हुई है ।

११०[2]--जब किसी वाक्य में, कृत्-प्रत्यय-निष्पन्न संज्ञाओं द्वारा बोधित क्रिया के कर्त्ता और कर्म दोनों आते हैं तब केवल कर्म में षष्ठी होती है, कर्त्ता में नहीं होती; जैसे, **आश्चर्यं गवां दोहोऽगोपेन** (सि० कौ०)--ग्वाले के बिना गाय का दुहा जाना आश्चर्य है ।

(क)[3] कुछ वैयाकरणों का मत है कि जब कृत्-प्रत्यय स्त्रीलिंग का हो, और कुछ का मत है कि कृत्-प्रत्यय चाहे जिस लिंग का हो, यदि कर्ता और कर्म दोनों वाक्य में आए हों तो कर्ता तृतीया या षष्ठी में रक्खा जाता है; जैसे, **विचित्रा जगतः कृतिर्हरेर्हरिणा वा** (सि० कौ०)--हरि के द्वारा संसार का बनाया जाना विचित्र है । **शब्दानामनुशासनमाचार्येण आचार्यस्य वा** (सि० कौ०) । इसी प्रकार **शोभना खलु पाणिनेः पाणिनिना वा सूत्रस्य कृतिः** (म० भा०) ।

१--कर्तृकर्मणोः कृति । २। ३। ६५ ॥

२--उभयप्राप्तौ कर्मणि २। ३। ६६ ॥

३--शेषे विभाषा । स्त्रीप्रत्यय इत्येके । केचिदविशेषेण विभाषामिच्छंति (वार्तिक) ।

१११[1]—आशीर्वाद देने में 'आयुष्मन्', 'मद्रम्', 'भद्रम्', 'कुशलम्', 'सुखम्', 'अर्थः' और 'हितम्' के योग में चतुर्थी या षष्ठी होती है; जैसे, **कृष्णस्य कृष्णाय वा कुशलं, हितं, भद्रं, शूयात्** (सि० कौ०)—कृष्ण को सुख होवे अथवा सौभाग्य प्राप्त होवे ।

११२[2]—दिशावाची 'तस्' प्रत्ययान्त शब्दों के योग में तथा 'तस्' प्रत्ययान्त-शब्दों-जैसे अर्थ रखने वाले 'उपरि', 'अधः', 'पुरः', 'पश्चात्', 'अग्रे', 'पुरस्तात्' इत्यादि के योग में वह शब्द षष्ठी में रक्खा जाता है जिसको लक्षित करके दिशा बताई जाती है; जैसे, **ग्रामस्य दक्षिणतः-उत्तरतः** (सि० कौ०)—गाँव के दक्खिन या उत्तर; **गतमुपरि घनानाम्** (शा० ७)—बादलों के ऊपर गया हुआ । **तरूणामधः** (शा० १)—पेड़ों के नीचे । **तिष्ठन् भाति पितुः पुरो भुवि यथा** (नागा० १)—जैसे कोई पिता के सामने जमीन पर खड़ा हुआ सुन्दर लगता है । **यः पुरस्ताद्यतीनाम्** (मालविका० १)—जो संन्यासियों में सर्वश्रेष्ठ है ।

विशेष—'उपरि' शब्द प्रायः समास में जोड़ दिया जाता है; जैसे, **प्रत्यारोपय रथोपरि राजपुत्रम्** (उत्तर० ५) । **चाणक्योपरि प्रद्वेषपक्षपातः** (मुद्रा० ३) ।

(क)[3] **'दक्षिणेन', 'उत्तरेण'** इत्यादि दिशावाची 'एनप्' प्रत्ययान्त शब्दों के योग में उस स्थान-बोधक शब्द में द्वितीया या षष्ठी होती है जिसका नाम लेकर दिशा बताई जाती है; जैसे, **दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु** (म० भा० ६।८।२)—श्वेत के दक्खिन और निषध के उत्तर । **दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम्** (शा० १)—बगीचे के दक्खिन । **धनपतिगृहादुत्तरेण** (मेघ० ७८)—कुबेर के घर के उत्तर ।

(ख)[4] 'दूर' और 'अन्तिक' (समीप) तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों के योग में षष्ठी अथवा पंचमी होती है; जैसे, **ग्रामात् ग्रामस्य वा वनं**

१—चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः । २। ३। ७३ ।

२—षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन । २। ३। ३० ॥ दक्षिणतः, उत्तरतः इत्यादि दिशावाची तस् प्रत्ययान्त शब्द हैं ।

३—एनपा द्वितीया । २। ३। ३१ ॥

४—दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् । २। ३। ३४ ॥

दूरं-निकटं-समीपम् इत्यादि (सि० कौ०)। जंगल गाँव के समीप अथवा गाँव से दूर है।

विशेष--अधिकतर षष्ठी का ही प्रयोग होता है; जैसे, **तस्याश्रमपदस्य नातिदूरे** (कादम्० २२)। **अतः समीपे परिणेतुरिष्यते** (शा० ५)। **प्रयामि तस्याः सकाशम्** (कादम्० १५८)।

११३[1]--ईश्, प्र+भू, दय्, स्मृ तथा अधिपूर्वक इ धातुओं का अर्थ क्रमशः 'मालिक होना'; 'प्रभुता पाना' या 'समर्थ होना'; 'दया करना' या 'अनुकम्पा करना'; 'अफसोस करना' या 'चिन्ता करना' होता है; इनके योग में उक्त क्रियाओं के कर्म में षष्ठी लगती है; जैसे, **ननु प्रभवत्यार्यःशिष्यजनस्य** (मालविका० १) --क्यों, श्रीमान् अपने शिष्यों के ऊपर प्रभाव रखते हैं अर्थात् शिष्यों के ऊपर पूरा-पूरा जोर रखते हैं। **प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराजः** (मालती० ४)। **यदि प्रभविष्यामि आत्मनः**(शा० १)। **नायं गात्राणामीष्टे** (कादम्० ३१२)--वह अपने अंगों को वश में नहीं रख सकता है। **रामस्य दयमानोऽसावध्येति तव लक्ष्मणः** (भट्टि० ८।११६)--राम के ऊपर दया करते हुए लक्ष्मण तुम्हारी याद करते हैं। **स्मर्तुं दिशंति न दिवः सुरसुन्दरीभ्यः** (किरात० ५।२८)--अप्सराओं को स्वर्ग की सुधि नहीं करने देते। **अस्मार्षीज्जलनिधिमंथनस्य शौरिः** (शिशु० ८।६४)--भगवान् कृष्ण ने समुद्रमंथन को याद किया।

विशेष--(क) 'प्र'-पूर्वक 'भू' धातु का जब 'योग्य होना' अर्थ होता है तब वह तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द के साथ प्रयुक्त होती है (षोडश पाठ देखिए)। जब 'प्र'-पूर्वक 'भू' धातु का 'काफी' या 'पर्याप्त' अर्थ होता है तब उसके योग में चतुर्थी आती है। सेक्शन ६७ (क) देखिए।

(ख) जब 'स्मृ' धातु अपने साधारण अर्थ 'याद करना'; 'स्मरण करना' में प्रयुक्त होती है तो इसके कर्म में द्वितीया ही आती है; जैसे, **स्मरसि तान्यहानि--स्मरसि गोदावरीं वा** (उत्तर० १)। ऊपर के प्रयोग में कर्म का व्यक्त किया जाना अभीष्ट है। [**यदा कर्म विवक्षितं भवति तदा षष्ठी न भवति** (म० भा०)]

(ग) 'जानने वाला' या 'परिचित' या 'सावधान'--इन अर्थों का बोध कराने वाले विशेषणों तथा इनके उलटे अर्थों का बोध कराने वाले

१--अधीगर्थदयेशां कर्मणि। २। ३। ५२।

विशेषणों के योग में कर्म में षष्ठी होती है; जैसे, **अनभिज्ञो गुणानां यः स भृत्यैर्नानुगम्यते** (पंच० १।१)--जो पुरुष गुणों को नहीं समझता या पहिचानता उसका, भृत्य लोग, अनुसरण नहीं करते। इसी प्रकार **अनभ्यन्तरे आवां मदनगतस्य वृत्तांतस्य** (शा० ३)। कभी-कभी सप्तमी का भी प्रयोग होता है; जैसे, यदि **त्वमीदृशः कथायामभिज्ञः** (उत्तर० ४)। **तत्राप्यभिज्ञो जनः** (उत्तर० ५)।

११४[1]—'बार-बार' या 'अनेक बार' का अर्थ प्रकट करने वाले द्विः, त्रिः, शब्दों अथवा अष्टकृत्वः, शतकृत्वः संख्या-बोधक क्रियाविशेषण अव्यय शब्दों के योग में समयवाची शब्द में षष्ठी विभक्ति लगती है यद्यपि सप्तमी का ही भाव प्रकट होता है; जैसे, **द्विरह्नो भोजनम्** (सि० कौ०)--दिन में दो बार भोजन। **शतकृत्वस्तवैकस्याः स्मरत्यह्नो रघूत्तमः** (भट्टि० ८।१२२)—रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी दिन में केवल तुम्हें सौ बार याद करते हैं।

११५[2]--जब 'क्त'-प्रत्ययान्त शब्द वर्तमानकाल के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं तो वे षष्ठ्यन्त पदों के साथ आते हैं; जैसे, **अहमेव मतो महीपतेः** (रघु० ८।८)--राजा मुझे ही मानते हैं। **विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम्** (रघु० १०।३६)--मैं जानता हूँ कि तीनों लोक उससे या उसके द्वारा सताये या परितप्त किये जा रहे हैं। **राज्ञो पूजितः** (सि० कौ०)--राजाओं द्वारा पूजा जाता है।

(क) परन्तु जब भूतकाल विवक्षित होता है तब केवल तृतीया आती है; जैसे, **न खलु विदितास्ते चाणक्यहतकेन** (मुद्रा० २)--क्या दुष्ट चाणक्य द्वारा उन लोगों का पता नहीं लगा लिया गया ?

(ख) जब 'क्त' प्रत्ययान्त शब्द भाववाचक नपुंसकलिङ्ग संज्ञापदों के तौर पर प्रयुक्त होते हैं तब उनके योग में षष्ठी होती है; जैसे, **मयूरस्य नृत्तम्** (म० भा०)--मोर का नाचना। **कोकिलस्य व्याहृतम्, नटस्य भुक्तं, छात्रस्य हसितम्** (म० भा०)।

१--कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे। २। ३। ६४।

२- क्तस्य च वर्तमाने १२। ३। ६७।

११६--'कृते' का हिन्दी में अर्थ 'लिए', 'के लिए,' या 'वास्ते' होता है, तथा 'समक्ष' का अर्थ 'सामने' 'उपस्थिति में' होता है। इनके योग में षष्ठी होती है। जैसे, **अमीषां प्राणानां कृते** (भर्तृ० ३।३६)--इस जीवन के लिए। **राज्ञः समक्षमेव** (मालविका० १)--राजा के ही सामने।

विशेष--'कृते' शब्द का प्रायः दूसरे शब्दों के साथ समास कर दिया जाता है, जैसे, **काव्यम् अर्थकृते** (काव्यप्रकाश १)।

११७[1]--'बराबर', 'समान' या 'की तरह' अर्थवाची 'तुल्य', 'सदृश', 'सम', 'संकाश' इत्यादि शब्दों के योग में वह शब्द तृतीया में रक्खा जाता है जिससे किसी की तुलना की जाती है; जैसे, **कृष्णस्य तुल्यः सदृशः** प्रभृति (सि० कौ०)। तृतीया विभक्ति के प्रयोग के लिए अनुच्छेद ५२ (ग) देखिये।

विशेष--पाणिनि का मत है कि 'तुला' और 'उपमा' शब्द तृतीया के साथ नहीं आ सकते। परन्तु यह बात अच्छी लेखन-प्रणाली के विरुद्ध है; जैसे, **तुलां यदारोहति दंतवाससा**(कुमार० ५।३४)--जब वह इन्द्र की समता को प्राप्त होता है। **नभसा तुलां समारुरोह** (रघु० ८।१५)--आकाश की समता को प्राप्त हो गया। **स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना** (शिशु० १।४)--(भस्म (राख) से सफेद शम्भु के समान स्पष्ट उपमा वाला। मल्लिनाथ ने इन उदाहरणों का पाणिनीय सूत्र के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है, पर उनकी युक्ति ठीक नहीं जँचती।

(क) 'योग्य', 'उचित', 'उपयुक्त', 'अनुरूप'-अर्थ-वाची विशेषणों के योग में प्रायः षष्ठी आती है; जैसे, **सखे पुण्डरीक, नैतदनुरूपं भवतः** (कादम्० १४६)--हे मित्र पुण्डरीक, यह तुम्हारे योग्य नहीं है। **सदृशमेवैतत स्नेहस्यानवलेपस्य** (शा० ६)--वस्तुतः, यह बात अभिमानहीन प्रेम के अनुरूप ही है। सेक्शन ६६ (क) भी देखिए।

११८--जब 'प्रकृति' या 'स्वभाव' दिखाना विवक्षित होता है तब 'तृ' प्रत्ययान्त शब्द द्वितीया के साथ प्रयुक्त होते हैं, न कि षष्ठी के साथ; जैसे, **पितरमाराधयिता भव** (विक्रमो० ५)--सर्वदा अपने पिता को प्रसन्न रक्खो। **सम्भावयिता बुधान्, न्यग्भावयिता शत्रून्** (दशकु०

१--तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम्। २। ३। ७२।

२।८)--जिसका **साधारण** स्वभाव विद्वानों का आदर करना और शत्रुओं को नीचा दिखाना है। परन्तु **'जगतो निर्माता'** और **'घटस्य कर्ता'** आदि इस नियम के अपवाद हैं।

(क) 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु का अर्थ 'नकल करना' या 'मिलना-जुलना' होता है। इस धातु का प्रयोग होने पर प्रायः इसके कर्म में षष्ठी होती है; जैसे, **ततोऽनुकुर्यात् तस्याः स्मितस्य** (कुमार० १।४४)--तब कदाचित् यह उसकी मुसकुराहट से मिल-जुल जाय। **श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम्** (कादम्० १०)--कालिमा में भगवान् हरि से मिलती-जुलती हुई सी। **सर्वाभिरन्याभिः कलाभिरनुचकार तं वैशंपायनः** (कादम्० ७६)--वैशम्पायन अन्य सभी कलाओं में उससे मिलता-जुलता था। इसी प्रकार **शैलाधिपस्यानुचकार** लक्ष्मीम् (भट्टि० २।८)।

११६[1]--'सौदा का लेन-देन करना', 'जुआ में लगा देना'--इन अर्थों का बोध कराने वाली **'व्यवहृ'** और 'पण' धातुओं के योग में इनके कर्म में षष्ठी होती है; जैसे, **शतस्य व्यवहरणं-पणनम्** (सि० कौ०)--सैकड़ों का लेन-देन करना। इसी प्रकार, **प्राणानामपणिष्टासौ** (भट्टि० ८।१२१)--उसने प्राणों की बाजी लगा दी। परन्तु द्वितीया का प्रयोग बहुत ज्यादा मिलता है; जैसे, **कृष्णां पणस्व पांचालीम्** (महा० २। ६५। ३२)।

(क) जब 'दिव्' धातु का उपर्युक्त अर्थ में प्रयोग होता है, तो उसके योग में भी कर्म में षष्ठी होती है; जैसे, **शतस्य दीव्यति** (सि० कौ०)। परन्तु जब 'दिव्' धातु उपसर्गपूर्वक रहती है तब षष्ठी या द्वितीया कोई भी आ सकती है; जैसे, **शतस्य शतं प्रतिदीव्यति** (सि० कौ०)।

अभ्यास

१—**तस्याः पंडितकौशिक्या सहितायाः समक्षमेव न्याय्यो व्यवहारः।** (मालविका० १)।

२--**श्वापदानुसरणैर्मम गात्राणामनीशोस्मि संवृत्तः** (शा० २)।

१—व्यवहृपणोः समर्थयोः। दिवस्तदर्थस्य विभाषोपसर्गे ।२। ३। ५८ ५७।५६।

३—कथं मामेकाकिनीं त्यक्त्वार्यपुत्रो गतः। भवतु कोपिष्यामि यदि तं प्रेक्षमाणात्मनः प्रभविष्यामि (उत्तर० १)।

४—अयि, भागीरथीप्रसादाद्वनदेवतानामप्यदृश्यासिसंवृत्ता।(उत्तर०३)।

५—हा देवि, स्मरसि वा तस्य प्रदेशस्य तत्समयविश्रंभातिशयप्रसंगसाक्षिणः। (उत्तर० ६)।

६—एवमवस्थिते यदत्रावसरप्राप्तमीदृशस्य चानुरागस्य सदृशमस्मदागमनस्य चानुरूपमात्मनि समुचितं तत्र प्रभवति देवीत्यभिधाय मन्मुखासक्तदृष्टिः कर्पिजलस्तूष्णीमासीत्। (कादम्० १५८)।

७—धिङ् मां दुष्कृतकारिणीं यस्याः कृते तवेयमीदृशी दशा वर्तते। (कादम्० १६७)।

८—हा दयित माधव परलोकगतोपि स्मर्तव्यो युष्माभिरयं जनः। न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जनः स्मरति। (मालती० ५)।

९—कापि महती वेला वर्तते तवादृष्टस्य। तदनया सहैवागच्छ। (कादम्० २४१)।

१०—अहं हि संमतो राज्ञो य एवं मन्यते कुधीः।
वलीवर्दः स विज्ञेयो विषाणपरिवर्जितः॥ (पंच० १। १०)।

११—शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यंतमंतरम्।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पांतस्थायिनो गुणाः॥ (हित० १)।

१२—अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामीश्महे यावदर्थम्। (भर्तृ० ३।३०)।

१३—समरशिरसि चंचत्पंचचूडश्चमूना-
मुपरि शरतुषारं कोप्ययं वीरपोतः (किरति)। (उत्तर० ५)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—स राजा मनसि धर्मेण, कोपे यमेन, प्रतापे वह्निना, मुखे शशिना, प्रज्ञायां सुरगुरुणा, तेजसि सवित्रा च वसता, सर्वदेवमयस्य प्रकटितविश्वरूपाकृतेरनुकरोति भगवतो नारायणस्य। (कादम्० ६)

२—नियतमिह सर्वात्मना कृतावस्थितिना भगवता परिभूतकलिकालविलसितेन धर्मेण न स्मर्यते कृतयुगस्य। (कादम्० ४४)

३—उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं, घनोदयः प्राक् तदनंतरं पयः ।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रम, स्तव प्रसादस्य पुरस्तु संपदः ॥ (शा० ७)

४—शंबूको नाम वृषलः पृथिव्यां तप्यते तपः ।
शौर्यच्छेद्यः स ते राम तं हत्वा जीवय द्विजम् ॥ (उत्तर० १)

५—अपीप्सितं क्षत्रकुलांगनानां
न वीरसूशब्दमकामयेताम् । (रघु० १४।४)

६—वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम् ।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य ॥
(रघु० १४।६१)

७—देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः ।
प्रनष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति ॥ (उत्तर० ३)

८—अयं मैथिल्यभिज्ञानं काकुत्स्थस्यांगुलीयकः ।
भवत्याः स्मरतात्यर्थमर्पितः सादरं मम ॥ (भट्टि० ८। ११८)

९—पुरः प्रवेशमाश्चर्यं बुद्धा शाखामृगेण सा ।
चूडामणिमभिज्ञानं ददौ रामस्य संमतम् ॥
रामस्य शयितं भुक्तं जल्पितं हसितं स्थितम् ।
प्रकांतं च मुहुः पृष्ट्वा हनूमंतं व्यसर्जयत् ॥ (भट्टि० ८।१२४,१२५)

१०—तं दृष्ट्वाऽचिन्तयत्सीता हेतोः कस्यैष रावणः ।
अवरुह्य तरोरारादेति वानरविग्रहः ॥
उत्तराहि वसन् रामः समुद्राद्रक्षसां पुरम् ।
अवैल्लवणतोयस्य स्थितां दक्षिणतः कथम् ॥ (भट्टि० ८।१०८।१०७)

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—नवयुवक को बड़े गौर से देखती हुई स्त्रियाँ मुश्किल से अपने आपको अपने वश में कर सकीं (ईश्) ।

२—यदि मनुष्य सभी कार्यों में पशुओं की नकल करे (अनु+कृ) तो दोनों में क्या अन्तर है ?

३—मित्र, निराश मत होओ; जिसके लिए (कृते) तुम इतने दुःखी हो वह स्वयं तुम्हारे पास जल्दी ही आवेगी ।

४—गृहस्थी का सारा काम पुत्रों को सौंप कर जंगल में निवास करने वालों को जो सुख होता है उसके बराबर दूसरा कोई सुख नहीं।

५—क्या तुम्हारा यह कार्य उस उच्चकुल के उपयुक्त है जिसमें तुम पैदा हुए हो?

६—मेरे गुरुजनों की आज्ञा केवल मेरे शरीर पर काबू कर पावेगी (प्र+भू), परन्तु मेरे मन तथा उसके कार्यों पर नहीं।

७—बहुत दिनों तक माता से दूर हटाए जाने के कारण बच्चा बारबार उसे याद करता है।

८—इस पर्वत के उत्तर (उत्तरतः) हरी घास से ढका हुआ विस्तृत प्रदेश है जो कि दर्शकों के नेत्र को करीब-करीब मोहित कर लेता है।

९—समस्त राजमन्त्रियों के सामने (समक्ष) अनुचर ने राजा से जो कहानी कही उसने उस (राजा) के हृदय में स्थान प्राप्त कर लिया।

१०—इधर मैं सामने (पुरः) हड्डियों की एक बड़ी राशि और उधर पेड़ों के तले (अधः) मांस के अनेक टुकड़े देखता हूँ। यह क्या हो सकता है?

११—सुषेण के राज्य में प्रजा का हर एक आदमी समझता था कि मैं राजा से पूजा (पूज्) तथा माना (मन्) जाता हूँ।

१२—प्रजाओं को अच्छे लगने वाले गुणों के कारण आप अपने पिता के अनुरूप होवें।

१३—मालविका को देखने के लिए गई हुई देवी जी को बहुत समय हो गया।

१४—यह राजा भृत्यों द्वारा सेव्य है और 'नर-पाल' की पदवी इसे पूर्णतः शोभा देती है।

१५—सज्जनों के साथ मैत्री करने के समान (सदृश) संसार में और कोई चीज नहीं।

१६—बुद्धिमान् विद्यार्थियों को उत्तम पुस्तकें सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों की अपेक्षा अधिक प्रिय लगती हैं।

१७—धर्मनिष्ठ ब्राह्मण को दिन में तीन बार सन्ध्योपासन करना चाहिए और सूर्यास्त के पूर्व एक ही बार भोजन करना चाहिए।

१८—राम सीता को प्राणों से भी अधिक प्रिय थे।

एकादश पाठ

भावे षष्ठी तथा सप्तमी

१२०—'जब शत्रन्त अथवा शानजन्त पद का लिंग, वचन और कारक, क्रिया के कर्ता से भिन्न किसी अन्य कर्ता के अनुरूप होता है, तब वह वाक्यांश (Phrase) 'भावे' कहलाता है'—बेन। जिस उपवाक्य में स्वतंत्र वाक्यांश रहता है, उसकी साधारण रचना से उस (स्वतंत्र) वाक्यांश का कोई सम्बन्ध नहीं रहता; जैसे, वायु के अनुकूल होने के कारण जहाज ने प्रस्थान कर दिया। 'भावे' वाली विभक्ति भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न होती है। अँगरेजी में भाव विभक्ति **प्रथमा** होती है; लेटिन भाषा में **पञ्चमी** होती है; और संस्कृत में **षष्ठी** तथा **सप्तमी**। यदि आश्रित उपवाक्य का कर्ता प्रधान उपवाक्य में संज्ञापद के रूप में अथवा उस संज्ञा के स्थानापन्न सर्वनामपद के रूप में न आता हो तो स्वतंत्र-वाक्यांश (भावे) का प्रयोग किया जा सकता है। इस वाक्य को लीजिए—लंका को ले लेने पर राम अयोध्या को लौटे। यहाँ दोनों उपवाक्यों का कर्ता एक ही है, इसलिए यहाँ स्वतंत्र-वाक्यांश (भावे) का प्रयोग नहीं हो सकता। इस वाक्य का अनुवाद इस प्रकार होगा—**लंकां गृहीत्वा (गृहीतलंकः वा) रामोऽयोध्यां निववृते**। परन्तु 'बन्दरों के लंका ले लेने पर, राम अयोध्या को लौटे' इस वाक्य का अनुवाद **कपिभिर्गृहीतायां लंकायां रामोऽयोध्यां निववृते** अथवा **कपिषु लंकां गृहीतवत्सु रामोऽयोध्यां निववृते** हो सकता है।

टिप्पणी—इन भाव-वाक्यांशों को बनाने के लिए शत्रन्त तथा शानजन्त पदों के कर्ता को षष्ठी अथवा सप्तमी में रखना चाहिए और शत्रन्त तथा शानजन्त पद का लिंग और वचन वही होना चाहिए जो उनके कर्ता का हो।

१२१[१]—जिस कार्य-विशेष के होते रहने पर या हो चुकने पर किसी

१—यस्य च भावेन भावलक्षणम्। २। ३। ३७।

दूसरे कार्य का होना पाया जाता है, वह सप्तमी में रखा जाता है। ऐसी दशा में पहिले कार्य का समय ज्ञात रहता है, परन्तु दूसरे कार्य का समय ज्ञात नहीं रहता; इस दूसरे कार्य का समय पहिले के आधार पर निर्धारित किया जाता है; जैसे, **कः पौरवे वसुमतीं शासति अविनयमाचरति** (शा० ६)--पौरव के शासन करते हुए कौन धृष्टता-पूर्ण आचरण कर रहा है। **वचस्यवसिते तस्मिन् ससर्ज गिरमात्मभूः** (कुमार० २।३)--उस वचन के समाप्त हो जाने पर आत्मभू (ब्रह्मा) ने शब्दों का उच्चारण किया। **क एष मयि स्थिते चन्द्रगुप्तमभिभवितुमिच्छति** (मुद्रा० १)--मेरे जीते जी चन्द्रगुप्त को कौन परास्त करना चाहता है?

विशेष--संस्कृत में **भाव सप्तमी** का प्रयोग उसी अर्थ में होता है जिस अर्थ में अंग्रेजी में Nominative absolute का प्रयोग होता है।

१२२[1]--जिसका अनादर या तिरस्कार करके कोई कार्य किया जाता है उसमें षष्ठी होती है; जैसे, **नन्दाः पशव इव हताः पश्यतो राक्षसस्य** (मुद्रा० ३)--राक्षस के देखते-देखते नन्दवंशवाले पशुओं के समान मार डाले गए। इस प्रकार जो कोई वाक्य या वाक्यांश 'बावजूद इसके' 'ऐसा होते हुए' तथा 'यद्यपि' या 'हालाँकि' इत्यादि अर्थ या भाव प्रकट करने वाले शब्दों से युक्त हो तो **षष्ठी-भाव-वाक्यांश** का प्रयोग किया जा सकता है; जैसे, मेरे देखते-देखते या यद्यपि मैं देख रहा था तथापि बच्चा एक बाज द्वारा छीन लिया गया, इस वाक्य का संस्कृत में अनुवाद होगा--**पश्यतोऽपि मे श्येनेनापहृतः शिशुः**। (पंचतंत्र १।२१)।

१२३--अंग्रेजी के when, while (जब) इत्यादि अव्यय शब्दों से व्यक्त भाव को प्रकट करने के लिए संस्कृत में **भाव-सप्तमी** की भाँति बहुधा षष्ठी का प्रयोग किया जाता है और ऐसी दशा में षष्ठी अपना साधारण अर्थ नहीं रखती। जैसे, **एवं तयोः परस्परं वदतोः स राजा शयनमासाद्य प्रसुप्तः** (पंच १।६)--जब वे दोनों इस प्रकार बातें कर रहे थे, तब राजा अपने शय्या पर आकर सो गया।

विशेष--जब किसी स्वतंत्र-वाक्यांश में 'रहते' आता है, तो संस्कृत

१--षष्ठी चानादरे। ३। ३८।

में उसका अनुवाद नहीं किया जाता; वह छोड़ दिया जाता है और उसकी जगह दो विशेष (Substantives) अथवा एक विशेष्य और एक विशेषण साथ-साथ स्वतंत्र रूप से 'भावे'-विभक्ति (Absolute Case) में रखे जाते हैं; जैसे, **नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम्** (रघु० ५।१३) तुम्हारे राजा रहते हुए, प्रजाओं का कोई भी अनिष्ट कैसे हो सकता है ?

१२४--सेक्शन १२२ में बताया गया है कि 'अनादर' में षष्ठी का प्रयोग किया जाता है । परन्तु कभी-कभी षष्ठी अथवा सप्तमी--दोनों में से कोई भी आ सकती है; जैसे, **रुदति पुत्रे रुदतो वा पुत्रस्य पिता प्राव्राजीत्** (सि० कौ०)--पुत्र के रोते रहने पर भी पिता संन्यासी हो गया ।

(क) 'ज्योंही' 'ऐसा हुआ नहीं था कि' 'मुश्किल से ऐसा हुआ था कि इतने ही में' 'जिसी क्षण'—इन अर्थों का बोध कराने के लिए **भावे सप्तमी** आती है और सप्तमी के बाद में 'एव' जोड़ दिया जाता है अथवा शत्रन्त, शानजन्त पद को 'मात्र' के साथ समस्त करके, समस्त पद को सप्तमी में रखते हैं और उसके साथ कभी 'एव' जोड़ देते हैं, और कभी-कभी नहीं भी जोड़ते; जैसे, **अनवसितवचन एवं मयि मानाशीविष उदैरयत् शिरः** (दशकु० २।४)--जिसी क्षण मेरी बात समाप्त हुई, एक बड़े साँप ने अपना सिर उठाया । **अप्रभातायामेव रजन्याम्** (मुद्रा० १)--मुश्किल से अभी प्रातःकाल हो पाया था कि; **प्रविष्टमात्र एव तत्रभवति निरुपप्लवानि नः कर्माणि संवृत्तानि** (शा० ३)--ज्योंही श्रीमान् ने प्रवेश किया, त्योंही हम लोगों के सारे कार्य विघ्नरहित हो गए ।

टिप्पणी--अन्य विभक्तियों के साथ भी जुड़ कर 'मात्र' शब्द एव-रहित या एव-सहित उपर्युक्त अर्थ का बोधक होता है; जैसे, **जातमात्रं न यः शत्रुं व्याधिं च प्रशमं नयेत्** (पंच० ३।१)--शत्रु और बीमारी को, पैदा होते ही, जो पुरुष दबा नहीं देता ।

(ख) कभी-कभी शत्रन्त अथवा शानजन्त शब्दों का एवम्, इत्थम्, तथा, इति—इत्यादि अव्ययों के साथ संयोग हो जाता है; जैसे, **एवं गते** (शा० ४)--ऐसी परिस्थिति में, ऐसी परिस्थिति होने पर । **तथानुष्ठिते** (हित० ३)—ऐसा कर लिए जाने पर ।

१२५[1]—स्वतंत्र वाक्यांशों (absolute phrases) में कर्ता या कर्म कोई भी प्रधान उपवाक्य में, षष्ठी के अतिरिक्त और किसी विभक्ति में न तो संज्ञारूप में, न सर्वनामरूप में, दुबारा आ सकता है। जब कर्ता या कर्म या उनके स्थानापन्न सर्वनाम को प्रधान वाक्य में दुहराना अभीष्ट हो, तब स्वतन्त्र वाक्यांश नहीं बनाना चाहिये; प्रत्युत सारे वाक्य को एक मान कर उसका अनुवाद शत्रन्त अथवा शानजन्त शब्दों द्वारा करना चाहिये; जैसे, 'गोषु दुह्यमानासु ता जलमपाययत' न कह कर 'दुह्यमाना गा जलमपाययत्' कहना चाहिये। ऐसे ही 'आगतेषु विप्रेषु तेभ्यो दक्षिणां देहि' इतना मुहावरेदार प्रयोग नहीं है जितना 'आगतेभ्यो विप्रेभ्यो दक्षिणां देहि'। 'आपणात् पात्रे समानीते तस्मिन्नन्नं पचामि'—यह इतना अच्छा प्रयोग नहीं है जितना 'आपणात् समानीते पात्रे अन्नं पचामि'।

इसी प्रकार 'सारंगे एवं विचारयति स (सारंगः) व्याधेन हतः'—यह प्रयोग उतना मुहावरेदार नहीं है जितना 'एवं विचारयन् सारंगा व्याधेन हतः'। इसी प्रकार 'ताडयतोऽपि स्वामिनस्तस्मै भृत्या न कुप्यन्ति' बुरा

१—इस विषय में वैयाकरणों ने कुछ भी सम्मति नहीं प्रकट की है तथापि मैं समझता हूँ कि इस प्रकार का प्रयोग निश्चित रूप से प्रामाणिक समझा जा सकता है। इसके पक्ष में तीन बातें हैं :—

१—स्वतंत्र वाक्यरचना (sbsolute construction) के जो लक्षण बताए जाते हैं उनसे यह बात प्रमाणित हो जाती है।

२—दूसरे अनेक लब्धप्रतिष्ठ संस्कृत-लेखकों के प्रयोगों से भी यह बात प्रमाणित हो जाती है।

३—तीसरे, लेटिन-जैसी अन्य क्लैसिकल भाषाओं में भी इसी प्रकार के प्रयोग पाये जाते हैं।

लक्षण में स्पष्टतः कहा गया है कि स्वतन्त्र वाक्यांश (absolute phrase) का कर्ता प्रधान वाक्य में किसी भी हालत में नहीं आना चाहिए।

दूसरे, संस्कृत लेखकों के लेखों में स्वतन्त्र वाक्यांश (absolute construction) के जो अनेक उदाहरण मिलते हैं उनमें ऐसे प्रयोग बहुत कम हैं जिनमें कर्ता या कर्म प्रधान वाक्य में, षष्ठी के अतिरिक्त अन्य किसी विभक्ति में दुबारा आया हो।

प्रयोग है, और 'ताडयतेऽपि स्वामिने भृत्या न कुप्यन्ति' अच्छा प्रयोग है। परन्तु 'मदने हरेण दग्धे तस्य पत्नी विवशा बभूव', अथवा 'मृतेऽस्मिन् राज्ञि तस्य पुत्रो राज्यमधिगमिष्यति' सर्वथा सुन्दर प्रयोग है।

अभ्यास

१—अलमलमुपालम्भेन। पत्तने विद्यमानेऽपि ग्रामे रत्नपरीक्षा (मालविका० १)।

२—इदमवस्थांतरं गते तादृशेनुरागे किं वा स्मारितेन (शा० ५)।

३—मा तावदनात्मज्ञे देवेन प्रतिषिद्धे वसंतोत्सवे त्वमाम्रकलिकाभंगं किमारभसे (शा० ६)।

४—अभिव्यक्तायां चन्द्रिकायां किं दीपिकापौनरुक्त्येन (विक्रमो० ३)।

५—आर्ये आत्रेयि, अथ तस्मादरण्यात् परित्यज्य गते लक्ष्मणे सीतादेव्याः किं वृत्तमित्यस्ति काचित् प्रवृत्तिः। (उत्तर० २)।

जिस प्रकार 'महाबली' कहना अनुचित है, और 'महाबलः' कहना ठीक है, उसी प्रकार 'दुह्यमाना गा जलमपाययत्' 'गोषु दुह्यमानासु ता जलमपाययत्' की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त और शुद्ध है और इसीलिए अधिक मुहावरेदार है।

तीसरे, लेटिन में भी भावविभक्ति (absolute case) इसी ढङ्ग का होता है।

यद्यपि संस्कृत-वैयाकरणों ने इस विषय में कोई भी सम्मति प्रकट नहीं की है, तथापि उपर्युक्त तीनों बातों से यही निष्कर्ष निकलता है कि जो अधिक संक्षिप्त और मुहावरेदार होता है वह उसकी अपेक्षा अधिक शुद्ध है जिस पर वैयाकरणों ने कोई भी सम्मति नहीं प्रकट की है, न कोई आक्षेप अथवा आपत्ति प्रकट की है। दक्षिण-प्रान्त-निवासी मेरे एक मित्र ने 'नारायणीयम्' नामक ग्रन्थ का ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया है। यह ग्रन्थ श्रीभागवतपुराण का संक्षिप्त संस्करण है। इस ग्रन्थ के प्रणेता ने ऊपर उल्लिखित नियम की सर्वथा अवहेलना की है। मेरे मित्र ने अपने कथन के पुष्टि के लिए दो तीन उदाहरण भी दिये हैं। मेरे विचार में, ऐसे प्रयोग अशुद्ध और गैरमुहावरेदार हैं। इस प्रकार के अपर्याप्त प्रमाणों के आधार पर मैं इस नियम में संशोधन अथवा परिवर्तन करने के लिये तैयार नहीं हूँ।

६—हा कष्टमरुन्धति वसिष्ठाधिष्ठितेषु रघुकदंबकेषु जीवंतीषु च प्रवृद्धासु राज्ञीषु, कथमिदमापतितम्। (उत्तर० २)।

७—अत्रांतरे शक्तिखंडमर्पितेन गांडीविनैवं भणितम्। अरे दुर्योधनप्रमुखाः कुरुबलसेनाप्रभवः, अरे अविनयनदीकर्णधार कर्ण, युष्माभिर्मम परोक्ष एकाकी पुत्रकोऽभिमन्युर्व्यापादितः। अहं पुनर्युष्माकं प्रेक्षमाणानामेनं कुमारवृषसेनं स्मर्तव्यशेषं नयामि। (वेणी० ४)।

८—कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि।
तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति॥ (शा० ५)।

९—मनोरथस्य यद्वीजं तदेवेनादितो हृतम्।
लतायां पूर्वलूनायां प्रसूनस्यागमः कुतः॥ (उत्तर० ५)।

१०—सा सीतामंकमारोप्य भर्तृप्रणिहितेक्षणाम्।
मामेति व्याहरत्येव तस्मिन्पातालमभ्यगात्॥ (रघु० १५।८४)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—राजा देवीमुखेन दुहितरमुवाच। पुत्रि, त्वयि दुहितरि स्थितायां किमेवं युज्यते यत्सर्वे पार्थिवाः मया सह विग्रहं कुर्वन्ति। (पंच० १।५)।

२—अथ कदाचिदवसन्नायां रात्रावस्ताचलचूडावलंबिनि भगवति कुमुदिनीनायके चंद्रमसि लघुपतनको नाम वायसो व्याधमपश्यत् (हित० १)।

३—विकारहेतौ सति विक्रियंते येषां न चेतांसि त एव धीराः। (कुमार० १।५९)

४—अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभग्ने पतनाय वल्लरी। (कुमार० ४।३१)

५—यस्मिञ्जीवति जीवन्ति बहवः सोऽत्र जीवति।
वायसाः किं न कुर्वंति चंच्वा स्वोदरपूरणम्॥ (पंच० १।१)

६—दर्शितभयेऽपि धातरि धैर्यध्वंसो भवेन्न धीराणाम्।
शोषितसरसि निदाघे नितरामेवोद्धतः सिंधुः॥ (पंच० १।९)

७—गुणवत्तरपात्रेण छाद्यंते गुणिनां गुणाः।
रात्रौ दीपशिखावर्तिर्न भानावुदिते सति॥ (पंच० १।१६)

८—संतानवाहीन्यपि मानुषाणां दुःखानि सद्वंधुवियोगजानि।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि स्रोतः सहस्रैरिव संप्लवन्ते॥ (उत्तर० ४)

९—पंचभिर्निर्मिते देहे पंचत्वं च पुनर्गते ।
स्वां स्वां योनिमनुप्राप्तं तत्र का परिदेवना ॥ (हित० ४)

१०—सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन्नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम् ।
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा (रघु० ५।१३)

११—तस्मिन् ह्रदः सहितमात्र एव ह्रीभात्समाविद्धतरंगहस्तः ।
रोधांसि निघ्नन्नवपातमग्नः करीव वन्यः परुषं ररास ॥ (रघु० १६।७८)

१२—जीवत्सु तातपादेषु नवे दारपरिग्रहे ।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः ॥ (उत्तर० १)

१३—त्वय्युत्कृष्टव्रतेऽभियोक्तरि नृपे नंदानुरक्ते पुरे
चाणक्ये चलिताधिकारविमुखे मौर्ये नवे राजनि ।
स्वाधीने मयि मार्गमात्रकथनव्यापारयोगोद्यमे
त्वद्वांछांतरितानि सम्प्रति विभो तिष्ठन्ति साध्यानि वः ॥ (मुद्रा० ४)

१४—अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरंतरौर्वायमाणे
सेनानाथे स्थितेऽस्मिन्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम् ।
कर्णालं सम्भ्रमेण व्रज कृप समरं मुंच हार्दिक्य शंकां
ताते चापद्वितीये वहति रणधुरां को भयस्यावकाशः ॥ (वेणी० ३)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए

[ध्यान रहे कि 'भावे सप्तमी' या 'भावे षष्ठी' के द्वारा ही अनुवाद होना चाहिए ।]

१—देवताओं के देखते रहने पर भी लोग दुष्कर्म करते हैं ।

२—दरिद्रता रूपी हाथी के द्वारा आत्म-सम्मान-रूपी वृक्ष के काट दिये जाने पर गुणरूपी सारे पक्षी उड़ जाते हैं ।

३—जब विपत्तियाँ बिल्कुल समीप आ जाती हैं तो मित्र भी शत्रु हो जाते हैं ।

४—ज्योंही चित्रकार चित्र को समाप्त कर ले, त्योंही मुझे बुलाने के लिये आ जाना ।

५—ज्योंही ऋषि ने इन शब्दों का उच्चारण किया, त्योंही क्षणभर में वह सुन्दर अप्सरा पत्थर में परिणत हो गयी ।

६—जब संकट का कारण इतना दूर है तो तुम रोग का व्याज करके क्यों कहते हो कि मैं आप लोगों के साथ नहीं चल सकूँगा।

७—जब यह दुःखद समाचार उन लोगों के कान तक पहुँचा तो उन्हें महान् दुःख हुआ।

८—मैं नहीं जानता कि माता द्वारा निर्दयतापूर्वक त्याग दिये जाने के बाद उस बालक की क्या दशा हुई।

९—इन्हीं तथा इन्हीं जैसे व्यथाकर विचारों से मन के व्याप्त रहने के कारण उसने निद्राहीन रात्रि व्यतीत की।

१०—ज्योंही उस चीज पर बाण छोड़ा गया त्योंही उसने उस दिशा में एक करुण क्रन्दन की आवाज सुनी।

११—द्युतिमान् दिक्पालों के रहते हुए भी दमयन्ती नल को ही पतिरूप में चाहती है।

१२—ऐ, बल की डींग मारने वाले अधमो, तुम्हें धिक्कार है। हम सौ भाइयों के जीते जी कौन हमारे भाई की परछाईं भी लाँघ सकता है?

१३—उदय होते हुए चन्द्रमा के द्वारा तमोराशि (तमःपुंज) हटा दिये जाने पर पूर्व दिशा मेरे नेत्रों को आकृष्ट कर रही है।

१४—कैदी (बन्दी) के प्राणों की रक्षा के लिए मेरे प्रार्थना करने पर भी राजा ने उसके वध की आज्ञा दी।

१५—जब मृत्यु निश्चित है तो भाग कर (भगदड़ का आश्रय लेकर) क्यों अपनी कीर्ति को मलिन करते हो।

तृतीय भाग

व्याकरण-सम्बन्धी रूपों और शब्दों का प्रयोग एवं अर्थ

द्वादश पाठ

सर्वनाम

पुरुषवाचक सर्वनाम

१२६—पुरुषवाचक सर्वनामों के प्रयोग के विषय में कोई विशेष बात नहीं होती। क्रियाओं और उपसर्गों के योग में पुरुषवाचक सर्वनामों में वे ही नियम लागू होते हैं जो संज्ञाओं में; जैसे, **अहं त्वां प्रार्थये**—मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ, **त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत्** (विक्रमो०)।

१२७[1]—परन्तु 'अस्मद्' और 'युष्मद्' के संक्षिप्त या लघु रूपों **मा, मे नौ, नः, त्वा, ते, वां और** वः की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। इनका प्रयोग (अ) वाक्य के प्रारम्भ में; (आ) **च, वा, एव, हा, अह, ह** के ठीक पूर्व में; (इ) छंद के चरण के प्रारम्भ में कभी नहीं होता है; जैसे, **'मे मित्रम्', 'नः पाहि' 'वां सख्यम्'**—ये प्रयोग अशुद्ध हैं। **तस्य च मम** (न कि 'मे') **च वैरमस्ति**—उसकी और मेरी शत्रुता है। **तस्य मम वा गृहम्** (न कि 'मे वा')। **इदं पुस्तकं ममैव** (न कि 'मे एव')। **हा मम मन्दभाग्यम्** (न कि 'मे')। **वेदैरशेषैः संवेद्योऽस्मान्** (न कि 'नः') **कृष्णः सर्वदाऽवतु** (सि० कौ०)—समस्त वेदों के द्वारा ज्ञातव्य श्रीकृष्ण भगवान् हम लोगों की सर्वदा रक्षा करें।

(क) जब ये वैकल्पिक रूप 'च' 'वा' 'एव' इत्यादि से जुड़े हुए नहीं होते तो इनका प्रयोग इन अव्ययों के साथ हो सकता है; जैसे, **हरो हरिश्च मे स्वामी**

१—न चवाहाहैवयुक्ते। (८। १। २४), पदात् अपादादौ। युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ (८।१।२७। १८।२०)

(सि० कौ०)--हर और हरि मेरे स्वामी हैं। **किंवा मे पुत्री करोतु**--मेरी पुत्री क्या करे ?

(ख) सम्बोधन के ठीक अनन्तर ये वैकल्पिक रूप नहीं आ सकते; जैसे, **वयस्य, मम गृहमेतत्** (न कि 'मे'); **देवास्मान्** (न कि 'नः') **पाहि सर्वदा** (सि० कौ०)--"हे भगवन्, सर्वदा हम लोगों की रक्षा कीजिये।" वास्तव में, सम्बोधन एक संक्षिप्त वाक्य है।

(ग) यदि सम्बोधनपद के परे उसका विशेषण लगा रहे तो ये वैकल्पिक रूप प्रयोग में आ सकते हैं; जैसे, हरे **दयालो नः पाहि** (सि० कौ०)--ऐ दयालु हरि, मेरी रक्षा करो।

१२८--जिसको सम्बोधित करके बातचीत की जाती है उसके प्रति, शिष्टाचार दर्शाने के लिए 'भवत्' शब्द प्रयोग में लाया जाता है। ऐसे प्रयोग में यह आवश्यक नहीं है कि संबोधित व्यक्ति के प्रति आदर दिखाया जा रहा है। इस दशा में 'भवत्' शब्द प्रथमपुरुष (अन्य पुरुष) होता है और उसके साथ प्रथमपुरुष की क्रिया आती है; जैसे, **अथवा कथं भवान् मन्यते** (मालविका० १)--या आप क्या समझते हैं ? **वयमपि भवत्यौ किमपि पृच्छामः** --मैं भी आप लोगों से कुछ पूछना पूछती) हूँ।

१२९--जब आदर सूचित करना होता है तो 'भवत्' और 'भवती' के पहिले 'अत्र' और 'तत्र' या 'सः' रख देते हैं। आसन्नवर्ती व्यक्ति का बोध कराने के लिए 'अत्रभवान्' और 'अत्रभवती' का प्रयोग होता है और दूरवर्ती अथवा अनुपस्थित व्यक्ति का बोध कराने के लिए 'तत्रभवान्' और 'तत्रभवती' का; जैसे, **क्व तत्रभवती कामंदकी**--पूज्य कामन्दकी देवी कहाँ हैं ? **आदिष्टोऽस्मि तत्रभवता काश्यपेन** (शा० ४)--पूज्य कश्यपजी ने मुझे आदेश दिया है। **अपेहि रे अत्रभवान् प्रकृतिमापन्नः** (शा० २)--अरे हटो, यह सम्माननीय सज्जन होश में आ गये हैं। **मां सभवान् नियुंक्ते** (मालती० १)--मुझको वह श्रीमान् जी नियुक्त कर रहे हैं।

टिप्पणी--'सः' का यह प्रयोग अशुद्ध मालूम पड़ता है; जैसे, 'अत्र' और 'तत्र' 'भवत्' के पूर्व प्रयुक्त हुए हैं उस प्रकार से 'सः' का प्रयोग नहीं मालूम पड़ता। 'सभवता' इत्यादि प्रयोग कहीं नहीं मिलता। ऊपर मालतीमाधव से जो

उदाहरण दिया गया है उसमें 'सः' को 'भवान्' से अलग समझना और पढ़ना चाहिए।

संकेतवाचक सर्वनाम

१३०—संकेतवाचक सर्वनाम तीन होते हैं; 'इदम्' या 'एतद्' (यह), 'तद्' (वह), 'अदस्' (यह या वह)। ये जिन संज्ञाओं से सम्बद्ध होते हैं उनके भी प्रयुक्त होते हैं और अकेले भी; जैसे, **एष नृपः; स पुरुषः; तद् गृहम्; स आह; एष मे किंकरः ; इदं नो गृहम्; असौ विद्याधरः।**

१३१—'यह देखिए, मैं आता हूँ' ; 'वह देखिए, लड़का आता है'—इस प्रकार के वाक्यों में इदम् और एतद् के रूप 'यह देखिये' और 'वह देखिये' के अर्थ में प्रायः उत्तम पुरुष और अन्य पुरुष के साथ प्रयुक्त होते हैं और जैसे, **सामान्य विशेषणों के लिंग, वचन, कारक**—विशेष्य के अनुरूप होते हैं उसी प्रकार इनका लिंग, वचन और कारक वाक्य के कर्ता के अनुरूप होता है; जैसे, **आर्यपुत्र इयमस्मि** (शा० १)—'प्रभो, यहाँ मैं हूँ'। **इयमहमारोहामि** (उत्तर० १)—'यह मैं चढ़ रहा हूँ'; **अयमागच्छामि** (शा०३)—यह देखिये **मैं आता हूँ; इयं सा जातिः परित्यक्ता** (वेणी०३)

१३२—तद् के रूपों का प्रयोग प्रायः 'प्रसिद्ध' या 'सुविख्यात' के अर्थ में होता है ; जैसे, **सा रम्या नगरी** (भट्टि० ३।३७)—वह प्रसिद्ध रमणीक नगरी। **सामन्तचक्रं च तत्** (भट्टि०)—**सामन्तों** (करद राजाओं) का वह सुप्रसिद्ध मंडल।

(क) तद् का प्रयोग प्रायः 'एव' के साथ 'वही' या 'उसी' के अर्थ में होता है ; 'एव' साधारणतया प्रत्यक्षरूप में और कहीं-कहीं पर अप्रत्यक्षरूप में रहता है ; जैसे, **तानिन्द्रियाणि सकलानि** (भर्तृ० २।४०)—सारे शरीर के अवयव वेही रहते हैं। **तदेव नाम** (भर्तृ०)—नाम वही है। **एते त एव गिरयः** (उत्तर० ३)—ये वेही पर्वत हैं। **तदेव पंचवटीवनम्** (उत्तर० ३) —पञ्चवटी का वन वही है।

(ख) जब तद् के रूप दुहरा कर प्रयुक्त होते हैं तो उसका अर्थ होता है 'कई' अथवा 'भिन्न-भिन्न' ; जैसे, **तेषु तेषु स्थानेषु** (कादम्० ३६६)- भिन्न-भिन्न स्थानों में।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम

१३३—जब सम्बन्ध वाचक सर्वनाम (यद्) का दोहरा प्रयोग होता है तो उसका अर्थ होता है--सब, सम्पूर्ण, जो कुछ; और उस (यत्) का सम्बन्धी सर्वनाम भी दुहराया जाता है; जैसे, **क्रियते यद्यदेषा कथयति** (उत्तर० १)--जो कुछ भी यह कहती है, वह सब मैं करूँगा। **यो यः शस्त्रं बिभर्ति...क्रोधांधस्तस्य तस्य स्वयमिह जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम्** (वेणी० ३)--जो कोई भी शस्त्र धारण करते हैं, उन सबों का, मैं संहारकर्ता हूँ, चाहे वह संसार के नष्ट करने वाले यमराज ही क्यों न हों। इसी प्रकार **यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः** (भर्तृ० २।५१)।

(क) अपि, चित्, चन के सहित अथवा इनसे रहित किम् के रूपों के साथ यद् के रूपों को जोड़कर 'जो कोई भी' वा 'जिस किसी भी' का अर्थ प्रकट करते हैं; जैसे, **एतादृशी रूपवती कन्या यस्मै कस्मैचित् न दातव्या**--ऐसी सुन्दर लड़की जिस किसी को भी नहीं दे देना चाहिये। **यो वा को वा भवाम्यहम्** (वेणी० ३)—मैं चाहे जो कोई भी होऊँ। **यत्र कुत्रापि स्वपिति**--जहाँ कहीं भी सो जाता है।

प्रश्नवाचक, अनिश्चयवाचक और निजवाचक सर्वनाम

१३४—प्रश्नवाचक सर्वनाम और उसमें प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्द प्रश्न पूछने में प्रयुक्त होते हैं; जैसे, **कः पुनरसौ जामाता** (उत्तर० १)—लेकिन यह दामाद महाशय कौन हैं? **कतमेन दिग्भागेन गतः स जाल्मः** (विक्रमो० १)–वह दुष्ट किस दिशा में चला गया? **किं करोमि क्व गच्छामि** (उत्तर० १)--क्या करूँ और कहाँ जाऊँ?

१३५—प्रश्नवाचक सर्वनामों और प्रश्नवाचक क्रियाविशेषणों में **चित्, चन,** अपि और कभी-कभी स्विद् जोड़कर अनिश्चयवाचक सर्वनामों का अर्थ प्रकट करते हैं; **कश्चिद्यक्षो वसतिं चक्रे** (मेघ० १)—किसी यक्ष ने अपना निवासस्थान बना लिया। कदाचित्, कदचन, कदा + अपि = कदापि--कभी, किसी समय। **कास्विदवगुण्ठनवती नारी** (शा० ५)--घूँघट डाले हुई कोई स्त्री।

(क) 'अपि' का कभी-कभी 'अवर्णनीय, अनिर्वाच्य' अर्थ होता है; जैसे **कोऽपि हेतुः** (उत्तर० ६)—कोई अनिर्वचनीय कारण। इसी प्रकार **तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः** (उत्तर० २)।

(ख) क्वचित्-क्वचित् और कदाचित्-कदाचित् का प्रयोग क्रमशः 'एक जगह दूसरी जगह', 'कहीं-कहीं', 'यहाँ वहाँ' और 'एक समय दूसरे समय,' 'कभी-कभी' के अर्थ में होता है, जैसे, **क्वचिद्वीणा वाद्यं, क्वचिदपि च हाहेति रुदितम्** (भर्तृ० ३।१२)—कहीं (एक जगह) तो वीणा बज रही है, कहीं (दूसरी जगह) हाय, हाय का विलाप हो रहा है। **कदाचित् काननं जगाहे, कदाचित् कमलवनेषु रेमे** (कादम्० ५८)—कभी (एक समय) तो वह किसी जङ्गल में घुस जाता था और कभी (दूसरे समय) वह कमल-वनों में रमण करता था।

(ग) किसी-किसी विरले स्थल पर 'क्वचित्-क्वचित्' का अर्थ 'कभी-कभी' भी होता है ; जैसे, **क्वचिद् घनानां पततां क्वचिच्च** (रघु० १३।१६)—किसी समय बादलों का, किसी समय चिड़ियों का।

१३६—'अन्य-अन्य' या 'पर-पर', 'एक दूसरे' के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं; जैसे, **अन्यः करोति, अन्यो भुंक्ते**—एक करता है, दूसरा भोगता है। **मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्** (पंच० १)—दुष्टों के मन में कुछ दूसरी बात होती है, वाणी में कुछ दूसरी और कर्म (काम) में कुछ दूसरी।

१३७—पूर्वकथित या वर्णित किन्हीं दो चीजों या व्यक्तियों के सम्बन्ध में अधिकतर 'एक—अपर' या 'एक—अन्य' का प्रयोग होता है ; जैसे, **एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान् सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान्** (रघु० ५।६०)—एक चैत्ररथ प्रदेश चला गया, दूसरा उस विदर्भ देश को चला गया, जो कि अच्छे राजा के कारण प्रसन्न था।

१३८—जब 'एक-अपर' या 'एक अन्य' बहुवचन में आता है तो उसका अर्थ होता है 'कुछ—कुछ'; जैसे, **विधवानां पुनरुद्वाहः शास्त्रप्रतिषिद्ध इत्येके मन्यन्ते, शास्त्रविहित इत्यपरे** (अथवा अन्ये)—कुछ लोगों का मत है कि विधवाओं का पुनर्विवाह शास्त्र द्वारा निषिद्ध है, और कुछ लोगों का मत है कि वह शास्त्रविहित है।

(क) इसी अर्थ में कभी-कभी 'एके' की जगह पर 'केचित्' का प्रयोग होता है; जैसे, **मदुक्तं केचिदन्वमन्यन्त । अपरे पुनर्निनिन्दुः** (दशकु० २।४)—कुछ लोगों ने मेरी बात का अनुमोदन किया, पर कुछ लोगों ने निन्दा की।

१३९.—'स्व', 'स्वकीय', 'आत्मीय', और 'निज'—ये निजवाचक के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं; जैसे, **स्वं नाम कथय**—अपना नाम बताओ। **निजं धैर्यमदर्शयत्**—उसने अपना धैर्य दिखलाया।

(क) 'स्वयम्' निजवाचक क्रियाविशेषण अव्यय है; जैसे, **सा स्वयमेव तत्र जगाम**—वह स्वयं ही वहाँ गयी।

१४०—निजवाचक सर्वनाम के तौर पर 'आत्मन्' शब्द का प्रयोग अधिकतर होता है। 'आत्मन्' से बोध होने वाली संज्ञा चाहे जिस वचन और जिस लिंग की हो, पर 'आत्मन्' शब्द सदा पुंलिंग और एकवचन में ही आता है; जैसे, **का स्त्री अनेन प्रार्थ्यमानमात्मानं विकत्थते** (विक्रमो० २)—इसके द्वारा चाही जाती हुई कौन-सी स्त्री अपने आप को गौरवान्वित समझती है अथवा अपने आप पर गर्व करती है। **आत्मानं बहु मन्यामहे वयम्** (कुमार० ६।२०)—हम लोग अपने आप को बहुत कुछ समझते हैं। इसी प्रकार **गुप्तं ददृशुरात्मानं सर्वाः स्वप्नेषु वामनैः** (रघु० १०।६०)।

अभ्यास

१—**तस्य च मम च पौरधूर्तैवरमुदपाद्यत** (दशकु० २।२)।

२—**न नः कुतूहलमस्ति सर्पदशने** (मुद्रा० २)।

३—**श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः।**
स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः॥
सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नो हरिः।
सोऽव्याद् वो नः शिवं वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वः स नः॥
(उत्तर० १)।

४—**एवमत्रभवन्तो विदांकुर्वन्तु । अस्ति तत्रभवान् काश्यपः**
श्रीकण्ठपदलांछनो भवभूतिर्नाम जातुकर्णीपुत्रः (उत्तर० १)।

५—**एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्यिकस्तदानींतनश्च संवृत्तः** (उत्तर० १)।

६—तदेव पंचवटीवनम्। सैव प्रियसखी वासंती। त एव जातनिर्विशेषाः पादपाः। मम पुनर्मन्दभाग्यायाः सर्वमेवैतद् दृश्यमानमपि नास्ति (उत्तर० ३)।

७—आयुष्मन्नेष वाग्विषयीभूतः स वीरः (उत्तर० ५)।

८—राजा—आर्य बहु प्रष्टव्यमत्र। चा०—वृषल विश्रब्धं ब्रूहि ममापि वह्वाख्येयमत्र। रा०—एष पृच्छामि। चा०—अहमप्येष कथयामि (मुद्रा० ३)।

९—अमुना व्यतिकरेण कृतापराधमिव त्वय्यात्मानमवगच्छति कादम्बरी (कादम्० २०३)।

१०—केचित् संपद्भिः प्रलोभ्यमाना रागावेशेन बाध्यमाना विह्वलतामुपयांति। अपरे तु धूर्तैः प्रतार्यमाणाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयांति (कादम्० १०८)।

११—साहसकारिण्यस्ताः कुमार्यो याः स्वयं संदिशन्ति समुपसर्पति वा (कादम्० २३७)।

१२—अनयत्प्रभुशक्तिसंपदा वशमेको नृपतीननंतरान्।
अपरः प्रणिधानयोग्यया मरुतः पंचशरीरगोचरान्॥
(रघु० ८।१९)।

१३—कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया। (श्रीमद्० ७, २०)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अयमसौ मम ज्यायानार्यः कुशो नाम भरताश्रमात् प्रतिनिवृत्तः (उत्तर० ६)।

२—लदम्योन्मादिता व्यसनशतशरव्यतामुपगता वल्मीकतृणाग्रावस्थिता जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति (कादम्० १०७)।

३—तस्य तरुषण्डस्य मध्ये मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः क्वचित् त्र्यम्बकवृषभविषाणकोटिखंडिततटशिलाखण्डं क्वचिदैरावतदशनमुसलखंडितकुमुददंडमच्छोदं नाम सरो दृष्टवान् (कादम्० १२३)।

४—इति नरपतिरस्त्रं यद्यदाविश्चकार ।
क्रमविदथ मुरारिः प्रत्यहंस्तत्तदाशु ॥ (शिशु० २०।७६) ।
[क्रमवित् अर्थात् परिपाटीवेत्ता]

५—तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव नाम,
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥ (भर्तृ० २।४०) ।

६—एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा-
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि ।
आमंजु-मंजुल-लतानि च तान्यमूनि
नीरन्ध्रनीलनिचुलानि सरित्तटानि ॥ (उत्तर० २) ।

७—योऽत्ति यस्य यदा मांसमुभयोः पश्यतान्तरम् ।
एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्यः प्राणैर्विमुच्यते ॥ (हित० १)

८—वज्रं च राजतेजश्च द्वयमेवातिभीषणम् ।
एकमेकत्र पतति पतत्यन्यत् समंततः (हित० १) ।

९—विश्भरात्मजा देवी राज्ञा त्यक्ता महावने ।
प्राप्तप्रसवमात्मानं गंगादेव्यां विमुंचति ॥ (उत्तर० ७) ।

१०—काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्ध वेषयोः ।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव ॥ (रघु० १।४६) ।

११—कोऽप्येष एव पिशुनोग्रमनुष्यधर्मः ।
कर्णे परं स्पृशति हंति परं समूलम् ॥ (पंच० १।११) ।

१२—रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यम्
तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम् ।
न कारणात् स्वाद् बिभिदे कुमारः
प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात् ॥ (रघु० ५।३७) ।

संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—पूज्य गौतम जी ने मुझे यह कार्य करने की आज्ञा दी है ।
२—इस शुभ अवसर पर श्रीमान् जी क्या बोलने का संकल्प करते हैं ?

४—प्यारे गोपाल, मत रोओ। जिन दोनों भाइयों को तुम मरा हुआ समझते थे, वे यह आ रहे हैं।

४—यह, हाथों में फल लिये हुए इस बच्चे की माता आ रही है।

५—बुद्धिमान् लोगों की सङ्गत में एक अवर्णनीय आनन्द होता है।

६—उस विपत्तिकाल में उन लोगों ने बड़ी कठिनता से अपने को बचाया।

७—ये दोनों लड़के मेरे द्वारा अपने ही बच्चों की तरह पाले-पोसे गये; एक तो बहुत बुद्धिमान् था, पर दूसरा अत्यन्त मन्दबुद्धि।

८—उस समाचार को सुनने पर उस स्त्री ने अपने आपको सबसे अधिक भाग्यहीन समझा।

९—कहा जाता है कि भद्रकाली के मन्दिर में एक बुड्ढी औरत रहती है। कभी तो वह बड़बड़ाने लगती है और कभी ठिकाने से बोलने लगती है।

१०—कुछ दर्शनशास्त्रवेत्ता लोगों का विश्वास है कि ईश्वर ने सारा विश्व बनाया; कुछ लोग यह मानते हैं कि विश्व स्वयं ही पैदा हुआ।

११—कुछ लोग अपना ही हित साधते हैं, कुछ लोग दूसरों का ही हित साधते हैं और कुछ लोग दोनों साधते हैं।

१२—यज्ञदत्त के पुत्र भिन्न-भिन्न कलाओं और शास्त्रों में निपुण हो गये हैं।

१३—जिस आदमी को मैंने सड़क पर फटे-चीथड़े पहिने हुए देखा था यह वही आदमी है।

१४—वह कहीं भी अध्ययन कर लेता है, किसी के भी साथ बाहर चला जाता है, किसी के भी घर में खा लेता है और कहीं भी सो जाता है।

१५—जो दृढ़चित्त होता है वह अपने प्रति किये हुए अपमान का बदला लेने का प्रयत्न करता है।

१६—जो लोग तुम्हारे घर पर आवें उनसे कोमलतापूर्वक बोलो।

त्रयोदश पाठ

शतृ, शानच्, क्त, क्तवतु
स्यतृ, स्यमान, क्वसु, कानच्
तव्य, अनीयर्, एयत्,
क्त्वा, ल्यप्

१४१—शतृ, शानच्, क्त, क्तवतु, स्यतृ, स्यमान, क्वसु, कानच्, तव्य, अनीयर्, एयत् प्रत्ययों को लगाकर जितने शब्द बनते हैं वे सब विशेषण होते हैं, और उनके लिंग, वचन और कारक उनके विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार होते हैं। जिन धातुओं में ये जोड़े जाते हैं उन धातुओं के योग में जो विभक्ति आती है वही विभक्ति इन प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों के योग में भी आती है। इस पाठ में शतृ, शानच्, स्यतृ, स्यमान और क्वसु, कानच् का निरूपण किया जायगा।

शतृ, शानच्

१४२—शतृ, शानच् से निष्पन्न शब्द अंग्रेजी के उन शब्दों के समकक्ष होते हैं जो क्रिया (verb) में ing लगा कर बनाए जाते हैं। जब किसी कार्य की समानाधिकरणता या समकालीनता पायी जाती है तब शतृ, शानच् से निष्पन्न शब्दों का प्रयोग होता है; जैसे, इति **विचारयन्नेव तुरगादवततार** (कादम्०-१२५)—ऐसा सोचता हुआ ही वह घोड़े से उतर गया। **विवाहकौतुकं बिभ्रत एव तस्य वसुधां हस्तगामिनीमकरोत्** (रघु० ८।१)—जब कि वह वैवाहिक सूत्र पहिने ही हुए थे तभी उसको उन्होंने पृथ्वी दे दी। **व्रजंश्च समर्थयामास** (कादम्० १४१)—और जाते हुए वह सोचता जाता था।

शत्रन्त और शानजन्त शब्दों में 'जब कि' का अर्थ विद्यमान रहता है और जिस भाव या विचार को प्रकट करने के लिए समूचे वाक्य की आवश्यकता पड़ती है, उसको प्रकट करने के काम में इन शब्दों का प्रयोग होता है।

विशेष (क)--यदि अंग्रेजी से संस्कृत में अनुवाद करना पड़े और अंग्रेजी के ऐसे वाक्यों में gerund अर्थात् क्रिया में ing लगाकर बनाई हुई संज्ञा आदि का प्रयोग हो तो उसे संस्कृत के शत्रन्त और शानजन्त शब्दों के समकक्ष नहीं समझना चाहिये और ऐसे वाक्यों के अनुवाद में शत्रन्त और शानजन्त का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(ख) जब कार्य की समानाधिकरणता या समकालीनता न पाई जाती हो तो इन शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये; जैसे, वे लोग पर्वत पर चढ़ कर कुछ काल के लिये विश्राम करने लगे--इसका संस्कृत अनुवाद होगा **'पर्वतमारुह्य ते कञ्चिन् कालं व्यश्रम्यन्'** 'पर्वतमारोहंतः' आदि प्रयोग नहीं होगा। अलबत्ता, यदि वाक्य का अर्थ यह है कि दोनों कार्य एक साथ ही किये जाते हैं तब तो अवश्य **'पर्वतमारोहन्तः ते'** इत्यादि प्रयोग ठीक होगा।

(ग) शत्रन्त और शानजन्त शब्द विधेय के स्थान पर विशेषण बनकर कर्त्ताकारक में कदापि नहीं आ सकते। उदाहरणार्थ स कुर्वन्नस्ति का प्रयोग नहीं किया जाता यद्यपि 'कार्यं कुर्वन् स क्रीडति' ऐसा प्रयोग किया जाता है।

१४३[1]--प्रायः शानजन्त शब्दों का प्रयोग 'स्वभाव' या 'मनोवृत्ति' या 'आयु का कोई मापदण्ड', अथवा **'योग्यता'** या **'किसी कार्य के करने की क्षमता'**, इत्यादि अर्थों का बोध करने के लिये होता है; जैसे, भोगं **भुंजानः** (सि० कौ०)—भोगने का अभ्यस्त। **कवचं बिभ्राणः** (सि० कौ०)--कवच पहने हुए यानी जिस उम्र में कवच पहिना जाता है उस उम्र का। **शत्रुं निघ्नानः** (सि० कौ०)—शत्रु को मारने में समर्थ।

उपर्युक्त द्वितीय उदाहरण के साथ निम्नलिखित उदाहरण की तुलना कीजिये। **सम्यग् विनीतमथ वर्महरं कुमारम्** (रघु० ८।९४)। यहाँ **वर्महरः**= कवचधारणार्हवयस्कः।

१४४[1]—किसी विद्यमान परिस्थिति या सम्बद्ध परिस्थिति अथवा विशेषता का बोध कराने और किसी कार्य का कारण बतलाने के लिये शत्रन्त और शानजन्त शब्दों का प्रयोग होता है; जैसे, **शयाना भुंजते यवनाः** (सि० कौ०)—

१—लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ३।२।१२६

यवन लोग लेटे-लेटे भोजन करते हैं। इसी प्रकार **तिष्ठन् मूत्रयति** (म० भा०); **गच्छन् भक्षयति** (म० भा०); **हरिं पश्यन् मुच्यते** (सि० कौ०)—हरि का दर्शन करने के कारण वह मुक्त हो जाता है। **'शयाना भुंजते यवनाः'** उत्तर है **'कथं भुंजते'** का और **'हरिं पश्यन्'** उत्तर है **'केन मुच्यते'** का।

(क) शत्रन्त और शानजन्त शब्द किसी क्रिया के कर्ता की विशेषता भी बताते हैं; जैसे, **योऽधीयान आस्ते स देवदत्तः** (म० भा०)—जो पढ़ रहा है वह देवदत्त है।

विशेष—जिस प्रकार अंग्रेजी के पार्टिसिप्ल से 'सीमित या नियंत्रित कर देने' का बोध होता है ठीक उसी प्रकार शत्रन्त और शानजन्त शब्दों से भी सीमित या नियंत्रित कर देने का बोध होता है; जैसे, Students preparing their lessons, will be rewarded का अनुवाद होगा **पाठानधीयानाः शिष्या पारितोषिकाणि लप्स्यन्ते**।

(ख) किसी साधारण सत्य का बोध कराने के लिये भी शत्रन्त और शानजन्त शब्दों का प्रयोग होता है; जैसे, **शयाना वर्धते दूर्वा** (म० भा०)—दूब लेटी हुई या पड़ी हुई दशा में उगती है। **आसीन वर्धते बिसम्** (म० भा०)—(बिस माने कमलदण्ड,) कमलनाल सीधा खड़े रहने की दशा में बढ़ता है।

१४५—आस् (बैठना), स्था (खड़ा होना); और कभी-कभी भू (होना) और अस् (होना)—इन धातुओं से बोध होने वाले कार्य का नैरन्तर्य प्रकट करने के लिये इन धातुओं में यथायोग्य शतृ और शानच् प्रत्यय जोड़ दिये जाते हैं; जैसे **वल्मीकाग्राणि विदारयन् प्रगर्जंश्चास्ते** (पंच० १।१)—दीमकों के घर के शिखरों को ढहाता तथा बड़ी जोर से गरजता रहा। **गीतसमाप्त्यवसरं प्रतीक्षमाणस्तस्थौ**—(कादम्० १३२)—गीत की समाप्ति के अवसर की प्रतीक्षा करता रहा।

१४६—हिन्दी के 'से' का बोध कराने के लिये प्रायः लज्ज, ह्री और त्रप् धातुओं में शतृ और शानच् जोड़ दिये जाते हैं; जैसे, **एवं निर्घृणं प्रहरन् न लज्जसे** (कादम्० २४७)—क्या इस प्रकार निर्दयतापूर्वक प्रहार करने से तुम लजाते नहीं हो ? **स्वयं साहसं संदिशन्तीं बाला जिह्रेमि** (कादम्० २३७)—मैं नौजवान लड़की ऐसी साहसपूर्ण बात स्वयं कहने से शरमाती हूँ।

१४७—'धिक्कार' अर्थ का बोध कराने के लिये कभी-कभी शत्रन्त और शानजन्त शब्दों का प्रयोग 'मा' के साथ होता है; जैसे, **माजीवन् यः परावज्ञा-दुःखदग्धोऽपि जीवति** (शिशु० २।४५)—जो दूसरों के तिरस्कार के दुःख से आहत होने पर भी जीता है उसे धिक्कार है यानी उसे जीवित नहीं रहना चाहिये बल्कि मर जाना चाहिये।

स्यतृ, स्यमान

१४८—स्यतृ और स्यमान से बने हुए शब्द यह बतलाते हैं कि कोई व्यक्ति अमुक कार्य करने जा रहा है; या करने वाला है, जैसे, **करिष्यन्**—करने जा रहा है या करने वाला है। **मोक्ष्यन्**—छुटने जा रहा है। **करिष्यमाणः**—इसके ऊपर किया जाने वाला है।

(क) सामान्यभविष्य काल का बोध कराने के अतिरिक्त ये शब्द अभिप्राय या इच्छा भी प्रकट करते हैं; जैसे, **वन्यान् विनेश्यन्निव दुष्टसत्वान् स दावं विचचार** (रघु० २।८)—उसने जंगल में इसलिये भ्रमण किया मानो जंगली जानवरों को शिक्षा देना चाहता है, मानो उसका अभिप्राय यह था कि मैं जंगली पशुओं को शिक्षाद्वारा वश में कर लूँ। **करिष्यमाणः सशरं शरासनम्** (रघु० ३।५२)—अपने धनुष पर बाण चढ़ाने की इच्छा करता हुआ।

टिप्पणी—'प्रयाण करने के पहिले उसने थोड़ा सा जल पिया'—ऐसे वाक्यों का अनुवाद करने के लिये स्यतृ और स्यमान द्वारा निष्पन्न शब्दों को कर्ता का विशेषण बना देना चाहिये; जैसे, प्रयाणं करिष्यन् स किंचिज्जलं पपौ।

क्वसु और कानच्

१४९—क्वसु और कानच् का प्रयोग बहुत कम होता है। इनका अर्थ होता है 'जो कर चुका है' या 'किया जा चुका है'; जैसे, **श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते** (रघु० ५।३४)—जो पुरुष सारी अच्छी-अच्छी वस्तुएँ प्राप्त कर चुका है उसका। **निषेदुषीमासनबन्धधीरः** (रघु० २।६)—जब वह बैठ जाया करती थी तब जम कर वह (भी) बैठ जाया करते थे।

अभ्यास

१—**सा टिट्टिभीं स्वांडभंगाभिभूता प्रलापान् कुर्वाणा न कथंचिदतिष्ठत्** (पंच० १।१५)।

२—अथ द्वावपि तौ पुष्पितपलाशप्रतिमौ परस्परवधाकांक्षिणौ दृष्ट्वा करटको दमनकमाह। भो मूढमते अनयोर्विरोधं वितन्वता त्वया न साधु कृतम् (पंच० १।१६)।

३—राजा विस्फारितेन स्निग्धेन चक्षुषा पिबन्निवालपन्निव स्पृशन्निव मनोरथसहस्रप्राप्तदर्शनं सस्पृहमीक्षमाणस्तनयाननं मुमुदे कृतकृत्यं चात्मानं मेने (कादम्० ७२)।

४—साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्॥
(भर्तृ० २१२)।

५—सज्जीभूतं साधनम्। प्रयाणाभिमुखः सकलः स्कंधावारस्त्वां प्रतिपालयन्नास्ते। तत्किमद्यापि विलंबितेन (कादम्० २७७)।

६—राजाधिराजनंदन नगरंप्रगतस्य ते गतिं ज्ञास्यन्नहं च गतः कदाचित्कलिंगान् (दशकु० ८।७)।

७—अनुयास्यन्मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः।
स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः॥ (शा० १)।

८—वामनाश्रमपदं ततः परं पावनं श्रुतमृषेरुपेरिवान्।
उन्मनाः प्रथमजन्मचेष्टितान्यस्मरन्नपि बभूव राघवः॥
(रघु० ११।२२)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—आसाद्य मे मनसि। शान्तात्मनि अन्यस्मिन् जने मां निक्षिपता किमिदमनार्येण सदृशमारब्धं मनसिजेन। (कादं० १४२)।

२—अग्रजन्माऽब्रवीत्। महाभाग सुतानेतान् मातृहीनाननेकैरुपायै रक्षन्निदानीमस्मिन् कुदेशे भैक्ष्यं सम्पाद्य ददतेभ्यो वसामि शिवालयेऽस्मिन्निति। (दशकु० १।३)।

३—विवादे दर्शयिष्यंतं क्रियासंक्रान्तिमात्मनः।
यदि मां नानुजानासि परित्यक्तोऽस्म्यहं त्वया॥ (मालविका० १)।

४—अविदित्वाऽत्मनः शक्तिं परस्य च समुत्सुकः।
गच्छन्नभिमुखे वह्नौ नाशं याति पतंगवत्॥ (पंच० १।८)।

५—अंतर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः ।
उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम् ॥ (उत्तर० ३)

६—आदिदेशाथ शत्रुघ्नं तेषां क्षेमाय राघवः ।
करिष्यन्निव नामास्य यथार्थमरिनिग्रहात् ॥ (रघु० १५।६)

७—कदा वाराणस्याममरतटिनी रोधसि वसन्
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलिपुटम् ।
अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शम्भो त्रिनयन
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ (भर्तृ० ३।१०)

८—तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे तदागमारूढगुरुप्रहर्षः ।
प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रश्चन्द्रं प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली ॥ (रघु० ५। ६१)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

निम्नलिखित वाक्यों का अनुवाद शतृ, शानच्, स्यमान, क्वसु, कानच् इत्यादि द्वारा कीजिये ।

१—एक दूसरे से वार्तालाप करते हुए, धीरे-धीरे चलते हुए और अपने सिर पर अन्न का बोझ ढोते हुए बहुत से आदमियों को मैंने सड़क पर देखा ।

२—जहाज में इङ्गलैण्ड जाता हुआ मनुष्य बहुत से सुन्दर दृश्य देख सकता है ।

३—इस चित्र में क्या ही सौन्दर्य है । भिन्न-भिन्न अंशों को इतना नेत्राकर्षक बनाकर चित्रकार ने अपनी पूर्ण कला दिखलाई है ।

४—तुम्हारे द्वारा मेरे पास इस प्रकार का सन्देश भेजकर क्या वह जरा भी नहीं शरमाता ?

५—अपने पति के शव को देखती हुई तथा उसके अनेक सद्गुणों को स्मरण करती हुई रति चिरकाल तक रोती रही ।

६—जब चन्द्रापीड का यौवराज्याभिषेक होने जा रहा था तो बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातों की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करते हुए शुकनास ने उसको मंत्रणा दी ।

७—न्यायशास्त्र में निपुण होने की इच्छा करता हुआ वह वाराणसी गया और वहाँ बहुत दिनों तक पढ़ता रहा ।

८—जो पुरस्कार देने के लिये मैंने गोपाल को वचन दिया था उसे देने के पहले मैंने उससे पूछा कि क्या आप इसे अपने उद्योगों के अनुपयुक्त समझते हैं।

९—बलशाली शत्रु के सामने झुक जाने वाले बेत के पौधे बच जाते हैं, पर गर्वसहित खड़े हुए विशालकाय बलूत के वृक्ष जल के प्रवाह से बह जाते हैं।

१०—सिंह जङ्गल के पशुओं को उनकी पारी पर मारता रहा।

११—चारों शास्त्रों में पारंगत हुए; छहों अंगों में पूर्णरूप से निष्णात, और चारों वेदों को पढ़ चुके हुए इस ब्राह्मण से तुम्हें द्रोह न करना चाहिये।

१२—जनक जी ने अपनी कन्या सीता शिव के धनुष को तोड़ देने वाले तथा अपने असाधारण पराक्रम और चातुर्य से दर्शकों के मन को आकृष्ट कर लेने वाले राम को दे दी।

चतुर्दश पाठ

क्त, क्तवतु

१५०—भूतकालवाची क्रियार्थक विशेषण दो प्रकार के होते हैं। एक कर्मवाच्य में होता है और 'क्त' लगाकर बनाया जाता है। दूसरा कर्तृवाच्य में होता है और 'क्तवतु' लगाकर बनाया जाता है; जैसे, **तेनेदमुक्तम्**—यह बात उससे कही गई। **स इदमुक्तवान्**—उसने यह बात कही। ये दोनों प्रत्यय भूतकाल के अर्थ में प्रयोग में लाए जाते हैं। प्राचीन काल की संस्कृत में क्रियार्थक विशेषणों का प्रयोग क्रियाओं के प्रयोग की अपेक्षा अधिक चलनसार हो गया। **'मया तत् कृतम्'** अथवा **'अहं तत् कृतवान्'** का प्रयोग **'अहं तदकरवम्'** की जगह अधिकतर मिलता है। इस क्रियार्थक विशेषण के द्वारा विधेय के बहुत से काम चलते हैं।

१५१—बहुत-सी अकर्मक क्रियाओं में भूतकालिक कर्मवाच्यार्थक विशेषण होते हैं। इनका प्रयोग तृतीया के साथ होता है और किसी भी कर्ता या कर्म से कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता। अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त सकर्मक धातुओं के क्रियार्थक विशेषणों का भी प्रयोग इसी प्रकार होता है; जैसे, **प्रतिबुद्धमिदानीं मकरन्दपूर्णचन्द्रेण** (मालती० ४)—पूर्णचन्द्रतुल्य मकरन्द ने अब चेतनाशक्ति प्राप्त कर ली। **जितम् अपत्यस्नेहेन** (उत्तर० ७)—अपत्यस्नेह ने जीत लिया।

विशेष—केवल भूतकालिक क्रियार्थक विशेषण ही नहीं इस प्रकार प्रयोग में लाये जाते, अपितु लकारों के रूप भी इस प्रकार कर्मवाच्य में आते हैं; जैसे, **मध्याह्नेऽपि वनराजिषु आहिण्ड्यते** (शा० २)—दोपहर में भी वनपंक्तियों में होकर मैं भ्रमण करता हूँ।

आपदां कथितः पंथा इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥ (चाण०)

अर्थात् इन्द्रियों का अनियंत्रण विपत्तियों का मार्ग है। इन्द्रियों पर विजय ऐश्वर्य का मार्ग है। जिस रास्ते से इच्छा हो उससे जाओ।

१५२[1]—गत्यर्थक धातुओं, अकर्मक धातुओं, श्लिष् (आलिंगन करना), शी (लेटना, सोना), स्था (ठहरना), आस् (बैठना), वस् (रहना), जन्, रुह् और जृ (बुड्ढा होना या पुराना होना)—में क्त प्रत्यय कर्तृवाच्य में होता है ; जैसे, **गतोऽहं कलिंगान्** (दश० २)—मैं कलिंग चला गया। **जलं पातुं यमुनाकच्छमवतीर्णः** (पंच० १।१)—वह पानी पीने के लिए यमुना जी के तीर पर चला गया। **लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः** (सि०कौ०)—हरि ने लक्ष्मी को आलिंगन किया। **शेषमधिशयितः**—शेषनाग के ऊपर शयन किया। **शिवमुपासितः**—शिव जी की शुश्रूषा या उपासना की। **विश्वमनुजीर्णः**—संसार के पीछे बुड्ढा हो गया। **उपरते भर्तरि** (कादम्० १७३)—पति के मर जाने पर। **वैकुण्ठमधिष्ठितः, हरिदिनमुपोषितः, वृक्षमारूढः, सुतो जातः इत्यादि।**

विशेष—कालिदास ने 'स्मृ' धातु में क्त प्रत्यय का प्रयोग कर्तृवाच्य में किया है ; जैसे, **मधुकर, विस्मृतोस्येनां कथम्** (शा० ५); **अन्यसंगात् पूर्ववृत्तं विस्मृतो भवान्** (शा०); **अहो विस्मृतं मे हृदयम्** (विक्रमो० २)।

१५३[2]—कभी-कभी 'क्त' प्रत्यय नपुंसकलिंग की भाववाचक संज्ञा बनाने के लिये प्रयुक्त होता है ; जैसे, **जल्पितम्** (बोलना), **शयितम्** (सोना), **हसितम्** (हँसना), इसी प्रकार **गतम्** , **स्थितम्** (अर्थात् स्थानम्); **कस्येदमालिखितम्**—यह किसका चित्र है ?

विशेष—ऐसे प्रयोगों में क्तान्त शब्द अपना कर्मवाच्यत्व खो बैठते हैं और तृतीया के साथ नहीं आते ; जैसे, उसकी चाल विलासयुक्त है – **तस्या** (न कि **तया,**) **गतं सविलासम्, नृत्तादस्याः स्थितमतितरां कान्तम्** (मालविका० २) —उसका चांचल्यहीन चलना-फिरना (हिलना-डुलना) नृत्य की अपेक्षा कहीं अधिक चित्ताकर्षक है।

१—गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च ३।४।७२।

२—नपुंसके भावे क्तः ३। ३।११४।

१५४[1]—मन्, बुध्, पूज् धातुओं में, तथा इन्हीं के समान अर्थ रखने वाली धातुओं में क्त प्रत्यय वर्तमान काल के अर्थ में प्रयुक्त होता है और षष्ठी के साथ आता है। (सेक्शन ११५ भी देखिये।)

विशेष—और भी दूसरे शब्द हैं जो कि इसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं। वे निम्नलिखित श्लोकों में दिये हुए हैं—

शीलितो रक्षितः क्षांत आकृष्टो जुष्ट इत्यपि।
रुष्टश्च रुषितश्चोभावभिव्याहृत इत्यपि।
हृष्टतुष्टौ तथा कान्तस्तथोभौ संयतोद्यतौ।
कष्टं भविष्यतीत्याहुरमृताः पूर्ववत् स्मृताः॥ (म० भा०)

कृत्य प्रत्यय

तव्य, अनीय, यत्, ण्यत्

१५५—संस्कृत में कृत्य प्रत्यय द्वारा potential passive participles बनते हैं। ये तीन प्रकार से बनाये जाते हैं :—प्रथम **तव्य** द्वारा, दूसरे **अनीय** द्वारा और तीसरे **यत्, ण्यत्** लगाकर (इनके बनाने का नियम जानने के लिए डाक्टर कीलहोर्नकृत व्याकरण का सेक्शन ५२६-५३८ देखिये), **जैसे, कर्त्तव्य, करणीय और कार्य**। संस्कृतभाषा में लाघव लाने में ये कृत्यप्रत्यय बहुत काम देते हैं और अंग्रेजी या हिन्दी में जिन विचारों को प्रकट करने के लिये कई-कई शब्दों की आवश्यकता होती है उन्हें संस्कृत में कृत्य प्रत्यय द्वारा एक ही शब्द में प्रकट कर सकते हैं; जैसे, वह मार डाला जाना चाहिये—**हन्तव्यः**। कृत्यप्रत्यय यह बतलाते हैं कि धातुद्वारा बोधित कार्य अथवा दशा अवश्य की जानी चाहिए; **जैसे, वक्तव्यम्, वाच्यम्, वचनीयम्**—जो कि अवश्य ही कहा जाना चाहिये। इस प्रकार कृत्यप्रत्यय से 'योग्यता, धर्म अथवा आवश्यकता' का बोध होता है; उदाहरणार्थ, मुझे वहाँ जाना है—**मया तत्र गन्तव्यम्**। इसे करना मेरा धर्म है—**मया तत् कर्तव्यम्**।

१५६—वाक्यों में इन प्रत्ययों द्वारा बने हुए क्रियार्थक विशेषणों का प्रयोग ठीक वैसे ही होता है; जैसे, उन धातुओं के कर्मवाच्य का जिनसे ये कृत्यप्रत्ययनिष्पन्न शब्द बनते हैं, **मद्वचनात् स राजा त्वयेदं वाच्यः** (रघु० १४।६१)—

१—मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः

मेरे कहने से राजा जी से यह बात तुम्हारे द्वारा कह दी जानी चाहिए। **अजा ग्रामं नेतव्याः**—भेड़ें गाँव पहुँचाई जानी चाहियें। इसी प्रकार, **असौ दुहितुः पत्या परिग्रहप्रियमस्माभिः श्रावयितव्यः** (शा० ७)—पति द्वारा (उनकी) कन्या के स्वीकार किए जाने का प्रिय समाचार उन्हें सुना दिया जाना चाहिये। इन प्रत्ययों के योग में धातुओं द्वारा सूचित कार्य का कर्ता षष्ठी अथवा तृतीया में आता है। (१०७ सेक्शन देखिये)

१५७—ये प्रत्यय क्रिया के स्थान में नपुंसकलिंग एकवचन में स्वतन्त्र रूप से (impersonally) भी प्रयोग में आते हैं अर्थात् इस प्रकार प्रयोग में आते हैं कि किसी भी संज्ञा या सर्वनाम से किसी भी प्रकार सम्बद्ध नहीं होते; जैसे, **अभिज्ञानशाकुंतलाख्येन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः** (शा० १)—हमें शकुन्तला नाम नाटक द्वारा (श्रोताओं की) सेवा करनी चाहिये, (भावार्थ यह है कि हमें शकुन्तला नाटक खेलना चाहिये)। **तत्रभवता तपोवनं गन्तव्यम्** (विक्रमो० ५)—उन पूज्य पुरुष को तपोवन चला जाना चाहिये।

(क) **भवितव्यम्** और **भाव्यम्** का स्वतन्त्र अथवा अकर्तृक (impersonal) प्रयोग विशेष ध्यान देने योग्य है। 'होना' 'अवश्य होना चाहिये' 'जहाँ तक सम्भावना है'—इन्हीं अर्थों में इनका प्रयोग होता है और ये अनिश्चितता का बोध कराते हैं। 'होना' के पूर्व आने वाला संज्ञापद, सर्वनाम-पद, अथवा विशेषणपद, ठीक उसी प्रकार कर्ता का समानाधिकरण होना चाहिए जैसे कि साधारण विशेषण, जैसे, **स्वेषु स्वेषु पाठेष्वसंमूढैर्भवितव्यम्** (**युष्माभिः**) (विक्रमो० १) - तुम लोगों को अपने-अपने पाठ (अभिनय) में सावधान रहना (होना) चाहिए। [यहाँ "होना" के पूर्व "असंमूढैः" यानी "सावधान" पद आया है, और यह "युष्माभिः" का समानाधिकरण है जो कि कर्तापद है अर्थात् लिंग, वचन तथा विभक्ति में 'युष्माभिः' का अनुगामी है।] **तयाऽस्मिंल्लतामण्डपे सन्निहितया भवितव्यम्** (शा० ३)—उसे इस लतामण्डप में अवश्य उपस्थित रहना (होना) चाहिए। [यहाँ 'होना' के पूर्व 'सन्निहितया' आया है और यह 'तया' का समानाधिकरण है जो कि कर्तापद है।] **अस्य शब्दानुरूपेण पराक्रमेण भाव्यम् भवितव्यं वा** (पंच० १।१)—जहाँ तक सम्भवतः मालूम होता है, इसकी शक्ति गरज के अनुरूप अवश्य होगी।

(ख) कभी-कभी ये प्रत्यय भविष्यकाल में निश्चयात्मक अर्थ बोध कराने के लिए प्रयुक्त होते हैं; जैसे, **लुब्धकेन मृगमांसार्थिना गन्तव्यम्** (हि० १)—मृग के मांस का इच्छुक बहेलिया अवश्य ही जायगा। **ततस्तेनापि शब्दः कर्तव्यः** (हितो० ३)—तब वह भी अवश्य ही शोर करेगा।

(ग) कभी-कभी कृत्यप्रत्यय-निष्पन्न शब्द केवल भविष्यकाल का बोध कराते हैं; जैसे, **युवयोः पक्षबलेन मयापि सुखेन गन्तव्यम्** (हितो० ४)—तुम्हारे पक्ष के बल से मैं भी सुखपूर्वक (सरलता से) चला जाऊँगा।

अभ्यास

१—अत्रभवतोः परस्परेण ज्ञानसंघर्षो जातः। तदत्रभवत्या प्राश्निकपद-मध्यासितव्यम्। [मालविका० १]

२—तयोर्बद्धयोः किंनिमित्तोऽयं मोक्षः, किं देव्या परिजनमतिक्रम्य भवान् संदिष्ट इत्येवमनया प्रष्टव्यम्। [मालविका० ४]

३—विश्रान्तेन भवता ममाप्येकस्मिन्ननायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम् [शा० २]

४—नास्मि भवत्योरीश्वरनियोगप्रत्यर्थी। स्मर्तव्यस्त्वयं जनः। [विक्रमो० २]

५—तत्किं मन्यसे, राजपुत्रि, मृषोद्यं तदिति। न हीदं सुचरित्रेऽन्यथा मंतव्यम्। भवतिव्यमेव तेन। [उत्तर० ४]

६—सर्वथा निष्प्रतीकारेयमापदुपस्थिता। किमिदानीं कर्तव्यं, कां दिशं गंतव्यमित्येते चान्ये च विषण्णहृदयस्य मे संकल्पाः प्रादुरासन्। [कादम्० १५७]

७—सततमतिगर्हितेनाकृत्येनापि परिरक्षणीयान्मन्यंते सुहृदसून्साधवः। तदतिपक्षेपणमकर्तव्यमप्येतदस्माकमवश्यकर्तव्यतामापतितम्। [कादम्० १५८]

८—चाणक्यः—भद्र प्रथमं तावद्वध्यस्थानं गत्वा घातकाः सरोषं दक्षिणाक्षिसंकोचसंज्ञां ग्राहयितव्याः। तेषु गृहीतसंज्ञेषु भयापदेशादितस्ततः प्रद्रुतेषु शकटदासो वध्यस्थानादपनीय रक्षसं प्रापयितव्यः। [मुद्रा० १]

९—आः क्षुद्राः, समरभीरवः, कथमेवं प्रलपतां वः सहस्रधा न दीर्णमनया जिह्वया। [वेणी० ३]

१०—आपदि येनोपकृतं येन च हसितं दशासु विषमासु।
उपकृदपकृदपि च तयोर्यस्तं पुरुषं परं मन्ये ॥ [पंच० १।१५]

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—आपन्नस्य विषयवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यमित्येष वो धर्मः। (शा० ३)

२—अन्तरिते तस्मिन् शबरसेनापतौ स जीर्णशबरस्तं वनस्पतिमामूलादपश्यत्। उत्क्रान्तमिव तस्मिन् क्षणे तदालोकभीतानां शुककुलानामसुभिः। (कादम्० ३३)

३—अहं तच्छ्रुत्वा चेतस्यकरवम्। मयाधुना म्लेच्छजातिभिरपि दूरतः परिहृत-प्रवेशं पक्कणं द्रष्टव्यम्। चण्डालैः सहैकत्र स्थातव्यम्। चण्डालबालकजनस्य च क्रीडनीयेन भवितव्यमिति। (कादम्० ३५५)

४—कार्यव्यग्रत्वात् मनसः प्रभूतत्वाच्च प्रणिधीनां कोऽयमिति विस्मृतम्। इदानीं स्मृतिरुपलब्धा। व्यक्तमाहितुण्डिकच्छद्मना कुसुमपुरादागतेन विराधगुप्तेन भवितव्यम्।(मुद्रा० २)

५—आः दुरात्मन्, कुरुकुलपांसुल एवमतिक्रान्तमर्यादे त्वयि निमित्तमात्रेण पाण्डवक्रोधेन भवितव्यम्। (वेणी० १)

६—वत्से, साम्प्रतिकमेवैतत्। कतव्यानि दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि। (उत्तर० ३)

७—पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभं च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते। (उत्तर० ३)

८—तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्।
येनाशाः पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यमवलम्बितम्॥ (हितो० १)

९—आरूढमद्रीनुदधीन् वितीर्णम् भुजंगमानां वसतिं प्रविष्टम्।
ऊर्ध्वं मतं यस्य न चानुबन्धि यशः परिच्छेत्तुमियत्तयाऽलम्। (रघु० ६।७७)

१०—अवसितं हसितं मुद्रा विलसितं हसितं स्मरभाषितम्।
न समदाः प्रमदा हतसंमदा पुरहितं विहितं न समीहितम्॥ (भट्टि० १०।६)

११—शार्ङ्गरव, त्वया मद्वचनात् स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्य :—
अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मनः ।
त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम् ।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः ॥ (शा० ४)

१२—त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि नः शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया ।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः ॥ (शा० ५)

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

[क्त, क्तवतु, तव्य, अनीय, यत्, ण्यत् का प्रयोग कीजिये]

१—शक्तिशाली सेनाओं से रक्षित होने पर भी तारक को कार्त्तिकेय ने हरा दिया ।

२—ऐ वत्स, ऐसा करके तुमने जामदग्न्य का अपराध ही किया है, न कि उनका कोई उपकार किया है ।

३—शत्रु द्वारा उसकी सेना के पराजित हो जाने पर, उसके कुछ सैनिक पहाड़ों पर चढ़ गये (अधि+रुह्), कुछ समुद्र तीर पर उतर गये (अव+तृ) और कुछ शून्य गुफाओं में घुस गये ।

४—यदि तुम अपने घनिष्ठ मित्रों का तिरस्कार करोगे तो तुम अवश्य घृणा के पात्र बन जाओगे ।

५—यह कौन हो सकता है जो कि मेरा नाम लेकर मुझे पुकार रहा है । हाँ, यह अवश्य ही शायद मेरे पुराने मित्र मित्रवर्मा हैं ।

६—थोड़ी देर तक मेरे लिये प्रतीक्षा करो । मुझे भी सभा में उपस्थित होना आवश्यक है ।

७—ज्योंही वह जागता है, त्योंही अध्ययन प्रारम्भ करने के स्थान पर खेलने के लिये निकल जाता है ।

८—शोक को स्थान न दो, तुम्हारा बच्चा अब तक अवश्य सीधे घर आ गया होगा ।

९—अनेक कष्टों को सहन करता हुआ मैं बहुत से देशों में घूम आया हूँ, परन्तु मैंने अपना अभिलषित मनोरथ नहीं पाया ।

१०—वह तुम्हें नष्ट करने पर तुला हुआ मालूम पड़ता है, परन्तु मैं तुमसे बतलाता हूँ कि उसके प्रयत्न अवश्य निष्फल जाँयगे।

११—यदि तुम सहायता न करोगे तो वह उस देश में कैसे जीवन धारण करेगा।

१२—ये वस्तुएँ तुम्हारे द्वारा उस विशाल महल के मालिक के पास पहुँचा दी जानी चाहिये।

१३—अभी भी मुझे बहुत-सी पुस्तकें पढ़नी हैं। अतः मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकूँगा।

१४—इस महान् पुरस्कार से सूचित होता है कि अँगूठी राजा द्वारा बहुत ही पसंद की गई होगी (मन् धातु)।

१५—बुद्धिमान् पुरुषों के लिये कुछ भी दुस्साध्य नहीं है।

१६—चूँकि उसके पास बहुत धन था, इसलिये उसके बहुत-सी पत्नियाँ रही होंगी।

१७—हम लोग अपनी सेनाओं के साथ कितनी देर तक युद्ध के लिये तैयार खड़े रहें।

पञ्चदश पाठ

प्रथम भाग

अव्ययार्थक प्रत्यय—क्त्वा, ल्यप्

१५८—जब कोई क्रिया पहिले हो चुकी रहती है और उसके बाद दूसरी क्रिया होती है तो पहिले हो चुकी हुई क्रिया का बोध कराने के लिये धातुओं में क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय जोड़ दिये जाते हैं; जैसे, प्रतीहारी **समुपसृत्य सविनयमब्रवीत्** (कादम्० ८)—समीप में आकर प्रतीहारी नम्रतापूर्वक (ड्योढ़ी पर चौकसी रखने वाली स्त्री) बोली। **वैशम्पायनो मुहूर्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत्** (कादम्० ८)—मानों कुछ देर तक ध्यान कर वैशम्पायन ने आदरपूर्वक कहा।

परन्तु "गाँव जाता हुआ वह रास्ते में तृण छूता जाता है" का अनुवाद '**ग्रामं गच्छन् पथि तृणं स्पृशति**" होगा।

१५९—क्त्वा प्रत्यय सभी धातुओं में जोड़ा जा सकता है। परन्तु ल्यप् प्रत्यय उन्हीं धातुओं में जुड़ता है जिनके पहिले उपसर्ग लगा रहता है। इनके बनाने के नियमों को समझने के लिये डाक्टर कीलहोर्नकृत व्याकरण के सेक्शन ५०५ से ५१६ तक देखिये। जैसा कि पहिले बताया जा चुका है, क्त्वा प्रत्ययान्त और ल्यप् प्रत्ययान्त शब्द किसी पूर्ववर्ती अथवा भूतकार्य के द्योतक होते हैं। इसलिये क्त्वा प्रत्ययान्त और ल्यप् प्रत्ययान्त शब्दों का कर्ता वही होना चाहिये जो कि प्रधान क्रिया का हो; जैसे, **तुरासाहं पुरोधाय धाम स्वायंभुवं ययुः** (कुमार० २।१)—इन्द्र को आगे रखकर वे लोग ब्रह्मा के स्थान पर गये। यहाँ 'रखकर' क्रिया और 'गये' क्रिया का कर्ता एक ही है, अतः ल्यप् का प्रयोग हो सकता है। परन्तु **स तं हत्वा-ऽहमागच्छम्** सर्वथा अशुद्ध प्रयोग है। ऐसे स्थलों पर क्त्वा और ल्यप् नहीं आ सकते, प्रत्युत ऐसे भाव को व्यक्त करने के लिये '**भावे सप्तमी**' का प्रयोग होता है; जैसे, **तस्मिन् तेन हतेऽहमागच्छम्। सर्वैः पशुभिः**

मिलित्वा सिंहो विज्ञप्तः (हितो० २) – सब पशुओं ने एक साथ मिलकर सिंह से प्रार्थना की। **स एनं दोषं प्रख्याप्य नगरान्निर्वास्यताम्** (मुद्रा० १)--इस अपराध की घोषणा करके (आप के द्वारा) वह नगर से निकाल दिया जाय।

१६०--घटनाओं के वर्णन करते समय क्रिया के रूपों और समुच्चय-बोधक अव्ययों के प्रयोग में लाघव लाने के लिये क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय बहुत काम देते हैं। 'ऐसा करने या किये जाने के बाद' 'जब' और 'बाद' से प्रारम्भ होने वाले प्रयोगों के अनुवाद में 'जब' अथवा 'बाद' इत्यादि शब्दों का संस्कृत अनुवाद करने की कोई आवश्यकता नहीं, प्रत्युत 'क्त्वा' अथवा 'ल्यप्' से काम चल जाता है; जैसे, **रावणं हत्वा**--रावण को मार चुकने के बाद। जब वह वहाँ गया तो उसने कुछ भी नहीं पाया—**स तत्र गत्वा न किमपि लेभे।**

यदि किसी अँग्रेजी वाक्य में 'having' से प्रारम्भ होने वाले कई उपवाक्य जुड़े हुए हों तो वह वाक्य बड़ा भद्दा लगेगा। परन्तु संस्कृत में कई क्त्वान्त अथवा ल्यबन्त शब्द बड़ी सुन्दरता से लाये जा सकते हैं; जैसे, मां **रुधिरेणालिप्य वृक्षस्याधः प्रक्षिप्य गम्यतां पर्वतमृष्यमूकं प्रति** (पंच० ३)--मुझे खून से पोत कर और वृक्ष के नीचे फेंक कर ऋष्यमूक पर्वत पर चले जाओ। इसी प्रकार, अथ **स ब्राह्मणस्तं पशुं राक्षसं मत्वा भयाद् भूमौ प्रक्षिप्य दैवं निर्भर्त्स्य गृहमुद्दिश्य स्थितः** (हितो० ४)--तब उस पशु को राक्षस समझकर ब्राह्मण ने डर के मारे उसे जमीन पर फेंक दिया और भाग्य को कोस कर घर को रवाना हो गया। अंग्रेजी के जिन वाक्यों में Copulative assertions किये गये हों उनके संस्कृत अनुवाद में क्त्वा अथवा ल्यप् प्रत्यय का प्रयोग बड़ी सुगमता से किया जा सकता है।

विशेष--क्त्वान्त और ल्यबन्त शब्दों के प्रयोग में स्वाभाविक क्रम की ओर अवश्य ध्यान रखना चाहिये; जैसे, **पक्त्वा भुक्त्वा स्वपिति**--वह भोजन पकाकर और खाकर सोता है। पर **भुक्त्वा पक्त्वा स्वपिति** कहना सर्वथा अशुद्ध होगा।

१६१--संस्कृत में कुछ क्त्वान्त और ल्यबन्त शब्द कर्मप्रवचनीय के तौर पर प्रयोग में आते हैं; जैसे, **मुक्त्वा**–छोड़कर, अलावा, अतिरिक्त। **आदाय**—साथ। **उद्दिश्य** – तरफ। **अधिकृत्य**--बारे में।

द्वितीय भाग

'अम्' में अन्त होने वाले कृदन्त

१६२--धातुओं तथा प्रत्ययान्त धातुओं में 'अम्' लगाकर भी "क्त्वा" के अर्थ का बोध कराया जाता है। जब यह प्रत्यय जोड़ा जाता है तो वे ही परिवर्तन होते हैं जो कर्मवाच्य के सामान्यभूत की 'इ' के पूर्व होते हैं। (डाक्टर कीलहोर्नकृत व्याकरण का सेक्शन ५२६ देखिये)। उदाहरणार्थ, **क्षेपम्**--फेंककर (क्षिप् से)। **वादम्**—बोलकर (वद् से)। **भोजम्**--खाकर (भुज् से)।

१६३—जब यह रूप दो बार आता है तो धातु द्वारा बोधित दशा अथवा क्रिया का पौनःपुन्य द्योतित होता है। "**पौनः-पुन्य**" का अर्थ है "फिर-फिर होना"; जैसे, **स्मारं स्मारं नमति शिवम्** (सि० कौ०)--वह बारम्बार शिव जी को स्मरण करके उन्हें नमस्कार करता है।

कलिङ्गनाथो मयि वद्धवैर इति श्रावं श्रावं चण्डवर्मा युद्धायोद्यतो बभूव (दशकु० २। ३)--'कलिंगनाथ मुझसे वैर मानता है' इस बात को बार-बार सुनकर चण्डवर्मा युद्ध के लिए तैयार हो गया। **इसी प्रकार पायं पायम्**-बार-बार पीकर। **दर्शं दर्शम्**--बार-बार देखकर।

१६४[1] **अग्रे, प्रथमम् और पूर्वम्** के साथ यह रूप अथवा क्त्वान्त रूप प्रयोग में आता है; जैसे, अग्रे-प्रथमं-पूर्वं-वा भोजं भुक्त्वा वा व्रजति—पहिले खाकर वह चलता है।

(क)[2] **अन्यथा, एवम्, कथम् इत्थम्** के बाद 'कृ' (करना) में णमुल् लगाकर जोड़ देते हैं, परन्तु+**णमुल्** से बने हुए शब्द का भी अर्थ वही रहता है जो **अन्यथा, एवम्, कथम्, इत्थम्** का अर्थ होता है, एवंकारं

१—विभाषाग्रेप्रथमपूर्वेषु ३।४।२४।

२--अन्यथैवं कथमित्थंसुसिद्धाप्रयोगश्चेत् ।३।४।२७।

भुंक्ते (सि० कौ०)—इस प्रकार खाता है। **कथकारं भुंक्ते**—किस प्रकार खाता है। परन्तु **शिरोऽन्यथा कृत्वा भुंक्ते**।

(ख)[1] जब क्रोधपूर्ण उत्तर दिया जाता है तब **यथा** और **तथा** के अनन्तर कृ+णमुल् जोड़ देते हैं; जैसे, **तथाकारं मोक्ष्ये किं तवानेन** (सि० कौ०)—मैं इसी प्रकार खाऊँगा, तुम्हें इससे क्या मतलब?

१६५[2]—मीठा या स्वादिष्ठ अर्थ का बोध कराने वाले शब्दों के अनन्तर कृ+णमुल्=कारम् जोड़ दिया जाता है; जैसे, **स्वादुंकारं लवणंकारं भुंक्ते**—वह अपने भोजन को मीठा (स्वादिष्ठ) या नमकीन बनाकर खाता है।

१६६[3]—दृश् धातु और विद् (जानना) धातु के कर्म के अनन्तर दृश्+णमुल्="दर्शम्" और विद्+णमुल्='वेदम्' जोड़ दिया जाता है जब कि उस कर्म की सारी जाति का बोध कराना अभीष्ट होता है; जैसे, **कन्यादृशं वरयति** (सि० कौ०)—जितनी कन्याओं को देखता है उन सब को वरण कर लेता है। **ब्राह्मणवेदं भोजयति**—जितने ब्राह्मणों को जानता है उन सबों को खिलाता है।

(क)[4] 'विद्' (पाना)+णमुल्='वेदम्' और जीव (जीना)+णमुल्='जीवम्' 'यावत्' शब्द के अनन्तर उपर्युक्त अर्थ (साकल्य) का बोध कराने के लिए जोड़ दिये जाते हैं; जैसे, **यावद्वेदं भुंक्ते**—वह जितना पाता है उतना खाता है। **यावज्जीवमधीते**—वह जब तक जीता है तब तक अध्ययन करता है, अर्थात् जीवन भर अध्ययन करता है।

(ख)[5] **चर्म** और उदर के अनन्तर पूर्+णमुल्=पूरम् जोड़ दिया जाता है; जैसे, **उदरपूरं भुंक्ते**—पेट भर खाता है। **चर्मपूरं स्तृणाति**—चमड़े को ढक लेने भर को फैलाता है।

१—स्वादुर्मि णमुल् ३।४।२६।

२—यथातथयोरसूयाप्रतिवचने।३।४।२९।

३—कर्मण्यिदृशिविदोः साकल्ये।३।४।३९।

४—यावति विन्दजीवोः ३।४।३०।

५—चर्मोदरयोः पूरेः।३।४।३१।

१६७[1]--**शुष्क, चूर्ण** और **रूक्ष** शब्दों के अनन्तर पिष् (पीसना)+णमुल् ='पेषम्' जोड़ दिया जाता है और साथ ही साथ पिष् धातु भी किसी न किसी लकार में प्रयोग में आती है; जैसे, **चूर्णपेषं पिनष्टि**--वह यहाँ तक पीसता है कि बिल्कुल चूर-चूर हो जाता है। इसी प्रकार, **शुष्कपेषं पिनष्टि** अथवा **रूक्षपेषं पिनष्टि**।

(क)[2] **समूल, अकृत** और **जीव** के अनन्तर हन्+णमुल् = 'घातम्', कृ +णमुल् = 'कारम्' और ग्रह्+णमुल् = 'ग्राहम्' जोड़ दिये जाते हैं और साथ ही साथ हन् धातु, तथा कृ धातु तथा ग्रह् धातु भी किसी न किसी लकार में प्रयुक्त होती है; जैसे, **समूलघातं हन्ति**--वह बिल्कुल जड़ से नाश कर देता है। **अकृतकारं करोति**—वह कभी भी न की हुई चीज को कर डालता है। **जीवगाहं गृह्णाति**—वह उसको जीता-जागता पकड़ लाता है।

(ख) इसी प्रकार हन्+णमुल् = 'घातम्' और पिष्+णमुल् = 'पेषम्' संज्ञा के अनन्तर जोड़े जाते हैं और यह सूचित करते हैं कि वह संज्ञा हन् और पिष् क्रिया के सम्पादन में करणभूत या साधनभूत है; जैसे, **पादघातं हन्ति = पादेन हन्ति** – वह पाँव से मारता है! **उदपेषं पिनष्टि = उदकेन पिनष्टि** – वह पानी से पीसता है। **तं हस्तग्राहं गृह्णाति** – वह उसे हाथ से पकड़ता है। इसी प्रकार, **पाणिग्राहम्, करग्राहम्** आदि भी प्रयोग में आते हैं।

हस्तवर्तं वर्तयति = हस्तेन वर्तयति। जीवनाशं नश्यति – इस प्रकार नष्ट हो जाता है कि उसका जीवन ही नष्ट हो जाता है अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। **ऊर्ध्वशोषं शुष्यति वृक्षः**—पेड़ ऊपर खड़ा-खड़ा ही सूख जाता है। इसी प्रकार **ऊर्ध्वपूरं पूर्यते**।

१६८[3]—जिस तुल्यता या सादृश्य का बोध साधारणतः **'इव'** शब्द से व्यक्त किया जा सकता है उसका बोध कराने के लिये कभी-कभी णमुलन्त प्रयोग उस संज्ञा के अनन्तर होता है जिससे सादृश्य दिखलाना होता है; जैसे, **अजनाशं नष्टः**—वह बकरे के समान नष्ट हो गया। **पार्थसंचारं चरति**—वह पार्थ के समान चलता है। **घृतनिधायं निहितं जलम्**--घी के समान जल रक्खा गया था।

१--शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः। ३।४।३५।

२—समूलाकृतजीवेषुहन्कृञ् ग्रहः। ३।४।३६।

३—उपमाने कर्मणि च। ३।४।४५।

१६६[1]—**हन्, तड्** इत्यादि हिंसार्थक धातुओं का णमुलन्त रूप संज्ञाओं के अनन्तर प्रयोग में आता है यदि णमुलन्त का तथा प्रधान क्रिया का कर्म समान हो और क्तान्त रूप प्रयोग करने की दशा में वह संज्ञा तृतीया में प्रयुक्त होती हो; जैसे, **दण्डोपघातं गाः कालयति**—गायों को डण्डे से मारकर वह उन्हें एकत्र करता है।

(क) इसी प्रकार **व्रजोपरोधं गाः स्थापयति**—वह गायों को इस प्रकार रखता है कि सब की सब बाड़े में आ जाती हैं। **पार्श्वोपपीडं शेते = पार्श्वाभ्यामुपपीडयन् शेते**।

(ख) तात्कालिक सन्निकर्ष (Immediate Contiguity) सूचित करने के लिये **हस्त, केश,** इत्यादि शब्दों के अनन्तर ग्रह्+णमुल् = 'ग्राहम्' का प्रयोग होता है; **केशग्राहं** (= केशेषु गृहीत्वा) **युध्यन्ते**—वे लोग एक दूसरे का बाल खूब जोरों से पकड़कर युद्ध करते हैं। **हस्तग्राहम्** = हस्तेन गृहीत्वा। **यष्टिग्राहम्** (= यष्टिं गृहीत्वा)—लाठी या छड़ी लेकर। इसी प्रकार **लोष्टग्राहम्**।

१७०[2]—शरीरावयवबोधक शब्दों के अनन्तर अवयव की चंचलता प्रकट करने के लिये णमुलन्त का प्रयोग होता है; जैसे, **भ्रूविक्षेपं कथयति (वृत्तान्तम्)**—वह अपनी भौं हर दिशा में चलाता हुआ वृत्तान्त कहता है।

(क)[3] इसी प्रकार जब किसी कार्य के करने में शरीर का कोई अवयव आहत हो जाता है या पीड़ित हो जाता है, तो उस अवयव के अनन्तर णमुलन्त शब्द का प्रयोग कर्मकारक के अर्थ में होता है; जैसे, **उरः प्रतिपेषं युध्यन्ते**—वे लोग इस प्रकार युद्ध करते हैं कि उनका सारा वक्षःस्थल पीड़ित हो उठता है (कृत्स्नमुरः पीडयन्तः)। **स्तनसम्बाधमुरो जघान सा** (कुमार० ४।२६)—स्तनों को चोट पहुँचाती हुई वह (कामदेव की स्त्री रति) अपने वक्षःस्थल को पीटती थी।

१७१[4]—आ+दिश् के साथ तथा ग्रह् के साथ णमुल् प्रत्यय **'नामन्'** के बाद कर्मकारक के अर्थ में आता है; जैसे, **नामदेशमाचष्टे**—वह अपना

१—हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् ।३।४।४८।

२—स्वांगेऽध्रुवे ।३।४।५४।

३—परिक्लिश्यमाने च ।३।४।५५।

४—नाम्न्यादिशिग्रहोः ।३।४।४८।

नाम बताकर कहता है। **नामग्राहं मामाह्वयति**—वह मेरा नाम लेकर मुझे पुकारता है।

विशेष—समस्त पद बनाने के लिए णमुलन्त रूप संज्ञाओं के अनन्तर भी प्रयुक्त होते हैं; जैसे, **ब्राह्मणवेदम्** (न कि ब्राह्मणान् वेदम्)। **जीवग्राहम्** (न कि जीवम् ग्राहम्)।

अभ्यास

१—स दुष्टाशयो बकः क्रमेण तान् पृष्ठमारोप्य, जलाशयस्य नातिदूरे शिलां समासाद्य, तस्यामाक्षिप्य स्वेच्छया भक्षयित्वा, भूयोऽपि जलाशयं समासाद्य, जलचराणां मिथ्यावार्तासन्देशकैर्मनांसि रंजयन्नाहारवृत्तिमकरोत् (पंच १।७)।

२—ततो भ्रातृशरीरमग्निसात् कृत्वा पुनर्नवीकृतवैधव्यदुःखया मया त्वदीयं देशमवतीर्येमे काषाये गृहीते (मालविका० ५)।

३—प्रवृत्ते प्रदोषसमये चन्द्रापीडश्चरणाभ्यामेव राजकुलं गत्वा पितुः समीपे मुहूर्तं स्थित्वा दृष्ट्वा च विलासवतीमागत्य स्वभवनं शयनतलमधिशिश्ये (कादम्० ६८)।

४—ते हिमालयमामंत्र्य पुनः प्राप्य च शूलिनम्।
सिद्धिं चास्मै निवेद्यार्थं तद्विसृष्टाः खमुद्ययुः॥ (कुमार० ६।६४)।

५—अहं येनेष्टिपशुमारं मारितः सोऽनेन स्वागतेनाभिनंद्यते।
(शा० ६)।

६—सा कुबेरभवनान्निवर्तमाना समापत्तिदृष्टेन केशिना दानवेन चित्रलेखाद्वितीया बंदीग्राहं गृहीता (विक्रमो० १)।

७—मगधराजः प्रक्षीणसकलसैन्यमंडलं मालवराजं जीवग्राहमभिगृह्य दयालुतया पुनरपि स्वराज्ये प्रतिष्ठापयामास।
(दशकु० १।१)।

८—मत्तकालो नाम लाटेश्वरो वीरकेतोस्तनयां वामलोचनां नाम तरुणीरत्नमसामान्यलावण्यं श्रावं श्रावमवधूतदुहितृप्रार्थनस्य तस्य पाटलीनाम्नीं नगरीमरौत्सीत्। (दशकु० १।३)।

९—अनंतरं सूत्रधारो दारुवर्मा वैरोधकपुरःसरैः पदातिलोकैर्लोंघातं हृतः (मुद्रा० २)।

१०—संप्राप्य राक्षससभां चक्रंद क्रोधविह्वला।
नामग्राहमरोदीत्सा भ्रातरौ रावणांतिके॥

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—लतानुपातं कुसुमान्यगृह्णात् स नद्यवस्कन्दमुपात्पृशच्च।
कुतूहलाच्चारुशिलोपवेशं काकुत्स्थ ईषत्स्मयमान आस्त। (भट्टि० २।११)।

२—स्नेहात् समाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि
नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान्।
देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय
धर्मासनाद् विशति वासगृहं नरेन्द्रः॥ (उत्तर० १)।

३—विश्वासप्रतिपन्नानां वंचने का विदग्धता।
अङ्कमारुह्य सुप्तं हि हत्वा किन्नाम पौरुषम्॥ (हित० ४)।

४—तामिन्दुसुन्दरमुखीं सुचिरं विभाव्य
चेतः कथं कथमपि व्यपवर्तते मे।
लज्जां विजित्य विनयं विनिवार्य धैर्य-
मुन्मथ्य मंथरविवेकमकांड एव॥ (मालती० १)

५—श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोपि सद्यः
शापस्यांतं सदयहृदयः संविधायास्तकोपः।
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ
भोगानिष्टानविरतसुखान् प्रापयामास शश्वत्॥

६—निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे॥ (श्रीमद्० १।३१)।

७—राजवाहनो रसालतरुषु कोकिलादीनां पक्षिणामालापान् श्रावं श्रावं वि*सितानि सरांसि दर्शं दर्शम् अमन्दलीलया ललनासमीपमवाप (दशकु० १।५)।

८—तेनैव दीपदर्शितेन बिलपथेन गत्वा स्थितेऽर्धरात्रे वासगृहं प्रविष्टो विश्रब्धप्रसुप्तं सिंहघोषं जीवग्राहमग्रहीषम् (दशकु० २।४)।

९—तं विप्रदर्शं कृतघातयत्ना यांतं वने रात्रिचरी डुढौके।
जिघांसुवेदं धृतभासुरस्त्रस्तां ताडकाख्यां निजघान रामः (भट्टि० ३।१४)।

१०—विद्युत्प्रणाशं स वरं प्रणष्टो यद्वोर्ध्वशोषं तृणवद् विशुष्कः।
अर्थे दुरापे किमुत प्रवासे न शासनेऽवास्थित यो गुरूणाम्॥
(भट्टि० ३।१४)।

११—यो नष्टानपि जीवनाशमधुना शुश्रूषते स्वामिन-
स्तेषां वैरिभिरक्षतः कथमसौ संत्रास्यते राक्षसः।
इत्थं वस्तुविवेकमूढमतिना म्लेच्छेन नालोचितम्
दैवेनोपहतस्य बुद्धि रथ वा पूर्वं विपर्यस्यति॥ (मुद्रा० ६)।

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

(णमुलन्त, क्त्वान्त तथा ल्यबन्त शब्दों का प्रयोग कीजिए)

१—अपनी तरफ बहेलिया को आता हुआ देखकर सारे पशु भयभीत होकर भिन्न-भिन्न दिशाओं में भाग गये।

२—वङ्गाधिपति से यह समाचार निवेदन करके तुम कब लौट आए?

३—एकचित्त होकर और प्रारब्ध कार्य को बन्द न करने का दृढ़ संकल्प करके अपना कार्य आरम्भ करो।

४—किसी नगर के अड़ोस-पड़ोस में भ्रमण करता हुआ सियार अकस्मात् नील के बर्तन में गिर पड़ा और उठने में असमर्थ होकर अपने को मरा हुआ प्रदर्शित कर वहीं ठहर रहा।

५—शठ की बातें सुनकर ब्राह्मण ने बकरे को जमीन पर रख दिया, उसे बार-बार देखा, फिर अपने कन्धे पर रख लिया और शठ की बातों को सोचता हुआ घर की ओर चल दिया।

६—उसे दरबार में बुलाकर, उपयुक्त उपहारों से उसका सम्मान कर और उसे राजा का सन्देश निवेदन कर मन्त्री द्वारा वह आदरपूर्वक बर्खास्त कर दिया गया।

७—जितनी कन्याओं को उसने अपने योग्य देखा उन सबों को वरण कर लिया (कन्यादर्शम् प्रयोग कीजिए)।

८—उसने दवाई को चूर-चूर पीसकर उसे आग पर रक्खा और उबाल कर पी लिया (चूर्णपेयं पिष्ट्वा)।

९—उनके स्वामी का वध कर डालने के कारण राजा के अनुयायियों द्वारा वह पत्थरों से मार डाला गया (पाषाणघातम्)।

१०—मैंने शत्रु के ऊपर एकाएक आक्रमण कर दिया और उसके सारे अनुयायियों को भगाकर उसे जीता-जागता पकड़ लिया (जीवग्राहम्)।

११—पाटलिपुत्राधिपति ने वसुदुर्ग नगर ले लिया और वहाँ के निवासियों को बन्दी बना कर पकड़ लिया (बन्दिग्राहम्)।

१२—मेरा नाम लेकर मुझे कौन पुकारता है ?

षोडश पाठ

तुमुन् प्रत्यय (The Infinitive Mood)

१७२—जिस कार्य के लिये कोई दूसरा कार्य किया जाता है, उसका बोध कराने के लिये, संस्कृत में, धातु में तुमुन् प्रत्यय जोड़ा जाता है। जिस प्रकार से अनद्यतनभविष्य के प्रथम पुरुष के एकवचन का रूप बनाया जाता है, उसी प्रकार तुमुनन्त रूप भी बनाया जाता है। तुमुन् प्रत्यय 'के लिये' का अर्थ सूचित करता है और अंग्रेजी के जेरण्डियल् इनफिनिटिव् (Gerundial Infinitive) का सा काम करता है। इस प्रकार तुमुन् प्रत्यय सम्प्रदान के अर्थ का बोधक है और आवश्यकता पड़ने पर उसका प्रयोग न कर धातु में कृत् प्रत्यय जोड़कर संज्ञा बना कर और उसे चतुर्थी में रखकर काम चला सकते हैं; जैसे, **पारसीकांस्तनो जेतुं प्रतस्थे** (रघु० ४।६०)—तब वह फारस-देश-निवासियों को जीतने के लिये रवाना हो गया। यहाँ पर **जेतुम्** के स्थान पर **'जयाय'** करके वाक्य को इस प्रकार बना सकते हैं—**पारसीकानां जयाय प्रस्तथे**। इसी प्रकार, **स्वेदसलिलस्नातापि पुनः स्नातुमवातरम्** (कादम्० १४७)। यहाँ पर स्नातुम्=स्नानाय।

विशेष—(क) इंग्लिश व्याकरण का Infinitive जैसा पुराना रूप है, वैसा ही संस्कृत व्याकरण का तुमुनन्त भी पुराना रूप है। वैदिक काल में धातुओं के अन्त में तु (गंतु, यातु आदि उदाहरण हैं) लगाकर क्रियापदीय संज्ञा नियमतः बनाई जाती थी। हमें **गंतुं, गंतवे**, गतो, आदि जैसे बहुत से रूप मिलते हैं जिनसे ऐसा प्रतीत होता है मानो गंतु एक संज्ञा हो। परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया, **गंतोः, गंतवे** आदि रूपों का प्रयोग कम होता गया और प्रधानतः जिस रूप का प्रयोग होता था, वह द्वितीया का रूप था। बाद में इस रूप का अर्थ चतुर्थी के भाव में किया जाने लगा। इसलिये वर्तमान संस्कृत का तुमुनन्त सदैव चतुर्थी का अर्थ रखता है।

१७३—तुमुनन्त शब्द कर्ता या कर्म के तौर पर प्रयोग में नहीं आ सकता। वाक्य के किसी भी शब्द से इसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। जहाँ अंग्रेजी में नाउन् इनफिनिटिव कर्ता या कर्म के तौर पर आता है, वहाँ संस्कृत में भाववाचक संज्ञा लानी पड़ती है; जैसे, To get up early in the morning is wholesome का अनुवाद होगा—**प्रातरेव उत्थानम्** (न कि उत्थातुम्) **आरोग्यवहम्**। I learn to sing का अनुवाद होगा—**अहं गानमधीये**।

(क) Seeing (देखना), hearing (सुनना) इत्यादि के बाद आने वाले इनफिनिटिव् का अनुवाद शत्रन्त और शानजन्त द्वारा होगा; जैसे, I heard him speak का अनुवाद होगा—**भाषमाणं तमश्रौषम्**। इसी प्रकार, **अधीयानं ददर्श तम्**—He saw him study।

१७४—संस्कृत इनफिनिटिव् का वास्तविक अर्थ है किसी क्रिया का **अभिप्राय** या **निमित्त** दिखलाना। परन्तु कुछ स्थल ऐसे आते हैं जहाँ पर इनफिनिटिव् संज्ञा और विशेषण के साथ आता है, जैसे कि अंग्रेजी में; जैसे, Fit to do, able to go, time to read. ऐसे प्रयोगों का बोध कराने के लिये संस्कृत में कतिपय मुहावरों का **प्रयोग** होता है जिनमें कुछ मुख्य-मुख्य नीचे दिखाये जाते हैं।

१७५—[1]जब तुमुनन्त शब्द का तथा प्रधान क्रिया का कर्ता एक ही होगा, तभी तुमुन् प्रत्यय का प्रयोग हो सकता है। यदि तुमुनन्त क्रिया का कर्ता कोई दूसरा हो और प्रधान क्रिया का कर्ता कोई दूसरा हो तो तुमुन् प्रत्यय कदापि नहीं आ सकता; जैसे, **पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति** (कुमार० ५।५३)—पिनाकपाणि महादेव जी को अपना पति चाहती है। **अत्तुं वांछति शाम्भवो गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी** (पंच० १।३)। परन्तु **त्वां गन्तुम् अहमिच्छामि**—ऐसा प्रयोग कदापि नहीं हो सकता। क्योंकि यहाँ **गन्तुम्** और **इच्छामि** के कर्ता भिन्न-भिन्न हैं।

१७६—[2]शक् (सकना), धृष् (धृष्ट होना, हिम्मत करना), ज्ञा (जानना), ग्ला (थक जाना, मुरझा जाना), वट् (प्रयत्न करना), रभ् (आरम्भ

१—समानकर्तृकेषु तुमुन्। ३।३।१५८।

२—शकधृषज्ञाग्लावटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्। ३।४।६५।

करना), लभ् (पाना), क्रम् (आरम्भ करना), सह् (सहना), अर्ह्, अस् (होना)--इन धातुओं का प्रयोग होने पर तुमुन् प्रत्यय आता है; जैसे, **न शक्नोमि हृदयमवस्थापयितुम्** (उत्तर० ४)—मैं अपने हृदय को थाम नहीं सकता। **वक्तुं मिथः प्राक्रमतैवमेनम्** (कुमार० ३।२)—इस प्रकार उससे एकान्त में बोलने चला। **जानासि देवीं विनोदयितुम्** (उत्तर० १)—रानी का मनोरंजन करना जानते हो। **अस्ति-भवति-विद्यते-वा भोक्तुमन्नम्** (सि० कौ०)—खाने को भोजन है। **न विषहे विपत्तिमवलोकयितुम्** (वेणी० ३)—मैं विपत्ति नहीं सहन कर सकता।

१७७—[1]**पर्याप्त, समर्थ, योग्य** इत्यादि अर्थ रखने वाले शब्दों के साथ तथा **योग्यता, शक्ति** अथवा **नैपुण्य** या **प्रावीण्य** अर्थ बोध कराने वाले विशेषणों के साथ भी तुमुन् का प्रयोग होता है; जैसे, **लिखितमपि ललाटे प्रोञ्छितुं कः समर्थः** (हितो० १)—ललाट (मस्तक) पर लिखे हुए को मिटाने के लिये कौन समर्थ है? **लोकानलं दग्धुं तत्तपः** (कुमार० २।५६)—उसकी तपस्या लोकों को जला देने के लिये पर्याप्त है। **अस्ति मे विभवः सर्वं**

१—पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु। ३। ४।६६।

उक्त सूत्र एक जटिल प्रश्न खड़ा कर देता है। भट्टोजि दीक्षित कहते हैं—'अर्थग्रहणमस्तिनैव सम्बध्यते अन्तरत्वात्' अर्थात् यह सूत्र शक् धातु से लेकर अर्ह धातु तक तथा ऐसे ही अर्थ वाली अस् 'होना' जैसी अन्य धातुओं को नियम १७६ के अन्तर्गत लाता है। परन्तु ऐसा कहना प्रयोग के बिल्कुल प्रतिकूल होगा। दीक्षित जी की व्याख्या के अनुसार पारय 'योग्य होना' का प्रयोग तुमुन् के अर्थ में नहीं हो सकता लेकिन न पारयामि निवेदयितुं (शा० ४), पारयिष्यस्यत्रभवत्या अपराद्धुं (मालविका० ३) प्रामाणिक ग्रंथकार के उदाहरण हैं। इसी प्रकार 'विद्' (जानना) का भी तुमुनन्त प्रयोग नहीं हो सकता परन्तु 'न च वेद सम्यग् द्रष्टुं न सा' (रघु० ६।३०) भी एक उपयुक्त उदाहरण है। अतः हमें यह मानना होगा कि इस सूत्र की व्याख्या करते समय अर्थ-ग्रहण पूर्व की सभी धातुओं से सम्पृक्त समझना चाहिये अन्यथा ऊपर दिये गये वाक्यों को हमें अशुद्ध करार देना पड़ेगा। इस दृष्टिकोण से मैंने (आप्टे ने) अर्थग्रहण को सभी धातुओं से सम्बन्धित समझते हुए इस सूत्र की व्याख्या की है।

परिज्ञातुम् (विक्रमो० २)—मुझमें सब कुछ जानने की शक्ति है। **कोन्यो हुतवहादृग्धुं प्रभविष्यति** (शा० ४)—अग्नि के अलावा और कौन जलाने में समर्थ होगा? **भोक्तुं प्रवीणः कुशलः पटुर्वा** (सि० कौ०)—खाने में निपुण (या खाने के लिए निपुण)।

१७८—[1]**समय, काल, वेला, अवसर** इत्यादि कालवाची शब्दों के साथ समान कर्ता न होने पर भी तुमुनन्त शब्द प्रयोग में आता है; जैसे, **अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम्** (शा० १)—अपने आपको प्रकट कर देने का अब यह अवसर है। **समयः खलु स्नानभोजने सेवितुम्** (विक्रमो० २)—यह नहाने और खाने का समय है।

नोट—जैसे लैटिन भाषा में है, वैसे ही संस्कृत भाषा में भी कुछ क्रियाएँ ऐसी हैं जो स्वरूपतः तो कर्मवाच्य में हैं परन्तु अर्थतः कर्तृवाच्य में हैं; जैसे, शक्, युज्, अर्ह् तथा इनमें प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्द; जैसे, **न शक्यास्ते दोषाः समाधातुम्** (हित० ३)—वे दोष ठीक नहीं किये जा सकते। **न युक्तम् अशोको वामपादेन ताडयितुम्** (मालविका० ३)—अशोक को बाएँ पाँव से मारना उचित नहीं।

१७९—संस्कृत में तुमुन् का कर्मवाच्य में कोई अलग रूप नहीं होता। एक ही रूप कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य दोनों में प्रयुक्त होता है। तुमुनन्त वाले वाक्यों को कर्मवाच्य बनाने में तुमुनन्त के कर्म या उससे सम्बन्ध रखने वाला शब्द ज्यों का त्यों बना रहता है; जैसे,

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
स मित्राय द्रोग्धुमिच्छति	तेन मित्राय द्रोग्धुमिष्यते
रामो ग्रामं गन्तुमारेभे	रामेण ग्रामं गन्तुमारेभे

जहाँ पर तुमुनन्त का तथा प्रधान क्रिया का कर्म एक ही होता है, वहाँ कर्मवाच्य बनाते समय कर्मपद प्रथमा में रख दिया जाता है और यह समझ लिया जाता है कि उसका सम्बन्ध तुमुनन्त के साथ होता है; जैसे, **स ग्रन्थं पठितुमिच्छति—तेन ग्रन्थः पठितुमिष्यते**—कर्मवाच्य होगा और आवश्यकता पड़ने पर '**पठितुम्**' का कर्म '**तम्**' हो जायगा। इस स्थल पर **ग्रन्थं पठितुमिष्यते**

१—कालसमयवेलासु तुमुन्। ३। ३। १६७।

कहना ठीक न होगा क्योंकि यह प्रयोग भाव में हो जायगा, और भावप्रयोग यहाँ हो नहीं सकता यद्यपि इष् धातु अकर्मक नहीं है।

सेक्शन १७८ के नोट में उल्लिखित धातुओं के योग में दोनों प्रयोग शुद्ध होंगे; **पवनमालिंगितुं शक्यते** अथवा **पवन आलिंगितुं शक्यते**, यद्यपि बादवाला प्रयोग अधिक समीचीन और साहित्यिक जान पड़ता है।

१८०--अर्ह् धातु का प्रयोग विशेष ध्यान देने योग्य है। प्रायः वह तुमुनन्त के साथ 'प्रार्थना' वा 'अभ्यर्थना' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अथवा यह उन वाक्यों में प्रयुक्त होता है जहाँ अंग्रेजी में Be Pleased (कृपया), अथवा I Pray (मैं प्रार्थना करना हूँ) आते हैं; इस अर्थ में तुमुनन्त मध्यम पुरुष तथा प्रथम पुरुष के साथ आता है; जैसे, **न मां परं संप्रतिपत्तुमर्हसि** (कुमार० ५।३६)—मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे अजनबी (पराया) न समझिये। **अवहितस्तावच्छ्रोतुमर्हति कुमारः** (मुद्रा० ४)--ऐ राजकुमार, कृपया इसे ध्यानपूर्वक सुनिये। **प्रिये जानकि, न मामेवंविधं परित्यक्तुमर्हसि** (उत्तर० ३)--ऐ प्यारी जानकी, कृपया इस प्रकार विपत्ति में पड़े हुए मुझको मत छोड़ो।

१८१--तुमुनन्त शब्द हलन्त मकार से विहीन 'काम' और 'मनः' शब्दों के साथ 'इच्छुक' के अर्थ में, प्रयोग में आता है, और यह प्रकट करता है कि कर्ता धातु द्वारा सूचित कार्य करने का इच्छुक है; जैसे, **पुनरपि वक्तुकाम इवार्यो लक्ष्यते** (शा० १)--श्रीमान् जी फिर बोलने के इच्छुक जान पड़ते हैं।

अभ्यास

१—**मध्यस्थया भवती नौ गुणदोषतः परिच्छेत्तुमर्हति** (मालविका० १)।

२—**न युक्तं ते तथा पुराश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिमं जनं समयपूर्व प्रतार्यदृशौरक्षरैः प्रत्याचष्टुम्**। (शा० ५)

३—**नार्हति ताता गजपुंगवधारितायां धुरि दम्यं नियोजयितुम्**। (विक्रमो० ५)

१--तुङ्कामममनसोरपि

४—न शक्यं दैवमन्यथा कर्तुमभियुक्तेनापि। यावत्तु मानुष्यके शक्यमुपपादयितुं तावत्सर्वमुपपाद्यताम् (कादम्० ६२)।

५—का गणना सचेतनेषु। अपगतचेतनान्यपि संघट्टयितुमलमयं मदनः (कादम्० १५)।

६—अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात्।
नवसंरोहणशिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम् ॥
(मालविका० १)।

७—घातयितुमेव नीचः परकार्यं वेत्ति न प्रसाधयितुम्।
पातयितुमेव शक्तिर्नाखोरुद्धर्तुमन्नपिटम् ॥ (पंच० १।१५)

८—शब्दादीन्विषयान् भोक्तुं चरितुं दुश्चरं तपः।
पर्याप्तोसि प्रजाः पातुमौदासीन्येन वर्तितुम् ॥ (रघु० १०।२५)

९—वृत्तं रामस्य वाल्मीकेः कृतिस्तौ किन्नरस्वनौ।
किं तद्येन मनो हर्तुं मलं स्यातां न शृण्वताम्। (रघु० १५।६४)

१०—व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम्। (शा० ५)

११—व्यालं बालमृणालतंतुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते
छेत्तुं वज्रमणीव्य शिरीषकुसुमप्रांतेन सन्नह्यते।
माधुर्यं मधुविन्दुना रचयितुं क्षीरांबुधेरीहते।
नेतुं वांछति यः खलान् पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः।
(भर्तृ० २।६)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अलमनया कथया। संह्रियतामियम्। अहमप्यसमर्थः श्रोतुम्। अतिक्रान्तान्यपि संकीर्त्यमानान्यनुभवसमां वेदनामुपजनयंति सुहृज्जनस्य दुःखानि। तन्नार्हसि कथं कथमपि विधृतानिमानसुलभानसून् पुनः-पुनः स्मरणशोकानलेन्धनतामुपनेतुम् (कादम्० १६८)।

२—अमात्यकुमारो विज्ञापयति। यद्यपि स्वामिगुणा न शक्यन्ते विस्मर्तुं, तथापि मद्विज्ञापनां मानयितुमर्हत्यार्यः (मुद्रा० २)।

३—न खलु न खल्वमंगलानि चिंतयितुमर्हन्ति भवंतः कौरवाणाम् ।
सन्धेयास्ते भ्रातरो युष्माकम् (वेणी० १)

४—शमयति गजानन्यान् गन्धद्विपः कलभोऽपि सन्
भवति सुतरां वेगोदग्रं भुजंगशिशोर्विषम् ।
भुवमधिपतिर्बालावस्थोऽप्यलं परिरक्षितुं
न खलु वयसा जात्यैवायं स्वकार्यसहो भरः ॥ (विक्रमो० ५) ।

५—अतोऽत्र किंचिद् भवतीं बहुज्ञमां द्विजातिभावादुपपन्नचापलः ।
अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने न चेद्रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि ॥ (कुमार० ५।४०)

६—तमर्थमिव भारत्या सुतया योक्तुमर्हसि ।
अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता ॥ (कुमार० ६।७६) ।

७—न पृथग्जनवच्छुचो वशं वशिनामुत्तम गन्तुमर्हसि ।
द्रुमसानुमतां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः । (रघु० ८।६०) ।

८—अयि सुतपराक्रमानभिज्ञे,—
घर्मात्मजं प्रति यमौ च कथैव नास्ति
मध्ये वृकोदरकिरीटभृतोर्बलेन ।
एकोऽपि विस्फुरितमंडलचापचक्रं
कः सिन्धुराजमभिषेणयितुं समर्थः ॥ (वेणी० २) ।

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—उसने यथाशक्ति अपने देशवासियों का उपकार करने का प्रयत्न किया ।

२—तुम क्यों अपने भाई की जायदाद ले लेना चाहते हो ?

३—मैंने उससे कार्य करने को कहा, पर उसने बड़ी अनिच्छापूर्वक किया ।

४—बदला लेना पहिले तो मनुष्य को अच्छा लगता है, पर अन्त में उससे उसी का नाश होता है ।

५—मैं गरीब आदमी का भी अपमान होता हुआ नहीं सहन कर सकता ।

६—हे कृष्ण, कृपया इस संशय को दूर (छिद्) कर दीजिये ।

७—अब तुम्हारे पाठ आरम्भ करने का समय है ।

८—क्षुद्र शत्रु भी तिरस्कार किये जाने का पात्र नहीं है (अर्हति) ।

९—मैं चाहता था कि वे लोग बम्बई जायँ पर उन लोगों ने वैसा करना पसन्द नहीं किया ।

१०—तुम्हें यहाँ अकेला छोड़ कर दूसरे देश में चला जाना कैसे सम्भव है (शक्य) ।

११—गरीबों की तो बात ही क्या है, दुर्भिक्ष में सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करना धनियों के लिये भी मुश्किल हो जाता है ।

१२—इसके अपराधों के कारण इस दुष्ट को दण्ड देना उचित है (युज्यते) ।

१३—इस शुभ अवसर पर सब कैदी छोड़ दिये जायँ ।

१४—विपत्तियों से आहत होकर घर में आलसी बनकर बैठे रहने की अपेक्षा अपने आप को संकट में डालना कभी-कभी अच्छा होता है ।

१५—अलका में, वे विशाल प्रासाद उन भिन्न-भिन्न विशेषों में तुम्हारी तुल्यता करने के लिये समर्थ हैं (अलम्) ।

१६—यह दूसरों का उपकार करने का इच्छुक था, पर अपने मनोरथ को साधने में जरा भी समर्थ नहीं हुआ है ।

१७—मैं श्रीमान् से इस प्रार्थना को स्वीकार करने की विनती करता हूँ । इसे सर्वदा कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करना मेरा परम धर्म होगा ।

सप्तदश पाठ

काल और वृत्तियाँ

१८२[1]—संस्कृत में काल और वृत्तियाँ सब मिलकर १० होते हैं—

१—वर्तमानकाल	लट्	Present tense
२—आज्ञा	लोट्	Imperative Mood
३—विधि	विधिलिङ्	Potential Mood
४—अनद्यतनभूत	लङ्	Imperfect Tense
५—परोक्षभूत	लिट्	Perfect Tense
६—सामान्यभूत	लुङ्	Aorist
७—अनद्यतन भविष्य	लुट्	First future
८—सामान्य भविष्य	लृट्	Simple future
९—आशी:	आशीर्लिङ्	Benedictive
१०—क्रियातिपत्ति	लृङ्	Conditional Mood

लेट् लकार केवल वेदों में मिलता है और क्रियातिपत्ति का अर्थ देता है। बहुधा इसे **वैदिक क्रियातिपत्ति** कहते हैं। लिङ् लकार दो प्रकार के होते हैं। एक तो विधिलिङ् दूसरा आशीर्लिङ्।

१८३—संस्कृत में प्रत्येक धातु के रूप—चाहे वह मूलरूप में हो, चाहे प्रेरणार्थक हो, चाहे सन्नन्त (इच्छार्थक) हो, चाहे भृशार्थक या यङन्त (पौनःपुन्यबोधक) दसों लकारों में चलते हैं। सन्नन्त और यङन्त धातुएँ वर्तमानकाल के अतिरिक्त अन्य कालों में बहुत कम प्रयोग में आती हैं। प्रायः उनका अर्थ दूसरे प्रकार से दिखला दिया जाता है; जैसे, जिगमिषति = गन्तुमिच्छति; अटाट्यते = भृशम् अटति।

१८४—कुछ काल और वृत्तियाँ (Tenses and moods) अन्य भाषाओं के काल और वृत्तियों के साथ ठीक-ठीक मिलती-जुलती हैं, परन्तु कुछ

१—लट् वर्तमाने लेट् वेदे भूते लुङ् लङ् लिटस्तथा।
विध्याशिषोस्तु लिङ् लोटौ लुट् लृट् लृङ् च भविष्यति॥

केवल संस्कृत में ही होती हैं। इस पाठ में तथा अगले तीन पाठों में उनके प्रयोग और अर्थ बतलाए गए हैं। इस पाठ में वर्तमान, आज्ञा और आशीर्लिङ् का निरूपण किया गया है।

वर्तमान काल

१८५—वर्तमान काल का प्रयोग वर्तमान समय में होने वाले कार्य, अथवा वर्तमान समय में अस्तित्व रखने वाली किसी वस्तुस्थिति का बोध कराने के लिये किया जाता है; जैसे, **जगतः पितरौ वन्दे** (रघु० १।१)—मैं विश्व के माता-पिता की वन्दना करता हूँ।

विशेष—वस्तुतः, संस्कृत का वर्तमानकाल प्रगतिशील वर्तमान अर्थात् उत्तरोत्तर होते चलने वाले वर्तमान वा अपूर्ण वर्तमानरूप का बोधक होता है जो किसी प्रारम्भ किए हुए कार्य का जारी होना सूचित करता है। पतंजलि ने लिखा है, **प्रवृत्तस्याविरामे शासितव्या भवंती**—जिसका अर्थ यह है कि वर्तमानकालिक क्रिया द्वारा सूचित कार्य अभी चल रहा है और अभी बन्द नहीं हुआ है; जैसे, **वहति जलमियम्; पिनष्टि गन्धानियम्** (मुद्रा० १)—यह स्त्री जल लाती है (ला रही है), यह (दूसरी) सुगन्धित द्रव्य (पदार्थों) को पीसती है (पीस रही है)। **एतास्तपस्विकन्यका इत एवाभिवर्तन्ते** (शा० १)—ये तापस-कन्याएँ इसी तरफ आती हैं (आ रही हैं)। इस जारी रहने वाले कार्य का बोध कराने के लिए संस्कृत में कोई अलग से रूप नहीं है।

परन्तु ध्यान रहे कि किसी विशेष क्रियाविशेषण द्वारा या सन्दर्भ द्वारा ही वर्तमान काल का प्रयोग केवल वर्तमान कार्य का बोध कराने के लिए सीमित किया जा सकता है; जैसे, **देवदत्तो गच्छति** (अर्थात् **अधुना**), अथवा **सम्प्रत्यधीयावहे**। वर्तमानकाल के प्रयोग का मुख्य अभिप्राय, जैसा बेन ने अपनी व्याकरण की पुस्तक में लिखा है, किसी **शाश्वत सत्य** का बोध कराना है। **सर्वकाल** के ही अर्थ में यह वर्तमान काल का बोध कराता है। प्रकृति की नित्य व्यवस्थाएँ और नियम, प्राणियों की विशेषताएँ और प्रवृत्तियाँ तथा जो वस्तु शाश्वत, नैयमिक (नियमानुसारी) और एक समान अथवा एकरूप हैं— वह सभी

वर्तमान काल द्वारा बताई-जाती हैं; जैसे, **सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्** (भर्तृ० २३)--बताइए, सत्संगति क्या नहीं कर देती। **अस्त्युत्तरस्यां दिशि···हिमालयो नाम नगाधिराजः** (कुमार० १।१)—उत्तर दिशा में पर्वताधिपति हिमालय है। **नास्ति जीविताद्न्यदभिमततरमिह सर्वजन्तूनाम्** (कादम्० ३६)। **ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोनुधावति** (उत्तर० १)। **न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते** (मालती० १)।

१८६—उपरोक्त साधारण अर्थों के अतिरिक्त संस्कृत का वर्तमानकाल, निम्नलिखित अर्थों का बोध कराने में प्रयुक्त होता है--

(क) कभी-कभी यह तात्कालिक भविष्य (Immediate Future) के अर्थ का बोध कराता है; जैसे, **अयमहमागच्छामि** (शा० ३)-यह, मैं आता हूँ (आऊँगा)। **कदा गमिष्यसि, एष गच्छामि** (सि० कौ०)। **नन्वयं न भवसि** (मालती० ५)।

(ख) जब कोई कार्य अभी ही हो चुका रहता है, तो हाल के (**आसन्न**) भूत कार्य का बोध कराने के लिए वर्तमानकाल का प्रयोग होता है; जैसे, **कदा त्वं नगरादागतोऽसि—अयमागच्छामि** (सि० कौ०) ? तुम गाँव से कब आए; यह मैं आता हूँ (अर्थात् मैं अभी आया हूँ)।

(ग) कथाओं में और भूतकालिक घटनाओं का वर्णन करने में वर्तमानकाल का प्रयोग होता है **मानों वक्ता** ने उन घटनाओं को साक्षात् अपनी आँखों के सामने होती हुई देखा हो। **हस्ती ब्रूते कस्त्वम्** (हित० २)--हाथी पूछता है (पूछा) कि तुम कौन हो ?

(घ) **तक, जहाँ तक कि, पूर्व, जब** इत्यादि शब्दों के साथ यह भविष्यकाल का बोध कराता है; जैसे, **तद् यावन्न परापतति तावदपसर्पतानेन तरुगहनेन** (उत्तर० ४)—इसलिए उसके लौटने के पूर्व ही इस वृक्षसमूह के बीच से चले जाओ।

(ङ) कभी-कभी वर्तमानकाल स्वाभाविक कार्य का बोध कराने के लिए प्रयोग में आता है; जैसे, **पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलम्** (शा० ४)—पहिले पानी पीने की बात भी न सोचती थी (अर्थात् पहिले पानी पीने की आदत नहीं थी)। **हिरण्यको भोजनं कृत्वा बिले स्वपिति** (हित० १)।

१८७--हेतुसूचक या दशासूचक (Conditional) वाक्यों में भविष्य का बोध कराने के लिए कभी-कभी वर्तमानकाल का प्रयोग होता है; जैसे, **योऽन्नं ददाति** (दाता दास्यति वा), **स स्वर्गं याति** (याता यास्यति वा, (सि० कौ०)—जो अन्न देता है (देगा), वह स्वर्ग जाता है (जायगा)।

१८८--वर्तमान के साथ जब **स्म** जोड़ दिया जाता है, तब वह भूतकाल का अर्थ देता है; जैसे, **कस्मिंश्चिद् वने भासुरको नाम सिंहः प्रतिवसित स्म** (पंच० १।८) जंगल में भासुरक नामक एक सिंह रहता था। **क्रीणंति स्म प्राणमूल्यैर्यशांसि** (शिशु० १७।१५)--अपने प्राण देकर उन लोगों ने यश खरीदा।

१८९--प्रश्नवाचक शब्दों के साथ इच्छा के संदर्भ में वर्तमानकाल प्रायः भविष्य का अर्थ सूचित करता है; जैसे, **किं करोमि क्व गच्छामि** (उत्तर० १)--क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? **कं भोजयसि** (सि० कौ०); इसी प्रकार, **किं गच्छामि तपोवनम्** (मुद्रा० ६)।

(क) जब किसी प्रश्न का उत्तर देना होता है, तब वर्तमानकाल **ननु** के साथ भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे **कटमकार्षीः किम् - ननु करोमि भोः** (सि० कौ०)।

१९०[1]--क्रियाविशेषण **पुरा** और **यावत्** के साथ वर्तमानकाल निश्चयात्मक भविष्य का अर्थ देता है; जैसे, **आलोके ते निपतति पुरा** (मेघ० ८८)--**अवश्य** ही (**निश्चय ही**) तुम्हारी आँखों के विषय में पड़ेगा अर्थात् अवश्य ही तुम्हें दिखाई पड़ेगा। **यावदस्य दुरात्मनः समुन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि** (उत्तर० १)--इस शठ का नाश करने के लिए मैं **अवश्य** ही (निश्चय) **शत्रुघ्न** को भेजूँगा।

विशेष--निश्चयात्मकता का बोध अनिवार्य नहीं है।

आज्ञा (लोट्)

१९१--यह लकार मध्यम पुरुष में आज्ञा, **प्रार्थना** अथवा मृदु उपदेश या मंत्रणा के अर्थ में प्रयुक्त होता है; जैसे **शृणुत रे पौराः** (मृच्छ० १०)--

१--यावत्पुरानिपातयोर्लट्। ३। ३।४।

ऐ पुरवासियो, सुनते जाओ। **परित्रायध्वम्, परित्रायध्वम्**—बचाओ, बचाओ। **हा प्रियसखि, क्वासि, देहि मे प्रतिवचनम्** (उत्तर०)—हाय मेरी प्यारी, कहाँ हो, उत्तर दो। **तृष्णां छिन्द्धि, भज क्षमां, जहि मदम्** (भर्तृ० २) लालच छोड़ो, क्षमा धारण करो, घमण्ड त्यागो।

(क) जब बड़ी विनम्रतापूर्वक कोई बात कहनी होती है तो आज्ञा के कर्मवाच्य का रूप प्रयोग में आता है; जैसे, **एतदासनमास्यताम्** (विक्रमो० २)—यह आसन है, कृपया बैठ जाइये।

१६२—आज्ञा के प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष) और मध्यम पुरुष का रूप बहुधा आशीर्वाद का बोध कराने के काम में आता है; जैसे, **प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः** (शा० १)—इन आठ प्रत्यक्ष रूपों से युक्त शिव भगवान् तुम्हारी रक्षा करें। **पर्जन्यः कालवर्षी भवतु जनमनोनन्दिनो वान्तु वाताः** (मृच्छ० १०)—भगवान् करे, समय पर मेघ बरसें, लोगों के मन को अच्छी लगने वाली हवायें बहें। **पुत्रमेवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि** (शा० १)—भगवान् करे, तुम इन गुणों से युक्त चक्रवर्ती पुत्र पाओ। **पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपम्** (रघु० ५।३४)—भगवान् करे, तुम अपने ही अनुरूप पुत्र पाओ। **तात मे चिरंजीव** (उत्तर० ४)। इत्यादि।

१६३—भविष्यकालिक तथा वर्तमानकालिक आज्ञाओं (Commands) तथा प्रोत्साहनों (exhortations) का बोध कराने के लिये भी आज्ञा के रूपों का प्रयोग होता है। प्रायः व्यवस्थाओं तथा नियमों में और उपदेशों का विधान करने में आज्ञा के रूप ठीक उसी प्रकार प्रयोग में आते हैं, जैसे कि विधि के। अष्टादश पाठ देखिये।

१६४—मध्यम पुरुष की आज्ञा का एक प्रयोग कुछ विशेष ध्यान देने योग्य है। जब 'भृशार्थ' अथवा **'कार्यों का पौनःपुन्य'** सूचित करना होता है, तो आज्ञा के मध्यम पुरुष का रूप दोहराया जाता है, चाहे प्रधान क्रिया का कर्ता भिन्न ही हो और क्रिया किसी भी काल में क्यों न हो; जैसे, **याहि याहीति याति** (सि० कौ०)—वह बार-बार जाता है। **यात यातेति याथ। अधीष्व अधीष्वेति अधीते।**

विशेष—संस्कृत से उत्पन्न मराठी आदि भाषाओं की आज्ञा Imperative mood से उक्त प्रयोग मिलता-जुलता है; जैसे, 'हा गृहस्थ खा-खा खातों'; बोल-बोल बोलतो'; 'पंतोजी नें मुलाना मार-मार मारिलें।'

(क) इसी प्रकार जब एक ही व्यक्ति द्वारा कई कार्य किये जाते हुए दरशाये जाते हैं, तब आज्ञा का प्रयोग होता है (दोहरा प्रयोग नहीं); जैसे, **सक्तून् पिब, धानाः खादेत्यभ्यवहरति** (सि० कौ०)—भूना हुआ दाना चबाता हुआ, जौ खाता हुआ वह भोजन करता है।

मराठी भाषा के निम्न वाक्यों की तुलना करो—शेंगा खा, दाणे चाव, पाणी पी, अशारीतीनें हा सकालीं चरत असतो, कुठें झाड़ेंच उपट, कुंड्याच फोड, फुलेंच तोड, फांद्याच मोड, असा त्या दुष्टानें बागेचा अगदीं नाश करून सोडिला।

आशीर्लिङ्

१६५—आशीर्लिङ् (भूयात्—भविषीष्ट) हमेशा आशीर्वाद देने में आता है और उत्तम पुरुष में वक्ता की इच्छा प्रकट करता है; जैसे, **तत्किमन्यदाशास्महे, केवलं वीरप्रसवा भूयाः** (उत्तर० १)—तो हम लोग और क्या आशा करें ? ईश्वर करे, तुम वीर पुत्र पैदा करो। **विधेयासुर्देवाः परमरमणीयां परिणतिम्** (मालती० ६)—देवता लोग अन्त को रमणीक बनावें। **कृतार्था भूयासम्** (मालती०)—ईश्वर से इच्छा करता हूँ कि सफल होऊँ।

अभ्यास

१—**क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञातः श्रमक्लान्तमात्मानं विनोदयामि।** (शा० ३)।

२—**किमधुना करोमि ? क्व गच्छामि ? कथं मे शान्तिर्भविष्यति ? अथवा पिंगलकं गच्छामि, कदाचिच्छरणागतं मां रक्षति न प्राणैर्वियोजयति।** (पंच० १।१६)।

३—**ततो दिनेषु गच्छत्सु पक्षिशावकानाक्रम्य कोटरमानीय प्रत्यहं खादति स मार्जारः।** (हितो० १)

४—तारापीडो देवीमवदत्। अफलमिवाखिलं पश्यामि जीवितं राज्यं च।
अप्रतिविधेये धातरि किं करोमि। तन्मुच्यतां, देवि, शोकानुबन्धः।
आधीयतां धैर्ये च धर्मे च धीः। (कादम्० ६५)

५—शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥ (शा० ४)

६—पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमंडनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रवृत्तिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुंतला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥ (शा० ४)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अये उदितभूयिष्ठ एष भगवानशेषभुवनद्वीपदीपकस्तपनः। तमुपतिष्ठे। (मालती० १)।

२—अनन्यभाजं पतिमाप्नुहीति, सा तथ्यमेवाभिहिता हरेण।
न हीश्वरव्याहृतयः कदाचित्, पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम्। (कुमार० ३।६३)

३—पुरोमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामरांगनाः।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः॥ (शिशु० १।५१)

४—संतः सन्तु निरन्तरं सुकृतिनो विध्वस्तपापोदया
राजानः परिपालयन्तु वसुधां धर्मे स्थिताः सर्वदा।
काले सन्ततवर्षिणो जलमुचः सन्तु स्थिराः पुण्यतो
मोदंतां धनबद्धबांधवसुहृद्गोष्ठीप्रमोदाः प्रजाः॥ (मालती० १०)

५—तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम्।
मान्यान् मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रच्छादय स्वान् गुणान्
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयाम् एतत्सतां चेष्टितम्॥ (भर्तृ० २।७७)

६—कश्चैकांतं सुखमुपगतो दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण । (मेघ० ११२)

७—जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥ (भर्तृ० २।२३)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—वृक्ष पर चढ़कर साँप कौओं के बच्चों को खा जाता था ।

२—अपना धनुष चढ़ा कर अर्जुन कर्ण से कहते हैं, 'क्या अब तुम मुझसे लड़ने को तैयार हो ।'

३—दो पक्षियों द्वारा कन्धों पर एक कच्छप ढोया जा रहा है ।

४—तुम मुझे यहाँ क्यों छोड़ते हो ? मैं क्या करूँगी ? मैं किसकी शरण में जाऊँगी ?

५—इस वृक्ष की छाया के नीचे बैठा हुआ मैं उस स्त्री की प्रतीक्षा करूँगा (यावत् का प्रयोग कीजिये) ।

६—मैं अभी एक लम्बी यात्रा से लौटा हूँ; क्या तुम मुझे इतनी जल्दी काम करने के लिये कहते हो ?

७—भगवान् करे, तुम दोनों अपने सद्गुणों के अनुरूप पुत्र पाओ ।

८—माता पिता की आज्ञा मानो, विद्वानों का आदर करो, दूसरों की निन्दा में एक शब्द भी न बोलो और अपनी स्थिति से सन्तुष्ट रहो ।

९—ईश्वर करे गाएँ खूब दूध दें, समय पर जल बरसाने वाले बादलों के कारण पृथ्वी सब प्रकार के धान्य से पूर्ण होवे ।

१०—उसके राज्य की वास्तविक दशा का पता लगाने के लिये यतिवेषधारी गुप्तचर उसके राज्य भर में भेजे जायँ ।

११—घरों को तहस-नहस करता हुआ, निवासियों को निकालता हुआ और उनकी सम्पत्ति को जलाता हुआ, वह सारे देश को विध्वंस करने लगा ।

अष्टादश पाठ

विधिलिङ्

१६६—संस्कृत का विधिलिङ् (Potential Mood) अंग्रेजी अथवा लैटिन व्याकरण के Subjunctive mood से मिलता-जुलता है। परन्तु अंग्रेजी के Subjunctive mood के सभी प्रयोगों और भावों को विधिलिङ् नहीं व्यक्त करता, न तो इसका उतना व्यापक प्रयोग ही है जितना लैटिन के Subjunctive का। अंग्रेजी में Subjunctive mood स्वतन्त्र वाक्यों में नहीं प्रयुक्त होता; लैटिन में बिना किसी पूर्व-प्रयुक्त क्रिया के ही 'इच्छा' अर्थ को लाने के लिए Subjunctive mood का प्रयोग होता है, परन्तु इसका प्रयोग बहुधा आश्रित निश्चय वाक्यों में होता है। परन्तु संस्कृत में विधिलिङ् का प्रयोग दोनों दशाओं अर्थात् स्वतंत्र और आश्रित वाक्यों में होता है; जैसे, **नीचैराख्यं गिरिमधिवसेः** (मेघ० २६)। कृत्यं **घटेत सुहृदो यदि तत्कृतं स्यात्** (मालती० १)। आगे निरूपण किया जायगा कि विधिलिङ् किन-किन अर्थों में प्रयुक्त होता है।

१६७—विधिलिङ् निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है :—

(क) **सम्भावना, आदेश, इच्छा, प्रार्थना, आशा और क्षमता;**

(ख) जिन आश्रित उपवाक्यों में उपर्युक्त अर्थ दिखलाया जाता है उनमें भी विधिलिङ् प्रयुक्त होता है; और

(ग) जिन हेतुहेतुमद्भूतात्मक वाक्यों में एक कार्य किसी दूसरे कारणभूत कार्य पर आश्रित रहता है उनमें भी विधिलिङ् प्रयुक्त होता है।

१६८—**सम्भावना, आदेश, इच्छा,** इत्यादि के उदाहरण ये हैं—**लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्** (भर्तृ० ५)—परिश्रमपूर्वक पेरता हुआ पुरुष, सम्भव है, बालू में से भी तेल पा जाय। **मौर्यैर्भूषणविक्रयं नरपतौ को नाम सम्भावयेत्** (मुद्रा० ५)। कौन इस

बात की सम्भावना कर सकता था कि मौर्यराज गहने बेंच डालेगा। **जेतारं कार्तिकेयस्य विजयेय** (महावीर० ३)—क्या मैं कार्तिकेय के जीतने वाले को जीत लूँगा ? **मनसिजतरुः कुर्यान्मां फलस्य रसज्ञम्** (मालविका० ४)—कामदेव-वृक्ष मुझे अपने फल का स्वाद चखावे। **कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिम्** (कुमार० ३।१०)—मैं पिनाकपाणि महादेव जी का भी धैर्य छुड़ा सकता हूँ। **भो भोजनं लभेय** (सि० कौ०)—प्रार्थना करता हूँ, चाहता हूँ कि भोजन पा जाऊँ।

(क) विधिलिङ् अधिकतर इन बातों का बोध कराने के लिए प्रयुक्त होता है—आज्ञा देने में, उपदेश अथवा पथप्रदर्शनार्थक नियमों के विधान में, धर्म अथवा कर्तव्य का भार दिखलाने में; जैसे, **ऊनद्विवर्षं निखनेत्** (याज्ञ० ३;१ —दो वर्ष से कम उम्र वाले बच्चे को गाड़ देना चाहिए। **आपदर्थे धनं रक्षेत्** (चाण० २६)—विपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए। **सहसा विदधीत न क्रियाम्** (किरात० २।३०)—एकाएक (बिना सोचे-विचारे) कार्य नहीं कर बैठना चाहिए।

विशेष—**विधिनिमंत्रणामंत्रणाभीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्**। ३।३। १६१।—अर्थात् विधिलिङ् तथा लोट् दोनों ही—विधान करने में, निमन्त्रण देने में, किसी कार्य को करने की स्वीकृति देने में, किसी अवैतनिक कर्तव्य अथवा पद के बतलाने में, प्रश्न पूछने में और प्रार्थना करने में प्रयुक्त होते हैं। और **प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च**। ३।३।१६३। अर्थात् विधान, स्वीकृति या अनुमति, उपयुक्त समय का बोध कराने में विधिलिङ् लोट् और कृत्यप्रत्यय (तव्य, अनीय, यत्, ण्यत्)—सभी समान रूप से प्रयोग में लाए जा सकते हैं; जैसे, इह **भुंजीत या भुंक्ताम् भवान्**, **इहासीत भवान्** अथवा **इहास्यताम् आसितव्यं भवता**—आप यहाँ बैठ सकते हैं। **नीचैराख्यं गिरिमधिवसेः** (मेघ० २६)। **पुत्रमध्यापयेद् भवान्**—आप पुत्र को अवैतनिक कर्तव्य की दृष्टि से पढ़ा दें। किं भो **वेदमधीयीय उत तर्कम्**—श्रीमान् जी, क्या पढ़ूँ वेद या तर्कशास्त्र ? **भोजनं लभेय** अथवा **लभै** (सि० कौ०)।

अस्तु, उपर्युक्त अर्थों में जितना विधिलिङ् का प्रयोग प्रचलित है उतना लोट् अथवा कृत्यप्रत्ययों का नहीं।

१९९—**जब योग्यता** दिखाना अभीष्ट होता है तब कृत्यप्रत्यय (तव्य, अनीय, यत्, एयत्) अथवा विधिलिङ् प्रयुक्त होता है और कभी-कभी तृकारान्त संज्ञा, जैसे, **त्वं कन्यां वहेः; त्वं कन्याया वोढा,** अथवा **त्वया कन्या वोढव्या** (सि० कौ०)—तुम कन्या को व्याहने योग्य हो।

(क) जब क्षमता दिखलानी होती है तब विधिलिङ् अथवा कृत्य प्रत्यय (तव्य, अनीय, यत्, एयत्) प्रयुक्त हो सकते हैं, जैसे, **भारं त्वं वहेः** अथवा **भारस्त्वया वोढव्यः** (सि० कौ०)—तुम बोझा ढोने में समर्थ हो।

२००[1]—**किम्, कतर,** इत्यादि प्रश्नवाचक शब्दों के साथ विधिलिङ् अथवा सामान्यभविष्य निन्दा दिखलाने में प्रयुक्त होता है; जैसे, **कः कतरो वा हरिं निन्देत् निन्दिष्यति वा**—कौन हरि की निन्दा करेगा ?

(क)[2] जब आश्चर्य दिखलाना होता है और "यदि" शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता, तब विधिलिङ् की अपेक्षा सामान्यभविष्य का प्रयोग अधिक होता है; जैसे, **आश्चर्यमन्धो नाम कृष्णं द्रक्ष्यति** (सि० कौ०)—आश्चर्य है कि अन्धा आदमी कृष्ण को देख ले। परन्तु जब 'यदि' शब्द का प्रयोग होगा तब तो विधिलिङ् ही आवेगा; जैसे, **आश्चर्यं यदि सोऽधीयीत**—यदि वह पढ़ ले तो आश्चर्य है।

(ख)

२०१—सेक्शन १९७ में उल्लिखित आशा, प्रार्थना इत्यादि अर्थों का बोध कराने वाले आश्रित वाक्यों में भी विधिलिङ् आता है; जैसे, **आशंसेऽधीयीय** (सि० कौ०)—आशा करता हूँ कि मैं पढ़ूँगा। **आशंसा न हि नः प्रेते जीवेम दशमूर्धनि** (भट्टि० १९।५)—हम लोगों को आशा न थी कि हम लोग दशकन्धर रावण के मर जाने पर जियेंगे।

(क) इनफिनीटिव मूड के अर्थ में जब कि प्रधानक्रिया तथा इनफिनीटिव् क्रिया का कर्ता समान हो तो इच्छार्थक शब्दों के साथ, विधिलिङ् का प्रयोग होता है; जैसे, **भुंजीयेति इच्छति** (सि० कौ०) = भोक्तुमिच्छति, है चाहता कि खाऊँ अर्थात् खाना चाहता है।

१—किं वृत्ते (गर्हायां) लिङ् लृटौ ।३।३।१४४।

२—(चित्रीकरणे) शेषे लृडयदौ ।३।३।१५१।

२०२--आश्रित वाक्यों में प्रायः परिणाम अथवा अभिप्राय का बोध कराने के लिए विधिलिङ् का प्रयोग होता है; जैसे, **दोषं तु मे कंचित् कथय येन स प्रतिविधीयेत** (उत्तर० १)--मेरा कोई दोष बतलाओ ताकि वह सुधारा जाय।

२०३[1]—जहाँ आशा प्रकट की जाती है, पर कच्चित् शब्द द्वारा नहीं वहाँ विधिलिङ् का प्रयोग होता है; जैसे, **कामो मे भुंजीत भवान्**—यह मेरी आशा है कि आप खायँगे। परन्तु जब **कच्चित्** का प्रयोग होगा तब वाक्य इस प्रकार होगा--**कच्चिज्जीवति**--आशा करता हूँ कि वह जिन्दा है। **कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति** (मेघ० ८८)--ऐ रसिके, आशा करता हूँ कि तुम अपने स्वामी को याद करती हो क्योंकि तुम उनकी बड़ी प्यारी हो।

(क[2]) 'यद्' शब्द का प्रयोग किए बिना यदि **सम्भावय्, अपि,** अथवा **अपिनाम** शब्दों द्वारा आशा का बोध कराना होता है तो विधिलिङ् अथवा सामान्यभविष्य का प्रयोग होता है; जैसे, **सम्भावयामि भुंजीत भोक्ष्यते वा भवान्** (सि० कौ०)—आशा करता हूँ कि आप भोजन करेंगे। **अपि नाम भगवतीनीतिर्विजेष्यते** (मालती०७)—चाहता हूँ कि श्रीमती जी की नीति सफल होवे। **अपि जीवेत् स ब्राह्मण-शिशुः** (उत्तर० २)--क्या आशा करूँ कि वह ब्राह्मणबालक जीवित हो जायगा। परन्तु जब यद् शब्द का प्रयोग होता है तब इस प्रकार का वाक्य बनता है--**सम्भावयामि यद् भुंजीथास्त्वम्**।

(ख[3]) **इष्, कम्, प्रार्थ्** इत्यादि इच्छार्थक धातुओं का प्रयोग होने पर विधिलिङ् अथवा आज्ञा के रूप आते हैं; जैसे, **इच्छामि सोमं मिबेत् पिबतु वा भवान्** (सि० कौ०)--चाहता हूँ कि श्रीमान् जी सोम पिएँ।

२०४[4]—वाक्य में 'यद्' शब्द का प्रयोग होने पर, **काल, समय, वेला,** शब्दों के साथ विधिलिङ् का प्रयोग होता है; जैसे, **कालः-समयो-वेला वा यद् भवान् भुंजीत**---आप के भोजन करने का समय है।

१—कामप्रवेदनेऽकच्चिति ।३।३।१५३।

२—विभाषा धातौ सम्भावनवचनेऽयदि ।३।३।१५५।

३—इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ।३।३।१५७।

४—(काल समय वेलासु) लिङ् यदि ।३।३।१६८।

(ग)

२०५—**जिस वाक्य** में एक कार्य का होना दूसरे कार्य पर आश्रित दरशाया जाता है उसे हेतुबोधक या समययुक्त या सोपाधिक (Conditional) वाक्य कहते हैं। ऐसे सोपाधिक वाक्यों में पूर्वगामी उपवाक्य (antecedent) तथा अनुवर्ती या आनुषंगिक उपवाक्य (Consequent) दोनों में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। पूर्वगामी उपवाक्य (Conditional) में हेतु का उल्लेख रहता है और आनुषंगिक उपवाक्य (Consequent) में फल का निर्देश रहता है। 'अगर' के स्थान पर 'यदि' या 'चेत्' का प्रयोग किया जाता है; जैसे, **यद्यत्र तातः संनिहितो भवेत् ततः किं भवेत्** (शा० १)—यदि आज पिता जी यहाँ होते तो क्या होता? **दैवात् पश्येर्जगति विचरन्निच्छया मत्प्रियां चेद्, आश्वास्यादौ तदनु कथयेः माधवीयामवस्थाम्** (मालती० ६)—संसार भर में स्वेच्छानुसार घूमते-घामते यदि तुम मेरी प्यारी को देखना तो पहिले आश्वासन देना, तब फिर माधव की अवस्था का वर्णन करना। **कृत्यं घटेत सुहृदो यदि तत्कृतं स्यात्।**

विशेष—ध्यान दीजिएगा कि **'चेत्'** कभी भी वाक्य के आरम्भ में नहीं प्रयुक्त होता।

२०६—समययुक्त या सोपाधिक (Conditional) वाक्यों में प्रायः विधिलिङ् के स्थान पर वर्तमान काल अथवा सामान्यभविष्य का प्रयोग होता है; जैसे, **यदि स्थित्वा द्रक्ष्यति, कुप्यति प्रभुः**—यदि स्वामी जी उठकर तुम्हें देख लेंगे तो क्रोध करेंगे। **न चेद् ब्रवीषि प्रश्नान् अश्नामि त्वाम्** (दशकु० २। ६)—यदि मेरे प्रश्नों का उत्तर न दोगे तो तुम्हें खा जाऊँगा। **कृष्णं नंस्यति चेत्. सुखं यास्यति** (सि० कौ०)—यदि कृष्ण को प्रणाम करेगा तो सुख प्राप्त होगा।

विशेष—(क) कभी-कभी पूर्वगामी उपवाक्य (Antecedent) में वर्तमानकाल का और आनुषंगिक उपवाक्य (Consequent) में विधिलिङ् का प्रयोग होता है; जैसे, **यदि तस्य प्राणविपत्तिरुपजायते तदपि महदेनो**

भवेत् (कादम्० १६)—यदि उसकी मृत्यु हो जाय तो वह भी एक बड़ा पाप होगा। इसी प्रकार, **क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ** (भवेत्,)—(रघु० ८। ८७)।

(ख) जब आदरपूर्वक या विनम्रतापूर्वक बोलना होता है तो अनुवर्ती वाक्य (Consequent) में विधिलिङ् के स्थान पर आज्ञा का प्रयोग होता है; जैसे, **न चेदन्यकार्यातिपातो गृह्यतामातिथेयसत्कारः** (शा० १) यदि ऐसा करने से किसी दूसरे कार्य में क्षति न पहुँचे, तो कृपया अतिथिसत्कार स्वीकृत कर लीजिए।

(ग) जब समययुक्त अथवा सोपाधिक (Conditional) उपवाक्य बिल्कुल स्वीकारसूचक (Affirmative) तथा निश्चयात्मक होते हैं अथवा जब पूर्वगामी उपवाक्य तथा आनुषंगिक उपवाक्य दोनों ही में किन्हीं वास्तविक वस्तुस्थितियों का उल्लेख रहता है तो विधिलिङ् का प्रयोग न होकर वर्तमानकाल का ही प्रयोग होता है; जैसे, यदि बरसेगा तो हम लोग बाहर नहीं जा सकते—**यदि देवः वर्षति तर्हि वयं बहिर्गन्तुं न शक्नुमः**। यहाँ पर **देवो वर्षेत्** नहीं होगा।

अभ्यास

१—वयस्य, किं परमार्थत एव देव्या व्रतनिमित्तोऽयमारम्भः स्यात्। (विक्रमो० ३)

२—यदि त्वामीदृशमैक्ष्वाको राजा रामभद्रः पश्येत्तदाऽस्य हृदयं स्नेहेनाभिष्यंदेत्। (उत्तर० ५)

३—देव, यदि चन्द्रमस्युष्मा, दहने वा शीतलत्वमंशुमालिनि वा तमः सम्भाव्यते, ततो युवराजेऽपि दोषः। (कादम्० २८६)

४—यदि मे सहसा दर्शनपथान्नापयाति, नारोहति वा कैलासशिखरं, नोत्पतति वा गगनतलं, सर्वमेतदेनामुपसृत्य पृच्छामि। (कादम्० १३२)

५—लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियम्
श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्। (शा० ३)

६—परोक्षे कार्यहंतारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥ (चाण० १८)
७—अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेदवक्षयात् ।
रक्षितं वर्द्धयेत्सम्यग् वृद्धं तीर्थेषु निक्षिपेत् । (हितो० २)
८—उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥
(श्रीमद्० ३।२४)
९—भवेदभीष्ममद्रोणं धृतराष्ट्रबलं कथम् ।
यदि तत्तुल्यकर्मात्र भवान् धुर्यो न युज्यते ॥ (वेणी० ३)
१०—तन्नो देवा विधेयासुर्येन रावणवद्वयम् ।
सपत्नांश्चाधिजीयास्म संग्रामे च मृषीमहि ॥ (भट्टि० १९।२)
११—आददीध्वं महार्हाणि तत्र वासांसि सत्वराः ।
उद्धुनीयात सत्केतून् निर्हरेताग्यचंदनम् ॥ (भट्टि० ४)
१२—नानाकल्प्यमिदं ग्लायेद्यत्कृच्छ्रेषु भवानपि ।
न पृथग्जनवज्जातु प्रमुह्येत् पण्डितो जनः ॥ (भट्टि० १९।१७)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अपि नामोर्वशी--
गूढा नूपुरशब्दमात्रमपि मे कांतं श्रुतौ पातयेत्
पश्चादेत्य शनैः कराम्बुजवृते कुर्वीत वा लोचने ।
हर्म्येऽस्मिन्नवतीर्य साध्वसवशात् मन्दायमाना बलात्
आनीयेत पदात्पदं चतुरया संख्या ममोपान्तिकम् ॥ (विक्रमो० ३)
२—इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात् ।
* क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीतपयेत् ॥
(कुमार० ५।५)
३—फलार्थी नृपतिर्लोकान् पालयेद्यत्नमास्थितः ।
दानमानादितोयेन मालाकारोऽकुरानिव ॥ (पंच० १।८)
४—कौर्मं संकोचमास्थाय प्रहारानपि मर्षयेत् ।
प्राप्तकालं तु नीतिज्ञ उत्तिष्ठेत् कृष्णसर्पवत् । (हितो० ३)

५—किं वा तवात्यन्तवियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हृतजीवितेऽस्मिन् ।
स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः ॥ (रघु० १४।६५) ।

६—प्रसह्य मणिमुद्धरेत् मकरवक्त्रदंष्ट्रांकुरात्
समुद्रमपि संतरेत् प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।
भुजंगमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ (भर्तृ० २।४)

७—अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्यात्सानुरागेण कः
प्रज्ञाविक्रमशालिनोऽपि हि भवेत् किं भक्तिहीनात् फलम् ।
प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये
ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु च ॥ (मुद्रा० १)

८—स्वगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हंति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेद् अमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥ (रघु० ८।४६)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—अपना अभीष्ट मनोरथ किस प्रकार सिद्ध करूँ—यह सोचते ही सोचते सारी रात बीत गई ।

२—इस महान् शोकसागर में निमग्न वह सम्भवतः किस प्रकार स्वस्थ होंगे ।

३—सम्भव है उसकी मानसिक व्यथा कामदेव के प्रभाव से उत्पन्न हुई हो ।

४—तुम्हें अपने गुरुओं की तथा मातापिता की आज्ञा माननी चाहिए, सत्य बोलना चाहिए, सज्जनों का साथ करना चाहिए और सदा परमात्मा की महत्ता का चिन्तन करना चाहिए ।

५—यदि तुम इस घोरान्धकार में जाकर बाग से मेरे लिए फूल लाओ तो मैं तुम्हें निर्भीक समझूँ ।

६—चाहे उसका हृदय पाषाण का भी बना हो, तो भी इस स्त्री की हृदय-विदारिणी दशा देखकर वह करुणा से द्रवीभूत हो जायगा ।

७—उस अद्भुत वृत्तान्त को सुनकर मैं किंकर्तव्यविमूढ तथा किंवक्तव्यविमूढ हो गया ।

८—लोभी आदमी को द्रव्य देकर तथा मूर्ख को उसकी मर्जी के अनुसार आचरण करके वश में करना चाहिए।

९—सूर्य के अतिरिक्त और कौन आकाश के नैशान्धकारमालिन्य को दूर कर सकता है?

१०—यदि गरुड़ भी मुझसे पहिले रवाना हुए हों तो रथ के इस वेग से मैं उन्हें भी पकड़ लूँ (पकड़ सकता हूँ)।

११—चाहता हूँ कि दुष्ट चाणक्य नन्दवंश के पक्ष में चला आवे।

१२—आशा करता हूँ (कच्चित्) कि आप की तपस्या निर्विघ्न चल रही है।

ऊनविंश पाठ

लङ्, लिट् तथा लुङ्

अनद्यतनभूत, परोक्षभूत तथा सामान्यभूत

२०७—संस्कृत में अतीत समय का बोध कराने के लिए तीन लकार होते हैं--(१) अनद्यतनभूत (लङ्) (२) परोक्षभूत (लिट्) (३) सामान्यभूत (लुङ्)। प्रारम्भ में प्रत्येक का पृथक् अर्थ था। प्राचीन ग्रन्थों में, अथवा जब संस्कृत बोलचाल की भाषा थी उस जमाने में लिखे हुए ग्रन्थों में ये तीनों लकार अपने ठीक-ठीक अर्थ में प्रयुक्त होते थे। परन्तु आगे चलकर, जब संस्कृत बोलचाल की भाषा न रह गई, तब ग्रन्थकार इन तीनों कालों का मनमाना प्रयोग करने लगे। जिन अर्थों में ये तीनों लकार मौलिकतया प्रयुक्त होते थे वे ये हैं--

पाणिनि के मतानुसार **'अनद्यतने लङ्'** अर्थात् आज से पूर्व हुए कार्य का बोध कराने के लिए लङ्लकार का प्रयोग होता है। **'परोक्षे लिट्'** अर्थात् लिट् लकार आज से पहले हुए या किए हुए ऐसे कार्य का बोध कराता है जिसे वक्ता ने न देखा हो। **'भूतार्थे लुङ्'** अर्थात् लुङ् लकार साधारणतया सभी प्रकार के भूत कालों का बोध कराता है। इसका सम्बन्ध किसी विशेष समय से नहीं होता। यह सभी प्रकार की भूत घटनाओं को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त होता है। आज से पूर्व किया हुआ कार्य परोक्षभूत अथवा **अनद्यतनभूत** द्वारा बताया जाता है। तो **सामान्यभूत** के लिए रह जाता है ऐसा कार्य जो अभी बहुत ही हाल में (जैसे आज ही) हुआ हो अथवा जो किसी वर्तमान कार्य से सम्बन्ध रखता हो। अतः **सामान्यभूत** से साधारणतया किसी कार्य का किसी भी अतीत काल में, अथवा बहुत ही हाल में (जैसे वर्तमान ही दिन के किसी समय में) होना पाया जाता है। **अनद्यतनभूत** तथा **परोक्षभूत** प्रायः सुदूरवर्ती भूतकाल की घटनाओं का वर्णन करने में

प्रयुक्त होते हैं। **सामान्यभूत** आसन्न (हाल के) भूतकालिक कार्यों में आये हुए संलापों में प्रयुक्त होता है, परन्तु निश्चयपूर्वक उल्लिखित भूतकाल का बोध कराने के लिए अथवा घटनाओं का वर्णन करने के लिए यह कदापि प्रयुक्त नहीं होता। इस प्रकार, सारे **पुरुषसूक्त** (ऋग्वेद १०।६०) में केवल **अनद्यतनभूत** तथा **परोक्षभूत** का ही प्रयोग हुआ है और वहाँ उल्लिखित घटनाएँ अतीत काल से सम्बन्ध रखती हैं। **ऐतरेय** ब्राह्मण में आसन्न (हाल में) कार्य **सामान्यभूत** द्वारा दिखलाए गये हैं, जैसे, **स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशांगुलम्, गावो ह जज्ञिरे तस्मात्** इत्यादि। **अजनि ते वै पुत्रा यजस्व मामनेनेति**। परन्तु बाद के संस्कृत-लेखकों ने अनद्यतनभूत, परोक्षभूत तथा सामान्यभूत के इस अन्तर की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया और **किसी भी अतीत कार्य** का बोध कराने के लिए तीनों का मनमाना प्रयोग किया, चाहे वह **अतीत कार्य** हाल का हो, चाहे सुदूर का हो, चाहे वक्ता द्वारा देखा गया हो या न देखा गया हो; जैसे, **तदाऽहं किमकरवं क्वागमं किं व्यलपम् इति सर्वमेव नाज्ञासिषम्** (कादम्० १६६)।

२०८—कभी-कभी जब हाल से सम्बन्ध रखने वाला प्रश्न करना होता है तो **अनद्यतनभूत** (लङ्) का प्रयोग करते हैं; जैसे, **अगच्छत् किं स ग्रामम्**—क्या वह गाँव चला गया। परन्तु जब सुदूरवर्ती भूतकाल दिखाना हो तो केवल परोक्षभूत ही का प्रयोग करना चाहिये; जैसे, **कंसं जघान किम्** (सि० कौ०)—क्या उसने कंस को मार डाला?

२०९—**परोक्षभूत** (लिट्)—उत्तम पुरुष में परोक्षभूत कर्ता के मस्तिष्क की अचेतनावस्था अथवा उन्माद का बोध कराता है। अतः इस अर्थ के अतिरिक्त अन्य किसी भी अर्थ में परोक्षभूत का प्रयोग उत्तम पुरुष में नहीं करना चाहिए; जैसे, **बहु जगदपुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहम्** (शिशु० ११।३६)—उन्मत्त होने के कारण मैं उसके सामने बहुत बड़बड़ाया।

(क) किसी के विरुद्ध जो कहा जाता हो या कहा गया हो उसके विपरीत उससे कहकर जब उस व्यक्ति से सच्ची वस्तुस्थिति छिपानी होती है तब परोक्षभूत के उत्तम पुरुष का प्रयोग होता है; जैसे, **कलिंगेष्ववात्सीः किम्**—क्या तुम

कलिंग देश में रहे थे ? **नाहं कलिंगान् जगाम** (सि० कौ०)—मैं कलिंग देश नहीं गया था।

२१०[1]—**सामान्यभूत** (लुङ्)—हाल के अतीत काल अथवा अनिश्चित अतीतकाल का बोध कराने के अतिरिक्त सामान्यभूत **नैरन्तर्य** (Continuousness) का भी बोध कराता है। इस अर्थ में अनद्यतनभूत कदापि नहीं आ सकता; जैसे, **ब्राह्मणेभ्यो यावज्जीवमन्नमदात्** (न कि अददात्)—उसने जिन्दगी भर ब्राह्मणों को भोजन दिया अर्थात् भोजन देना जिन्दगी भर जारी रक्खा।

(क) **'स्म'** से अ-संयुक्त **पुरा** के योग में अनद्यतन भूत, परोक्षभूत, अथवा वर्तमान कोई भी प्रयोग में आ सकता है; जैसे, **वसंतीह पुरा छात्रा अवात्सुर्-वसन्, ऊषुः वा**—यहाँ पहिले विद्यार्थी रहते थे। परन्तु **पुरास्म** के साथ केवल वर्तमान आता है; जैसे, **यजति स्म पुरा**—वह प्राचीन काल में यज्ञ करता था।

२११—**मा** या **मास्म** के अनन्तर सामान्यभूत का **'अ'** लुप्त हो जाता है। जब सामान्यभूत मध्यम पुरुष अपने 'अ' को लोप कर 'स्म' के साथ आता है तो आज्ञा का अर्थ देता है; जैसे, **वयस्य, मा कातरो भूः** (मालविका०४) —मित्र, डरो मत। **भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः** (शा० ४)—अपमानित होने पर भी क्रोध के कारण पति के विरुद्ध आचरण मत करना।

मा मूमुहत् खलु भवंतमनन्यजन्मा
मा ते मलीमसविकारघना मतिर्भूत्।
इत्यादि नन्विह निरर्थकमेव.....(मालती० १)

कामदेव तुझे मोहित न कर देवे, तेरा मस्तिष्क गन्दे विचारों से न भर जाय—इस विषय में यह कहना अथवा ऐसा ही कुछ और कहना व्यर्थ है।

अभ्यास

१—**तपोवनवासिनामुपरोधो मा भूत्** (शा० १)।

१—क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः। ३। ३। १३५।

२—नरपतिराहारं निर्वर्त्य आस्थानमंडपमयासीत्।
तत्र चावनिपतिभिरमात्यैर्मित्रैश्च सह तास्ताः कथाः कुर्वन् मुहूर्त-मिवासांचक्रे। (कादम्० १७)

३—शुकनासोऽपि महांतं कालं तं राज्यभारमनायासेनैव प्रज्ञाबलेन बभार। यथैव राजा सर्वकार्याण्यकार्षीत्तद्वदसावपि द्विगुणित-प्रजानुरागश्चकार। (कादम्० ५८)

४—आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां
ये व्याहारास्तेषु मा संशयोऽभूत्। (उत्तर० ४)

५—जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्॥ (रघु० १।२१)।

६—अधिगतपरमार्थान् पंडितान् मावमंस्थाः
तृणमिव लघुलक्ष्मीर्नैवतान् संरुणद्धि। (भर्तृ० २। १७)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—चंडवर्मा प्राणैरेनं न व्ययूयुजत्। अपि त्वनीनयदपनीताशेषशल्यमकल्पसंधो बन्धनगृहमजीगणच्च गणकसंघैरद्यैव क्षपावसाने विवाहनीया राजदुहितेति। (दशकु० २।१)

२—दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः, प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे।
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणम् भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्॥
(रघु० ३।१४)

३—मा भूदाश्रमपीडेति परिमेयपुरःसरौ।
अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव॥ (रघु० १।३७)

४—भूयस्तपोव्ययो मा भूद्वाल्मीकेरिति सोऽत्यगात्।
मैथिलीतनयोद्गीतनिःस्पंदमृगमाश्रमम्॥ (रघु० १५।३७)

५—क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥ (श्रीमद्० १।३)

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—जब मैंने जाना कि नींद में बड़बड़ाते हुए मुझे मेरे मित्रों ने सुन लिया है तो मैं लज्जित हो गया।

२—इस विषय में चिन्तित न होओ; तुम्हारी अनुपस्थिति में मेरे पिता जी तुम्हारे पुत्र की देख-रेख रक्खेंगे।

३—कभी धर्मशास्त्रविषयक बातें करते हुए, कभी चित्र खींचने में संलग्न होकर, उसने सारा दिन अपने मित्रों की मण्डली में बिता दिया।

४—तुमने मेरी पुस्तक क्यों बरबाद कर दी? नहीं, महाशय जी, मैंने उसे देखा तक नहीं।

५—जब मैं उनसे मिलने गया तो मैंने उन्हें घर पर नहीं पाया।

६—मेरे पिता जी ने पूर्वजों की सारी सम्पत्ति बाँट दी है, ताकि हम लोग बाद में एक दूसरे से झगड़ा न करें।

७—सभी आश्रमों के चारों ओर राजा ने अपने रक्षकों को स्थापित कर दिया है, ताकि ऋषि लोगों की तपस्या में कोई बाधा न पड़े।

८—मैं यह देखकर प्रसन्न हूँ कि गरीबों की दशा सुधारने में तुम्हारे सारे प्रयत्न सफलीभूत हुए।

९—वादी के सारे गवाह आ गए हैं, अतः अब मुकदमे की सुनवाई आरम्भ होनी चाहिए।

१०—कई वर्षों तक आखेट करने में अपना जीवन बिताकर, अन्त में वह अकस्मात् एक विकराल व्याघ्र के मुख में जा गिरा।

विंशतितम पाठ

दोनों भविष्य काल तथा क्रियातिपत्ति

२१२—संस्कृत में भविष्यकालिक क्रिया का बोध कराने के लिए दो भिन्न-भिन्न लकार हैं—(१) अनद्यतन भविष्य (लुट्) और (२) सामान्य भविष्य (लृट्)। दोनों में वही अन्तर है जो अनद्यतन भूत और सामान्य भूत में; सिवा इसके कि अनद्यतन भूत और सामान्य भूत भूतकाल से सम्बन्ध रखते हैं और अनद्यतन भविष्य और सामान्य भविष्य भविष्यकाल से सम्बन्ध रखते हैं; अर्थात् लुट् लकार (अनद्यतन भविष्य) ऐसी क्रिया का बोध कराता है जो आज न होगी, और लृट् लकार (सामान्य भविष्य) साधारणतया सभी प्रकार की भविष्य क्रियाओं का—हाल में भी होने वाली भविष्य क्रियाओं का—बोध कराता है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकला कि **अनद्यतन भविष्य आज न होने वाली किसी दूरवर्ती भविष्यकालिक क्रिया का बोध कराता है। सामान्य भविष्य** अनिश्चित भविष्य काल, आज का भविष्य काल, हाल का भविष्य काल और निरन्तर भविष्य काल—का बोध कराने में प्रयुक्त होता है; जैसे, **पंचषैरहोभिर्वयमेव तत्र गन्तारः** (मुद्रा० ५)—हम लोग स्वयं ही पाँच छः दिनों में वहाँ जायँगे। **एते··· उन्मूलितारः कपिकेतनेन** (किरात० ३। २२)—वे लोग कपिध्वज अर्जुन के द्वारा नष्ट कर दिए जायँगे। **यास्यत्यद्य शकुन्तला** (शा० ४)—शकुन्तला आज विदा हो जायगी। **सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः** (मेघ०९)—आकाश में, नेत्रों को सुन्दर लगने वाले तुझ (मेघ) को बकुले सेएँगे। ग्रन्थकारों ने इन दोनों लकारों के प्रयोग में इतनी मनमानी नहीं की है जितनी अनद्यतन भूत, परोक्ष भूत और सामान्य भूत के प्रयोग में। अनद्यतन भविष्य बहुत कम प्रयोग में आता है। इसका प्रयोग सुदूरवर्ती भविष्य (आज का भविष्य नहीं) का बोध कराने में और सामान्य भविष्य का प्रयोग किसी भी अनिश्चित भविष्य काल का बोध कराने में होता है।

२१३—जब किसी भविष्य क्रिया की अत्यन्त घनिष्ठ समीपता दिखानी होती है, तो वर्तमान अथवा भविष्य कोई भी प्रयोग में लाया जा सकता है; जैसे, **कदा गमिष्यसि—एष गच्छामि गमिष्यामि वा** (सि० कौ०)—कब जाओगे ? अभी जाऊँगा ।

२१४[1]—जब समयुक्त (conditional) वाक्य में आशा प्रकट की जाती है, तब भविष्य काल का बोध कराने के लिए सामान्य भूत, वर्तमानकाल, या सामान्य भविष्य कोई भी प्रयोग में लाया जा सकता है; जैसे, **देवश्चेदवर्षीद्, वर्षति, वर्षिष्यति वा धान्यमवाप्स्म वपामो वप्स्यामो वा** (सि० कौ०)—यदि वर्षा होगी तो नाज बोवेंगे ।

२१५—कभी-कभी जब किसी से कोई कार्य करने के लिए विनम्रता-पूर्वक कहा जाता है, तब लोट् के अर्थ में सामान्य भविष्य प्रयोग में आता है; जैसे, **तदा मम पाशांश्छेत्स्यसि** (हितो० १)—बाद में मेरा जाल काट देना । **पश्चात् सरः प्रतिगमिष्यसि मानसं तत्** (विक्रमो० ४) ।

२१६—जहाँ क्रिया का न होना या न किया जाना दरशाना होता है, वहाँ क्रियातिपत्ति (लृङ्) का प्रयोग होता है । या जहाँ पर पूर्वगामी उपवाक्य की असत्यता दरशाई जाती है, वहाँ भी क्रियातिपत्ति का प्रयोग होता है । पूर्वगामी उपवाक्य (Antecedent) और अनुगामी उपवाक्य (Consequent) दोनों में क्रियातिपत्ति के रूप लाए जाने चाहिएँ; जैसे, **यदि सुरभिमवाप्स्यस्तन्मुखोच्छ्वासगन्धम्, तव रतिरभविष्यत् पुण्डरीके किमस्मिन्**—(विक्रमो०४)—यदि तुमने उसके साँस की सुगन्धि पाई होती तो क्या तुम्हारे मन में इस कमल के प्रति जरा भी रुचि हुई होती ?

भट्टि ने क्रियातिपत्ति का प्रयोग बड़े व्यापक रूप में किया है, पर संस्कृत-ग्रन्थकारों की परम्परा में उसको कहीं भी समर्थन नहीं मिलता ।

टिप्पणी—संस्कृत में क्रियातिपत्ति का प्रयोग ऐसे स्थलों पर नहीं किया जाना चाहिए जहाँ केवल यह दरशाना हो कि अमुक कल्पित दशा में इस प्रकार

१—आशंसायां भूतवच्च ।३।३।१३२।

का परिणाम पैदा होगा; जैसे, यदि वह यहाँ होता तो वीरतापूर्वक अपने देश की रक्षा करता—यदि सोऽत्र सन्निहितो भवेत्तर्हि स्वदेशं वीरवद् रक्षेत् ।

कालों तथा वृत्तियों के प्रयोग पर कुछ और विचार

२१७—वर्तमान, भूत तथा भविष्य के भिन्न-भिन्न रूपों के विवरण तथा उनकी जटिलताएँ संस्कृत में नहीं मिलतीं । एक प्रधान काल होता है और भिन्न-भिन्न रूप उसी काल द्वारा प्रकट किए जाते हैं । इसीलिए संस्कृत के विद्यार्थियों को इन कालों के भिन्न-भिन्न रूपों का ठीक उन्हीं के समकक्ष संस्कृत लकारों द्वारा अनुवाद करने में बड़ी अड़चन पड़ती है । निम्नलिखित सेक्शनों में इस विषय पर कुछ नियम दिए जाते हैं और पूर्वगामी तीन पाठों में जो कुछ लिखा गया है, इनमें उसी का अधिक विस्तार के साथ निरूपण किया गया है ।

वर्तमान, भूत तथा भविष्य

२१८—जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, संस्कृत का वर्तमान काल बहुत से उन्हीं अर्थों का बोध कराता है जिनका अंग्रेजी का वर्तमान काल (सेक्शन १८६) । अतीतकालिक क्रिया से सम्बन्ध रखने वाले तीनों भूतकालों में से किसी भूतकाल के द्वारा भूतकालिक क्रिया प्रकट की जा सकती है । भविष्यकालिक क्रिया साधारणतया दोनों भविष्यकालिक रूपों द्वारा प्रकट की जाती है; हाँ, कभी-कभी विधिलिङ् द्वारा भी प्रकट की जाती है । (सेक्शन १६८) ।

२१६—सातत्यबोधक अथवा नैरन्तर्यबोधक (Continuous) रूपों का अनुवाद संस्कृत में केवल सामान्य रूपों द्वारा किया जा सकता है । सातत्य-बोधक वर्तमान काल (Present Continuous), सातत्यबोधक भूत काल (Past Continuous), और सातत्यबोधक भविष्यकाल (Future Continuous)—इतने सातत्यबोधक काल होते हैं । "वह अपना पाठ पढ़ रहा है" का अनुवाद "स पाठमधीते" होगा, न कि 'सोऽधीया-नोऽस्ति' । सातत्यबोधक वर्तमान (Continuous form) वस्तुतः अथवा सच्चे अर्थों में वर्तमान काल है (बेनकृत व्याकरण पृष्ठ १८६) । "इस

समय लड़के खेल रहे हैं" का अनुवाद "**बालका अधुना क्रीडन्ति**" होगा। "सूर्य चमक रहा था" का अनुवाद "**रविरतपत्**" होगा (न कि तपन्नासीत्)। "वह पाठ तैयार करता रहेगा" का अनुवाद "**स पाठमध्येष्यते**" होगा।

विशेष—सेक्शन १४५ में जैसा नियमित सातत्य (regular Continuity) बताया गया है, वैसा नियमित क्रिया-सातत्य जहाँ प्रकट करना अभीष्ट होता है, वहाँ अस्धातु में शानच् जोड़ कर काम चलाते हैं। जब ये सातत्यबोधक रूप (Continuous forms) आश्रित वाक्यों में आते हैं, तब शत्रन्त तथा शानजन्त की भाव-सप्तमी का रूप बड़े मजे में प्रयोग में लाया जा सकता है। "जब मंत्री बोल रहा था, उस समय सभा में एक दूत ने प्रवेश किया" का अनुवाद "**भाषमाणेऽमात्ये कश्चिद्दूतः सभां प्राविशत्**" होगा।

२२०—बलबोधक रूपों (Emphatic forms) का अनुवाद एव नूनम्, खलु अथवा ऐसे ही किसी निश्चयबोधक शब्द को साधारण रूपों के साथ जोड़कर कर सकते हैं; जैसे, "मैं तुझे अपराधी समझता तो हूँ" का अनुवाद "**अहं त्वामपराधिनं मन्ये खलु-एव**" अथवा "**नूनमहं त्वामपराधिनम्मन्ये**", "उसने असत्य भाषण तो किया" का अनुवाद "**सोऽसत्यमभाषत एव-खलु**" होगा।

पूर्ण तथा उसके सातत्यबोधक रूप

Perfect and its Continuous Forms

२२१—पूर्ण वर्तमान (Present Perfect) की क्रिया लुङ् लकार (सामान्य भूत) अथवा क्तवतु द्वारा प्रकट की जाती है; जैसे, "जो कुछ पाप मैंने दिन में किया है" का अनुवाद '**यदह्ना पापमकार्षम्**' होगा "मैंने अपना काम कर डाला है" का अनुवाद '**अहं स्वकार्यं सम्पादितवान्**' होगा। कभी-कभी अनद्यतन भूत द्वारा और कभी-कभी परोक्ष भूत द्वारा भी इसका अनुवाद किया जाता है; जैसे, "उसने अपना भाषण समाप्त कर दिया है" का अनुवाद '**स भाषणमवसितवान् अथवा भाषणाद् व्यरंसीत् अथवा व्यरमत् अथवा विरराम।**'

२२२—आश्रित वाक्यों में आने वाले पूर्ण भूत भाव-सप्तमी द्वारा प्रकट किए जाते हैं; जैसे, "जब वह बिदा हो गया, तब मैं लौटा" का अनुवाद **'तस्मिन्नपक्रान्तेऽहं प्रत्यागच्छम्'** होगा। "जब मैं अपना पाठ पढ़ चुका, तब पाठशाला गया" का अनुवाद **'पाठानधीत्य शालामगच्छम्'** होगा। कभी-कभी केवल क्त और क्तवतु द्वारा अनुवाद होता है; जैसे, 'ऐसा कह चुकने वाले से मैंने कहा—'अब जाओ'—**'इत्युक्तवन्तं व्रज साधयेत्यहमब्रवम्।'** 'जो क्षत हो चुका था, उसको उसने अच्छा कर दिया'—**'स तमचिकित्सत'**।

२२३—धातु में क्त और क्तवतु लगाकर भू धातु के विधिलिङ् के रूप द्वारा अथवा कर्मवाच्य या भाववाच्य द्वारा पूर्ण भविष्य प्रकट किया जा सकता है। 'वह वहाँ अब तक चला गया होगा'—**अनेन समयेन स तत्र गतो भवेत्** अथवा **तेन तत्र गन्तव्यम्।**

२२४—पूर्ण-सातत्यबोधक रूपों (Perfect Continuous forms) के उदाहरण ये हैं—मैं करता रहा हूँगा, मैं करता रहा था, मैं करता रहा हूँ। इनका अनुवाद तीन प्रकार से किया जा सकता है (१) कालवाचक शब्दों के साथ साधारण लकारों का रूप रखकर; जैसे, ता चिताग्निवसतः (हर्ष चरित) (२) आस्, वस्, अथवा स्था (सेक्शन १४५) के सदृश (Corresponding) लकारों के रूपों के साथ शत्रन्त और शानजन्त शब्द रखकर; जैसे, **गीतसमाप्त्यवसरं प्रतीक्षमाणस्तस्थौ** (कादम्०) अथवा (३) शत्रन्त और शानजन्त की षष्ठी का रूप चलाकर और कर्ता को भी षष्ठी में रखकर; जैसे, मैं इसे तीन दिन से करता रहा हूँ—**इदं कुर्वतो मम दिनत्रयं जातम्।** 'वह वहाँ कितने समय तक ठहरता रहा था'—**तत्र स्थितस्य तस्य कियान् कालो व्यतीतः।**

२२५—वह करने जा रहा है या वह करने वाला है, वह करने वाला था, वह करने वाला होगा—ऐसे वाक्यों का अनुवाद तुमुनन्त के साथ काम या मनः जोड़कर किया जाता है (सेक्शन १८६); जैसे, **कर्तुकामोऽस्ति-बभूव-भविष्यति वा।** आश्रित वाक्यों में इनका अनुवाद **स्यत्-स्यमान** द्वारा भी किया जा सकता है; जैसे, जब वह जाने वाला था, तो मैंने उससे इस प्रकार कहा—**गमिष्यन्तं** अथवा **गन्तुकामं तमहमवोचम्।**

will and shall

गा, गी, गे

२२६--साधारण भविष्य काल का बोध कराने वाला उत्तम पुरुष के साथ Shall (गा) तथा मध्यम और प्रथम पुरुष के साथ will सामान्य भविष्य अथवा विधिलिङ् द्वारा अनुवादित किया जा सकता है; जैसे, मैं इसे करूँगा--**अहं तत् कुर्याम** अथवा **करिष्यामि**। वह वहाँ जायगा--**स तत्र गच्छेत्** अथवा **गमिष्यति**।

२२७--दृढ़ संकल्प अथवा इच्छा का बोध कराने वाला will उत्तम पुरुष के साथ आने पर इच्छार्थक धातुओं के वर्तमान काल द्वारा अथवा एव या इसी प्रकार के निश्चयबोधक शब्दों को सामान्य भविष्य के रूपों के साथ लगाकर अनूदित किया जा सकता है; जैसे, I will do it--**अहं तत्कर्तुमिच्छामि** अथवा **अहं तत्करिष्याम्येव**। Even if death be the result, I will do it--**यद्यपि तत् मृत्युपर्यवसायि भवेत्, तथाप्यहं तत्करिष्याम्येव**।

२२८—मध्यम पुरुष तथा प्रथम पुरुष के साथ आनेवाले Shall से वक्ता की **आज्ञा, धमकी** अथवा **आत्म-निश्चय** प्रकट होता है। ऐसे वाक्यों का अनुवाद विधिलिङ् द्वारा अथवा **आज्ञापय्**--सरीखे किसी आज्ञार्थक शब्द द्वारा, अथवा धातु के प्रेरणार्थक रूप के भविष्य काल के साथ, वक्ता को प्रेरणार्थक का कर्ता बना कर किया जाता है; जैसे, The son shall obey his father--**पुत्रः पितुराज्ञामनुरुध्येत**। Thou shall go to the castle--का अर्थ है 'I command thee to go to the castb'—**दुर्गं गन्तुं त्वामाज्ञापयामि***। He shall do it- **अहं तं तत् कारयिष्यामि, अहं तं गमिष्यामि**। कभी-कभी ऐसे वाक्यों का अनुवाद **तव्य, अनीयर्, यत्, एयत्** प्रत्ययों के साथ **एव, अवश्यम्** आदि लगा कर किया जाता है; जैसे, Thou shalt not kill him--

* अनुवादक की राय में यह प्रयोग अशुद्ध है--'समानकर्तृकेषु तुमुन्' सूत्र का उल्लंघन होता है।

त्वया स नैव हन्तव्यः, Thou shalt not move even a step from this place—**त्वयास्मात्स्थानात् पदात् पदमपि न दातव्यम्**

(२) जब Shall से प्रतिज्ञा का बोध होता है, तब किसी निश्चय-बोधक शब्द के साथ विधिलिङ् अथवा सामान्य भविष्य का रूप रखकर अनुवाद किया जा सकता है; जैसे, He shall be my prime minister—**स मम प्रधानसचिवो भवेत्** (भविष्यति) **इत्यहं निश्चयेन कथयामि** अथवा **तं प्रधानसचिवं करिष्याम्येव।**

२२६—अप्रत्यक्ष कथन (Indirect Speech) में आया हुआ shall सभी पुरुषों के साथ साधारण भविष्य काल का बोध कराता है और सामान्य भविष्य अथवा विधिलिङ् द्वारा अनूदित किया जा सकता है; जैसे, You say, you shall do it—**वयं तत् करिष्यामः कुर्याम वा इति यूयं भणथ।** कर्ता का दृढ़ संकल्प प्रकट करने वाला तथा सभी पुरुषों के साथ प्रयुक्त होने वाला Will सेक्शन २२७ में बताई हुई विधि द्वारा अनूदित किया जा सकता है; He says, he will write—**अहमवश्यं लेखिष्यामीति स वदति।**

२३०—प्रश्नवाचक वाक्यों में, उत्तमपुरुष को छोड़ कर सभी पुरुषों के साथ आने वाले तथा प्रष्टव्य पुरुष की इच्छा प्रकट करने वाले Will और Shall का अनुवाद लोट् अथवा विधिलिङ् द्वारा किया जा सकता है। जब वाक्य के कर्ता की इच्छा दिखलाना अभीष्ट हो, तब इच्छार्थक धातुओं के द्वारा अनुवाद किया जाता है; जैसे, Shall I or he go?—**गच्छेयम् किम्**, अथवा **गच्छानि किम्, गच्छेत् किम्** अथवा **गच्छतु किम्।** Shall you go? **गच्छेत किम्, गन्तुं शक्नुयात् किम्।** Will you or he go?—**गन्तुमिच्छथ किम्** अथवा **गन्तुमिच्छति किम्।** परन्तु जब will प्रश्नवाचक वाक्यों में आता है और साधारण भविष्य काल का बोध कराता है, तब वह सामान्य भविष्य द्वारा अनूदित होता है; जैसे, Will he go there? **तत्र गमिष्यति किम्।** Will you come to my house? **मम गृहमागमिष्यथ किम्।**

Should and Would

२३१—अनर्कितोपपन्न अथवा आपातिक (Contingent) भविष्य काल, कर्तव्यता अथवा धर्म का बोध कराने वाले Should का अनुवाद विधिलिङ् (सेक्शन १६८) अथवा कृत्य प्रत्ययों से होता है। परन्तु जब (Shold से युक्त वाक्य संदेह अथवा अविश्वास-पूर्ण अर्थ प्रकट करता है; जैसे, I Should think so, तो ऐसे वाक्यों का अनुवाद '**वितर्कः**' या '**मतिः**' की सहायता से करना चाहिये। उक्त अंग्रेजी वाक्य का अनुवाद होगा '**इति मे वितर्कः अथवा मतिः**'।

२३२—दैवयोग या यदृच्छा (Contingency) अथवा इच्छा बोध कराने वाले Would का अनुवाद विधिलिङ् द्वारा होता है (सेक्शन १६८)। जब Would से किसी स्वाभाविक या आभ्यासिक कार्य (habitual action) का बोध होता है तो केवल वर्तमान काल का प्रयोग होता है; जैसे, **कालं नयति**--अपना समय व्यतीत किया करता था। **पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलम्** (शा० ४)—वह पहिले जल नहीं पीती थी। यदि वह यहाँ उपस्थित हुए होते तो क्या ही अच्छा हुआ होता—**यदि सोऽत्र संनिहितः स्यात् तर्हि अहो शोभनं भवेत्**।

(क) प्रश्नवाचक वाक्यों में आने वाले would और Should का वैसे ही अनुवाद किया जाता है; जैसे, will और Shall का; जैसे, Should I or he go out ? **वहिर्गच्छेयम्**—**गच्छानि किम्** (**गच्छेत् अथवा गच्छतु किम्**)। Would you do this ? **यूयमेतत् करिष्यथ किम्** अथवा **कर्तुमिच्छथ किम्**।

May (might) and Can (could)

२३३—**सम्भावना, स्वीकृति, अभिप्राय** का बोध कराने वाला may विधिलिङ् से अनूदित होता है; जैसे, **अक्षैर्दीव्येयमिति प्रत्यहमत्रायामि**—यहाँ मैं प्रतिदिन इसलिए आता हूँ कि जुआ खेलूँ (अभिप्राय सूचित करता

है) परन्तु जब may से इच्छा का बोध होता है, तब वह **विधिलिङ्** अथवा **आज्ञा** अथवा **आशीर्लिङ्** से अनूदित होता है।

२३४—Can (could) **सकना** सदैव शक्ति का बोध कराता है, न कि स्वीकृति का। प्रधान क्रिया में **तुमुन्** जोड़कर तथा **सकना** अर्थ वाली किसी क्रिया का प्रयोग कर के इसका अनुवाद किया जाता है; जैसे, मैं इसे कर सकता हूँ—**तत् कर्तुं शक्नोमि—पारयामि—समर्थः वा !**

२३५—Might का अनुवाद साधारणतया विधिलिङ् से होता है; जैसे, It might be so—ऐसा हो सकता है—**एवं स्यात्**। कभी-कभी कृत्य प्रत्यय द्वारा अनुवाद करते हैं; जैसे, He might be me friend—सम्भव है, वह मेरा मित्र हो—**कदाचिदनेन मम मित्रेण भवितव्यम्**।

(क) यदि पूर्णकाल (perfect tense) के साथ आया हुआ might **सम्भावना** सूचित करता हो. तो वह विधिलिङ् अथवा क्त प्रत्यय द्वारा अनूदित होता है; जैसे, He mieght have done it– सम्भव है, उसने यह कार्य किया हो—**तेनैतत् कृतं स्यात्-कतव्यम्**। इसी प्रकार I could have done it—मैं इसे कर सका होता—**मयैतत् कर्तुं शक्यमासीत् (किन्तु न कृतम्)**।

Must and Ought

२३६—**आवश्यकता, बाह्य शक्ति, निश्चय अथवा अवश्यम्भावी परिणाम** का बोध कराने वाला must सर्वदा कृत्य प्रत्यय द्वारा अनूदित होता है; जैसे, you must go–**त्वया गन्तव्यम्**। He must obey me—**अहं तेनानुरोद्धव्यः**।

२३७—Ought भी उपरोक्त प्रकार से अनूदित होता है; जैसे, You ought to learn it—**त्वयेदं (अवश्यम्) अध्येतव्यम्**। कभी-कभी तुमुनन्त के साथ **अर्ह्** धातु के रूप जोड़ देते हैं, जैसे, **इदमध्येतुमर्हसि**। पूर्णकाल (Perfect tense) के साथ आए हुए must और ought का अनुवाद क्त-प्रत्ययान्त के साथ विधिलिङ् का रूप जोड़कर अथवा कृत्य

प्रत्यय से किया जाता है; जैसे, He must have come home—**स गृहमागतो भवेत्** अथवा **तेन गृहमागन्तव्यम्** । **एवमनया प्रष्टव्यम्** (मालविका० ४)—उसको तुमसे ऐसा पूछना चाहिये था । **इदं त्वया मह्यं कथयितव्यम्**—तुम्हें मुझसे यह बात कह देनी चाहिये थी ।

The Subjunctive Mood

२३८—**मैं आज्ञा देता हूँ कि उसे फाँसी दे दी जाय**, मैं आशा करता हूँ कि **मैं इस कार्य में कृत-कार्य होऊँ, उसे बचाओ, कहीं ऐसा न हो कि उसका विकार बढ़ जाय—इन वाक्यों में दे दी जाय, होऊँ, और बढ़ जाय** क्रियाएँ ध्यान देने योग्य हैं । ऐसे वाक्यों का अनुवाद विधिलिङ् अथवा लोट् से किया जाता है । उपर्युक्त वाक्यों का अनुवाद क्रमशः इस प्रकार होगा—**स शूलमारोप्येत** अथवा **स शूलमारोप्यताम् इत्यहमाज्ञापयामि । अस्मिन् कार्ये विजयी भवेयमित्याशंसे** अथवा **अपि नाम विजयी भवेयम्** । (सेक्शन २०३) । **परित्रायतामेनां भवान् । मा अस्या विकारो वर्धताम्** ।

२३९—सोपाधिक वाक्यों (Conditinal sentences) में जिनमें दोनों ही उपवाक्यों में वर्तमान काल प्रयुक्त रहता है, हेतुहेतुमद्भूत (Subjunctive) का अनुवाद सेक्शन २०६ के अनुसार किया जा सकता है; जैसे, यदि तुम जाते हो, तो मैं जाता हूँ—**यदि यूयं गच्छ (गमिष्यथ** अथवा **गच्छेत), तर्हि अहं गच्छामि (गमिष्यामि** अथवा **गच्छेयम्**) । यदि वृष्टि होती है, तो हम लोग बाहर नहीं जा सकेंगे—**यदि देवो वर्षत् (वर्षति वर्षिष्यति** वा), **तर्हि वयं बहिर्गन्तुं न शक्नुयामः** (शक्ष्यामः) ।

२४०—यदि हेतुहेतुमद्भूत (Subjunctive Mood) भूतकाल के साथ आवे तो दोनों उपवाक्यों में विधिलिङ् का प्रयोग किया जाता है; जैसे, If he were here, he would accompany me—**यद्यत्र स भवेत्, तन्मया सहागच्छेत्** । परन्तु जब भूतकालिक हेतुहेतुमद्भूत से प्रत्याख्यान अथवा पूर्वगामी उपवाक्य का मिथ्यात्व सूचित होता है, तो विधि-

लिङ् कदापि नहीं आवेगा, बल्कि क्रियातिपत्ति आवेगी (सेक्शन २१६); जैसे, If the book were in the library (as it is not), it should be given to you—**यदि तत् पुस्तकं ग्रन्थालयेऽभविष्यत्तर्हि तद् युष्मभ्यम् अदास्यत।** ऊपर लिखे हुए पूरे विवरण को पढ़ने से यह निष्कर्ष निकलता है कि हेतुहेतुमद्भूत (Subjunctive Mood) का प्रयोग तीन प्रकार से होता है—

(१) If the book is (as I know it is) in the library, you may take it.

(२) If it be (I am uncertain) there, you may take it.

(३) If it were (as I know it is not) there, you might take it.

प्रथम दो का अनुवाद वर्तमानकाल अथवा विधिलिङ् द्वारा किया जायगा। तीसरे का अनुवाद क्रियातिपत्ति द्वारा होगा।

२४१—Pluperfect Conditional को सर्वदा क्रियातिपत्ति से सूचित करते हैं (सेक्शन २१६)।

अभ्यास

१—तदाकर्ण्य दमनकश्चिन्तयामास। युद्धाय कृतनिश्चयोऽयं दृश्यते दुरात्मा। तद् यदि कदाचित्तीक्ष्णशृङ्गाभ्यां स्वामिनं प्रहरिष्यति, तर्हि महाननर्थः सम्पत्स्यते। (पंच० १)

२—युवराज, किं न जितं देवेन तारापीडेन यद् जेष्यसि। कानि द्वीपान्तराणि नात्मीकृतानि यान्यात्मीकरिष्यसि। कानि रत्नानि नोपार्जितानि यान्युपार्जयिष्यसि। (कादम्०११७)

३—तौ चेद्राजपुत्रौ निरुपद्रवावर्धिष्येतामियता कालेन तवेमां-वयोवस्थामस्प्रक्ष्येताम्। (दशकु० २।३)

४—तया देवतायस्मै स्वप्ने समादिष्टम्। उत्पत्स्यते तवैकः पुत्रो जनिष्यते चैका दुहिता। स तु तस्याः पाणिग्राहकमनुजीविष्यति।

(दशकु० २।६)

५—गामधास्यत् कथं नागो मृणालमृदुभिः फणैः।
आत्सातलमूलात्त्वालम्बिष्यथा न चेत्॥ (कुमार० ६।६८)

६—राजन्प्रजासु ते कश्चिदपचारः प्रवर्तते।
तमन्विष्य प्रशमयेः भवितासि ततः कृती॥ (रघु० १५।४७)

७—अकरिष्यदसौ पापमतिनिष्करुणैव सा।
नाभविष्यमहं तत्र यदि तत् परिपंथिनी॥ (मालती० ६)

८—सिध्यंति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः,
सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्॥ (शा० ७)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—भागुरायणः—कुमार, न कदाचिदपि शकटदासोऽमात्यराक्षसस्याग्रतोऽयं लेखो मया लिखित इति प्रतिपत्स्यते। अतोऽन्यल्लिखितमानीयतामस्य यतो वर्णसंवाद एवैतत् सर्वं विभावयिष्यति। (मुद्रा० ५)

२—रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति चक्रवालम्।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे
हा हंत हंत नलिनीं गज उज्जहार॥ (सुभाषित०)

३—परस्परेण स्पृहणीयशोभं, न चेदिदं द्वंद्वमयोजयिष्यत्।
अस्मिन् द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां विफलोऽभविष्यत्॥

(कुमार० ७।३५)

४—यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥ (श्रीमद्० २।५२,५३)

५—भयाद्रणादुपरत **मंस्यंते** त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥
(श्रीमद्० २।३५)

६—मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥ (श्रीमद्० १८।५८)

७—परिणेष्यति पार्वतीं यदा तपसा तत्प्रवणीकृतो हरः ।
उपलब्धसुखस्तदा स्मरं वपुषा स्वेन नियोजयिष्यति ॥
(कुमार० ४।४२)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—समस्त प्रजा को सूचित कर दिया जाय कि आज से चन्द्रगुप्त स्वयं ही राज्य के सारे कार्यों की देख भाल करेंगे ।

२—यदि तुम केवल प्रयत्न करो तो तुम अपना अभीष्ट मनोरथ प्राप्त कर लोगे ।

३—ऋषि ने कहा—यह सब आने वाले कलियुग में होगा और लोग नाना प्रकार के पाप करेंगे ।

४—यदि बाल्यकाल से ही सावधानी के साथ वह लडका पाला-पोसा गया होता तो, मुझे पूर्ण विश्वास है, अब तक वह इस लड़के के समान बड़ा हो गया होता ।

५—ऐश्वर्य के दिनों में मनुष्य के सैकड़ों मित्र हो जाते हैं परन्तु विपत्ति में वे त्याग देते हैं ।

६—यदि अपराधियों को दण्ड देने में राजा शीघ्रता न करता तो बलवान् लोग निर्बलों को सता डालते ।

७—यदि तुम और गोपाल यहाँ होते तो तुम उस भयंकर दृश्य का देखना सहन न कर सकते ।

८—एक बारहसिंगे ने एक बार अपने मन में कहा—यदि मेरी टाँगें मेरी सींग के समान होतीं तो इस पृथ्वी पर कोई भी पशु सौन्दर्य में मेरी तुलना न कर सकता ।

९—यदि राम ठीक उस समय पर न गये होते तो सारा घर जल गया होता।

१०—यदि मैं उस समय बिल्कुल तटस्थ न रहा होता तो मैं महाराज के क्रोध का भाजन हो गया होता।

११—यह असम्भव है कि अब वह लौटकर आवेगा और हम लोगों के साथ आनन्दपूर्वक समय बितावेगा।

१२—जिस उत्साह से मैंने राजा की सेवा की यदि उसके आधे उत्साह से भी परमात्मा की सेवा की होती तो उसने मुझे नग्न कर मेरे शत्रुओं के हाथों में न सौंप दिया होता।

एकविंश पाठ

अङ्ग, अथ, अधिकृत्य, अपि, अयि, अये, अहह और अहो

२४२—पाणिनि की अष्टाध्यायी, अमरकोष तथा वर्धमानकृत गणरत्न-महोदधि में अव्यय के अन्तर्गत बहुत से शब्द गिनाये गये हैं। उनमें से बहुतेरे संयोजक का काम देते हैं। उनके अर्थों को ठीक-ठीक समझ लेना आवश्यक है। जो अव्यय प्रायः काम में आते हैं, उन पर इस पाठ में तथा आगामी सात पाठों में विचार किया जायगा।

२४३[1]—अङ्ग शब्द सम्बोधन करने के काम में आता है; जैसे, **तन्मन्ये क्वचिदङ्ग भृङ्गतरुणेनास्वादिता मालती** (ग० म०)—श्रीमन्, इसीलिए मैं समझता हूँ कि **मालती** पुष्प कहीं पर किसी तरुण भ्रमर द्वारा आस्वादित कर लिया गया है। (**व्रजजनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते, वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमंगलम्-श्रीमद्भागवत** दशमस्कन्ध पूर्वार्ध-इकतीसवाँ अध्याय, श्लोक १८)। **अंग, कच्चित् कुशली तातः** (कादम्० २२१)। **प्रभुरपि जनकानामंग भो याचकस्ते** (महावीर० ३।); या कभी-कभी **अंग** शब्द आदर या श्रद्धा दिखलाने के लिए आता है; जैसे, **अंग! विद्वन्माणवकमध्यापय** (ग० ग०) ऐ विद्वान् महापुरुष माणवक को पढ़ाइए।

(क) कभी-कभी अंग 'किम्' के साथ आता है और प्रायः उसी अर्थ में प्रयुक्त होता है जिसमें **किमुत** अथवा **किम्पुनः**; जैसे, **तृणेन कार्यं भवतीश्वराणां किमंग वाग्घस्तवता नरेण** (पंच० १।१)—धनी लोगों का तृण से (भी) काम पड़ जाया करता है, फिर वाणी तथा हाथों से युक्त मनुष्य का क्या कहना है।

२४४—"**अथ**" इन अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है—(१) मंगल का चिह्न; **अथातो ब्रह्मजिज्ञासा** (शं० भा०)—अब इसके आगे ब्रह्म के बारे में विवेचन

१—अंग पूजासम्बोधनयोः (ग० म०)।

(२) किसी वक्तव्य या कथन के प्रारम्भ में; **अथेदमारभ्यते द्वितीयं तन्त्रम्** (पञ्च०२)—अब दूसरा तन्त्र आरम्भ होता है। (३) 'इसके बाद' या 'तब' के अर्थ में; **अथ प्रजानामधिपः प्रभाते वनाय धेनुं मुमोच** (रघु०२।१)—इसके बाद नराधिप ने प्रातःकाल गाय को वन जाने के लिये खोल दिया या छोड़ दिया। प्रायः इसी अर्थ में '**यदि**' अथवा '**चेद्**' का इतरेतरसम्बन्धी (correlative) बनकर आता है; **न चेन्मुनिकुमारोऽयमथ कोऽस्य व्यपदेशः** (शा०७)। (४) प्रश्न पूछने में; **अथ शक्तोऽसि भोक्तुम्** (ग०म०)। प्रायः प्रश्नवाची शब्द के साथ ही 'अथ' आता है; अथ सा **किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी** (शा०७)। (५) 'और' तथा 'भी' अर्थ में के; **भीमोऽथार्जुनः** (ग०म०)—भीम और अर्जुन। **गणितमथ कलां कौशिकीम्** (मृच्छ० १)—गणित और कौशिकी कला भी। (६) 'यदि' के अर्थ में; अथ **कौतुकमावेदयामि** (कादम्०१४४)—यदि तुम्हें कौतुक है तो कहूँगा। अथ **मरणमवश्यमेव जन्तोः** (वेणी०३)—यदि मनुष्य की मौत होना निश्चित (अवश्यम्भावी) है। (७) साकल्य, पूर्णता; **अथ धर्मं व्याख्यास्यामः** (ग० म०) हम पूरा-पूरा धर्म वर्णन करेंगे। (८) **संशय या अनिश्चय**; शब्दो नित्योऽथानित्यः (ग० म०)।

विशेष—कोशों में 'अधिकार' अर्थ में भी अथ का प्रयोग बताया गया है; जैसे, **अथ समासः**। परन्तु लिखा हुआ (१) और (२) और अधिकार एक ही वस्तु है, क्योंकि वे सभी वाक्यारम्भ में आते हैं। इसी प्रकार अन्वादेश और प्रतिज्ञा (affirmation, Proposition)। अन्वादेश का अर्थ है—एक ही वाक्य में किसी शब्द का एक बार प्रयोग करके दोबारा प्रयोग करना।

२४५—'अथ किम्' का अर्थ है—'और क्या', 'हाँ','ठीक ऐसी ही बात है' जैसे, **शकारः—चेट ! प्रवहणमागतम् ? चेटः—अथकिम्** (मृच्छ०८)। शकार—क्या गाड़ी आ गयी ? भृत्य—हाँ।

१—मंगलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्येष्वथो अथ। (अ०)

अथोथ स्यातां समूच्चये।

मंगले संशयारम्भाधिकारानन्तरेषु च।

अन्वादेशे प्रतिज्ञायां प्रश्नसाकल्ययोरपि॥ (हे०)

(क) 'अथवा' विभाजक के तौर पर प्रयुक्त होता है। परन्तु प्रायः किसी पूर्व कथन में परिवर्त्तन करने के लिए या उसमें संशोधन करने के लिए 'अथवा' आता है; जैसे, **दीर्ये किं न सहस्रधाहमथवा रामेण किं दुष्करम्** (उत्तर० ६)—मैं हजार टुकड़ों में क्यों नहीं फट जाता, अथवा राम के द्वारा किस काम का किया जाना मुश्किल है ?

२४६—**अधिकृत्य** का अर्थ है 'बारे में'। इसके योग में द्वितीया आती है; जैसे, **अथ कतमं पुनर्ऋतुमधिकृत्य गास्यामि** (शा० १)—किस ऋतु के बारे में गाऊँ ? 'उद्दिश्य' का अर्थ है 'बारे में,' 'तरफ' और इसका भी प्रयोग उपरोक्त विधि से होता है; जैसे, **स्वपुरमुद्दिश्य प्रतस्थे** (हितो० ४)—वह अपने नगर की तरफ रवाना हो गया। **किमुद्दिश्यामि ऋषयो मत्सकाशं प्रेषिताः स्युः** (शा० ५)—किस उद्देश्य से ये ऋषि लोग मेरे पास भेजे गये होंगे ?

२४७[1]—**अपि** के ये अर्थ होते हैं—(१) **यद्यपि, चाहे–पातितोऽपि कराघातैः** (भर्तृ० २।८५)—यद्यपि हाथ के प्रहारों से गिरा दिया जाता है, तब भी। (२) **भी**—**इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी** (शा० १)—यह पतले शरीरवाली कन्या वल्कल पहनने पर भी बहुत सुन्दर लगती है। (३) **और भी; राजापि मुनिवाक्यमंगीकृत्यातिष्ठत्** (दशकु० १।१)—और राजा भी ऋषि की बात मान कर ठहर गये। **विष्णुशर्मणापि राजपुत्राः पाठिताः** (पंच० १) और विष्णुशर्मा ने भी राजपुत्रों को पढ़ाया। **अपि सिंच, अपि स्तुहि** (सि० कौ०)—सींचो और स्तुति करो। **अस्ति मे सोदरस्नेहोप्येतेषु** (शा० १)—मेरे हृदय में इनके प्रति सगों-जैसा स्नेह भी है। (४) प्रश्न पूछने में भी अपि आता है, पर इस दशा में यह वाक्य के आरम्भ में आता है, जैसे, **अपि तपो वर्धते** (शा० १)—क्या तुम्हारी तपस्या वृद्धि कर रही है। **अप्येतत्तपोवनम्** (उत्तर० २)—क्या यह तपोवन है ? (५) **संशय**—**अपि चोरो भवेत्** (ग० म०)—क्या यह चोर तो नहीं है (अर्थात् मुझे इस विषय में निश्चयात्मक ज्ञान नहीं है) (६) **आशा, सम्भावना अर्थ में**—**अपि जीवेत् स ब्राह्मणशिशुः** (उत्तर० २)—आशा करता हूँ कि वह ब्राह्मणशिशु जी जाय।

१—गर्हासमुच्चयप्रश्नशंकासम्भावनास्वपि (अ०)
अपि सम्भावनाप्रश्नशंकागर्हासमुच्चये।
तथायुक्तपदार्थेषु कामचारक्रियासु च ॥ (वि०)

विशेष—आशा या सम्भावना अर्थ में **अपि** के साथ प्रायः **नाम** जुड़ा रहता है; जैसे, **तदपि नाम रामभद्रः पुनरपीदं वनमलंकुर्यात्** (उत्तर० २)—तो मैं आशा करता हूँ कि श्रीरामचन्द्र जी फिर इस वन को (अपनी उपस्थिति द्वारा) सुशोभित करेंगे।

टिप्पणी—अपि' के और भी बहुत से अर्थ बताये गये हैं; जैसे **गर्हा** (निन्दा) 'पदार्थ' अर्थ में भी अपि का प्रयोग होता है। पदार्थ का अर्थ है किसी अप्रत्यक्ष यानी परोक्ष शब्द का अर्थ। **सर्पिषोऽपि स्यात्** (सि० कौ०)—घी का एक बूँद भी। **कामचारक्रिया अथवा अन्ववसर्ग** (किसी के इच्छानुसार स्वीकृति दे देना); **अपि स्तुहि**—यदि चाहो तो स्तुति कर सकते हो। **अपि स्तुह्यपि सेधास्मांस्तथ्यमुक्तं नराशन** (भट्टि० ८।९२)।

(क) संख्यावाची शब्दों के बाद अपि का 'सम्पूर्णता' अर्थ होता है; जैसे, **सर्वैरपि राज्ञां प्रयोजनम्** (पंच १। १)—राजाओं को सभी से मतलब रहता है। इसी प्रकार **चतुर्णामपि वर्णानाम्**—चारों वर्णों का।

(ख) प्रश्नवाचक सर्वनामों और प्रश्नवाचक-सर्वनाम-निष्पन्न शब्दों के अनन्तर जुड़ने पर **अपि** का अर्थ 'कोई' होता है और कभी-कभी **अवर्णनीय** अर्थ होता है। सेक्शन १३५ देखिये।

(ग) **यद्यपि—तथापि** ये जोड़ी के शब्द हैं और साथ-साथ आते हैं।

२४८[1]—**अयि** 'हे मित्र' के अर्थ में नम्रतापूर्वक अथवा मृदुलतापूर्वक सम्बोधन करने में प्रयुक्त होता है; जैसे, **अयि विवेकविश्रान्तमभिहितम्** (मालविका०)—हे मित्र, तुमने विवेकहीन बात कही है। **अयि मातर्देवयजन-सम्भवे देवि सीते** (उत्तर० ४)—देवताओं के पूजन से पैदा हुई ऐ प्रिय सीते। **अयि जीवितनाथ जीवसि** (कुमार० ४।३)—ऐ प्राणनाथ, क्या तुम जीवित हो?

१—अयि प्रश्नानुनययोस्तथा सम्बोधनेपि च (मे)।

२४६—**अये** प्रधानतया आश्चर्य का बोध कराता है, **अये भगवत्यरुन्धती**—(उत्तर० ५)—ओ हो! यह तो पूज्य अरुन्धती जी हैं। **अये मय्येव भृकुटीधरः संवृत्तः** (उत्तर० ५)। 'अये' शोक, खेद अथवा भय का भी बोध कराता है; **अये देवपादपद्मोपजीविनोऽवस्थेयम्** (मुद्रा० २)—है, महाराज के चरणकमलों के नौकर की यह दशा है।

२५०[1]—**अहह**—(१) हर्ष, आश्चर्य अथवा विस्मय और (२) शोक अथवा बलवती वेदना का बोध कराता है। **अहह महतां निःसीमानः चरित्रविभूतयः** (भर्तृ० २।३५)। ओहो, महापुरुषों के चरित्र की विभूति असीमित होती है। **अहह दारुणो वज्रनिर्घातः** (उत्तर० २)—हा कष्ट, यह तो महा भयंकर वज्रप्रहार है। **अहह कष्टमपंडितता विधेः** (भर्तृ० ३।११०)—हाय रे ब्रह्मा की मूर्खता।

२५१—**अहो**[2] सम्बोधन का शब्द है; जैसे, **अहो राजानः**—ऐ राजाओं। हर्ष अथवा विषादसूचक 'आह' या 'क्या ही' के अर्थ में यह शब्द विशेषणों तथा संज्ञाओं के साथ भी आता है। **अहो मधुरमासां कन्यकानां दर्शनम्**—(शा० १) आहा, इन कन्याओं का दर्शन क्या ही सुन्दर है। **अहो सर्वास्ववस्थास्वनवद्यता रूपस्य** (मालविका० २)—आहा, हर दशा में सौन्दर्य की अनिन्द्यता। **अहो विपाकः** (उत्तर० ४)—ओ हो, अवस्था का यह परिवर्तन। **अहो उन्मीलन्ति वेदनाः** (उत्तर० ४)। किसी वस्तु या व्यक्ति से अकस्मात् भेंट हो जाने पर जो आश्चर्य पैदा होता है, उसका भी बोध कराने के लिए कभी-कभी **अहो** का प्रयोग होता है; जैसे, **अहो बकुलावलिका** (मालविका० १)—अरे, यह बकुलावलिका है।

अभ्यास

१—**अहो सर्वास्ववस्थासु चारुता शोभां पुष्यति।** (मालविका० २)

२—**सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति। अहं तु तामेवाश्रमललामभूतां शकुंतलामधिकृत्य ब्रवीमि।** (शा० २)

१—अहहेत्यद्भुते खेदे परिक्लेशप्रकर्षयोः (मे०)

२—अहो धिगर्थे शोके च करुणार्थविषादयोः। सम्बोधने प्रशंसायां विस्मये पादपूरणे॥ (मे०)

३—अहो दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयतास्य वपुषः। अथवोपपन्नमेतदस्मिन् ऋषिकल्पे राजनि। (शा० २)

४—अपि ज्ञायते कतमेन दिग्भागेन गतः स जाल्म इति। (विक्रमो० १)

५—अयि जात कथयितव्यं कथय। (उत्तर० ४)

६—कथमीदृशेन सह वत्सस्य चन्द्रकेतोर्द्वन्द्वसंप्रहारमनुजानीयाम्। अथ वा इक्ष्वाकुगृहवृद्धा वयम्। प्रत्युपस्थिते च का गतिः। (उत्तर० ५)

७—अतिप्रबलपिपासावसन्नानि गन्तुमल्पमपि मे नालमंगकानि। अलमप्रभुरस्म्यात्मनः। सीदति मे हृदयम्। अन्धकारतामुपयाति चक्षुः। अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणमद्यैवोपपादयेत्। (कादम्० ३६)।

८—अहो प्रभावो महात्मनाम्। अत्र शाश्वतं विरोधमपहायोपशांतात्मानस्तिर्यंचोऽपि तपोवनवसतिसुखमनुभवंति। (कादम्० ४५)

९—अपि नाम तयोः कल्याणिनोर्भूरिवसुदेवरातापत्ययोर्मालतीमाधवयोरभिमतः पाणिग्रहः स्यात् (मालती० १)

१०—अहो मे मूर्खताया: प्रकारः। अहो यत्किंचनकारितायामादरः। अहो निरर्थकव्यापारेष्वभिनिवेशः। अहो बालिशचरितेष्वासक्तिः। (कादम्० १२०)।

११—चाणक्य—भद्र उपवर्णयेदानीं कुसुमपुरवृत्तांतम्। अपि वृषलमनुरक्ताः प्रकृतयः। चरः—अथ किम्। आर्येण तेषु विरागकारणेषु परिहृतेषु देवे चंद्रगुप्ते दृढमनुरक्ताः प्रकृतयः। (मुद्रा० १)

१२—अये अश्वमेध इति विश्वविजयिनां क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्वक्षत्रियपरिभावी महानुत्कर्षनिकषः। (उत्तर० ४)

१३— ताः स्वचारित्र्यमुद्दिश्य प्रत्याययतु मैथिली।
ततः पुत्रवतीमेनां प्रतिपत्स्ये त्वदाज्ञया॥ रघु० १५।७३)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—भगवति, मदायेषु लेखेषु तत्रभवते त्वामुद्दिश्य सभाजनाक्षराणि पातयिष्यामि। (मालविका० ५)

२—हा कथं सीतादेव्या ईदृशं जनापवादं देवस्य कथयेष्यामि।
अथ वा नियोगः खल्वीदृशो मन्दभाग्यस्य। (उत्तर० १)

३—चाणक्यः—अपि प्रचीयन्ते संव्यवहाराणां लाभा वः।
चन्द्रगुप्तः—आर्य, अथ किम्। (मुद्रा० १)

४—अथ धर्मानुरोधादितरपक्षावलम्बनद्वारेण मृत्युमंगीकरोमि। एवमपि प्रथमं तावत् स्वयमागतस्य तत्रभवतः कर्पिंजलस्य प्रणयप्रसरभंगः पुनरपरं यदि तस्य जनस्य मत्कृतादाशाभंगात् प्राणविप्रत्तिरुपजायते तदपिमुनिजनवधजनितं महदेनो भवेत्। (कादम्० १६०)।

५—चाणक्यः—अगृहीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवंशस्य कि वा स्थैर्यमुत्पादितं चन्द्रगुप्तलक्ष्म्याः। अहो राक्षसस्य नन्दवंशे निरतिशयो भक्तिगुणः स कस्मिंश्चिदपि जीवति नन्दान्वयावयवे वृषलस्य साचिव्यं ग्राहयितुं न शक्यते। (मुद्रा० १)।

६—यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कलया त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचिव्रतमात्मनः पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्॥ (शा०५)।

७—अप्यग्रणीर्मन्त्रकृताम् ऋषीणाम् कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते। (रघु० ५।४)

८—विललाप स वाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम्।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु॥ (रघु० ८।४३)।

९—अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते।
अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्॥
(कुमार० ५।३३)।

१०—अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि॥
(श्रीमद्० २।२६)

११—सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥
(शा० १)

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—मूर्ख का भी अपमान नहीं किया जाना चाहिए; विद्वान् पुरुष का तो दर किनार ।

२—परन्तु यदि तुम मुझे वहाँ जबर्दस्ती ले चलोगे, तो भी मेरा मन अपनी प्रिया के प्रति लगा रहेगा जो कि मेरे प्रेम का एकमात्र आस्पद है।

३—स्वामी—क्या जो काम मैंने तुमको करने के लिए कहा था, उसे कर लिया ?

भृत्य—उसे किए हुए मुझे बहुत समय हो गया ।

४—अपनी प्रजाओं की सम्यक् रूप से रक्षा करने के कारण यह राजा प्रशंसा का पात्र है; अथवा, क्यों, ऐसा करना तो राजाओं का कर्तव्य ही है ।

५—जिस लड़के के बारे में मैं कह रहा हूँ, वह बड़ा कुशाग्रबुद्धि है ।

६—जो पुरुष किसी निश्चित कारण पर क्रोध करता है, वह उस कारण के दूर होते ही शान्त हो जाता है ।

७—इस पर भगवान् विष्णु गरुड़ के निवासस्थान पर गये । वह अपने माननीय स्वामी का स्वागत करने के लिए तुरन्त निकल आए ।

८—क्या यह सम्भव है कि मेरी आकांक्षाएँ पूर्ण हों ?

९—इन विपद्ग्रस्त पुरुषों को क्या ही दयनीय दशा है । यह पाषाण-हृदय को भी द्रवीभूत कर देगी ।

१०—आहा, इस रमणीक उद्यान की ऐसी सौम्य सुन्दरता ।

११—अभीष्ट मनोरथ की पूर्ति कितने विघ्नों से भरी हुई होती है ।

१२—हाय, मैंने अपना सारा समय जुआ खेलने में बिता दिया; इसके लिये अपने अतिरिक्त और किसको दोष दूँ ?

१३—ओ हो यह तो मेरी ही अँगूठी है । मैं आज आठ दिन से इसे खोज रहा हूँ । आप ने इसे कहाँ पाया ?

१४—मैं चलते-चलते थक गया हूँ । कृपया, अब चलिए, घर चलें ।

१५—आशा है कि जिस पुरुष के विषय में मैंने आप से एक मास पूर्व कहा था, उसका स्मरण आप को है ।

द्वाविंशतितम पाठ

आ, आं, आः, इति, इव, उत, एव, एवम्, ओम्

२५२[1]—आ का अर्थ 'तक' और 'से' तो होता ही है, इसके अतिरिक्त इसका अर्थ 'थोड़ा-थोड़ा' 'कुछ-कुछ' भी होता है। यह विशेषणों के पहिले जुड़ा रहता है; जैसे, **आपिंगल** -- थोड़ा-थोड़ा चितकबरा। **आमत्तानां कोकिलानां कूजितैः** (मालविका० ३)—कुछ-कुछ मतवाली कोयलों के कूजन से।

आ का प्रयोग क्रियाओं के साथ होता है—यह तो सभी को भली भाँति विदित है।

(क)[2] 'आ' अतीत घटनाओं को स्मरण करने में प्रयुक्त होता है; जैसे, **आ एवं किल तदासीत्** (उत्तर० ६)—अच्छा, तो बात ऐसी थी। कभी-कभी केवल पादपूरण अथवा वाक्यालंकार (expletive) के तौर पर प्रयुक्त होता है; जैसे, **आ एवं मन्यसे** (गणरत्न महोदधि)।

२५३[3]—आं भी अतीत घटना को स्मरण करने में प्रयुक्त होता है और कभी-कभी दृढ़ संकल्प का बोध कराने के लिए प्रयुक्त होता है; जैसे, **किं नाम दंडकेयम्** —(**सर्वतो विलोक्य**)—आं (उत्तर० १)—क्या सचमुच यह दंडकारण्य है? (चारों ओर देखकर) हाँ हाँ (अब मुझे स्मरण आ रहा है)। **आं चिरस्य प्रतिबुद्धोऽस्मि** (ग० म०)—सचमुच, मैं तो बहुत देर बाद जागा हूँ।

(क) कभी-कभी आं का प्रयोग 'हाँ'—ऐसा उत्तर देने में होता है; जैसे, **आं देव्याः पार्श्वगतोसौ जनश्चित्रे दृष्टः** (मालविका० १)—हाँ, रानी के पास खड़ा हुआ पुरुष एक चित्र में देखा गया था।

१—प्राङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे।

२—आ प्रगृह्यः स्मृतौ वाक्ये। (अ०)

३—आं स्मृतौ चावधारणे। (वि०)

२५४[1]—**आः** पीड़ा या क्रोध सूचित करने के लिए प्रयोग में आता है; जैसे, **आः शीतम्** (ग० म०)—ओ हो, कैसा जाड़ा है। **आः कथमद्यापि राक्षस-त्रासः** (उत्तर० १)—अरे, क्या अब भी राक्षसों से भय है।

२५५—किसी के कथन को वक्ता के ही शब्दों में सूचित करने के लिए इति का प्रयोग होता है और वक्ता के कथन के बिल्कुल बाद में रक्खा जाता है; जैसे, **आज्ञप्तोऽस्मि राजश्यालकेन। स्थावरक प्रवहणं गृहीत्वा जीर्णोद्यानमागच्छेति** (मृच्छ० ६)—मुझे राजा के साले द्वारा आज्ञा मिली है कि हे स्थावरक, गाड़ी लेकर पुराने बाग में आओ। **तयोर्मुनिकुमारकयोरन्यतरः कथयति अक्षमालामुपयाचितुमागतोऽस्मीति** (कादम्० १५१)—मुनिकुमारों में से एक कह रहा है कि अक्षमाला माँगने आया हूँ।

विशेष—अप्रत्यक्ष कथन (Indirect narration) का अनुवाद करने में यह देखना चाहिए कि यदि यह कथन प्रत्यक्ष कथन (Direct narration) में रक्खा गया होता तो इसका क्या स्वरूप होता। प्रत्यक्ष कथन (Direct narration) में वक्ता जिन शब्दों का प्रयोग करता है उनका अनुवाद संस्कृत में करके 'इति' जोड़ देना चाहिए; जैसे, Ram said to me that he would give me money when-ever I wanted it—**रामो मामुवाचः—यदा-यदा धनेन तव प्रयोजनं स्यात् तदा-तदाऽहं तत् तुभ्यम् दद्यामिति** अथवा **दद्यामिति रामो मामुवाच**।

(क) चूँकि इति शब्द का यह प्रयोग वक्तव्य अथवा कथन का बोध कराता है, अतः यह आवश्यक है कि वक्तव्य में उसकी समस्त शर्तें पूरी रहें, अर्थात् वक्तव्य में कम से कम एक कर्त्ता और क्रिया अवश्य रहे; **क्रमादमुं नारद इत्य-बोधि सः** (शिशु० १।३)—शनैः-शनैः उन्होंने उनको नारद समझा या पहिचाना। **अवैमि चैनामनघेति** (रघु० १४।४०)—मैं उनको (जानकी जी को) निरपराध समझता हूँ। यहाँ '**क्रमदमुं नारदमित्यबोधि सः** अथवा **एनामनघामित्यवैमि**' कहना अशुद्ध होगा। हाँ, यदि इति का प्रयोग न हो तो कर्मकारक प्रयोग में ला सकते हैं।

१—आस्तु स्यात् कोपपीडयोः। (अ०)

२५६[1]—इन साधारण अर्थों के अतिरिक्त इति के निम्नलिखित और अर्थ होते हैं—

(क) कारण;—जैसे, **वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि कः पुनरसौ जामाता** (उत्तर० १)—चूँकि मैं विदेशी (अनजान) हूँ, अतः पूछता हूँ कि यह दामाद महाशय कौन हैं। **लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोः** (मालविका० १)—चूँकि उसने प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है, अतः विवाद से डरने वाले उस (पुरुष) का।

(२) अभिप्राय अथवा प्रयोजन या अर्थ; जैसे, **शरीरस्य मा विनाशो भूदिति मयेदमुत्क्षिप्य समानीतम्** (कादम्० ३२०)—मैं शरीर को इसलिए उठा कर ले आया कि यह बर्बाद न हो जाय।

(३) इति का अर्थ 'इस प्रकार' भी होता है। और किसी वस्तु की समाप्ति का बोध कराने के लिए प्रयोग में लाया जाता है; जैसे, **इति तृतीयोङ्कः**—इस प्रकार तीसरा अंक समाप्त होता है। **पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि**—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशाएँ, आत्मा और मनः—ये द्रव्य हैं।

(४) इति के अर्थ 'ऐसा', 'इस प्रकार से', 'इस किस्म का' भी होते हैं; जैसे, **इत्युक्तवन्तं परिरभ्य दोर्भ्याम्** (किरात० २।८०)—इस प्रकार से कहने वाले को अपनी भुजाओं से आलिंगन करके। **गौरश्वो हस्तीति जातिः**—**जाति** इस किस्म की होती है; जैसे—गाय, घोड़ा, हाथी।

(५) **इति का अर्थ** 'निम्नलिखित' भी होता है और जो कुछ आगे चल कर कहा जाने वाला होता है, उसका बोध कराता है; जैसे, **रामाभिधानो हरिरित्युवाच** (रघु० १३।१)—रामनामक हरि ने निम्नलिखित बात कही।

(६) इति का अर्थ 'हैसियत से', 'जहाँ तक' भी होता है और जिस हैसियत से अथवा जिस दृष्टिकोण से किसी वस्तु पर विचार किया जाता है या जिस दृष्टिकोण से कोई वस्तु देखी जाती है, उस दृष्टिकोण अथवा उस हैसियत

१—इति स्वरूपे सान्निध्ये विवक्षायामिमे मते ॥ हेतौ प्रकारप्रत्यक्षप्रकाशेऽप्यवधारणे ॥ एवमर्थे समाप्तौ स्यात् ॥ (हे)

का बोध कराता है; जैसे, **पितेति स पूज्यः अध्यापक इति निन्द्यः**—पिता की हैसियत से तो वह पूज्य हैं, पर अध्यापक की हैसियत से वह निन्दनीय है। **शीघ्रमिति सुकरं, निभृतमिति चिन्तनीयं भवेत्** (शा० ३)—जहाँ तक जल्द करने की बात है, वहाँ तक तो यह सरल है; पर जहाँ तक गुप्तरीति से करने की बात है, वहाँ तक यह विचारणीय समस्या है।

(७) इति का अर्थ 'मत' या 'विचार' भी होता है; जैसे, **इत्यापिशलिः** (ग० म०)—यह आपिशलि का मत है।

(८) **'उदाहरण' देने में** भी इति का प्रयोग किया जाता है; जैसे, **इन्दुरिन्दुरिव श्रीमानित्यादौ तदन्वयः** (चन्द्रालोक)।

विशेष—प्रकार और स्वरूप—ये दोनों अर्थ एक समान ही हैं। प्रत्यक्ष, **प्रकाश और अवधारण** के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

(क) बलयुक्त प्रश्न करने के लिये 'किमिति' प्रयुक्त किया जाता है; जैसे, **किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम्** (कुमार० ५।५४)—क्यों तुमने युवावस्था में आभूषणों को त्याग रक्खा है जो केवल वृद्धावस्था में ही शोभा देता है।

२५७—इव[1] प्रायः उपमा देने में प्रयुक्त होता है और उपमान के अनन्तर आता है; जैसे, **वैनतेय इव विनतानन्दजननः** (कादम्० ५)—वह वैनतेय के समान था जो कि विनता को सुख देते थे (अथवा उनको सुख देते थे जो उनके सम्मुख झुक जाते थे—हार मान लेते थे)। **संसारः अर्णव इव**—समुद्रतुल्य संसार।

विशेष—इव से जुड़े हुए शब्द एक ही कारक में होने चाहिए; जैसे, **महीमिव जलभृतदेहां कन्यकां ददर्श** (कादम्० १३१)—उसने पृथिवी के समान एक कन्या देखी—ऐसी पृथिवी जिसका धरातल जल से भरा हो, (कन्यापक्ष में)—जिसने अपना शरीर जल द्वारा धारण कर रक्खा था। **दिवसेनेव मित्रानुवर्तिना विलासिजने नाधिष्ठिता** (कादम्० ५१)—सूर्य का अनुसरण करने वाले

१—ईषदर्थोपमोत्प्रेक्षा वाक्यभूषणयोरिव। (ग० म०)

दिन के समान जो अपने मित्रों का अनुसरण किया करते थे, ऐसे विलासी जनों से बसा हुआ (भरा हुआ)।

(क) **इव** के और भी अर्थ ये हैं—(१) थोड़ा सा, **कुछ-कुछ, कदार इवायम्** (ग० म०)—वह थोड़ा-थोड़ा (कुछ-कुछ) चितकबरा है। (२) मानो गोया कि; जैसे, **मृगानुसारिणं पिनाकिनमिव पश्यामि** (शा०१)—मानों मृग का अनुसरण करने वाले पिनाकी (शिव) को देखता हूँ। **यो जहासेव वासुदेवम्** (कादम्० ५) जो मानो वासुदेव की हँसी कर रहा था।

(ख) 'सम्भवतः', (मैं जानना चाहूँगा) अथवा 'वस्तुतः' का अर्थ सूचित करने के लिए **इव** प्रश्नवाचक सर्वनामों तथा प्रश्नवाचक-सर्वनाम-निष्पन्न शब्दों के साथ जोड़ दिया जाता है; जैसे, **विना सीतादेव्या किमिव हि न दुःखं रघुपतेः** (उत्तर०६)—महारानी सीता से वियुक्त श्री रामचन्द्र जी को, सम्भवतः, क्या चीज दुःखदायी प्रतीत न होगी। **परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्तु पुरुषः** (मुद्रा० ३)—सम्भवतः पराधीन पुरुष कैसे सुख का आनन्द (स्वाद) जाने।

२५८[1]—**उत** प्रायः 'अथवा' के अर्थ में आता है और साधारणतया **किम्** का इतरेतरसम्बन्धी बनकर प्रयुक्त होता है। कभी-कभी उत के स्थान पर आहो या उताहो या आहोस्वित् भी प्रयोग में आते हैं; जैसे, **न जाने किमिदं वल्कलानां सदृशमुताहो जटानां समुचितं, किं तपसोनुरूपमाहोस्वित् धर्मोपदेशांगमिदम्** (कादम्०१५)—मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि यह तुम्हारे वल्कलवस्त्रों के लिए उचित है, अथवा तुम्हारी जटाओं के योग्य है, या तुम्हारी तपस्या को शोभा देता है, अथवा तुम्हारे धर्मोपदेश का एक अंग है।

(क) जब **उत** की पुनरुक्ति होती है, तब उसका अर्थ होता है, 'या तो-या'; जैसे, **एकमेव वरं पुंसामुतराज्यमुताश्रमः** (ग०म०)—मनुष्य को एक ही चीज अभीष्ट होती है, या तो राज्य या आश्रम।

२५९—उत जब अकेला आता है तब उसके ये अर्थ होते हैं। (१) सन्देह, अनिश्चय, अन्दाज या अनुमान; जैसे, **स्थाणुरयमुत पुरुषः** (ग० म०);

१—उत प्रश्ने वितर्के स्यादुतात्यर्थविकल्पयोः (वि०)।

—यह या तो खूँटा हो सकता है या पुरुष। (२) प्रश्न करने में उत का प्रयोग होता है, **उत दंडः पतिष्यति** (ग० म०)—क्या डंडा गिर जायगा ?

विशेष—'अत्यर्थ' अर्थ में **उत** बहुत कम आता है।

२६०—किसी शब्द द्वारा सूचित भाव को पुष्ट करने और उस पर जोर देने के लिए **एव** का प्रयोग होता है। इस अर्थ में इसका अनुवाद इन शब्दों द्वारा किया जा सकता है—ठीक, वहा, केवल, अकेला, पहिले ही, तत्क्षण, मुश्किल से; **जैसे, एवमेव**—ठीक ऐसा ही। **अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव** (भर्तृ० २। ४६)—धन की गर्मी से रहित वही पुरुष। **सा तथ्यमेवाभिहिता भवेन** (कुमार० ३।६३) शिव द्वारा उसको सच्ची बात-मात्र बतला दी गयी। **नाम्नैव निर्भिन्नारातिहृदयः** (**कादम्० ५**)—जो नाम से ही शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण कर देता था (भेद देता था)। **उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एवं यत्** (रघु०१।८७)—चूँकि वह स्त्री यहाँ है, अत एव जिसी क्षण (ज्योंही) उसका नाम लिया गया। **भवितव्यमेव तेन** (उत्तर० ४)—यह तो होवेगा ही।

२६१[1]**—एवम् का अर्थ** साधारणतया 'ऐसा' या 'इस प्रकार' होता है। इसका सम्बन्ध किसी पूर्व कथित वस्तु अथवा बाद में आने वाली वस्तु से होता है, अथवा किसी कार्य को करने के लिए आदेश देने में इस शब्द का प्रयोग होता है; **एवमुक्तः कपिंजलः प्रत्यवादीत्** (**कादम्०१५१**) (मुझसे) इस प्रकार कहे जाने पर कपिंजल ने उत्तर दिया।

(क) 'स्वीकृति' अर्थात् 'हाँ' का भी बोध कराने में इसका प्रयोग होता है; **जैसे, एवमेतत्** (**उत्तर० १**)—हाँ, यह ऐसा ही है। **एवं कुर्मः**—हाँ, हम लोग ऐसा करेंगे।

विशेष—'सादृश्य' अथवा 'दृढ़ संकल्प' का बोध कराने में **एवम्** बहुत कम आता है।

२६२[2]**—ओम्** बहुत ज्यादा प्रयोग में नहीं आता। प्रायः यह शब्द शुभ-प्रारम्भ का बोध कराने के लिए आता है; जैसे, **ओम् अग्निमीडे पुरोहितम्**। अथवा धार्मिक विधि या क्रिया या प्रार्थना की समाप्ति का बोध कराने के लिये भी इसका प्रयोग होता है; जैसे, **ब्रह्म भूः भुवः स्वरोम्**।

१—एवं प्रकारोपमयोरंगीकारेऽवधारणे। (वि०)

२—ओमित्यनुमितौ प्रोक्तं प्रणवे चाप्युपक्रमे। (वि०)

(क) संस्कृत में यह शब्द अनुमति के अर्थ में प्रयुक्त होता है: जैसे, ओमित्युच्यतामामात्यः (मालती० ६)—मंत्री से कह दो कि मैं ऐसा ही करूँगा। द्वितीयश्चेदोमिति ब्रूमः।

अभ्यास

१—भर्तृदारिके आर्यायाः पंडितकौशिक्या इव स्वरसंयोगः श्रूयते। (मालविका० ५)

२—उत्पातिनी भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीकृतो वेगः। (शा० १)

३—प्रथममिति प्रेक्ष्य दुहितृजनस्यैकोऽपराधो भगवता मर्षयितव्यः। (शा० ४)

४—अतिभूमिं गतेन रघुरणकेनार्यपुत्रशून्यमिवात्मानं पश्यामि। (उत्तर० १)

५—सखे करकट किमित्ययमुदकार्थी स्वामी पानीयमपीत्वा सचकितो मंदं मंदमवतिष्ठते। (हितो०)

६—सखे पुण्डरीक, न विदितमेतन्मम। केवलमिदमेव पृच्छामि यदेतदा रब्धं भवता किमिदं गुरुभिरुपदिष्टम् उत धर्मशास्त्रेषु पठितमुत मोक्षप्राप्तियुक्तिरियमाहोस्विदन्यो नियमप्रकारः। (कादम्० १५५)

७—सीता—एते चत्वारो भ्रातरो विवाहदीक्षिता यूयम्। अहो जाने तस्मिन्नेव प्रदेशे तस्मिन्नेव काले वर्ते इति। रामः—एवम्।

८—पुराणमित्येव न साधु सर्व न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्। संतः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः (मालविका० १)

९—यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा।
इति चिंताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते॥ (हितो० १)

१०—प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीन्महात्मनः।
प्रियभावः स तु तया स्वगुणैरेव वर्धितः॥
तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योपि प्रियोऽभवत्।
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्॥ (उत्तर० ६)

११—ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।
पुत्रं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि॥ (शा० ४)

१२—लिंपतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवांजनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता ॥ (मृच्छ० ५) ।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—किमिव दुष्करमकरुणानां यतः सोऽयत्नेनैव पादपमधिरुह्यैकैकशः फलानीव तस्य वनस्पतेः शाखामंधिभ्यः कोटरांतरेभ्यः शुकशावकानग्रहीदपगतासूंश्च कृत्वा क्षितावपातयत् । (कादम्० ३३)

२—स मद्वचनानंतरमेव न वेद्मि किमसह्यवृत्तेर्मदनज्वरस्य वेगादुत सद्योविपाकस्यात्मनो दुष्कृतस्य गौरवादाहोस्विन्म चस एव सामर्थ्यादाच्छिन्नमूलस्तरुरिव क्षितावपतत् । (कादम्० ३१२)

३—पात्रविशेषन्यस्तं गुणांतरं व्रजति शिल्पमाधातुः ।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य । (मालविका० १)

४—सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन ।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ॥

५—का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः ।
हुंकारेणैव धनुषः स हि विघ्नानपोहति ॥ (शा० ३)

६—गत एव न ते निवर्तते स सखा दीप इवानिलाहतः ।
अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्यव्यसनेन धूमिताम् ॥ (कुमार० ४।३०)

७—स्वशरीरशरीरिणावपि श्रुतसंग गविपर्ययौ यदा ।
विरहः किमिवानुतापयेद्वद बाह्यैर्विषयैर्विपश्चितम् ॥ (रघु० ८।८६)

८—प्रयांतीव प्राणाः सुतनु हृदयं ध्वंसत इव
ज्वलंतीवांगानि प्रसरति समंतादिव तमः ॥ (मालती० ६)

९—किमात्मनिर्वादकथामुपेक्षे जायामदोषामुत संत्यजानि ।
इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वादासीत्स दोलाचलचित्तवृत्तिः ॥ (रघु० १४।३४)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए

१—चूँकि दुष्ट पुरुष मीठी-मीठी बातें बोलता है, इसलिए वह विश्वसनीय नहीं है ।

२—वह यहाँ पिछले दो महीने से रह रहा है, ताकि वह शहर के विद्वानों से परिचित हो जाय ।

३—शीघ्रता से मेरे पास आकर मानो क्रुद्ध होकर उसने मुझसे कहा कि तुमने मेरा बड़ा भारी अपराध किया है।

४—'विपत्तियाँ अकेली नहीं आतीं'—यह उक्ति संसार के लोगों से प्रायः अनुभूत बुद्धिमत्तापूर्ण उक्ति है।

५—जब शत्रु हम लोगों पर ओले के समान टूट पड़े तो हम लोगों को यह नहीं सूझ पड़ा कि क्या करें।

६—बहुत दिनों से भोजन न पाने के कारण वह मानों मरने को हो गया।

७—सारा संसार मुझको शक्तिहीन समझता है क्योंकि मैं किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता।

८—मेरी बातों को सुनते ही वह असमीक्ष्यकारी पुरुष केवल एक अनुचर लेकर प्राणों को संकट में डालने को तैयार हो गया।

९—मैं नहीं जानता कि अब आगे क्या करना चाहिए; मैं इसी नगर में रहूँ अथवा यहाँ से चला जाऊँ।

१०—वह यही सोचता रह गया कि सामने खड़ा हुआ पुरुष मेरा शत्रु है, अथवा यतिवेषधारी कोई चर है अथवा शरण की इच्छा रखने वाला कोई भिखमंगा है।

त्रयोविंशतितम पाठ

कच्चित्, क-क, काम्, किं,
(किमु, किमुत, किंपुनः),
किल, केवलम् और खलु

२६३[1]—**कच्चित्** से वक्ता द्वारा व्यक्त की गई हुई किसी आशा का बोध होता है, और इसका अर्थ हुआ करता है "**मैं आशा करता हूँ कि**"। स्वरूपतः यह प्रश्नवाचक हुआ करता है और प्रश्न करने के ढंग के अनुसार इसका प्रत्याशित उत्तर 'हाँ' या 'नहीं' होता है; जैसे, **शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित्** (रघु० ५।८)—आप के तीर्थजल विघ्नरहित तो हैं ? अर्थात् मैं आशा करता हूँ कि आप के तीर्थजल विघ्नरहित हैं। **कच्चिन्न वाय्वादिरुपप्लवो··· आश्रमपादपानाम्** (रघु० ५।३)—मैं आशा करता हूँ कि आश्रम के वृक्षों के ऊपर आँधी-तूफान जैसी कोई उपद्रव या दुर्घटना तो नहीं बीती। (नहीं, कोई दुर्घटना नहीं बीती)।

२६४[2]—"क का अर्थ है 'कहाँ'। जब यह दो या दो से अधिक उपवाक्यों में दोहराया जाता है तो इसका अर्थ होता है "**बहुत बड़ा अन्तर**" अथवा "**बहुत बड़ी अयोग्यता**"; जैसे, **क सूर्यप्रभवो वंशः क चाल्पविषया मतिः** (रघु० १।२)—कहाँ तो सूर्य से पैदा हुआ वंश, और कहाँ स्वल्प ज्ञान वाली मेरी बुद्धि (अर्थात् दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है क्योंकि मेरी बुद्धि उस वंश का वर्णन करने के लिए बिल्कुल अयोग्य है)। **तपः क वत्से क च तावकं वपुः** (कुमार० ५।४)—तपस्या तथा तेरे शरीर में कितना जबर्दस्त अन्तर है (अर्थात् तेरा कोमल शरीर तपस्या करने के लिए उपयुक्त नहीं है)।

१—कच्चित् कामप्रवेदने। (अ०)

२—द्वौ क्व-शब्दौ महदन्तरं सूचयतः। (रघु० १।२ की मल्लिनाथ कृत टीका)

२६५[1]—'काम्म्' का अर्थ है **'स्वेच्छानुसार' 'अपनी इच्छा भर'**। परन्तु जिन अर्थों में इसका प्रयोग साधारणतः होता है, वे ये हैं—**'माना कि', 'थोड़ी देर के लिए कल्पना करते हुए'**। ऐसे प्रयोगों में **'काम्म्'** के बाद 'तु' या 'तथापि' अवश्य आता है; जैसे, **कामं न तिष्ठति मदानन-संमुखी सा भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः** (शा० १)—माना कि वह मेरे सामने मुँह करके नहीं खड़ी होती तब भी उसकी दृष्टि अधिकांशतः किसी अन्य वस्तु की तरफ नहीं है।

२६६[2]—**'किम्'** प्रश्न करने में प्रयुक्त होता है और 'क्यों', 'किस कारण से' अर्थों को प्रकट करता है; जैसे, **तत्रैव किं न चपले प्रलयं गतासि** (मुद्रा० २)—ऐ चपल देवि, तू उसी स्थान पर नष्ट क्यों नहीं हो गई?

कभी-कभी 'किम्' शब्द 'खराब' या 'कुत्सित' अर्थ में समास में आता है; जैसे, **स किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपम्** (किरात० २।५)—जो स्वामी को उचित राय नहीं देता, वह क्या मित्र है (अर्थात् वह बुरा मित्र है)।

२६७—**'किम्'** के बाद जब **वा, उत, आहो** इत्यादि आते हैं तो **'किं'** का अर्थ होता है **'कि···या'** **ज्ञायतां किमेतदारण्यकं ग्राम्यं वेति** (पंच० १।·)—इसका पता लगा लिया जाय कि वह पशु जंगली है या पालतू। **उत** के साथ **किम्** का प्रयोग समझने के लिये सेक्शन २५८ देखिये।

(क)[3] जब **किम्** शब्द उ, **उत** अथवा **पुनः** के साथ जोड़ दिया जाता है, तब उसका अर्थ होता है—क्या कहना है, उसकी तो बात ही क्या है; जैसे, **एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्** (हितो० १)—एक भी अनर्थकारी हैं; जहाँ चारों हों वहाँ तो कहना ही क्या है। **चाणक्येनाहूतस्य निर्दोषस्यापि शंका जायते किमुत सदोषस्य** (मुद्रा० १)—चाणक्य द्वारा बुलाये जाने पर तो निर्दोष व्यक्ति के भी हृदय में शंका पैदा हो जाती है; तो फिर अपराधी पुरुष

१—कामं प्रकामेऽनुमतावसूयानुगमेऽपि च। (वि०)

२—किं पृच्छायां जुगुप्सने। (अ०)

३—किमु सम्भावनायां स्यात् विमर्षे चापि दृश्यते। (मे०)
किमुतातिशये प्रश्ने विकल्पे च प्रयुज्यते। (वि०)

को तो कहना ही क्या है। **मयि नांतकोऽपि प्रभुः प्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्राः** (रघु० २।३२)—यमराज भी मुझे मारने में समर्थ नहीं हैं, अन्य हिंसक जन्तुओं की भला क्या मजाल है—**स्वयं रोपितेषु तरुषु उत्पद्यते स्नेहः किं पुनरंगसंभवेष्वपत्येषु** (कादम्० २६१)—अपने लगाये हुए वृक्षों के प्रति स्नेह उत्पन्न हो जाता है, फिर अपनी सन्तानों के प्रति तो कहना ही क्या है। **भवादृशस्य त्रैलोक्यमपि न क्षमं परिपंथीभवितुं किं पुनर्युधिष्ठिरबलम्** (वेणी० ३)—आप जैसे पुरुषों के सामने तीनों लोक तो ठहर नहीं सकते, फिर भला युधिष्ठिर की सेना की क्या मजाल।

विशेष—अनिश्चयात्मकता अथवा सन्देह बतलाने के लिए भी किमु शब्द का प्रयोग होता है; जैसे, **किमु विषविसर्पः किमु मदः** (उत्तर० ४)—क्या यह विष का प्रसार है अथवा अत्यन्त हर्ष?

२६८—**किल** का साधारण अर्थ है 'सचमुच', 'वस्तुतः', 'निश्चय ही।' किल शब्द उसके बाद आता है जिस पर जोर देना होता है; जैसे, **अर्हति किल कितव उपद्रवम्** (मालविका० ४)—निश्चय ही इस शठ का उपद्रव होना उचित है। **प्रत्यूहः सर्वसिद्धीनामुत्तापः प्रथमः किल**—(हितो० ३)—पहले से ही बहुत ज्यादा जोश का होना सारे मनोरथों की प्राप्ति में निश्चय ही बाधक होता है।

२६९[1] **किल** निम्नलिखित अर्थों में भी आता है—(१) 'कहते हैं, लोग कहते हैं'; **जैसे, बभूव योगी किल कार्तवीर्यः** (रघु०६।३८)–लोग कहते हैं कि कार्तवीर्य नामक एक योगी था। **जघान कंसं किल वासुदेवः** (म० भा०)। (२) नकली कार्य को द्योतित करने के लिए; जैसे, **प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष** (रघु० २।२७)—एक नकली सिंह ने उसे (स्त्री को) जबर्दस्ती खींच लिया। **पयस्यगाधे किल जातसंभ्रमा** (किरात० ८।४८)। (३) आशा प्रकट करने के लिए; जैसे, **पार्थः किल विजेष्यति कुरून्**—मैं आशा प्रकट करता हूँ कि पार्थ कुरुओं को जीत लेगा।

१—वार्तासम्भाव्ययोः किल। (अ०)

किल इत्यगमारुचिन्यकरणसम्भाव्यहेत्वलीकेषु। (गणरत्नमहोदधि)

विशेष—वर्धमान द्वारा प्रयुक्त **किल** शब्द में 'अरुचि' और 'अस्वीकरण' (घृणा) के भाव (एवं किल केचिद्वदंति और त्वं किल योत्स्यसे) उस दशा में प्रकट होते हैं जब 'किल' को 'किं' से युक्त कर देते हैं; जैसे, **न श्रद्दधे किं किल त्वं शूद्रान्नं भोक्ष्यसे** (सि० कौ०)—मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि तुम शूद्रों का अन्न खाओगे।

हेतु का अर्थ बहुत कम देखने में आता है।

२७०—**केवलम्** क्रियाविशेषण अव्यय है। इसका अर्थ होता है **'सिर्फ'**। परन्तु कभी-कभी यह शब्द विशेषण के तौर पर भी प्रयुक्त होता है; जैसे, **निषेदुषी स्थंडिल एव केवले** (कुमार० ५।१२)—सिर्फ स्थंडिल पर **बैठती थी** (अर्थात् **स्थंडिल पर** कोई चीज बिछाती नहीं थी)

(क) **'अपि'** अथवा **'किन्तु'** के साथ **न केवलम्** का प्रयोग साधारणतया देखने में आता है; जैसे, **वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना** (रघु० ८।३१)—न सिर्फ उसकी सम्पत्ति ही बल्कि उसमें अच्छे-अच्छे गुणों का होना भी दूसरों की भलाई के लिए था।

(ख) कभी-कभी 'अपि' के स्थान पर **प्रत्युत** का प्रयोग होता है; जैसे, **अयं वत्सो न केवलं ध्रियते प्रत्युत प्रांजलिना गरुडेन पर्युपास्यमानस्तिष्ठति** (नागा० ५)—मेरा बच्चा न सिर्फ जीवित ही है बल्कि हाथ जोड़ कर गरुड़ जी उसकी सेवा भी कर रहे हैं।

२७१[1]—**खलु** निम्नलिखित अर्थों में आता है—

(१) वस्तुतः, निश्चय ही। किसी बात पर जोर देने के लिए; जैसे, **मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति** (शा० ४)—सचमुच तेरे कदम रास्ते में अंट-शंट पड़ते हैं।

(२) प्रार्थनासूचक शब्द के तौर पर; **न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्** (शा० १)—इसके ऊपर बाण न छोड़ा जाय। **न खलु न खलु मुग्धे साहसं कार्यमेतत्** (नागा० २)।

१—निषेधवाक्यालंकारजिज्ञासानुनये खलु। (अ०)

खलु इति निषेधवाक्यालङ्कारजिज्ञासानुनयनियमनिश्चयहेतुविषादेषु।(ग०म०)

(३) शिष्टतापूर्ण तथा मृदुलतापूर्ण प्रश्न करने में; **न खलु तामभिक्रुद्धो गुरुः** (वेणी० ३)--मैं जानना चाहता हूँ कि क्या गुरु जी उससे क्रुद्ध नहीं हो गये ?

(४) निषेधार्थक क्त्वान्त शब्दों के साथ; जैसे, **अलम्** (सेक्शन ५७ देखिये); **निर्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम्** (शिशु० २।७०) —जब कोई मामला पत्र द्वारा निर्णीत किया जाता हो तो मौखिक सन्देश मत जोड़ दो (अर्थात् मौखिक सन्देश कहलाना अनावश्यक है)।

(५) कारण; **न विदीर्ये, कठिनाः खलु स्त्रियः** (कुमार० ४ । ५)— मैं टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाती हूँ, क्योंकि स्त्रियाँ कड़ी होती है (वर्धमान ने विषद के उदाहरण के तौर पर इसका उल्लेख किया है)।

इसी प्रकार **विधिना जन एष वंचितस्त्वदधीनं खलु देहिनां सुखम्** (कुमा० ४।१०)।

(६) कभी-कभी यह केवल वाक्यालंकार के तौर पर प्रयुक्त होता है।

विशेष—गणरत्नमहोदधि में उल्लिखित **नियम** और **निश्चय** करीब-करीब एक ही हैं।

अभ्यास

१—**विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य।** (शा० ३)

२—**न खलु विदितास्ते तत्र निवसंतश्चाणक्यहतकेन**—अथ किम्। (मुद्रा० २)

३—**भर्तृगतया चिंतयात्मानमपि नैषा विभावयति किं पुनरागंतुकम्।** (शा० ४)

४—**द्वावपि किलागमिनौ प्रयोगनिपुणौ च। किन्तु शिष्यागुणविशेषेण गणदास उन्नमितोपदेशः।** (मालविका० ३)

५—**अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः।** (विक्रमो० १)

६—**भो, न केवलं रूपे शिल्पेऽप्यद्वितीया मालविका।** (मालविका० २)

७—**वत्से सीते स्वहस्तावचितैः पुष्पैः सवितारं देवमुपतिष्ठस्व। न च त्वामवनिपृष्ठचारिणीमस्मत्प्रभावाद्वनदेवता अपि द्रक्ष्यंति किं पनर्मर्त्याः।** (उत्तर० ३)

८—गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरंपरा। सर्वाविनयानामेकैकमप्येषामायतनं किमुत समवायः। (कादम्० १०३)

९—भोः, कामं धर्मकार्यमनतिपात्यं देवस्य। तथापीदानीमेव धर्मासनादुत्थिताय पुनरुपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै निवेदितुम् नात्महे। (शा० ५)

१०—एवं कदलीदलेनानवरतं वीजयतः समुदभून्मे मनसि चिंता। नास्ति खल्वसाध्यं मनोभुवः। कायं हरिण इव वनवासनिरतः स्वभावमुग्धो जनः क च विविधविलासरसराशिर्गंधर्वराजपुत्री महाश्वेता। (कादम्० १५७)

११—निवार्यतामालि किमप्ययं बटुः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः। न केवलं यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्॥ (कुमार० ५।३८)

१२—किमपेक्ष्य फलं पयोधरान्ध्वनतः प्रार्थयते मृगाधिपः।
प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यया।
(किरात० २।२१)

१३—कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रणष्टस्ते धनंजय॥ (श्रीमद्० १८।७२)

१४—कामं नृपाः संतु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम्।
नक्षत्रतारागहसंकुलापि ज्योतिष्मती चंद्रमसैव रात्रिः॥
(रघु० ६।२२)

१५—क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः समवेधितो जनः।
परिहासविजल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यतां वचः॥
(शा० २)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

९—वयस्य मया न साधु समर्थितमापत्प्रतीकारः किल प्रमदवनोद्यानप्रवेश इति (विक्रमो० २)

२—भगवंतं जाबालिमवलोक्याहमचिंतयम् । तपस्विनां प्रतनुतपसामपि तेजः प्रकृत्या दुःसहं भवति किमुत सकलभुवनवंदितचरणानां मुनीनाम् । एवंविधानामघक्षयकारिणाम् पुण्यानि नामग्रहणान्यपि महामुनीनां किं पुनर्दर्शनानि (कादम्० ४३)

३—आजन्मनः शाठ्यमशिक्षितो यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य ।
परातिसंधानमधीयते यैर्विद्येति ते संतु किलाप्तवाचः ॥ (शा० ५)

४—यदृच्छया त्वं सकृदप्यवंध्ययोः पथि स्थिता सुन्दरि यस्य नेत्रयोः ।
त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत्सखीजनस्ते किमु रूढसौहृदः ॥ (विक्रमो० १)

५—न केवलं दरीसंस्थं भास्वतां दर्शनेन वः ।
अंतर्गतमपास्तं मे रजसोऽपि परं तमः ॥ (कुमार० ६।६०)

६—न केवलं तद्गुरुरेकपार्थिवः ।
क्षितावभूदेकधनुर्धरोपि सः । (रघु०३।३१)

७—मुखश्रवा मंगलतूर्यनिस्वनाः प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम् ।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः पथि व्यजृंभंत दिवौकसामपि ॥ (रघु० ३।३१)

८—रघुमेव निवृत्तयौवनं तममन्यंत नरेश्वरं प्रजाः ।
स हि तस्य न केवलां श्रियं प्रतिपेदे सकलान्गुणानपि ॥ (रघु० ८।५)

९—मेघालोके भवति सुखिनोप्यन्यथावृत्ति चेतः
कंठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे । (मेघ० ३)

१०—दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मंदायंते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ (मेघ०३)

११—स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।
प्रागंतरिक्षगमनात्स्वमपत्यजात-
मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयंति ॥ (शा० ५)

१२—क्व रुजा हृदयप्रमाथिनी क्व च ते विश्वसनीयमायुधम् ।
मृदुतीक्ष्णतरं यदुच्यते तदिदं मन्मथ दृश्यते त्वयि ॥ (मेघ०।३)

१३—कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि ।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थनां कुरुते ॥ (शा०२)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—कहा जाता है कि हम लोगों की अनवधानता के कारण राजा हम लोगों से बहुत ही क्रुद्ध हो गये हैं।

२—केवल एक बार भी देखे हुए व्यक्ति को मैं नहीं भूल सकता; भला फिर पुराने मित्र को कैसे भूल सकता हूँ?

३—इस तपोवन के निर्जीव पदार्थ भी एक पावन शक्ति से युक्त मालूम पड़ते हैं; भला फिर सजीव पदार्थों का क्या कहना है!

४—जब मैं उसके पास पहुँचा तो उसने न केवल मेरी ही, अपितु आचार्य की भी निन्दा की। (निर्+भर्त्स् अथवा गर्ह्, निन्द)

५—न केवल इतनी ही बात है कि कोई भी आदमी मुझसे घृणा नहीं करता, प्रत्युत लोग मुझे भोजन भी कराते हैं।

६—मैं आशा करता हूँ कि यह बात राजा के कान तक नहीं पहुँची है कि कौमुदी-उत्सव को तत्काल बन्द करने की आज्ञा मैंने ही दी है।

७—हम लोग देखते हैं कि जो लोग धनी पैदा होते हैं, वे भी इस संसार में पूर्ण रूप से प्रसन्न नहीं हैं; जिन्हें नाना प्रकार के कष्टप्रद व्यवसायों द्वारा अपनी जीविका उपार्जन करना पड़ता है, उनकी तो बात ही क्या है।

८—मैं दृढ़ आशा करता हूँ कि आप इस असहाय पुरुष का प्राण मुक्त कर देंगे। सज्जन पुरुष अपने शत्रु तक को मारने में हिचकते हैं, फिर भला इस शिशु-जैसे निरपराध जीव का क्या कहना है।

९—मैं आशा करता हूँ कि आप लोगों की तपस्यायें निर्विघ्न चल रही हैं।

१०—माना कि आप में सभी उत्तम गुण विद्यमान हैं, तथापि आप को उपदेश देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

११—वस्तुतः मुझे नहीं स्मरण है कि मैंने इसे ब्याहा था। पर इसे देखकर मेरे मन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है।

१२—क्या तेरी पवित्र विद्या तथा हृदय की इस चंचलता में कोई संगतता (सादृश्य) है?

१३—कहाँ तो प्रकृत्या अपरिमेय राजाओं के कार्य और कहाँ स्वल्प ज्ञान वाले मुझ जैसे पुरुष।

चतुर्विंश पाठ

च (च-च), जातु, तत्, ततः, तथा, तावत् और तु

२७२ [1]—'च' संयोजक समुच्चयबोधक अव्यय है और शब्दों अथवा वक्तव्यों (उक्तियों) को जोड़ता है। जिन-जिन शब्दों अथवा वक्तव्यों को जोड़ता है, उनमें प्रत्येक के साथ, अथवा सब से अन्त वाले के साथ यह आता है। परन्तु यह कभी भी वाक्य में पहले नहीं आ सकता; जैसे, **रामश्च गोविन्दश्च** अथवा **रामो गोविन्दश्च**—राम और गोविन्द। **तण्डुलानानयति च तान् पचति चौदनं भुंक्ते च** अथवा **तण्डुलानानयति तान् पचत्योदनं भुंक्ते च**—वह चावल लाता है, उसे पकाता है और पका हुआ भोजन खाता है। परन्तु प्रत्येक शब्द अथवा प्रत्येक वक्तव्य के साथ **'च'** को लगाने के बजाय सब से अन्त वाले के साथ ही च को रखना अधिक अच्छा मालूम होता है—**कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः** (रघु० ६।७६)

(क) प्रायः **'च'** वाक्य के प्रथम शब्द के अलावा किसी भी भाग में रख दिया जाता है; जैसे, **अथ गजस्तं प्रणम्य प्रस्थितः। शशकाश्च तद्दिनादारभ्य सुखेन तिष्ठन्ति** (पंच० ३।१)—तब उसे प्रणाम करके हाथी चला गया और उस दिन से खरगोश सुखपूर्वक रहने लगे।

(ख) जब 'च', **'न'** के साथ आता है तो उसका अर्थ **'न तो', 'न'** होता है; **न च न पण्डितो न चाप्यगम्यः** (मालविका० १)— न तो वह अप्रसिद्ध ही है, न अगम्य ही है।

(ग) कभी-कभी इसमें विरोधात्मक भाव अथवा विभेदात्मक भाव सूचित होता है। ऐसी दशा में इसका अनुवाद **'परन्तु', 'तथापि'** आदि से किया जाता

१—चान्वाचये समाहारेऽप्यन्योन्यार्थे समुच्चये।
पक्षान्तरे तथा पादपूरणेऽप्यवधारणे॥ (वि०)

है; जैसे, **शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः** (शा० १)—यह आश्रम तो शान्त है, तथापि मेरी भुजा फड़क रही है।

विशेष—इस अर्थ में च का दोहरा प्रयोग होता है। अगला सेक्शन देखिए।

(घ) बहुत विरल स्थलों पर ही इसका अर्थ '**सचमुच**' '**वस्तुतः**' होता है; जैसे, **अतीतः पंथानं तव च महिमा वाङ् मनसयोः** (**ग० म०**)—आप की महिमा वस्तुतः वाणी और मन के मार्ग से परे है।

(ङ) यह कभी-कभी '**शर्त**' सूचित करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है; जैसे, **जीवितं चेच्छसे मूढ हेतुं मे गदतः शृणु** (**म० भा०**) **अर्थात् जीवितमिच्छसे चेत्** इत्यादि।

(च) यह वाक्यालंकार के तौर पर अथवा पादपूरण से लिए भी प्रयोग में लाया जाता है; जैसे, **भीमः पार्थस्तथैव च**। (**ग० म०**)

विशेष—कोषों में 'च' के ये अर्थ दिये गए हैं; **अन्वाचय, समाहार, इतरेतर, समुच्चय**। **अन्वाचय** का अर्थ है—किसी आश्रित घटना या इतिवृत्त को किसी प्रधान घटना या इतिवृत्त के साथ जोड़ना; जैसे, **भिक्षामट गां चानय**—भीख माँगने जाओ और (ऐसा करने के साथ ही साथ) गाय लेते आना। '**समाहार**' सामूहिक (समष्टिगत) ऐक्य को कहते हैं; जैसे, **पाणी च पादौ च पाणिपादम्**। '**इतरेतर**' पारस्परिक सम्बन्ध को कहते हैं; जैसे, **प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च प्लक्षन्यग्रोधौ**। '**समुच्चय**' समूह को कहते हैं। अथवा यों कहिए कि समुच्चय से समूह सूचित होता है; जैसे, **पचति च पठति च**।

२७३ 'च' प्रायः दो वक्तव्यों के साथ दोहराया जाता है।

(१) एक अर्थ तो है—**एक तरफ.....दूसरी तरफ**, यद्यपि—तथापि; जैसे, **न सुलभा सकलेन्दुमुखी च सा किमपि चेदमनंगविचेष्टितम्** (विक्रमो० २)—एक तरफ तो यह कि पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली स्त्री मिलना सुलभ नहीं है, दूसरी तरफ यह कि कामदेव की यह अवर्णनीय चेष्टा हो रही है।

(२) दो घटनाओं का साथ होना अथवा अविलम्ब से होना सूचित करने के लिए "च" प्रयोग में आता है; जैसे, **ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः** (रघु० १० । ६)—ज्योंही वे लोग समुद्र पर पहुँचे, त्योंही आदि पुरुष (विष्णु) जाग पड़े ।

२७४—**जातु** का अर्थ होता है—**जरा भी, सम्भवतः, कदाचित्, स्यात्**; जैसे, **किं तेन जातु जातेन** (पंच० १ । १)—सम्भवतः उसके पैदा होने से क्या लाभ ? **न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिम्** (कुमार० ५ । ५५)—उस कुमारी ने जरा भी सुख नहीं भोग पाया ।

विशेष—पाणिनि का कहना है कि **जातु** का प्रयोग "**नहीं मानना**" के अर्थ में विधिलिङ् के साथ किया जाता है; जैसे, **जातु यत् त्वादृशो हरिं निन्देन्न मर्षयामि** (सि० कौ०)—मैं नहीं मनाता कि आपका-सा व्यक्ति हरि की निन्दा करेगा ।

२७५—**तद्** सर्वनाम (प्रयोगों के लिए सेक्शन १३२ देखिये) तथा क्रियाविशेषण अव्यय भी है । **क्रियाविशेषण की दशा** में इसका अर्थ है (१) इस कारण से,' 'इसलिए;' '**फलतः**'; जैसे, **राजपुत्रा वयं, तद्विग्रहं श्रोतुं नः कुतूहलमस्ति** (हित० ३)—हम लोग राजपुत्र हैं; इसलिए, हमें संग्राम के विषय में सुनने की इच्छा है । (२) 'तो,' 'उस दशा में'—इस अर्थ में यदि का इतरेतर-सम्बन्धी बन कर आता है; जैसे, **तदेहि विमर्दक्षमां भूमिमवतरावः** (उत्तर० ५)—तो आओ, युद्ध के लिए उपयुक्त किसी स्थान पर चलें । **तथापि यदि महत् कुतूहलं तत् कथयामि** (कादम्० १३६)—तो भी यदि बड़ी जबर्दस्त जिज्ञासा हो तो मैं कहूँ ।

२७६—**ततः** '**तद्**' की पंचमी के रूप में प्रयोग में आता है; जैसे, **तस्मात्, तस्याः, ततोऽन्यत्रापि दृश्यते** (सि० कौ०) = **तस्मादन्यत्रापि** । पर यह क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर बहुत आता है । इसका प्राथमिक अर्थ है "वहाँ से" "उस स्थान से" और साधारण अर्थ है '**तब**', '**बाद में**', "**इसके बाद**"; जैसे, **ततः कतिपयदिवसापगमे** (कादम्० ११०)—बाद में कुछ दिनों के बीत जाने पर । इसका अर्थ (१) "**इस कारण से**" "**इसलिए**", "**फल-स्वरूप**" भी होता है और यतः का इतरेतरसम्बन्धी बनकर वाक्य में आता है;

(२) 'तो,' 'उस दशा में'; यदि का इतरेतरसम्बन्धी बन कर आता है; जैसे, **यदि गृहीतमिदं ततः किम्** (कादम् १२०)—यदि पकड़ लिया गया तो क्या होगा ? (३) कभी-कभी ततः का अर्थ होता है **उसके परे**, आगे, इसके **अतिरिक्त**; जैसे, **ततः परतो निर्मानुषमरण्यम्** (कादम्० १२१)—उसके परे एक निर्जन वन है।

(क) **ततस्ततः** (ततः+ततः) संवादों में आता है। इसका अर्थ है—फिर इसके आगे, कहते चलिए, आगे कहिए ; जैसे, **राक्षसः—उभयोरप्यस्थाने प्रयत्नः**। ततस्ततः (मुद्रा० २)—राक्षस—दोनों का प्रयत्न अनुचित था; अच्छा, तो आगे क्या हुआ, कहते चलिए।

२७७—**तथा**[1] का अर्थ है "इस प्रकार," "वैसा ही" उसी ढंग से; जैसे, **तथा मां वंचयित्वा** (शा० ५)—इस प्रकार मुझे धोखा देकर। **सूतस्तथा करोति** (विक्रमो० १)—सारथि वैसा ही करता है। **तथा च श्रुतिः** (शंकर०)—और वेद ऐसा (इस प्रकार) कहता है।

(क) यह इन निम्नलिखित अर्थों में भी प्रयुक्त होता है :—

(१) 'और यह भी' 'इसी प्रकार से यह भी'; जैसे, **अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा** (पंच १।१३)—जो भविष्य के लिए व्यवस्था करता है और जो प्रत्युत्पन्नमति भी होता है।

(२) 'हाँ', **ऐसा ही हो,' 'इसी प्रकार होगा'**। ऐसी दशा में यह स्वीकृति अथवा प्रतिज्ञा सूचित करता है और 'इति'-पूर्वक रहता है; जैसे, **राजा—एनं तत्रभवतः सकाशं प्रापय। प्रतीहारी—तथेति निष्क्रान्ता**। राजा—इसे श्रीमान् जी के पास ले जाओ। प्रतीहारी—अच्छा, ऐसा ही होगा (आपकी आज्ञा मानी जायगी)। ऐसा कहती हुई निकल गई।

(३) 'शपथ लेने में' इसका प्रयोग "यथा"—पूर्वक होता है और इसका अर्थ होता है—इतने निश्चयपूर्वक जितने; जैसे, **यथाहमन्यं न चिंतये तथायं पततां परासुः**—जितना यह निश्चय है (सत्य है कि मैं किसी भी दूसरे पुरुष के बारे में नहीं सोचता हूँ, उतने ही निश्चयपूर्वक यह घटना भी घटे कि यह व्यक्ति मर जाय।

१—तथाऽभ्युपगमे पृष्टप्रतिवाक्ये समुच्चये। सदृशे निश्चयेपि स्यात्। (मे०)

जब यथा का परस्परसम्बन्धी होकर **तथा** आता है तो इसके अर्थ कुछ और ही होते हैं—इसके लिए सत्ताईसवाँ पाठ देखिए।

विशेष—'तथाहि' का अर्थ होता है **'क्योंकि' 'ऐसा कहा गया है,'** उदाहरणार्थ; **तथाच** का अर्थ होता है **'और इसी प्रकार'**। इन दोनों शब्दों का प्रयोग प्रायः किसी की उक्ति का उद्धरण करने में होता है।

२७८—**तावत्** का प्रयोग इन अर्थों में होता है :—

(१) इसका जो शब्दार्थ है उस अर्थ में, यानी **'पहले'** और **'कुछ करने के पहले'**; जैसे, **प्रिये इतस्तावदागम्यताम्** (शा० १)—मेरी प्यारी, पहिले इधर तो आओ। **आह्लादयस्व तावच्चन्द्रकरश्चन्द्रकान्तमिव** (विक्रमो० ५) पहले तो मुझे प्रसन्न करो जैसे चन्द्रमा की किरण चन्द्रकान्त मणि को प्रसन्न करती है।

(२) **रही बात, इसी बीच में, तब तक** अर्थों में; जैसे, **सखे स्थिरप्रतिबन्धो भव।। अहं तावत् स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये** (शा०२)—मित्र, विरोध करने में दृढ़ बने रहो, रही बात मेरी, सो मैं तो अपने स्वामी की इच्छा के अनुसार आचरण करूँगा।

(३) **अभी, अब** अर्थों में; जैसे **गच्छ तावत्**—अभी या अब जाओ।

(४) किसी वक्तव्य पर बल देने के लिए **वस्तुतः** के अर्थ में; जैसे **त्वमेव तावत् प्रथमो राजद्रोही** (मुद्रा० १)—तू ही पहिला राजद्रोही है।

(५) **रही, विषय में** आदि अर्थों में; जैसे, **एवंकृते तव तावत् प्राणयात्रा क्लेशं विना भविष्यति** (पंच० १।८) रही बात तुम्हारी, सो ऐसा हो जाने पर, तुम्हारी जीविका बिना किसी कष्ट के हो जाया करेगी। **विग्रहस्तावदुपस्थितः** (हितो० ३)—रही बात युद्ध की, सो तो सामने उपस्थित है।

जब **यावत्** का इतरेतर सम्बन्धी होकर **तावत्** आता है, तब उसके जो अर्थ होते हैं, वे सत्ताईसवें पाठ में लिखे जायँगे।

२७९—**तु**[1] प्रायः विरोधवाची बनकर प्रयोग में आता है। इस दशा में इसका अर्थ होता है—**परन्तु, इसके विरुद्ध**; जैसे **स सर्वेषां सुखानां प्रायोऽन्तं**

१—तु पादपूरणे भेदे समुच्चयेऽवधारणे। (वि०)

ययौ। एकं तु सुतमुखदर्शनसुखं न लेभे (कादम्० ५६)—वह सभी सुखों को पूर्णरूप से भोगता था, परन्तु उसने पुत्रमुखदर्शन का सुख कभी भी नहीं भोगा। इस अर्थ में यह **किम्** या **परम्** से जुड़ा हुआ रहता है।

टिप्पणी—तु वाक्य के आरम्भ में कभी भी नहीं आता, पर **परन्तु** और **किन्तु** सदा ही वाक्यारम्भ में आते हैं।

(क) बिना किसी विरोधी भाव को व्यक्त करते हुए "तु" प्रायः "**और अब**" 'अब' 'तो' के अर्थ में आता है जैसे, **एकदा तु नातिदूरोदितं सहस्रमरीचिमालिनि प्रतीहारी समुपसृत्याब्रवीत्** (कादम्० ८०)—अब, एक बार, जब सहस्रकिरणधारी भगवान् सूर्यदेव बहुत ऊँचे नहीं चढ़े थे, कि इतने ही में द्वारपाल ने समीप आकर कहा। **'अवनिपतिस्तु तामनिमेषलोचनो ददर्श** (कादम्० ११)—महाराज तो उसकी तरफ टकटकी लगाकर देखने लगे। **यत्तु आसनशब्दस्यासन्नादेश इति काशिकायामुक्तं तत् प्रामादिकम्** (सि० कौ०) अथवा **निर्वापितं तु परिरभ्य वपुर्न नाम**। (मालती० ८)

(ख) कभी-कभी तु शब्द विभिन्नता या उत्तमतर गुण सूचित करता है; जैसे, **मृष्टं पयो मृष्टतरं तु दुग्धम्** (ग० म०)—पानी निर्मल होता है, परन्तु दूध और भी निर्मल होता है। कभी-कभी बल देने के लिए भी इसका प्रयोग होता है; जैसे, **भीमस्तु पाण्डवानां रौद्रः** (ग० म०)—केवल भीम पाण्डवों में सबसे भयंकर हैं।

अभ्यास

१—**तद्यदि नातिखेदकरमिव ततः कथनेनात्मानमनुग्राह्यमिच्छामि।** (कादम्० १३४)

२—**अपसृते च तस्मिन् स विहंगराजो राजाभिमुखो भूत्वा राजानमुद्दिश्यार्यामिमां पपाठ। राजा तु तां श्रुत्वा संजातविस्मयोऽमात्यमब्रवीत्।** (कादम्० १२)

३—**आर्य ततः किं विलम्ब्यते। त्वरितं (तं)। प्रवेशय** (उत्तर० १)

४—**अनेन क्रमेण तस्य सर्वेष्वरण्यवासिष्वाधिपत्यं बभूव। ततस्तेन स्वज्ञातिभिरावृतेनाधिकं प्रभुत्वं साधितम्।** (हितो० ३)

५—आर्ये कृतपरिश्रमोऽस्मि चतुःषष्ट्यंगे ज्योतिःशास्त्रे । तत्प्रवर्त्यतां भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाकः । चंद्रोपरागं प्रति तु केनापि विप्रलब्धास्मि । (मुद्रा० १)

६—भगवन् कुसुमायुध त्वया चंद्रमसा च विश्वसनीयाभ्यासतिसंधीयते कामिजनसार्थः । (शा० ३)

७—तात लताभगिनीं वनज्योत्स्नां ताववामंत्रयिष्ये । (शा० ४)

८—करटक उवाच । भद्र किं कृतं तत्रभवता । दमनक आह । मया तावन्नीतिबीजनिर्वापणं कृतं, परतो दैवविहितायत्तम् । (पंच १ । १५)

९—दृष्ट्वा मेघनादं दूरत एव कृतनमस्कारं नमप्राक्षीत् । तिष्ठतु तावत्पुरस्तात्पत्रलेखागमनवृत्तांतप्रश्नो, वैशंपायनवृत्तांतमेव तावत् पृच्छामि । (कादम्० ३०४)

१०—अयमेकपदे तया वियोगः सहसा चोपनतः सुदुःसहो मे ।
नववारिधरोदयादहोभिर्भवितव्यं च निरातपत्वरम्यैः ॥
(विक्रमो० ४)

११—प्रतिग्रहीतुं प्रणयिप्रियत्वात्त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च ।
संमोहनं नाम च पुष्पधन्वा धनुष्यमोघं समधत्त बाणम् ।
(कुमार० ३ । ६६)

१२—न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ (मनु० २ । ९४)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अत्रभवत्या प्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु । कुत इदमुच्यत इति चेत्त्वं साधुभिरुपदिष्टः प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति । स चेत्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति, अभिनंद्य शुद्धांतमेनां प्रवेशयिष्यसि । विपर्यये तु पितुरस्याः समीपनयनमवस्थितमेव । (शा० ५)

२—कथारंभकाले राजपुत्रा ऊचुः । आर्य मित्रलाभः श्रुतस्तावदस्माभिः इदानीं सुहृद्भेदं श्रोतुमिच्छामः । (हितो० २)

३—सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा ।
चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥ (हितो० १)

४—लब्धांतरा सावरणेऽपि गेहे योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते ।
बिभर्षि चाकारमनिर्वृतानां मृणालिनी हैममिवोपरागम् ॥ (रघु० ६ । ७)

५—मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः ।
मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः ॥ (शा० ६)

६—देव परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु—
सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला बाहूत्क्षेपं क्रंदितुं च प्रवृत्ता ।
स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारादुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम ॥ (शा० ५)

७—धनं तावदसुलभं लब्धं कृच्छ्रेण रक्ष्यते ।
लब्धनाशो यथा मृत्युस्तस्मादेतन्न चिंतयेत् ॥ (हितो० १)

८—सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदांतकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ (श्रीमद्० १५।१५)

९—न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः ।
क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते । (शा० १)

१०—आपूर्णश्च कलाभिरिन्दुरमलो यातश्च राहोर्मुखं
संजातश्च घनाघनो जलधरः शीर्णश्च वायोर्जवात् ।
निर्वृत्तश्च फलेग्रहिर्द्रुमवरो दग्धश्च दावाग्निना
त्वं चूडामणितां गतश्च जगतो यातश्च मृत्योर्वशम् ॥ (मालती० ६)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—जो लोग धर्मानुकूल आचरण करते हैं और परोपकार में लगे रहते हैं, वे ही परमात्मा की कृपा के पात्र होते हैं ।

२—मैं बम्बई से आठ रेशमी वस्त्र, पाँच चाँदी के पात्र और कई उपयोगी वस्तुएँ लाया हूँ ।

३—एक तरफ तो यह कि मैंने उन्हें कभी पहिले नहीं देखा है; दूसरे यह कि उनकी वाणी वज्राघात के समान कठोर है; सम्भवतः यह कौन पुरुष हो सकता है ?

५—आर्ये कृतपरिश्रमोऽस्मि चतुःषष्ट्यंगे ज्योतिःशास्त्रे । तत्प्रवर्त्यतां भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाकः । चंद्रोपरागं प्रति तु केनापि विप्रलब्धास्मि । (मुद्रा० १)

६—भगवन् कुसुमायुध त्वया चंद्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामति-संधीयते कामिजनसार्थः । (शा० ३)

७—तात लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामंत्रयिष्ये । (शा० ४)

८—करटक उवाच । भद्र किं कृतं तत्रभवता । दमनक आह । मया तावन्नीतिबीजनिर्वापणं कृतं, परतो दैवविहितायत्तम् । (पंच १ । १५)

९—दृष्ट्वा मेघनादं दूरत एव कृतनमस्कारं तमप्राक्षीत् । तिष्ठतु तावत्पुरस्तात्पत्रलेखागमनवृत्तांतप्रश्नो, वैशंपायनवृत्तांतमेव तावत् पृच्छामि । (कादम्० ३०४)

१०—अयमेकपदे तया वियोगः सहसा चोपनतः सुदुःसहो मे ।
नववारिधरोदयादहोभिर्भवितव्यं च निरातपत्वरम्यैः ॥
(विक्रमो० ४)

११—प्रतिग्रहीतुं प्रणयिप्रियत्वात्त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च ।
संमोहनं नाम च पुष्पधन्वा धनुष्यमोघं समधत्त बाणम् ।
(कुमार० ३ । ६६)

१२—न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ (मनु० २ ।९४)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अत्रभवत्या प्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु । कुत इदमुच्यत इति चेत्त्वं साधुभिरुपदिष्टः प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति । स चेत्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति, अभिनंद्य शुद्धांतमेनां प्रवेशयिष्यसि । विपर्यये तु पितुरस्याः समीपनयनमवस्थितमेव । (शा० ५)

२—कथारंभकाले राजपुत्रा ऊचुः । आर्य मित्रलाभः श्रुतस्तावदस्माभिः इदानीं सुहृद्भेदं श्रोतुमिच्छामः । (हितो० २)

३—सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा ।
चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥ (हितो० १)

४—लब्धांतरा सावरणेऽपि गेहे योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते ।
बिभर्षि चाकारमनिर्वृतानां मृणालिनी हैममिवोपरागम् ॥ (रघु० ६ । ७)

५—मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः ।
मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः ॥ (शा० ६)

६—देव परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु —
सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला बाहूत्क्षेपं क्रंदितुं च प्रवृत्ता ।
स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारादुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम ॥ (शा० ५)

७—धनं तावदसुलभं लब्धं कृच्छ्रेण रक्ष्यते ।
लब्धनाशो यथा मृत्युस्तस्मादेतन्न चिंतयेत् ॥ (हितो० १)

८—सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदांतकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ (श्रीमद्० १५।१५)

९—न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः ।
क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते । (शा० १)

१०—आपूर्णश्च कलाभिरिन्दुरमलो यातश्च राहोर्मुखं
संजातश्च घनाघनो जलधरः शीर्णश्च वायोर्जवात् ।
निर्वृत्तश्च फलेग्रहिर्द्रुमवरो दग्धश्च दावाग्निना
त्वं चूडामणितां गतश्च जगतो यातश्च मृत्योर्वशम् ॥ (मालती० ६)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—जो लोग धर्मानुकूल आचरण करते हैं और परोपकार में लगे रहते हैं, वे ही परमात्मा की कृपा के पात्र होते हैं ।

२—मैं बम्बई से आठ रेशमी वस्त्र, पाँच चाँदी के पात्र और कई उपयोगी वस्तुएँ लाया हूँ ।

३—एक तरफ तो यह कि मैंने उन्हें कभी पहिले नहीं देखा है; दूसरे यह कि उनकी वाणी वज्राघात के समान कठोर है; सम्भवतः यह कौन पुरुष हो सकता है ?

४—ज्योंही ये वीर योद्धा अपने स्वामी का पक्ष त्याग देंगे, त्योंही मैं उसके राज्य में विद्रोह उभाड़ दूँगा।

५—तुमने युद्ध के लिए बड़ी अच्छी तैयारियाँ कर ली हैं; इसलिये तुम्हें किसी बात की भी कमी न होगी।

६—दुर्योधन—उस युवा वीर के शौर्य पर बड़ा आश्चर्य है। मैं समझता हूँ कि उसके अद्भुत वीर कृत्यों को देखकर सभी योद्धा थोड़ी देर तक आश्चर्य के मारे स्तब्ध हो गये होंगे। अच्छा, आगे कहो।

७—अपने मधुर-वाक्यों से इस प्रकार मुझे ठगकर क्या तुम अब मुझे त्याग कर शरमाते नहीं हो?

८—अपनी सहचरी के क्षणिक वियोग से तुम इतने व्यथित हो और इतने पर भी मुझ-जैसे कामाभिभूत व्यक्ति को अपनी खोई हुई प्रिया के विषय में कोई भी समाचार बतलाने से इतना हिचकते हो।

९—ज्योंही उसने घर की देहरी पर पाँव रक्खा त्योंही तीन आदमी उस पर झपट पड़े और उसे बन्दी कर ले गये।

१०—अब आप धन, प्रतिष्ठा, सन्तति और मनुष्यों द्वारा अभिलषित और भी अन्य वस्तुएँ प्राप्त कर चुके। अब आप और क्या चाहते हैं? अथवा हाँ, हाँ, ठीक ही कहा है कि मनुष्य की तृष्णाएं (इच्छाएँ) कहाँ तक फैली हैं इसका कोई ठिकाना नहीं है।

११—यज्ञशर्मा के पास जाओ और उससे पूछो कि तुम इतनी देर क्यों रुक गए; तब तक मैं जाकर दूसरे ब्राह्मणों को बुला लाता हूँ।

१२—बड़े प्रातःकाल उठकर राम अध्ययन करना आरम्भ कर देता है; तुम तो बिस्तर पर खर्राटे मारते रहते हो।

१३—जहाँ तक मित्रगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र का सम्बन्ध है, उसका विश्वास तो किया जा सकता है; परन्तु मैं उसके अन्य पुत्रों के विषय में कुछ भी नहीं जानता।

१४—यदि यह हो जाय तो आप स्वयं ही निर्विघ्न अपना कार्य करते चलेंगे और हम लोग भी अपना-अपना कार्य कर सकेंगे।

पंचविंश पाठ

दिष्ट्या, न, नाम, नु, ननु और नूनम्

२८०—**दिष्ट्या** हर्षसूचक अव्यय है। इसका अर्थ है—**मैं प्रसन्न हूँ, हर्ष की बात है, सौभाग्य की बात है, भगवान् को धन्यवाद है**; जैसे, **दिष्ट्या प्रतिहतं दुर्जातम्** (मालती० ४)—हर्ष की बात है कि विपत्ति टल गयी। **दिष्ट्या कोपव्याजेन देव्या परित्रातो भवान्** (मालविका० १)—भगवान् को धन्यवाद है कि आप महारानी द्वारा क्रोध के बहाने बचा लिए गये।

(क) प्रायः **दिष्ट्या वृध् धातु** के साथ आता है। **दिष्ट्या वृध् का अर्थ** है—बधाई देना। जिसको बधाई दी जाती है वह वृध् धातु का कर्ता कारक होता है; जिस कारण से बधाई दी जाती है वह तृतीया विभक्ति में रक्खा जाता है; जैसे, **दिष्ट्या महाराजो विजयेन वर्धते** (विक्रमो० १)—मैं श्रीमान् को आप की विजय पर बधाई देता हूँ। **दिष्ट्या सुहृद्-बुद्ध्या वर्धितोऽसि**(मालती०४)—आप के मित्र मूर्च्छा से उठकर होश में आए, इस पर मैं आपको बधाई देता हूँ।

२८१—'**न**' (नहीं) क्रिया-विशेषण अव्यय के तौर पर प्रयुक्त होता है, जैसे, **न दृष्टोऽयं मया**—वह मुझसे नहीं देखा गया। किसी संज्ञा के संयोग में आये हुए 'कोई नहीं' के अर्थ को व्यक्त करने के लिए किसी अनिश्चय-वाचक के साथ '**न**' का प्रयोग करते हैं; जैसे, **न कोऽपि नरो मामायातः**—मेरे पास कोई भी मनुष्य नहीं आया था। **योगिनां न किमपि भयम्**—योगियों को कोई भी भय नहीं है। निषेधार्थक वाक्यों में अनिश्चय-वाचक रूपों के समष्टि का बहिष्करण सूचित होता है; जैसे, **मरणान्न कोऽपि बिभेति**—मौत से कोई भी नहीं डरता।

(क) अनेक स्थलों पर **न—न** का प्रयोग बहुत ही बलशाली वक्तव्य सूचित करने के लिए किया जाता है; जैसे, **नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम्** (शा० ३)—वह निश्चय ही अपनी मनोव्यथा का गूढ़ कारण बता देगी (यह बात नहीं है कि वह नहीं बतावेगी)।

२८२[1]**—'नाम'** प्रायः **'नामक'** के अर्थ में प्रयुक्त होता है; जैसे, **रावणो नाम लंकेशः**—रावण नामक लंका का राजा। **पुष्पपुरी नाम नगरी**—पुष्पपुरी नामक नगरी।

विशेष—नाम शब्द के पूर्व आने वाला शब्द उसी विभक्ति में होना चाहिए जिस विभक्ति में वह संज्ञा होगी जिसका कि वह गुण है; जैसे, **मेघनादो नाम मित्रम्** (पंच० १।१५)—मेघनाद नामक मित्र। **तन्नंन्दिनीं सुवृत्ता नामोपयम्य** (दशकु० १।१)। **अस्ति पाटलिपुत्रे नाम नगरे बलभिन्नाम वणिक्** (दशकु० २।६)। यह 'नाम' शब्द किसी के साथ समस्त नहीं होता और इसको **नामन्** शब्द, जो समस्त होता है, **का** पर्यायवाची समझकर गड़बड़ी नहीं करनी चाहिए, जैसे, **दशरथनाम राजा**—बिल्कुल अशुद्ध प्रयोग है। या तो **'दशरथो नाम राजा'** होना चाहिये, या **'दशरथनामा राजा'** होना चाहिये (दशरथो नाम यस्य सः)।

२८३—नाम शब्द का एक दूसरा अर्थ है—**वस्तुतः, निश्चय ही सत्यतः** जो साधारणतया प्रयोग में आता है; जैसे, **मया नाम जितम्** (विक्रमो० १)—मैं वस्तुतः जीत गया हूँ। **विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम** (शा० १)—अवश्य ही, आश्रमों में बहुत सीधा-सादा वस्त्र पहन कर घुसना चाहिए।

विशेष—जब **नाम** शब्द कः, किम्, कथम् इत्यादि के साथ आता है तब इसका अर्थ होता है—सम्भवतः मैं जानना चाहूँगा (२५७ सेक्शन के इव के साथ तुलना कीजिये); जैसे, **को नाम राज्ञां प्रियः** (पंचतंत्र)—सम्भवतः राजाओं का कौन प्रिय है। **को नाम पाकाभिमुखस्य जंतुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे** (उत्तर० ७)—मैं जानना चाहता हूँ कि जब भाग्य अपनी शक्ति दिखलाने पर तुला हो तो भला उसके दरवाजे को कौन बन्द कर सकता है? **अयि कथं नामैतत्** (उत्तर० ६)—वस्तुतः यह कैसी बात है?

२८४—नाम के निम्नलिखित प्रयोग भी होते हैं (१) बहाना सूचित करने के लिये; जैसे, **कार्तान्तिको नाम भूत्वा** (दशकुमार २।६)—ज्योतिषी का बहाना करके।

१—नाम प्राकाश्यसंभाव्यक्रोधोपगमकुत्सने। (अ०)
नाम प्राकाश्यकुत्सयोः।
सम्भाव्याभ्युपगमयोरलीके विस्मये क्रुधिः॥ (हे०)

(२) आज्ञा (लोट्) के रूपों के साथ **'मान लिया, 'सम्भव है कि' 'यदि आप चाहें'** इत्यादि अर्थों में; जैसे, **यत् खल्वनालोचितावधि दुःखावसानमेव दुःखं तन्मरणभीरोर्भवतु नाम शोकावेगाय** (कादम्० ३२८)—मान लिया कि (हो सकता है कि) अनिश्चित काल तक टिकने वाली विपत्ति जिसका अन्तिम परिणाम शोक ही हुआ करता है, मृत्यु से डरने वाले पुरुष के हृदय में शोक की ही भावनाएँ पैदा करेगी। **एवमस्तु नाम**—अच्छा, ऐसा ही हो।

(३) **आश्चर्य** के अर्थ में; **अन्धो नाम पर्वतमारोहति**—(ग० म०) आश्चर्य की बात है कि अन्धा आदमी पर्वत पर चढ़ता है।

(४) क्रोध, और कभी-कभी निन्दा अर्थ में; जैसे, **किं नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि** (उत्तर० ४)—ओ हो, क्या अस्त्र-शस्त्र चमक रहे हैं? **ममापिनाम दशाननस्य परैः परिभवः** (ग० म०)—ऐं, क्या मुझ दशानन रावण की भी दूसरों से पराजय हो?

२८५[1]—**नु** प्रश्न करने में प्रयुक्त होता है और सन्देह अथवा अनिश्चय सूचित करता है; जैसे, **स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु** (शा०६)—क्या यह एक स्वप्न था, अथवा धोखा, अथवा मस्तिष्क का पागलपन?

(१) **नु** प्रायः प्रश्नवाचक सर्वनाम तथा प्रश्नवाचक-सर्वनामनिष्पन्न शब्दों के साथ समस्त कर दिया जाता है और **'सम्भवतः', 'वस्तुतः'** इन अर्थों को द्योतित करता है (सेक्शन २५७ के इव से तुलना कीजिए); जैसे, **किं न्वेतत् स्यात् किमन्यदितोऽथवा** (मालती० १)—यह सम्भवतः क्या हो सकता है अथवा इसके अतिरिक्त और दूसरा क्या हो सकता है? **कथं नु गुणवद् विन्देयं कलत्रम्** (दशकु० २।६)—सचमुच मैं गुणवती स्त्री कैसे पाऊँ?

२८६[2]—**नु** प्रायः **न** के साथ जोड़ा जाता है, और अब तो **ननु** एक पृथक् शब्द ही माना जाता है। **ननु** निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है—

(१) **'क्या वस्तुतः यह बात नहीं है कि', 'अवश्य ही यह ऐसी ही बात है,'** अर्थ में; जैसे, **यदाऽमेधाविनी शिष्योपदेशं मलिनयति**

१—नु पृच्छायां विकल्पे च। (अ०)

२—प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामंत्रणे ननु। (अ०)।

तदाचार्यस्य दोषो ननु (मालविका० १)—जब मन्दबुद्धि शिष्या उपदेश को नष्ट कर देती है, तो क्या वस्तुतः आचार्य का दोष नहीं ?

(२) संशोधक शब्द की जगह; जैसे, **ननु पदे परिवृत्य भण** (मृच्छ० ६) —मैं कहता हूँ, कि शब्दों को बदल कर कहो। **ननु भवानग्रतो मे वर्तते** (शा०२)—क्यों, आप मेरे सामने हैं (क्या यह बात सच नहीं है कि आप मेरे सामने हैं) ? **ननु विचिनोतु भवांस्तदस्मिन्नुद्याने** (विक्रमो०२)—उसे तुम्हें इस बगीचे में खोजना चाहिए।

(३) **'प्रार्थना करता हूँ' 'कृपया'** इन अर्थों में; जैसे, **ननु मां प्रापय पत्युरन्तिकम्** (कुमार०४।३२)—कृपया मुझे मेरे पतिदेव के पास पहुँचा दीजिए।

(४) सम्बोधन करने में। इस दशा में इसका अर्थ होता है **'ओहो, आहा'**; जैसे, **राजवाहनोऽभाषत। ननु मानव, अत्र भवानेकाकी किमिति निवसति** (दशकु० १।२) राजवाहन ने कहा, 'ऐ मनुष्य, तुम यहाँ अकेले क्यों रहते हो ?' **ननु मूर्खाः पठितमेव युष्माभिस्तत्काण्डे** (उत्तर० ४) —'हे मूर्खो, तुमने उस अध्याय में यह विषय पहिले ही पढ़ लिया है।'

(५) प्रश्न करने में; जैसे, **ननु समाप्तकृत्यो गौतमः** (उत्तर०४)—क्या गौतम ने अपना कार्य समाप्त कर लिया ?

(क) तार्किक शास्त्रार्थों में आपत्ति अथवा विरोधी सिद्धान्त उपस्थित करने के लिये **ननु** का प्रयोग होता है और **अत्रोच्यते** अथवा केवल **उच्यते** उस वक्तव्य के साथ जोड़ दिया जाता है जिसमें आपत्ति का उत्तर रहता है अथवा सिद्धांत की काट रहती है; जैसे, **'ननु एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः' इति वचनेन विषमो विभागः दर्शित इति। अत्रोच्यते'। सत्यमयं विषमो विभागः सशास्त्रस्तथापि लोकविद्विष्टत्वान्नानुष्ठेयः** (मिताक्षरा)—अब यह आपत्ति की जा सकती है कि ज्येष्ठ पुत्र को दो भाग मिलना चाहिये, इस वचन से पैतृक-सम्पत्ति का विभाग विषम है। इसका उत्तर यह है—यह बात सत्य है कि यह विषम विभाग शास्त्र-सङ्गत अथवा शास्त्रविहित है तथापि उसका अनुसरण नहीं किया जाना चाहिये क्योंकि यह लोकव्यवहार के विरुद्ध है। इसी प्रकार **ननु अचेतनान्येव वृश्चिकादिशरीराण्यचेतनानां च गोमयादीनां कार्याणीति उच्यते** (शांकरभाष्य ४२८)

और भी अन्य उदाहरण ये हैं--**ननु चेतनमाप कायकारण स्वामिभृत्यन्यायेन भोक्तुरुपकरिष्यति। न।** (शांकर भाष्य ४२३)। **ननु जगदप्यप्रकृतमसंशब्दितं च। सत्यमेतत्** (शांकर भाष्य ३८३)।

विशेष--आपत्ति उपस्थित करने में **कथं तर्हि** (तो वह कैसे), और **इति चेत्** (यदि कोई ऐसा कहे कि) का प्रयोग होता है; जैसे, **कथं तर्हि 'क्वासि हे सुभ्रु'—प्रमाद एवायमिति भागुरिः** (सि० कौ०)--अब कोई भी यह पूछ सकता है कि यह 'सुभ्रु' कैसे होता है! इसके उत्तर में हमारा निवेदन है कि भागुरि के विचार से यह अशुद्ध है।

२८७--**नूनं** का प्रधान अर्थ है **'निश्चय ही', 'वस्तुतः', 'अवश्य ही;'** जैसे, **स नूनं तव पाशांश्छेत्स्यति** (हितो० १)--वह अवश्य ही तुम्हारे जालों को काट देगा। **अद्यापि नूनं हरकापवह्निस्त्वयि ज्वलति** (शा० ३) निश्चय ही हर की क्रोधाग्नि तुममें आज भी जल रही है।

अभ्यास

१—**ननु समानेऽपि ज्ञानवृद्धभावे वयोवृद्धत्वात् गणदासः पुरस्कारमर्हति।** (मालविका० २)

२—**मया नाम मुग्धचातकेनेव शुष्कघनगर्जितेऽन्तरिक्षे जलपानमिष्टम्।** (मालविका० २)

३—**अनियंत्रणानुयोगो नाम तपस्विजनः।** (शा० ६)

४—**अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला।**(शा०४)

५—**दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेनपुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान्वर्धते।**(शा०७)

६—**निशम्यैतन्नियतिबलान्नु तत्पाटवान्नु स्ववुद्धिमांद्यान्नु स्वनियममनादृत्य तस्यामसौ प्रासजत्।** (दशकु० २।२)

७—**एतद्वचनं श्रुत्वा बद्धकलकले महाजने पितुरंगे प्रदीप्तशिरसमाशीविषं न्यक्षिपम्। अहं च भीतो नामावप्लुत्य तातस्य विषं क्षणादस्तंभयम्।** (दशकु० २।४)

८—**इमं ललनाजनं सृजता विधात्रा नूनमेषा घुणाक्षरन्यायेन निर्मिता। नोचेदब्जभूरेवंविधनिर्माणनिपुणो यदि स्यात् तर्हि समानलावण्या मन्यां तरुणीं किं न करोति।।** (दशकु० १।५)

९—यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुराः पुरुषाः ।
अयि विद्युत्प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि ।। (मृच्छ० ५)
१०—प्रश्चोतनं नु हरिचंदनपल्लवानां
निष्पीडितेंदुकरकंदलजो नु सेकः ।
आतप्तजीवनमनः परितर्पणो मे
संजीवनौषधिरसो नु हृदि प्रसिक्तः ।। (उत्तर० ३)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—नन्वार्यमिश्रैः प्रथमेवाज्ञप्तमभिज्ञानशाकुंतलं नामापूर्वं नाटकं प्रयोगेणाधिक्रियतामिति । (शा० १)
२—अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि । न कदाचित्सत्पुरुषाः शोकपात्रात्मानो भवंति । ननु प्रवातेऽपि निष्कंपा गिरयः । (शा० ६)
३—सखि लवंगिके दिष्ट्या वर्द्धसे । ननु भणामि प्रतिबुद्ध एव ते प्रियवयस्यः प्रतिपन्नचेतनो महाभागो मकरन्द इति । (मालती० ४)
४—आर्य ननु रामभद्र इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य । तद्यथाभ्यस्तमभिधीयताम् । (उत्तर० १)
५—स शक्तिकुमारो नाम श्रेष्ठिपुत्रोऽष्टादशवर्षदेशीयश्चिंतामापेदे । नास्त्यदाराणामननुगुणदाराणां वा सुखं नाम । तत्कथं नु गुणवद्भिन्देयं कलत्रमिति । अथ परप्रत्ययाहृतेषु दारेषु याद्दच्छिकीं संपत्तिमनभिसमीक्ष्य कार्तान्तिको नाम भूत्वा भुवं बभ्राम । (दशकुमार०२।६)
६—विधिप्रयुक्तां परिगृह्य सत्क्रियां परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम् ।
उमां स पश्यन्नृजुनैव चक्षुषा प्रचक्रमे वक्तुमनुज्झितक्रमः ।। (कुमार०५।३२)
७—नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तदंडः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय ।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः संतु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बंधुकृत्यं प्रजानाम् ।। (शा० ५)
८—त्रपुषा करणोज्झितेन सा निपतन्तो पतिमभ्यपातयत् ।
ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् ।। (रघु० ८।३८)

६—अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चंद्रो नु कांतिप्रदः
शृङ्गारैकरसः स्वयं नुमदनो मासो नु पुष्पाकरः ।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥ (विक्रमो० १)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—मणिपुर नामक नगर में धनमित्र नामक धनी वणिक् रहता था ।

२—बड़े-बड़े ऋषियों के लिये भी अप्रतर्क्य परमात्मा की महत्ता को कौन सा मर्त्य सम्भवतः जान सकता है ?

३—अन्य गुणी राजपुत्रों के होते हुए भी अशुभ लक्षणों से युक्त वह व्यक्ति राजा करके अभिषिक्त कर दिया गया ।

४—कौन ऐसा है जो अपने ही हाथों अपने सिर पर विपत्ति लाने की चेष्टा करेगा ?

५—अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि पर आप सब लोगों को बधाई देता हूँ ।

६—भगवान् को धन्यवाद है कि दीर्घकालिक वियोग के बाद तू फिर मुझसे देखा जाता है ।

७—मित्र, कृपया मेरे लिये इतना तो करो । मैं स्त्री का वेष धारण कर आप की पुत्री बन जाऊँगा, तब आप मुझे राजा के पास ले चलिएगा और उनसे इस प्रकार कहिएगा ।

८—क्या यह सच्चा बाघ हो सकता है अथवा बाघ का चमड़ा पहिने हुए कोई दूसरा जानवर है ?

९—गोविन्द—राम, गुरु जी की सेवा करने कब जाओगे ? राम—क्यों, आज गुरु जी की सेवा करने की तुम्हारी पारी है ।

१०—तुम कहते हो कि रुपया खर्च करने में गोविन्द बहुत ही अपव्ययी है । क्यों, तुम स्वयं ही उससे इस बात में तथा अन्य बहुत-सी बातों में मिलते-जुलते हो ।

११—तो यदि वह मित्र पूछे कि ब्रूटस (गोपाल) सीजर (विष्णु) के विरुद्ध क्यों उठ खड़ा हुआ तो मेरा उत्तर यह है कि मैं सीजर (विष्णु) को कम नहीं प्यार करता था, परन्तु मैं रोम (सुवर्णपुर) को अधिक प्यार करता था ।

षड्विंश पाठ

पुनः, प्रायः (प्रायेण), बत, बलवत्, मुहुः, यत् और यत्सत्यम्

२८८—साधारणतया "पुनः" का अर्थ हुआ करता है 'फिर'; जैसे, **पुनर्विवक्षुः** (कुमार० ५।८३)—फिर से बोलने का इच्छुक। परन्तु प्रायः इसका अर्थ हुआ करता है 'परन्तु'; 'इसके विरुद्ध'; जैसे, **तदेव पंचवटीवनं। स एवं आर्यपुत्रः। मम पुनर्मन्दभाग्याया दृश्यमानमपि सर्वमेवैतन्नास्ति** (उत्तर०३)—यह वही पंचवटी का जंगल है, और आर्यपुत्र भी वही हैं; परन्तु मुझ अभागिनी के लिए यह सब दिखाई पड़ते हुए भी कुछ भी नहीं है।

(क) 'पुनः पुनः' अकेला 'पुनः' से अधिक बलशाली होता है। इसका अर्थ होता है 'बार बार'; जैसे **स्वपाठान् पुनः पुनर्वाचय**—अपने पाठों को बार-बार पढ़ो। **किम्** के साथ पुनः का उल्लेख पहिले ही किया जा चुका है (सेक्शन २६७ देखिए।)

२८९—**प्रायः** अथवा **प्रायेण** का अर्थ है **'साधारणतया'** और यह साधारण नियम बनाने में काम आता है, जैसे; **प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः** (मुद्रा० ४)—जब स्वामी की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है तब साधारणतया उसकी सेवा करने वाले नौकर उसको त्याग देते हैं; **प्रायेणैते रमणविरहेष्वंगनानां विनोदाः** (मेघ० ८७)—प्रायः अपने प्रेमियों से वियोग हो जाने पर स्त्रियों के ये ही मनोरंजन हुआ करते हैं।

२९०— **बत**[1] निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है :—

(१) अफसोस अर्थ में जिससे दुःख; शोक अथवा करुणा प्रकट की जाती है, जैसे, **अहो बत महत् पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्** (श्रीमद्० १।४५)—हाय, शोक की बात है, हम लोग कैसा बड़ा पाप करने जा रहे हैं।

(२) हर्ष अथवा आश्चर्य, इन अर्थों में यह प्रायः **अहो** के साथ आता है; जैसे, **अहो बतासि स्पृहणीयवीर्यः** (कुमार० ३।२०)—ओहो, तेरी वीरता

१—खेदानुकम्पासन्तोषविस्मयामंत्रणे बत। (अ०)

कैसी स्पृहणीय है। **अहो बत महच्चित्रम्** (कादम्० १५४)। **हता वत वराकी सा** (ग० म०)। सम्बोधन के तौर पर; जैसे, **बत वितरत तोयं तोयवाहा नितान्तम्** (ग० म०)—ऐ बादलो, खूब जल दो। **त्यजत मानमलं बत विग्रहैः** (रघु० ६।४७)।

२६१—'बलवत्' का अर्थ है **'बलशाली'**। यह क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर प्रयुक्त होता है और इसका अर्थ होता है **'बड़े जोरों से'**, **'अत्यन्त'**, **'खूब'**; जैसे, **शिव इन्द्रियक्षोभं बलवन्निजग्राह** (कुमार० ३।६६) —शिव जी ने बड़े जोरों से अपनी इन्द्रियों के क्षोभ को दबाया। **बलवदस्वस्थशरीरा शकुन्तला** (शा० ३)—शकुन्तला की तबीयत बहुत ही खराब है (शकुन्तला का शरीर बहुत ही अस्वस्थ है)।

२६२—मुहुः का अर्थ है **प्रायः जैसे, बालो मुहू रोदिति**—बच्चा प्रायः रोया करता है। इस अर्थ में यह प्रायः दोहरा दिया जाता है। इसका यह भी अर्थ होता है—**किसी समय, दूसरे समय, कभी—कभी**। इस अर्थ में यह प्रत्येक उपवाक्य के साथ प्रयुक्त होता है, जैसे, **मुहुर्भ्रश्यद्बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफला। अहो चित्राकारा नियतिरिव नीतिर्नयविदः** (मुद्रा० ५)— एक समय उसके बीज लुप्त होते हुए मालूम पड़ते है, दूसरे समय वह बहुत से फल देती है। ओहो, भाग्य के समान राजनीतिज्ञ की नीति कितने विचित्र-विचित्र प्रकार की होती है।

२६३—**यत्** से प्रत्यक्ष कथन का प्रारम्भ होता है; प्रत्यक्ष कथन के अन्त में इति कभी रक्खा जाता है और कभी नहीं रक्खा जाता; जैसे, **सत्योऽयं जनप्रवादो यत् संपत् संपदमनुवध्नातीति** (कादम्० ७३)—यह लोकोक्ति सत्य है कि एक सम्पत्ति के बाद दूसरी सम्पत्ति चली आती है। **तस्य कदाचिच्चिन्ता समुत्पन्ना यदर्थोत्पत्त्युपायाश्चिन्तनीयाः कर्तव्याश्च** (पंच १)— उससे मस्तिष्क में एक विचार आया कि धन प्राप्त करने के लिए उपाय सोचा जाना चाहिए और किया जाना चाहिए।

(क) **यत्** का अर्थ है 'कि, जैसे, **किं त्वं मत्तोऽसि यदेवमसंबद्धं प्रलपसि**। इसका अर्थ **'क्योंकि'** भी होता है; जैसे, **किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येष यत्** (मुद्रा० २)—क्या शेषनाग को अपने शरीर

पर बोझे का भारीपन नहीं मालूम पड़ता ? क्योंकि वह अपने सिर से पृथ्वी को फेंक नहीं देते । **प्रियमाचरितं लते त्वया मे यदियं पुनर्मया दृष्टा** (विक्रमो० १)—ऐ लते, तुमने मेरी एक भलाई की है, क्योंकि यह मेरे द्वारा फिर एक बार देख ली गई ।

विशेष—यतः-अतः; चूँकि-इसलिए, इसलिए—**अतः**, का अर्थ रखने वाले वाक्यों का अनुवाद करने में **तत्** अथवा **ततः** का प्रयोग होता है; अथवा **यत्** या **यतः** के द्वारा सारा वाक्य अनूदित किया जा सकता है; जैसे, **अहं भ्रातरं गृहान्निष्कासयामि यत्** (यतः) **सोऽतीव दुर्वृत्तः** —मैं अपने भाई को घर से निकाल दूँगा क्योंकि वह बहुत ही दुराचारी है ।

२६४—**यतः का अर्थ है 'जिस जगह से'** । यह **यस्मात्** के स्थान पर प्रयोग में आता है; जैसे, **यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तम्** (रघु० ५।४)—जिससे (अर्थात् जिस गुरुजी से) तुमने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया । जब कारण प्रकट रहता है, तब इसका अर्थ होता है 'क्योंकि'; जैसे, **किमेवमुच्यते ? महदंतरं, यतः कर्पूरद्वीपः स्वर्ग एव (हित० ३)**—तुम ऐसा क्यों कहते हो ? बड़ा भारी अन्तर है क्योंकि कर्पूरद्वीप साक्षात् स्वर्ग ही है ।

२६५—**'यत्सत्यम्'** एक शब्द है, अलग-अलग दो शब्द नहीं है । इसका अर्थ है **'निश्चय ही' 'अवश्य ही', 'सच पूछिये तो,' 'सत्यतः'**: जैसे, **अमंगलाशंसयास्य वो वचनस्य यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम्** (वेणी० १)—तुम्हारे अमंगलसूचक वचन से, सत्यतः, मेरा हृदय काँपता है ।

अभ्यास

१ —**यद्वेतसः कुञ्जलीलां विडंबयति तत्किमात्मनः प्रभावेण ननु नदीवेगस्य** । (शा० २)

२—**इदं तत्प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते** । (शा० ५)

३—**निराकरणविक्लवायाः प्रियायाः समवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि** । (शा० ६)

४—**सर्वथा न कंचिन्न खलीकरोति जीविततृष्णा यदीदृगवस्थामपि मामायासयति जलाभिलाषः** । (कादम्० ३५)

५—पुण्यभाजः खल्वमी मुनयो यदहर्निशमेनं भगवंतं पुण्याः कथाः शृण्वंतः समुपासते । (कादम्० ४३)

६—कस्मान्मया निष्प्रयोजनमिदमश्वमुखद्वयमनुसृतमिति विचार्यमाणे यत्सत्यमात्मैव मे परिहासमुपजनयति । (कादम्० १२०)

७—अहं तं समादिशम् । सैषा सज्जनाचरिता सरणिर्यदृणीयसि कारणेऽनृणीयानादरः संदृश्यते । (दशकु०२।७)

८—अलमन्यथा गृहीत्वा न खलु मनस्विनि मया प्रयुक्तमिदम् ।
प्रायः समानविद्याः परस्परयशःपुरोभागाः ॥ (मालविका० १)

९—अयि कठोर यशः किल ते प्रियं किमयशो ननु घोरमतः परम् ।
किमभवद्विपिने हरिणीदृशः कथय नाथ कथं वत मन्यसे ॥
(उत्तर० ३)

१०—यत्सत्यं काव्यविशेषवेदिन्यां परिषदि प्रयुंजानस्य ममापि चेतसि सुमहान् परितोषः प्रादुर्भवति । यतः

चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः ।
न शालेः स्तंबकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते ॥ (मुद्रा० १)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अथ तेषां मध्यात् काकः प्रोवाच । स्वामिन्वयं तावत्सर्वत्र पर्यटिताः परं न किंचित्सन्मासादितं दृष्टं वा । तदद्य मां भक्षयित्वा प्राणान्धारयतु स्वामी येन देवस्याप्यायना भवति । मम पुनः स्वर्गप्राप्तिरिति (पंच १।११) ।

२—इह (पंचमे प्रकोष्ठे) गंधर्वसुरगणैरिव विविधालंकारशोभितैर्गणिकाः जनैर्बंधुलैश्च यत्सत्यं स्वर्गायत इदं गेहम् । (मृच्छकटिक० ४)

३—आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥ (शा०१)

४—ज्वलति चलितेंधनोग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते ।
प्रायः स्वं महिमानं क्रोधात्प्रतिपद्यते जंतुः ॥ (शा० ६)

५—अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन्विगणयात्मनः ।
उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत् ॥ (रघु० १।८७)

६—अथ वा मम भाग्यविपर्ययादशनिः कल्पित एष वेधसा ।
यदनेन तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता ॥ (रघु०८।४७)

७—खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके
वांछन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यांत्यापदः ॥ (भर्तृ० २।९०)

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—मैं इस विषय पर कुछ भी बोलना उचित नहीं समझता, क्योंकि मैं इसके विवरण से परिचित नहीं हूँ ।

२—चूँकि कल रात में तुम लोगों ने मेरे घर में सेंध मारी, इसलिए मैं तुम लोगों को बन्दी बनाता हूँ और जाँच पड़ताल के लिये तुम्हें न्यायालय में ले चलता हूँ ।

३—कन्या-सम्बन्धी मामलों में गृहस्थ लोग प्रायः अपनी पत्नियों के नेत्रों से देखते हैं ।

४—आहा, इस स्थान का अनुपम वैभव ! सच बात तो यह है कि सौन्दर्य में यह इन्द्र के बगीचे से भी स्पर्धा करेगा ।

५—जिस जगह से तुम आए हो क्या वह जगह प्रचुर अन्न से युक्त है ?

६—मैं स्वामी की आज्ञा-पालन करने जा रहा हूँ, पर तुम कहाँ जा रहे हो ?

७—इस प्रकार लकड़हारे ने अपना प्राण और धन बचाया, पर पिशाच पूरे बारह वर्ष काम में लगा रहा ।

८—सुवदना मुझसे कहती है कि उसकी स्वामिनी चन्द्रलेखा जिस दिन दुर्गा के मन्दिर में नाची थी उसी दिन से बहुत बीमार है । अब मैं अवश्य यह पूछने जाऊँगा कि उसकी तबियत कैसी है ।

९—यह साधारण नियम है कि मालिक लोग नौकरों के प्रति जो सम्मान प्रदर्शित करते हैं वह भृत्यों द्वारा कराये जाने वाले कार्य के प्रकार के अनुसार बदलता रहता है ।

१०—क्या तुम समझते हो कि सूर्य नहीं थकता है, क्योंकि वह अपने आकाश-मार्ग में कभी भी स्थिर नहीं रहता ।

११—मित्र ! बहुत जल्द मेरे जालों को काट कर मुझे बचाओ, क्योंकि यह सच ही कहा गया है विपत्ति मित्रता की कसौटी है ।

सप्तविंश पाठ

यथा-तथा, यावत्-तावत्

२६६--**यथा** शब्द का अर्थ है; (१) **'जैसे', 'उक्त प्रकार से'; जैसे, यथाज्ञापयति देवः** (शा० १)—जिस प्रकार महाराज आज्ञा देते हैं, अर्थात् आप की आज्ञा पालन की जायगी।

(२) **अर्थात्, निम्नलिखित रीति से, इस प्रकार; जैसे, तद्यथानुश्रूयते** (पंच० १) जैसा नीचे कहा जाता है, वह इस प्रकार है यानी यह निम्नलिखित प्रकार से है।

(३) **समान, इव** के समान तुलना सूचित करता है; जैसे, **आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः** (उत्तर० ४)—यह दशरथ के घर में लक्ष्मी के समान थी।

(४) यह प्रत्यक्ष कथन के प्रारम्भ में भी प्रयुक्त होता है; जैसे, **विदितं खलु ते यथा स्मरः क्षणमप्युत्सहते न मां विना** (कुमार०४।३६)—यह तो आप को पहिले ही से मालूम है कि कामदेव मेरे बिना एक क्षण भर के लिये भी चैन नहीं पाता। इस अर्थ में अन्त में **यथा** के बाद **इति** जोड़ देते हैं; जैसे, **संदिष्टास्मि तातेन। यथा वत्स मित्रावसो जीमूतवाहनात् योग्यतरो वरो न लभ्यते। तस्मादस्मै मलयवती प्रतिपाद्यतामिति** (नागा० २)—मेरे पिता जी ने मुझ से यह सन्देश कहा है कि ऐ मित्रावसु, जीमूतवाहन से बढ़कर दूल्हा नहीं मिल सकता। इसलिए मलयवती को उसके हाथ में अर्पण कर दो।

(५) **जैसे, उदाहरणार्थ;** जैसे, **यत्र-यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः यथा महानसे** (तर्क)—जहाँ-जहाँ धुआँ रहता है वहाँ-वहाँ आग रहती है, जैसे (उदाहरणार्थ) रसोईघर में।

(६) **ताकि जिसमें;** प्रायः इस अर्थ में **यथा** के स्थान पर **येन** का प्रयोग पाया जाता है; **जैसे, त्वं दर्शय तं चौरसिंहं यथा व्यापादयामि** (पंच० १।८)

—तुम मुझे उस बदमाश सिंह को दिखलाओ ताकि मैं उसे मार डालूँ। **स्वामिन्, मम प्राणैः प्राणयात्रा विधीयतां येन ममोभयलोकप्राप्तिर्भवति** (पंच० १।२) स्वामिन्, मेरा प्राण लेकर आप अपना जीव (प्राण) धारण करें ताकि मैं दोनों लोक पा जाऊँ।

२६७—**यथा—तथा** जब एक दूसरे के साथ प्रयुक्त होते हैं तो इनके निम्नलिखित अर्थ हुआ करते हैं:—

(१) **जैसा—वैसा**, इस अर्थ में कभी-कभी **तथा** के स्थान में **तद्वत्** का प्रयोग होता है; जैसे, **यथा वृक्षस्तथा फलम्**—जैसा वृक्ष वैसा फल। **यथा बीजांकुरः सूक्ष्मः प्रयत्ने नाभिरक्षितः फलप्रदो भवेत् काले तद्वल्लोकः सुरक्षितः** (पंच० १।८)—जैसे अच्छे प्रकार से रक्षा किया हुआ बीज का अंकुर उचित समय पर फल देता है, उसी प्रकार भली भाँति रक्षा की हुई प्रजा।

(२) 'इस प्रकार·····कि' इस अर्थ में इस प्रकार के स्थान पर **तथा** आता है और कि के स्थान पर **यथा** आता है; जैसे, यदि **वामनुमतं तथा वर्तेथां यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि** (शा० ३)—यदि आप इसका अनुमोदन करें तो इस प्रकार आचरण करूँ कि मैं राजर्षि जी की दया का पात्र बन जाऊँ। **अहं स्वामिनं विज्ञाप्य तथा करिष्ये यथा स वधं करिष्यति** (पंच० १।११) मैं श्रीमान् जी से निवेदन करके इस प्रकार व्यवस्था करूँगा कि वह उसे मार डालेगा।

विशेष—ईदृश, तादृश, **तावत्, एतावत्, इयत्** इत्यादि शब्दों का प्रयोग 'तथा' के स्थान पर होता है, और सम्बन्धवाचक सर्वनामों के रूप (प्रायः **येन**) दूसरे उपवाक्य के साथ प्रयुक्त होते हैं; जैसे, **ईदृशी अहं मन्दभागिनी यस्या न केवलमार्यपुत्रविरहः पुत्रविरहोऽपि** (उत्तर० ३)—मैं ऐसी मन्दभागिनी हूँ कि मैं न केवल अपने पतिदेव से वियुक्त हूँ अपि तु अपने पुत्र से भी। **मम चैतावान् लोभविरहो येन स्वहस्तगतं सुवर्णकंकणमपि यस्मै कस्मैचिद् दातुमिच्छामि** (हित० १)—मेरा लोभाभाव इतना (इस प्रकार का) हो गया है कि मैं अपने हाथ स्थित सोने के कंगन को भी किसी भी व्यक्ति को दे देना चाहता हूँ।

(३) चूँकि—इसलिये; जैसे, **यथायं चालितमलयाचलांशला-संचयः प्रचंडो नभस्वांस्तथा तर्कयामि आसन्नीभूतः पक्षिराजः** (नागा० ४) —चूँकि मलय पर्वत पर स्थित प्रस्तर-समूह को हिला देने वाली यह हवा बड़ी प्रचण्ड (भयंकर) है, इसलिये मैं समझता हूँ कि पक्षिराज आ गए हैं।

(४) **यदि.....तो, यदि.....तर्हि** के समान प्रयुक्त होता है। अथवा बहुत कड़ी शपथ के तौर पर **यथा.....तथा** का प्रयोग होता है; जैसे,

वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे।
तथा विश्वम्भरे देवि मामंतर्धातुमर्हसि ॥ (रघु० १५।८१)

—यदि अपने पतिदेव के प्रति मेरे आचरण में मनसा, वाचा, कर्मणा कोई भी बुराई न हो, तो ऐ विश्वव्यापिनी पृथ्वी देवी, कृपा कर मुझे अपने अन्दर ले लो।

(५) **जितना...उतना...उतना...जितना**-इस दशा में **तथा** का अर्थ होता है **'उतना'** और **'यथा'** का अर्थ होता है **'जितना'** और विवक्षित अर्थ समानता सूचित करता है; जैसे, **न तथा बाधते शीतं यथा बाधति बाधते** (सुभाषित०)—जाड़ा मुझको उतना नहीं सता रहा है, जितना **'बाधति'** शब्द। इस अर्थ में **यथा** और **तथा** दोनों के साथ अथवा एक ही के साथ **एव** शब्द प्रायः जोड़ दिया जाता है ताकि समानता और भी अधिक बलवती हो जाय; जैसे, **वधूचतुष्केऽपि यथैव शान्ता प्रिया तनूजास्य तथैव सीता** (उत्तर० ४)—चारों बहुओं में सीता उन्हें इतनी प्यारी थीं जितनी कि उनकी कन्या शान्ता।

(क) **यथा** और **तथा** जब दुहराये जाते हैं तो **(यथा यथा.....तथा तथा)**—**जितना जितना.....उतना उतना, जितना ही.....उतना ही** का अर्थ देते हैं; जैसे, **यथा यथा यौवनमतिचक्राम तथा तथा अनपत्य-ताजन्मा महानवधतास्य संतापः** (कादम्० ५६)—ज्यों-ज्यों वह जवान होता गया त्यों-त्यों सन्तान-हीनताजनित उसका सन्ताप बढ़ता ही गया। **यथा यथा मृतपुत्रं न चिन्तयिष्यसि तथा तथा तव दुःखं शममेष्यति** अथवा **यथा यथा अल्पीयसी पुत्रचिंता तथा तथा अल्पीयो दुःखम्।**

२९८—[1] जब **'यावत्'** शब्द अकेला प्रयुक्त होता है तो इसका अर्थ होता है **'जहाँ तक'**, **'तक'** और यह काल की अवधि अथवा मार्ग (दूरी) द्योतित करता है। ऐसी दशा में इसके योग में द्वितीया आती है; जैसे, **स्तनत्यागं यावत् पुत्रयोरवेक्षस्व** (उत्तर० ७)—इन पुत्रों की तब तक देख-रेख करो जब तक ये स्तन का दूध पीना छोड़ न दें। **कियंतमवधिं यावदस्मच्चरितं चित्रकारेणालिखितम्** (उत्तर० १)—चित्रकार द्वारा हमारी जीवन-घटना कहाँ तक चित्रित की गई है ?

(क)—**यावत्** का कभी-कभी अर्थ होता है **'तो'** **'अभी'** और इससे तत्काल किए जाने वाले कार्य का बोध होता है; जैसे, **तद् यावद् गृहिणीमाहूय संगीतकमनुतिष्ठामि** (शा० १)—तो अपनी स्त्री को बुलाकर मैं संगीत प्रारम्भ करता हूँ। **यावदिमां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि तां** (शा० ३)—इस छाया का सहारा लेकर, मैं उसकी प्रतीक्षा करता हूँ।

२९९—**इतरेतरसम्बन्धी** के तौर पर **तावत्-यावत्** के ये अर्थ होते हैं :—

(१) **उतना ही... जितना**; इस दशा में **तावत्** का अर्थ होता है उतना ही और **यावत्** का अर्थ होता है **'जितना'** तथा दोनों संज्ञा या विशेषण की भाँति प्रयुक्त होते हैं; जैसे, **पुरे तावंतमेवास्य तनोति रविरातपम्। दीर्घिकाकमलोन्मेषो यावन्मात्रेण साध्यते** (कुमार० २।३६)—उसके नगर में सूर्यदेव उतना ही घाम करते हैं जितने से तालाबों में के कमलों की कलियाँ खिल जाँय।

(२) **सब**; इस दशा में दोनों (**यावत्—तावत्**) मिलकर **साकल्य** (सम्पूर्ण संख्या या सम्पूर्णता का अर्थ देते हैं; जैसे **यावद् दत्तं तावद् भुक्तम्** (ग०म०) —जितना मुझे दिया गया उतना सब मैंने खा डाला। **यावन्मानुष्यके शक्यमुपपादयितुं तावत् सर्वमुपपाद्यताम्** (कादम्० ६२)

(३) **जब तक.....तब तक**—इस दशा में **यावत्** का अर्थ होता है **'जब तक'** और **तावत्** का अर्थ होता है **'तब तक'**; जैसे, **यावद्वित्तोपार्जनशक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः** (मोहमुद्गर)—जब तक मनुष्य धन

१—यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे। (अ०)

कमाने के योग्य रहता है, तब तक उसका परिवार उससे अनुराग करता है (उसमें अनुरक्त रहता है)।

विशेष—जिन स्थलों में **जब तक, तब तक** प्रयुक्त होते हैं उनमें **यावत्** और **तावत्** दोनों का प्रयोग करना पड़ता है। **यावत्** का प्रयोग क्रियाविशेषण उपवाक्य के साथ होगा और **तावत्** का प्रयोग प्रधान उपवाक्य के साथ होगा; जैसे, **यावद्राज्यभारो मयि विन्यस्तस्तावदहं प्रजा अनुरक्तः करिष्यामि**—जब तक राज्य का भार मुझको सौंपा जाता है, तब तक मैं प्रजा को सन्तुष्ट रक्खूँगा। **सूत तावद्रथं स्थापय यावदहमवतरामि**—ऐ सारथि, जब तक मैं उतर न आऊँ तब तक रथ को रक्खो।

(ख) पहिले ही, पूर्व ही का अनुवाद **'यावन्न'** से किया जाता है; जैसे सरोवर से इनके उड़ जाने के पूर्व ही मुझे इनसे समाचार प्राप्त कर लेना चाहिये—**यावदेते सरसो नोत्पतन्ति तावदेतेभ्यः प्रवृत्तिरवगमयितव्या** (विक्रमो० ४)।

३००—कभी-कभी **यावत्-तावत्** का केवल **जब-तब** अर्थ होता है; जैसे, **यावदसौ पान्थ उत्थायोर्ध्वं निरीक्षते तावत्तेनावलोकितो हंसः कांडेन हतो व्यापादितश्च** (हितो० ३)—जब पथिक उठकर ऊपर की ओर देखने लगा तब हंस उसके द्वारा देखा जाकर बाण से मार दिया गया। कभी कभी **यावत् का** अर्थ होता है **'ज्योंही'** और **तावत्** का अर्थ होता है **'त्योंही,'** जैसे, **एकस्य दुःखस्य न यावदंतं गच्छामि.....तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे** (हितो० १)—ज्योंही मैंने एक विपत्ति से पार पाया त्योंही मेरे ऊपर दूसरी आ उपस्थित हुई।

अभ्यास

१—**भगवन्संकल्पयोने प्रतिबंधत्स्वपि विषयेष्वभिनिवेश्य तथा प्रहर्रसि यथा जनोयं कालांतरक्षमो न भवति। (मालविका० ३)**

२—**अकथितोपि ज्ञायत एव यथायमाभोगस्तपोवनस्येति। (शा० १)**

३—**आश्रमवासिनो यावदवेक्ष्याहमुपावर्ते तावदार्द्रपृष्ठाः क्रियंतां वाजिनः। (शा० १)**

४—बहुवल्लभा राजानः श्रूयंते। तद्यथा नौ प्रियसखी बंधुजन-शोचनीया न भवति तथा निर्वाहय (शा० ३)

५—संजीवक आह। भो मित्र कथं ज्ञेयो मयासौ दुष्टबुद्धिरिति। इयंतं कालं यावदुत्तरोत्तरस्नेहेन प्रसादेन चाहं दृष्टः। (पंच० १।१५)

६—यद्येवं नकुलस्य बिलद्वारात्सर्पकोटरं यावन्मत्स्यमांसशकलानि प्रक्षिप यथा नकुलस्तन्मार्गेण गत्वा तं दुष्टसर्पं विनाशयति। (पंच० १।२०)

७—अयि मातर्देवयजनसंभवे देवि सीते ईदृशस्ते निर्माणभागः परिणतो येन लज्जया स्वच्छंदमाक्रंदितुमपि न शक्यते। (उत्तर० ४)

८—ततो यावदसौ पांथस्तद्वचसि प्रतीतो लोभात्सरसि स्नातुं प्रविशति तावन्महापंके निमग्नः पलायितुमक्षमः। (हितो० १)

९—यथा यथेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। (कादम्० १०५)

१०—यावत्संबंधिनो न परापतन्ति तावद्वत्सया मालत्या नगरदेवतागृहं गंतव्यमित्यादिशंति भगवतीनिर्देशवर्तिनोऽमात्यदाराः। (मालती० ६)

११—यथेतोमुखागतैरपि महान् कलकलः श्रुतोऽस्माभिस्तथा तर्कयामि। अन्यदपि पारक्यं बलमुपगतमिति। (मालती० ८)

१२—क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार॥
(कुमार० ३।७२)

१३—यथैव श्लाघ्यते गंगा पादेन परमेष्ठिनः।
प्रभवेण द्वितीयेन तथैवोच्छिरसा त्वया॥ (कुमार० ६। ७०)

१४—अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः।
क्रियाः सर्वा विनश्यंति ग्रीष्मे कुसरितो यथा॥ (हितो० १)

१५—यावतः कुरुते जंतुः संबधान्मनसः प्रियान् ।
तावतोपि विलिख्यन्ते हृदये शोकशंकवः ॥ (हितो० ४)
१६—स तावदभिषेकांते स्नातकेभ्यो ददौ वसु ।
यावत्तैषां समाप्येरन् यज्ञाः पर्याप्तदक्षिणाः ॥ (रघु० १०।१७)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

—यावत्तत्रभवान्वयस्यः कार्यासनादुत्तिष्ठति तावदेतस्मिन्विरलजनसंपाते विमानोत्संगपरिसरे स्थास्यामि (विक्रमो० २) ।
२—तदेवंप्रायेऽतिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे राज्यतंत्रेऽस्मिन् महामोहान्धकारकारिणि च यौवने कुमार तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैर्नोपालभ्यसे सुहृद्भिर्नाक्षिप्यसे विषयैर्न विकृष्यसे रागेण नापह्रियसे सुखेन (कादम् १०६)
३—यथा यथा चलितजलयंत्रविगलिताभिरंबुधाराभिराहन्यते सा तथा तथा वैद्युतानलसहोदर इव स्फुरति मदनपावकः । (कादम्० २५१)
४—चंद्रापीडः प्रातरेव किंवदंतीं शुश्राव यथा किल दशपुरीं यावत् परागतः स्कंधावार इति (कादम्० २६२)
५—वत्स यावदयं संसारस्तावत्सिद्धैवेयं लोकयात्रा यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेप्यनुवर्तनीया इति । (वेणी० ३) ।
६—अपि दृष्टवानसि मम प्रियां वने कथयामि ते तदुपलक्षणं शृणु ।
पृथुलोचना सहचरी यथैव ते सुभगं तथैव खलु सापि वीक्षते ॥ (विक्रमो० ४)
७—वितरति गुरुः प्राज्ञेविद्यां यथैव तथा जडे
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहंति वा ।
भवति च पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बोद्ग्राहे मणिर्न मृदां चयः ॥ (उत्तर० २)
८—यथा कालकृतोद्योगात्कृषिः फलवती भवेत् ।
तद्वन्नीतिरियं देव चिरात्फलति न क्षणात् ॥ (हितो० ३)
९—क्रोडीकरोति प्रथमं यथा जातमनित्यता ।
धात्रीव जननी पश्चात्तथा शोकस्य कः क्रमः ॥ (नागानन्द० ४)
१०—यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः ॥ (हितो०)

११—उभयोर्न तथा लोकः प्रीणीयेन विसिष्मिये ।
नृपतेः प्रीतिदानेषु वीतस्पृहतया यथा ।। (रघु० १५।६८)

१२—यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ।। (भर्तृ० ३।८८)

१३—यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशंति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ।
(श्रीमद्० ११।२९)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—अपने मित्रों के परामर्श से मेरे द्वारा उसके नाश के लिये सैकड़ों उपाय सोचे गए हैं; वे निम्नलिखित हैं ।

२—मैं समझता हूँ कि आपने पहिले ही से सुन रक्खा है कि स्वर्ग में अप्सरा नाम की वारांगनाओं का एक वर्ग रहता है ।

३—शूरता में तो वह भीम के समान है, पर हृदय की दुष्टता में वह निर्दय से निर्दय राक्षस को भी मात करता है ।

४—रावण ने अपनी तपस्या द्वारा शंकर जी को ऐसा प्रसन्न कर लिया कि उन्होंने उसे कई वरदान दिये ।

५—यह राजा अपने देश के ऊपर ऐसी अच्छी तरह शासन करता है कि इसकी असंख्य प्रजाओं में से कोई भी इसके प्रति श्रद्धाहीन नहीं है ।

६—चूँकि युद्ध की सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं, इसलिये शत्रु के साथ सन्धि करना मैं उचित नहीं समझता ।

७—मैं जितना ही अधिक इस संसार के बारे में सोचता हूँ उतना ही मेरा मत इससे विरक्त होता जाता है ।

८—ज्योंही वह अपने मकान में घुसा त्योंही उसकी स्त्री यह चिल्लाती हुई उसके पास झपट कर आई कि—एक साँप ने मेरे बच्चे को काट खाया है ।

९—मैं आशा करता हूँ कि आप यहाँ तब तक ठहरे रहेंगे जब तक गोविन्द अपनी तीर्थयात्रा से लौट नहीं आवेंगे।

१०—जब तक मुझ में जरा भी दम है (साँस है) तब तक मैं अपने प्राण को संकट में डाल कर भी अपने देश को बचाऊँगा, ताकि अपमान से दूषित (मलिन) नाम छोड़कर मैं न मरूँ।

११—उसने इक्कीस दिन डाक्टर की दवा खाई पर कुछ भी लाभकर परिवर्तन न पाकर उसने वह दवा लेना बन्द कर दिया।

१२—अध्यापक ने बच्चे को छड़ी से इतनी करीं मार मारी कि वह बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

१३—दार्शनिक लोग जितना ही अधिक ईश्वर के बारे में सोचते हैं उतना ही कम उसे जान पाते हैं।

१४—वह अपने आचरण की शुचिता के कारण उतना ही विख्यात है जितना कि अपने गुणों के कारण, और परोपकार करने में उतना ही तत्पर है जितना कि अपनी इन्द्रियों का नियंत्रण करने में।

१५—क्या तुम नहीं जानते कि सभी मांसाहारी पशुओं के पंजे होते हैं (यावत्-तावत् का प्रयोग कीजिये)।

१६—जितना ही अधिक परिश्रम से पढ़ोगे, तुम्हारी असफलता की उतनी ही कम 'गुञ्जाइश' रहेगी और सुधार की सम्भावना उतनी ही अधिक होती चलेगी।

अष्टाविंश पाठ

वरं-न, वा, स्थाने, हन्त, हा और हि

३०१—'**वरम्—न**' के पीछे **च, तु,** अथवा **पुनः** आता है। इसका अर्थ होता है—**अच्छा है..... .....न कि, अच्छा है . .....परन्तु नहीं।** **वरम्** उस उपवाक्य के साथ आता है जिसमें अधिक वांछित वस्तु रहती है, वह अधिक वांछित वस्तु कर्ता कारक में रक्खी जाती है, और **न च, न तु** अथवा **न पुनः** उस उपवाक्य के साथ रक्खा जाता है जिसमें कम वांछित वस्तु रक्खी जाती है (कम वांछित वस्तु भी कर्ता-कारक में रक्खी जाती है) ; जैसे, **वरं कन्या जाता न चाविद्वांस्तनयः** (पञ्च० १।१)—अच्छा है कि कन्या पैदा होवे, परन्तु मूर्ख पुत्र नहीं। **वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः** (हितो०१) —प्राण छोड़ देना अच्छा है, परन्तु नीचों का सम्पर्क (सान्निध्य) अच्छा नहीं।

(क) कभी कभी '**न**' अकेला ही आता है, **च, तु** अथवा **पुनः** के साथ जुड़ा हुआ नहीं आता; जैसे, **याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा** (मेघ० ५)—श्रेष्ठ पुरुष से की हुई याचना चाहे असफल भी हो जाय तो भी अच्छा है, परन्तु अधम पुरुष से की हुई याचना चाहे सफल भी हो जाय तो भी अच्छा नहीं। **वरं भ्रान्तंव नचरैः सह, न मूर्खजनसंपकः** (भर्तृ०२।१४)—जङ्गली जानवरों (अथवा मनुष्यों) के साथ भ्रमण करना अच्छा है परन्तु मूर्खों के साथ सम्पर्क रखना अच्छा नहीं।

३०२[1]—**वा** एक दूसरा संयोजक है जिसका अर्थ है '**या**'। इसका प्रयोग **च** की तरह होता है। (सेक्शन २७२) देखिए; जैसे, राम या गोविन्द—**रामो गोविन्दो वा अथवा रामो वा गोविन्दो वा।**

(क) **वा** के निम्नलिखित अर्थ भी होते हैं :—

१—वा समुच्चय एवार्थ उपमानविकल्पयोः। (हे०)

(१) **और, भी**; जैसे, **पत्रलेखे कथय महाश्वेतायाः कादम्बर्याश्च कुशलं कुशली वा सकलः परिजन इति** (कादम्० २३०)—पत्रलेखा, मुझसे बताओ कि महाश्वेता और कादम्बरी सकुशल तो हैं, और यह भी बताओ कि सारा भृत्यवर्ग सकुशल तो है।

(२) **वा** शब्द समान और **इव** का भी अर्थ देता है; **जैसे जातां मन्ये तुहिनमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्** (मेघ० ८६)—मैं उसे पाले से मारी हुई कमलिनी के समान विकृत आकार वाली (परिवर्तित आकार वाली) समझता हूँ।

(३) **विकल्प से**, प्रायः व्याकरण-सम्बन्धी नियमों में; जैसे' **दोषो णौ। वा चित्तविरागे** (पाणिनि० ६।४। ६०—६१)—प्रेरणार्थक में दुष् का उ दीर्घ कर दिया जाता है, परन्तु जब इसका अर्थ होता है **'मस्तिष्क को उलट-पुलट देना'** तब विकल्प करके उ को दीर्घ किया जाता है।

(ख) **इव** या **नाम के** समान **सम्भवतः** के अर्थ में **वा** शब्द प्रश्नवाचक सर्वनामों के साथ और प्रश्नवाचक सर्वनाम-निष्पन्न शब्दों के साथ जोड़ दिया जाता है, **जैसे, मृतः को वा न जायते** (पंच० १।१) सम्भवतः कौन मरा हुआ व्यक्ति फिर से पैदा नहीं होता। **कस्य वान्यस्य वचसि मया स्थातव्यम्** (कादम्० १५६)—दूसरे किस व्यक्ति के कहने के अनुसार मैं व्यवहार करूँ। **कथं वा गम्यते** (उत्तर० ३)—सचमुच तुम कैसे जा सकते हो या जाओगे?

३०३—**वा.....वा** का अर्थ होता है "या तो.....या" जैसे, **उभे एव क्षमे वोदुमुभयोर्बीजमाहितम्। सा वा शम्भोस्तदीया वा मूर्तिर्जलमयी मम** (**कुमार**० २। ६०)—हम दोनों के वीर्य को केवल दो ही धारण करने में समर्थ हैं, या तो शम्भु जी के वीर्य को पार्वती, या मेरे वीर्य को उनकी जलमयी मूर्ति। **तत्र कविपरिश्रमानुरोधाद् वा उत्तानकथावस्तुगौरवाद् वा नवनाटक दर्शनकुतूहलाद् वा भवद्भिरवधानं दीयमानं प्रार्थये** (वेणी०)—मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग इधर ध्यान दें, चाहे कवि के परिश्रम का आदर करके, चाहे उच्चतम कथावस्तु के महत्त्व का विचार करके, चाहे नए नाटक के अभिनय को देखने की इच्छा से।

३०४—**न्यायतः, औचित्यतः**, यह **सर्वथा उचित ही है कि**—इन अर्थों में **स्थाने** शब्द का प्रयोग क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर होता है; **जैसे, स्थाने प्राणाः कामिनां दूत्यधीनाः** (मेघ० ३)—यह उचित ही कहा

गया है कि प्रेमियों (कामियों) का प्राण दूतियों के अधीन होता है। **स्थाने तपो दुश्चरमेतदर्थमपर्णया पेलवयापि तप्तम्** (कुमार० ७। ६५)—यह सर्वथा उचित ही है कि कोमलांगी होते हुए भी अपर्णा ने उन (शिवजी) के लिए बहुत ही कठिन (घोर) तपस्या की।

(क) **अस्थाने** का अर्थ है "**अनुपयुक्त**" "**अनवसर**"; जैसे, **अस्थाने द्वयोरपि प्रयत्नः** (मुद्रा० २)—दोनों का प्रयत्न अनवसर अथवा अनुपयुक्त था।

३०५—[1] "**हंत**" निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है :—

(१) हर्ष, आश्चर्य, जैसा कि हिन्दी के 'अरे' और 'ओह' शब्दों से प्रकट किया जाता है; जैसे **हंत प्रवृत्तं संगीतकम्** (मालविका० १)—अरे, संगीत आरम्भ हो गया।

(२) **अनुकम्पा, खेद**; जैसे, **पुत्रक, हंत ते धानाकाः** (ग० म०)—ऐ पुत्र, खेद (शोक) का विषय है कि तुम्हारे पास केवल धानाक हैं।

(३) विषाद-सूचक **ओह**, या **हाय**; जैसे, **हंत, धिङ् मामधन्यम्** (उत्तर० १) हाय, मुझ अभागे को धिक्कार है।

(४) यह कभी-कभी वाक्यारम्भ करने के लिये प्रयुक्त होता है; **हंत ते कथयिष्यामि** (राम० १।४८।१४)—अच्छा, अब मैं आप से कहूँगा।

३०६—[2] "**हा**" शोक, विषाद, खेद, व्यथा, वेदना का अर्थ सूचित करता है; **हा प्रिये जानकि** (उत्तर० ३)—हाय प्यारी जानकी। **हा हा देवि स्फुटति हृदयम्** (उत्तर० ३)—हाय, देवी मेरा हृदय विदीर्ण होता है। कभी-कभी यह आश्चर्य या विस्मय भी सूचित करने के लिये प्रयोग में लाया जाता है; जैसे, **हा कथं महाराजदशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौसल्या**—(उत्तर० ४)—ओहो, यह तो वस्तुतः महाराज दशरथ की धर्मपत्नी मेरी प्रिय सखी कौसल्या हैं।

द्वितीया के साथ 'हा' का प्रयोग समझने के लिये सेक्शन ३४ देखिये।

विशेष—हा के प्रयोग **जुगुप्सा** (धिक्कारना, डाटना) के अर्थ में बहुत कम मिलते हैं।

१—हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः। (अ०)

२—हा इति विस्मयविषादशुग्जुगुप्सार्तिषु (ग० म०)

३०७—[1] "हि" कदापि वाक्य के प्रारम्भ में नहीं प्रयुक्त होता है। यह निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है :—

(१) **क्योंकि**" बहुत ही शुद्ध और सुदृढ़ तार्किक युक्ति सूचित करता है; जैसे, **अग्निरिहास्ति धूमो हि दृश्यते** (ग० म०)—यहाँ आग है क्योंकि धुआँ दिखाई पड़ता है। **अपि महर्षिणा त्वं गृहायानुमतः कालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयमाश्रमं** (रघु० ५।१०)—क्या तुम गृहस्थ बनने के लिये महाष से स्वीकृति पा चुके हो, क्योंकि यह द्वितीय आश्रम में प्रवेश करने का समय है ?

विशेष—किसी प्रयोग-विशेष के सम्बन्ध में जो साधारण वचन या कथन कहे जाते हैं, उनमें "हि" का यह अर्थ छिपा रहता है।

(२) **वस्तुतः, सत्यतः**; जैसे, **देव प्रयोगप्रधानं हि नाट्यशास्त्रं किमत्र वाग्व्यवहारेण** (मालविका० १)—महाराज, नाट्यशास्त्र में वस्तुतः प्रयोग ही प्रधान वस्तु होता है; इस विषय में मौखिक वाद-विवाद से क्या लाभ ? **न हि कमलिनीं दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतंगजः** (मालविका० ३)—वस्तुतः कमलिनी को देखकर हाथी ग्राहकी परवाह नहीं करता।

(३) इसका प्रायः **'स्फुटार्थ' 'उदाहरणार्थ'** अर्थ हुआ करता है। जब **तथा च** के अर्थ में कोई बात किसी पूर्वोल्लिखित वचन के उदाहरण-रूप में कही जाती है, उस समय भी 'हि' का प्रयोग होता है; जैसे, **प्रजानामिव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्। सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः** (रघु १।१८)—वह केवल प्रजाओं का हित करने के लिये उनसे कर लेता था; उदाहरणार्थ सूर्य देव जल को हजार गुना बढ़ाकर लौटालने के लिए ही जल को पीते हैं।

(४) **'केवल', 'अकेला'**। किसी बात पर बहुत बल देकर कहने में **'हि'** शब्द का प्रयोग होता है; जैसे **मूढो हि मदनेनायास्यते** (कादम्० १५५)—केवल मूर्ख पुरुष कामदेव से सताया जाता है।

(५) कभी-कभी अलंकार के तौर पर प्रयुक्त होता है।

१—हि प दपूरणे हेतौ विशेषेप्यवधारणे (वि०)

अभ्यास

१—शकुंतला—सखि कस्य वान्यस्य कथयिष्यामि, किंत्वायासयित्री-दानीं वां भविष्यामि ।

२—उभे—अत एव खलु निर्बन्धः । स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति । (शा० ३)

३—हन्त भोः शकुंतलां पतिकुलं विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम् । (शा० ४)

४—स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताप्यस्य कृते शकुंतला क्लाम्यति । (शा० ६)

५—अविनीत किं नाऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि । हंत वधते ते संरंभः । स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि । (शा० ७)

६—स्थाने खलु नारायणमृषिं विलोभयंत्यस्तदूरुसंभवामिमां दृष्ट्वा व्रीडिताः सर्वा अप्सरस इति । (विक्रमो० १)

७—भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम् । अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशंति सुखमुपदेशगुणाः । (कादम् १०३)

८—तदेषा भवतः कांता त्यजैनां वा गृहाण वा ।
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ॥ (शा० ५)

९—अनंतरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतींदोः किरणेष्विवांकः ॥ (कुमार० १।३)

१०—बहूनामप्यसाराणां समवायो हि दुर्जयः ।
तृणैरावेष्ट्यते रज्जुर्यया नागोपि बध्यते (पंच १।१४)

११—कुसुमान्यपि गात्रसंगमात्प्रभवंत्यायुरपोहितुं यदि
न भविष्यति हंत साधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो विधेः ॥ (रघु० ८ । ४४)

१२—सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः (मुद्रा० ३)
१३—वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं
वरं क्लैब्यं पुसां न च परकलत्राभिगमनम् ।
वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचि-
र्वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादनसुखम् ॥ (हितो० १)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—वरमावाभ्यां कतिपयदिवसाननयोरप्यदर्शनकृताः क्लेशा अनुभूता न पुनरस्य वैशंपायनानवलोकनदुःखदीनं दिने दिने मुखमीक्षितम् (कादम्० २०४)
२—असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमंतःकरणप्रवृत्तयः ॥ (शा०१)
३—सुतनु हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत् ।
प्रबलतमसामेवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यंधः क्षिप्तां धुनोत्यहिशंकया ॥ (शा०७)
४—राजा -- एवमादिभिरनुपक्रम्योऽयमातंकः । पश्य
कुसुमशयनं न प्रत्यग्रं न च चंद्रमरीचयो
न च मलयजं सर्वाङ्गीणं न वा मणियष्टयः ।
मनसिजरुजं सा वा दिव्या ममालमपोहितुं
रहसि लघयेदारब्धा वा तदाश्रयिणी कथा ॥ (विक्रमो० ३)
५—स्थाने त्वां स्थावरात्मानं विष्णुमाहुस्तथाहि ते ।
चराचराणां भूतानां कुक्षिराधारतां गतः ॥ (कुमार० ६ । ६७)
६—आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखंती ।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पंजरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥ (मेघ० ८८)
७—अरुंधती—हा वत्से
शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति ॥

८—शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वंद्यासि जगतो
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः ॥ (उत्तर० ४)

९—स्थाने भवानेकनराधिपः सन्नकिञ्चनत्वं मखजं बिभर्ति ।
पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः ॥ (रघु० १।१६)

१०—प्रेष्यभावेन नामेयं देवीशब्दक्षमा सती ।
स्नानीयवस्त्रक्रियया पत्त्रोर्णं वोपयुज्यते ॥ (मालविका० ५)

११—नृपतेः प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान् पंक्तिरथो विलंघ्य यत् ।
अपथे पदमर्पयंति हि श्रुतवंतोपि रजोनिमीलिताः ॥ (रघु०१।७४)

१२—तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशं स्तनसंबाधमुरो जघान च ।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ॥ (कुमार० ४। २६)

१३—व्यतिषजति पदार्थानांतरः कोपि हेतुर्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयंते ।
विकसति हि पतंगस्योदये पुंडरीकं द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चंद्रकांतः ॥
(मालती० १)

१४—अर्हस्येनं (दावाग्निं) शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः संपदो ह्युत्तमानाम् (मेघ० ५४)

१५—स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥
(श्रीमद्० ११।३६)

१६—राक्षसः—अहो सुश्लिष्टोऽभूदयं प्रयोगः ।
लेखोयं न ममेति नोत्तरमिदं मुद्रा मदीया यतः
सौहार्दं शकटेन खंडितमिति श्रद्धेयमेतत्कथम् ।
मौर्ये भूषणविक्रयं नरपतौ को नाम संभावयेत्
तस्मात्संप्रतिपत्तिरेव हि वरं न ग्राम्यमत्रोत्तरम् ॥ (मुद्रा० ५)

१७—स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव ।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ॥

१८—उचितः प्रणयो वरं विहंतुं बहवः खंडनहेतवो हि दृष्टाः ।
उपचारविधिर्मनस्विनीनां न तु पूर्वाभ्यधिकोपि भावशून्यः ॥ मालविका० ३)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे पर भीख माँग कर जीविका निर्वाह करना अभिमानी धनाढ्यों की सदैव खुशामद करने की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा है।

२—या तो वह या उसके दोनों भाई इसे करने में समर्थ हैं परन्तु अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं।

३—यह उचित ही है कि द्रव्य को मितव्ययता-पूर्वक खर्च करने के लिये यह तुम्हें चेतावनी दे रहा है क्योंकि तुम्हारी कन्या का विवाह प्रतिदिन निकट आता जा रहा है।

४—जब पुरुष के ऊपर विपत्तियाँ आ पड़ें, तो विवेक (परिच्छेद) ही सच्ची बुद्धिमत्ता (पांडित्य) है; क्योंकि जो लोग विवेक के बिना आचरण करते हैं उनकी विपत्तियाँ बढ़ जाती हैं।

५—जिस कवि ने यह कहा कि एक दोष बहुत से गुणों के समूह में लुप्त हो जाता है उसने ठीक से मानुषिक प्रकृति का निरीक्षण (अध्ययन) नहीं किया; क्योंकि प्रायः दरिद्रता सद्गुणों के समूह को भी नष्ट कर देती है।

६—सचमुच दूसरों का प्राण बचाने के लिए इस उदार-चित्त पुरुष के अतिरिक्त और कौन अपने प्राणों को संकट में डालेगा।

७—ऐ स्त्री, निश्चय जानो कि तुम अचिरात् अपने पति से संयुक्त हो जाओगी; क्या यह बात सच नहीं है कि जिस नदी का जल ग्रीष्म में सूख जाता है, वह फिर वर्षा ऋतु में अपने प्रवाह से संयुक्त हो जाती है।

८—मैं सभी देवताओं को समान श्रद्धा से पूजता हूँ, चाहे वे यवनों के हों चाहे ब्राह्मणों के हों।

९—बन्धुओं के बीच में धनहीन जीवन निर्वाह करने की अपेक्षा मैं व्याघ्रों और वृक्षों से भरे हुए जङ्गल को अधिक पसंद करूँगा।

१०—पृथ्वी पर जो-जो वस्तुएँ मुझे प्रियतम थीं उनके नाश हो जाने पर भी जीवित रहने वाले मुझको धिक्कार है।

११—ओ हो, जो अँगूठी मुझसे खो गई थी, वह मिल गई।

१२—ओ हो, इस पुरुष की आकृति कैसी प्रसन्न है।

१३—यह उचित ही है कि रामायण के प्रणेता ने उनके असंख्य कृत्यों का वर्णन करने के लिये दिव्य वाणी का प्रयोग किया।

१४—सैकड़ों राजाओं में से उसने केवल इस राजा को पति चुना; क्योंकि मन अपने पूर्व सम्बन्धों को जानता रहता है।

१५—सम्भवतः दुष्टों के फन्दे में फँस कर कौन सा पुरुष सरलता से बच पाया है। और कौन सा कमजोर आदमी मजबूतों के साथ संघर्ष करने के प्रयत्न में असफल नहीं हुआ है?

ऊनत्रिंश पाठ

आत्मनेपद और परस्मैपद

सूचना—इस पाठ में तथा तीसवें पाठ में जिन उद्धरणों के सामने कुछ नहीं लिखा गया है, वे सिद्धान्त-कौमुदी से लिए गए हैं तथा भट्टि से भट्टि-काव्य आठवाँ सर्ग समझना चाहिये।

३०८—संस्कृत में दो पद होते हैं—**आत्मनेपद और परस्मैपद**। आत्मनेपद यह सूचित करता है कि क्रिया का फल कर्ता के लिए है (**कर्तृगामि फलम्**); जैसे, कुरुते का अर्थ हुआ **"अपने लिए करता है"**। परस्मैपद यह सूचित करता है कि क्रिया का फल दूसरे के लिए है; जैसे, **गच्छति** का अर्थ हुआ **दूसरे के लिए जाता है"**। पर यह भेद कार्यरूप में नहीं माना जाता। इन शब्दों के मौलिक अर्थ यही हैं जो कि अभी बताए गए हैं, पर सर्वत्र इनका पालन करना असम्भव हो जाता है। संस्कृत लेखक दोनों पदों को बिना किसी भी भेद-भाव के प्रयोग में लाते हैं, जैसे **निदेशमिदानीं श्रोतुमिच्छामि** (मालविका० १)—अब मैं सन्देश सुनना चाहता हूँ। **उत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि** (शा० ४)। **यावद्यते साधयितुं त्वदर्थम्** (रघु० ५। १५)

यदि यह कहा जाय कि यह भेद उभयपदी धातुओं के विषय में ही माना जाता है, तो यह बात भी प्रयोगों तथा उदाहरणों से सिद्ध नहीं होती; जैसे, **राजा स्वसूनोश्चन्द्रपीड इति नाम चकार। शुकनासोऽपि विप्रजनोचितं वैशंपायन इति नाम चक्रे** (कादम्० ७४)। यहाँ पर दोनों पद एक ही अर्थ में प्रयुक्त हैं।

३०९—कुछ धातुओं के रूप केवल एक ही पद में चलते हैं; जैसे, नम्, भ्रम्, रुच्, भाष्। कुछ धातुओं के रूप दोनों पदों में चलते हैं; जैसे कृ, चि, चुर्, दुह्। कुछ परस्मैपदी धातुएँ उपसर्गयुक्त होने पर सर्वथा आत्मनेपदी हो जाती हैं, तथा कुछ आत्मनेपदी धातुएँ उपसर्गयुक्त होने पर अपना पद छोड़कर सर्वथा परस्मैपदी हो जाती हैं अथवा वे किसी विशेष अर्थ में प्रयोग में आती हैं; जैसे,

गम् धातु परस्मैपदी है, परन्तु सम् उपसर्गपूर्वक गम् धातु आत्मनेपदी हो जाती है। शास् (शासन करना) परस्मैपदी धातु है, परन्तु आ उपसर्गपूर्वक शास् धातु (आशीर्वाद देना) आत्मनेपदी हो जाती है। इस प्रकार की कुछ धातुओं का उल्लेख इस पाठ में तथा अगले पाठ में होगा।

भ्वादिगणी धातुएँ

३१०[1]—उपसर्गरहित रहने पर क्रम् धातु उभयपदी होती है। परन्तु जब यह आत्मनेपद में रहती है तब यह **नैरन्तर्य** अथवा **बाधाभाव, शक्ति,** विकास या उन्नति का अर्थ सूचित करती है, जैसे, **क्रममाणोऽरिसंसदि** (भट्टि० ८।२२)—शत्रु की सभा में निर्बाध घूमता हुआ। **अध्ययनाय भजते**—अध्ययन के लिए स्फूर्ति दिखलाता है। **क्रमंतेऽस्मिन् शास्त्राणि**—इसमें शास्त्र विकसित होते हैं।

(क) **उप** तथा **परा** पूर्वक **क्रम्** धातु आत्मनेपदी होती है और वही उपरिलिखित अर्थ सूचित करती है; जैसे, **इत्युक्त्वा खे पराक्रंस्त** (भट्टि० ८।२२)—ऐसा कह कर उसने आकाश में अपनी शक्ति (पराक्रम) दिखाई। **परीक्षितुमुपाक्रंस्त राक्षसी तस्य विक्रमम्** (भट्टि० ८।२३)—उस राक्षसी ने उसके शौर्य की परीक्षा लेने की धृष्टता की।

(ख) **आ** पूर्वक **क्रम्** धातु आत्मनेपदी होती है और किसी नक्षत्र का उदय होना सूचित करती है; जैसे, **आक्रमते सूर्यः** (म० भा०)—सूर्य उदित होता है। **दिवमाक्रममाणेव** (भट्टि० ८। २३)। परन्तु **आक्रामति धूमो हर्म्यतलात्**—महल के ऊपर से धुआँ निकलता है। अथवा **आक्रामति धूमी हर्म्यतलम्** (म० भा०)—धुआँ महल के ऊपरी भाग को ढक लेता है।

(ग) चलने अथवा कदम रखने के अर्थ में **वि** उपसर्गपूर्वक **क्रम्** धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **विष्णुस्त्रेधा विचक्रमे**—विष्णु ने तीन कदम लिए। **वाजी विक्रमते**। परन्तु **विक्रामति सन्धिः**—सन्धि फट रही है (जोड़ टूट रहा है)।

१—वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः। उपपराभ्याम्। आङ् उद्गमने। वेः पादविहरणे। प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्। अनुपसर्गाद्वा (६। ३। ३८-४३)

(घ) **आरम्भ करने** के अर्थ में प्र तथा उप-पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **वक्तुं मिथः प्राक्रमतैवमेनम्**। (कुमार० ३। २)—इस प्रकार एकान्त में बातचीत करने लगा।। परन्तु **प्रकामति**—जाता है; **उपक्रामति**—आता है।

३११[1]—क्रीड् धातु परस्मैपदी है, पर अनु, सम्, परि तथा आं पूर्वक क्रीड् धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **अनु-परि-आ-क्रीडते माणवकः; संक्रीडंते मणिभिः यत्र कन्याः** (मेघ० ७)—जहाँ कन्याएँ मणियों से खेलती हैं। परन्तु **माणवकमनुक्रीडति** (म० भा०)—माणवक के साथ खेलता है।

(क) **शोर करने** के अर्थ में सम् पूर्वक क्रीड् धातु परस्मैपदी होती है; जैसे, **संक्रोडन्ति शकटानि** (म० भा०)—छकड़े आवाज करते हैं (शोर करते हैं)।

३१२[2]—**'मिल जाने', 'जुड़ जाने,'** के अर्थ में **सम् पूर्वक गम्** धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे **अक्षधूर्तैः समगंसि** (दशकु० २। २)।—मैं जुआड़ियों में मिल गया। इसी प्रकार सम् पूर्वक ऋ या ऋच्छ् धातु आत्मनेपदी हो जाती है; जैसे, **समारन्त ममाभीष्टाः** (भट्टि० ८। १६)।

३१३[3]—**उद् पूर्वक चर** (चलना) धातु जब सकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है तो आत्मनेपदी होती है; जैसे, **पानशौंडाः पथः क्षीबा वृन्दैरुदचरंत च** (भट्टि० ८।३१)—नशे में मतवाले पियक्कड़ झुण्ड के झुण्ड मार्ग से भटक गए। इसी प्रकार **धर्ममुच्चरते**—धर्म (कर्तव्य) का उल्लंघन करता है। परन्तु **बाष्पमुच्चरति**—भाप ऊपर उठती है।

(क) तृतीयान्त वाहन के योग में सम् पूर्वक चर् धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **यानैः समचरंतान्ये** (भट्टि० ८।३२)—अन्य लोग रथों से गए। **क्वचित् पथा संचरते सुराणाम्** (रघु० १३।१६)—कभी-कभी देवताओं के मार्ग से होकर जाता है।

१—क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च। (१। ३। २१)

२—समो गमृच्छिभ्याम्। (१। ३। २९)

३—उदश्चरः सकर्मकात्। समस्तृतीयायुक्तात् (१।३।५३—५४)

३१४[1]—**वि** तथा **परा** पूर्वक **जि** धातु **जीतना, विजयी होना, हरा देना**—इन अर्थों में आत्मनेपदी होती है; जैसे, **चक्षुर्मेचकमम्बुजं विजयते** (विद्धशाल-भंजिका)—उसकी (नीली-नीली) आँखें नील कमल को जीत लेती हैं। **विजयतां देवः** (मालविका० १)—महाराज की जय हो (महाराज विजयी हों); **खं पराजयमानोसौ** (भट्टि० ८।६)—आकाश को हराते हुए।

३१५[2]—जब **वि** अथवा **उद्** पूर्वक **तप्** धातु अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है, अथवा जब शरीर का कोई अवयव उसका कर्म होता है तो वह आत्मनेपदी होती है; जैसी, **रविर्वितपतेत्यर्थम्** (भट्टि० ८।१४)—सूर्य बहुत जोरों से तप रहा है। **तीव्रमुत्तपमानोयमशक्यः सोढुमातपः** (भट्टि० ८।१५.)—यह अत्यन्त ही झुलसाने वाला घाम असह्य है। **उत्तपते वितपते पाणी** (म० भा०)—वह अपने हाथों को सेंकता है। परन्तु **उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः** (म० भा०)—सोनार सोने को तपाता है। इसी प्रकार **चैत्रो मैत्रस्य पाणिमुत्तपति**।

विशेष—तप् धातु स्वतः अकर्मक है; जैसे, **तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति** (शा० ५)—सूर्य के चमकते रहते भला अन्धकार कैसे प्रकट होगा?

३१६—**उद्, उप,** या **वि,** पूर्वक **नी** धातु अथवा इन उपसर्गों से रहित **नी** धातु निम्नलिखित अर्थों में आत्मनेपदी होती है :—

(१) **उपदेश देना** अथवा **आदेश देना;** जैसे **शास्त्रे नयते**—शास्त्र का उपदेश देता है।

(२) **उठाना;** जैसे, **दंडमुन्नयते**—डंडा उठाता है।

(३) **धार्मिक संस्कार की दीक्षा देना;** जैसे, **माणवकमुपनयते**—माणवक का यज्ञोपवीत संस्कार करता है।

(४) **ज्ञान, अन्वीक्षण;** जैसे, **तत्वं नयते**—सत्य की जाँच-पड़ताल करता है।

(५) **मजदूरी पर लगाना या नियुक्त करना, किराए पर लगाना;** जैसे, **कर्मकरानुपनयते**—मजदूरों को किराए पर रखता है।

१—विपराभ्यां जेः। (१।३।१९)

२—उद्विभ्यां तपः (१।३।२७) स्वांगकर्मकाच्चेति वक्तव्यम्। (वार्तिक)

(६) **ऋण या कर देना**; जैसे, **करं विनयते**—राज-कर देता है।

(७) **व्यय करना, काम में लगाना**; जैसे, **शतं विनयते**—सौ रुपया (दान) खर्च करता है।

(क) जब शरीरावयव के अतिरिक्त अन्य कोई चीज कर्म हो तो वि-पूर्वक **नी** धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **विनेष्ये क्रोधमथवा** (भट्टि० ८।२२)—अथवा मैं अपना क्रोध दूर कर दूँगा। परन्तु **गंडं विनयति**—अपना गाल फेर लेता है।

विशेष—**शिक्षा देना, पालतू बनाना**—इन अर्थों में **वि+नी** परस्मैपदी होती है; जैसे, **वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान्** (रघु० २।८)—मानो जङ्गल के दुष्ट पशुओं को पालतू बनाने की इच्छा करते हुए। इसी प्रकार, **विनिन्यु रेनं गुरवो गुरुप्रियं** (रघु० ३।२६)।

३१७—**आ** पूर्वक **यम्** धातु जब अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है अथवा जब शरीरावयव वा शास्त्रातिरिक्त (ग्रन्थातिरिक्त) कोई वस्तु इसका कर्म हो तो यह आत्मनेपदी होती है; जैसे, **आयच्छते**—फैलाता है; **पाणिमायच्छते**—अपना हाथ फैलाता है; **वस्त्रमायच्छते**—कपड़ा फैलाता है।

(क) जब **सम्+ उत्** पूर्वक **यम्** धातु का कर्म शास्त्र नहीं होता बल्कि शास्त्रातिरिक्त अथवा साहित्यातिरिक्त कोई दूसरी वस्तु कर्म हो तो यह आत्मनेपदी होती है; जैसे, **व्रीहीन् संयच्छते**—चावल इकट्ठा करता है; **भारमुद्यच्छते**—बोझा उठाता है। परन्तु **उद्यच्छति—वेदम्** वेद पढ़ने के लिए घोर परिश्रम करता है।

(ख)[1] **उप** पूर्वक **यम्** धातु विवाहार्थ अथवा स्वीकारार्थ में आत्मनेपदी होती है; जैसे, **सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोमयेमे यदन्याम्** (रघु० १४।७१)—सीता को त्याग कर दशमुख के शत्रु (श्रीरामजी) ने जो दूसरी स्त्री नहीं ब्याही।

३१८[2]—**रम्** (रमण करना, विहार करना) साधारणतः आत्मनेपदी है; परन्तु **वि, आ, परि** उपसर्गपूर्वक **रम्** धातु परस्मैपदी हो जाती है; जैसे, **विरम विरम वह्ने** (रत्ना० ५)—ऐ अग्निदेव, रुको, रुको। **आरमति उद्याने**—

१—उपाद्यमः स्वीकरणे। (१।३।५६)

२—व्याङ् परिभ्यो रमः। विभाषाऽकर्मकात्। (१।३।८३-८५)।

बगीचे में आराम करता है। **क्षणं पर्यरमत्तस्य दर्शनात्** (भट्टि० ८।१३)—उसको देखकर क्षण भर के लिए प्रसन्न हो गया।

(क) **उप-पूर्वक अकर्मक रम् धातु** उभयपदी होती है; जैसे, **उपारंसीच्च सम्पश्यन् वानरस्तं चिकीर्षितात्** (भट्टि० ८।५५)—वानर जो कुछ करना चाहता था, उसे देखकर उसने बन्द कर दिया। **नात्र सीतेत्युपारंस्त** (भट्टि० ८।५५)—सीता यहाँ नहीं है, यह देखकर वह रुक गया।

३१६[1]—**वद्** धातु स्वतः तो निम्नलिखित अर्थों में आत्मनेपदी है—

(१) किसी चीज में **मेधावित्व** अथवा **बुद्धिवैचक्षण्य** दिखलाना; जैसे, **शास्त्रे वदते,**

(२) **शान्त करना, पुचकारना,** (इस अर्थ में प्रायः उप-पूर्वक रहती है) जैसे, **भृत्यानुपवदते** - अपने नौकरों से मेल-मिलाप कर लेता है अर्थात् उन्हें शान्त कर देता है।

(३) **ज्ञान;** जैसे, **शास्त्रे वदते**—शास्त्रों को जानता है।

(४) **प्रयास, उद्योग;** जैसे, **क्षेत्रे वदते**—खेत में खूब कड़ी मिहनत करता है।

(५) **"मतभेद', 'विवाद'** (प्रायः इस अर्थ में यह वि-पूर्वक रहती है); **जैसे, परस्परं विवदमानानां शास्त्राणाम्** (हितो० १)—आपस में वाद-विवाद करने वाले शास्त्रों का।

(६) **चापलूसी करना, प्रार्थना करना** जैसे, **दातारमुपवदते**—दाता की चाटुकारी करता है। [यह न० २ के समान ही है]

(क) **सम्प्र-पूर्वक वद्** धातु मनुष्यों के समान **जोर से** तथा **स्पष्ट बोलने** के अर्थ में आत्मनेपदी होती है; **जैसे, सम्प्रवदंते ब्राह्मणाः**—ब्राह्मण लोग बड़े जोरों से बोल रहे हैं। परन्तु **वरतनु सम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः** (म० भा०)—ऐ सुन्दर शरीर वाली स्त्री, मुर्गे बाँग दे रहे हैं।

(ख) उपयुक्त परिस्थिति में **अनु** पूर्वक **वद्** धातु अकर्मक दशा में आत्मनेपदी होती है; **जैसे अनुवदते कठः कलापस्य**—कठ कलाप की नकल करता है।

१—भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमंत्रणेषु वदः। व्यक्तवाचां समुच्चारणे। अनोरकर्मकात्। विभाषा विप्रलापे (१।३।४७—५०)

परन्तु **उक्तमनुवदति**—कहे हुए को फिर से कह देता है। **अनुवदति वीणा**—वीणा बोलती है।

(ग) **वि+प्र** पूर्वक **वद्** धातु "झगड़ा करने" के अर्थ में उभयपदी होती है; जैसे, **विप्रवदंते वैद्याः** अथवा **विप्रवदंति वैद्याः**—वैद्य लोग वाद-विवाद करते हैं। **ऐद् विप्रवदमानैस्तां संयुक्तां ब्रह्मराक्षसैः** (भट्टि० ८।३०)—झगड़ते हुए ब्रह्मराक्षसों से भरी हुई उस (स्थली) के पास गया।

(घ) **धिक्कारने**, अथवा **डाटने** के अर्थ में **अप**-पूर्वक **वद्** धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **न्यायमपवदते; नृभ्योऽपवदमानस्य** (भट्टि० ४५)।

३२०[1]—**अपना अभिप्राय प्रकाशन करने के अर्थ में अथवा किसी को न्यायाधीश या पंच के तौर पर स्वीकार कर लेने के अर्थ में स्था** धातु स्वतः आत्मनेपदी होती है; जैसे, **गोपी कृष्णाय तिष्ठते**—गोपी कृष्ण से अपने सारे मनोगत भावों को प्रकाशित कर देती है। **संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः** (किरात० ३। १४)—संशय आ पड़ने पर जो व्यक्ति कर्ण आदि को अपना पंच मान लेता है।

(क) **सम्, अव,** प्र और **वि** पूर्वक **स्था** धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **दारिद्र्यात्पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न संतिष्ठते** (मृच्छ०)—गरीबी के कारण बान्धव लोग (भी) मनुष्य के कहने में नहीं रहते। **क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुः** (रघु० ८। ८७)।—यदि जीव क्षण भर के लिए भी साँस लेता है। **हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतस्थे** (शिशु० ३। १)—तब हरि हरिप्रस्थ को चल दिए। इसी प्रकार, **अत्रापरे प्रत्यवतिष्ठन्ते** (शांकर भाष्य ४१); **अग्ने उर्वलतः विस्फुलिंगा विप्रतिष्ठेरन्** (शांकर भाष्य ४१)।

(ख) केवल **प्रतिज्ञा** के अर्थ में **आ-पूर्वक स्था** धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **जलं विषं वा तव कारणादास्थास्ये** (महा०)—तेरे कारण मैं अवश्य जल अथवा विष का आश्रय लूँगा)।

३२१[2]—उठने के अर्थ में **उत्**-पूर्वक **स्था** धातु परस्मैपदी होती है, परन्तु आलंकारिक अर्थ में यह आत्मनेपदी हो जाती है; जैसे, **उत्तिष्ठमानं मित्रार्थे**

१—समवप्रविभ्यःस्थः। प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च। (१।३।२२—२३)

२—उदोऽनूर्ध्वकर्मणि। (१। ३। २४)

कस्त्वां न बहु मन्यते (भट्टि० ८। १२)—मित्र के लिए प्रयत्न करने वाले तुमको कौन नहीं मानता या पूजता ? **मुक्तावुत्तिष्ठते**—मुक्ति के लिए उठता है (उच्चाकांक्षा रखता है)। (किरात०११। १३ तथा शिशु० १४१७ देखिए)। परन्तु **पीठादुत्तिष्ठति,** और **ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति**—गाँव से एक सौ मिलता है।

३२२[1]—**धार्मिक विधि के अनुसार सेवा करने** या देवता आदि की **पूजा करने** के अर्थ में **उप-पूर्वक स्था** धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **ये सूर्यमुपतिष्ठन्ते मंत्रैः** (भट्टि ०८। १३)–जो लोग मंत्रों द्वारा सूर्य को पूजते हैं। **न त्र्यम्बकादन्यमुपास्थितासौ** (भट्टि० १। ३)

विशेष[2]—साधारण **सेवा** करने या **पूजा करने** के अर्थ में यह धातु साहित्य में उभयपदी पाई जाती है; जैसे, **उपतस्थुर्महात्मानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्** (महा० २। ४।७); **स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती** (रघु० ४। ६)

३२३[3]—**उप-पूर्वक स्था** धातु निम्नलिखित अर्थों में भी आत्मनेपदी होती है :—

(१) **मिलना, सम्मिलित होना;** जैसे, **गंगा यमुनामुपतिष्ठते**—गंगा यमुना से मिल जाती है।

(२) **किसी के साथ मैत्री करना;** जैसे, **रथिकानुपतिष्ठते** (म०भा०)—सारथियों से मैत्री करता है।

(३) **जाना;** जैसे, मार्ग चला जाता है, **अयं पन्थाः साकेतमुपतिष्ठते** (म०भा०)—यह मार्ग साकेत (अयोध्या) को चला जाता है।

१—उपान्मन्त्रकरणे। (१। ३। २५)

२—इस पर महाभाष्य का यह वचन है—

बहूनामप्यचित्तानामेको भवति चित्तवान्।
पश्य वानरसैन्येऽस्मिन् यदर्कमुपतिष्ठते॥
मैवं मंस्थाः सचित्तोयमेषोपि हि यथा वयम्।
एतदप्यस्य कापेय यदर्कमुपतिष्ठति॥

३—उपाद् देवपूजासंगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम्। (वार्तिक)

(क) जब किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा विवक्षित होती है तब **उप-पूर्वक स्था** धातु उभयपदी होती है; जैसे, **भिक्षुको ब्राह्मणकुलमुपतिष्ठति-उपतिष्ठते** वा (म० भा०)–भिक्षुक कुछ पाने की इच्छा से ब्राह्मण के घर पर जाता है। जब यह अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है तब भी आत्मनेपदी होती है; जैसे, **भोजनकाले उपतिष्ठते**—भोजन के समय तैयार होकर खड़ा हो जाता है।

३२४[1]—निरन्तर अभ्यास करने के अर्थ में **अनु-पूर्वक हृ** धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **पैतृकमश्वा अनुहरन्ते**—घोड़े सदा अपने पुरखों की गति (चाल) का अभ्यास करते हैं। परन्तु "मिलना-जुलना" अर्थ में यह परस्मैपदी होती है; जैसे, **रामभद्रमनुहरति** (उत्तर०४)।

३२५[2]—**ललकारने** के अर्थ में **आ-पूर्वक ह्वे** धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, **कृष्णश्चाणूरमाह्वयते** (सि० कौ०)। **आह्वयत चेदिराट् मुरारिम्** (शिशु० २०। १)। परन्तु **इत एवाह्वयैनमप्यायुष्मन्तं** (उत्तर० ६)—इस चिरंजीवी बालक को भी यहाँ बुलाओ।

अभ्यास

१—राज्यं नाम शक्तित्रयायत्तम्। शक्तयश्च मन्त्रप्रभावोत्साहाः परस्परानुगृहीताः कृत्येषु क्रमंते। (दशकु० २।८)

२—असौ पापः क्रमेण शाखांतरैः संचरमाणः कोटरमागत्य तातम-पगतासुमकरोत्। (कादम्०३३)

३—एवं भोः संततिविच्छेदनिरवलंबानां मूलपुरुषावसाने संपदः परमुपतिष्ठन्ति। (शा० ६)

४—उषसि स्नात्वा कृतमंगलो मंत्रिभिः सह समगच्छे (दशकु०२।३)

५—अये वनदेवतेयं फलकुसुमपल्लवार्घ्येण मामुपतिष्ठते। (उत्तर० २)

६—विजयेतां रामलक्ष्मणौ कुंभकर्णमेघनादौ। (अ० रा०६)

१—हरतेर्गतताच्छील्ये। (वार्तिक)

२—स्पर्धायामाङः। (१।३।३१)

७—ततः प्रतस्थे कौवेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम्। (रघु० ४।६६)

८—वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः। (मेघ० १०१)

९—बलिर्बबंधे जलधिर्ममंथे जह्रे ऽमृतं दैत्यकुलं विजिग्ये।
कल्पांतदुःस्था वसुधा तथोहे येनैष भारोऽतिगुरुर्न तस्य॥
(भट्टि० २।३६)

१०—उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।
समौ हि शिष्टंराम्नाता तत्स्थैतावामयः स च॥ (शिशु० २।१०)

११—अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता-
मनुवदति शुकस्ते मंजुवाक् पंजरस्थः। (रघु० ५।७४)

१२—यावत्प्रतापनिधिराक्रमते न भानु-
रह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम्। (रघु० ५।७१)

१३—अथ सर्वस्य धातारं ते सर्वे सर्वतोमुखम्।
वागीशं वाग्भिरर्थ्याभिः प्रणिपत्योपतस्थिरे॥ (कुमार०२।३)

१४—स मानसीं मेरुसखः पितॄणां कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः।
मेनां मुनीनामपि माननीयामात्मानुरूपां विधिनोपयेमे॥
(कुमार०२।१८)

१५—पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे
निकृंतन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति। (उत्तर०४)

१६—फलान्यादत्स्व चित्राणि परिक्रीडस्व सानुषु।
साध्वनुक्रीडमानानि पश्य वृंदानि पक्षिणाम्॥ (भट्टि० ८।१०)

१७—किंचिन्नोपावदिष्टासौ केनचिद् व्यवदिष्ट न।
शृण्वन् संप्रवदमानाद्रावणस्य गुणान् जनात्॥ (भट्टि० ८।२८)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—एते भगवत्यौ भूमिदेवानां मूलमायतनमंतर्वेदिं पूर्वेण कृष्णागरुमलयजरसमंग-
रागमन्योन्यस्य कुर्वाणे कलिंदकन्यामंदाकिन्यो संगच्छेते। (आ० रा० ७)

२—इत्युक्त्वा शुकनासो हेमंतकालोत्पलिनीमिवोद्बाष्पां दाष्टमुद्वहन्नुद्वेपिताधरश्च बर्हिर्लब्धनिर्गमेण स्फुटन्निवांतर्मन्युपूरेण निश्वसन्नेवावतस्थे । (कादम्० २८६)

३—वयोवेषविसंवादि रामस्य च तयोस्तदा ।
जनता प्रेक्ष्य सादृश्यं नाद्रिकंपं व्यतिष्ठत ॥ (रघु० १५।६७)

४—तत्रैनं हेमकुंभेषु संभृतैस्तीर्थवारिभिः ।
उपतस्थुः प्रकृतयो भद्रपीठोपवेशितम् (रघु० १७।१०)

५—इति दर्शितविक्रियं सुतं मरुतः कोपपरीतमानसम् ।
उपसांत्वयितुं महीपतिर्द्विरदं दुष्टमिवोपचक्रमे ॥ (किरात० २।२५)

६—पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना ।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी (रघु० ४।६०)

७—विनयंते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम् ।
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु ॥ (रघु० ४ । ६५)

८—श्रुतमप्यधिगम्य ये रिपून् विनयंते न शरीरजन्मनः ।
जनयंत्यचिराय संपदामयशस्ते खलु चापलाश्रयम् ॥ (किरात० २। ४१)

९—प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः ।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥ (उत्तर० २)

१०—क्षणं भद्रावतिष्ठस्व ततः प्रस्थास्यसे पुनः ।
न तत्संस्थास्यते कार्यं दक्षेणोरीकृतं त्वया ॥ (भट्टि० ८।११)

११—द्रष्टुं प्रक्रममाणोऽसौ सीतामभिनिवेस्तटम् ।
उपाक्रंस्ताकुलं घोरैः क्रममाणैर्निशाचरैः ॥ (भट्टि० ८।२५)

१२—जल्पितोत्कुष्टसंगीतप्रनृत्तस्मितवल्गितैः ।
घोषस्यान्ववदिष्टेव लंका पूतक्रतोः पुरः ॥ (भट्टि० ८।२९)

१३—व्यरमत्प्रधनद्यस्मात्परित्रस्तः सहस्रदृक् ।
क्षणं पर्यरम त्तस्य दर्शनान्मारुतात्मजः

१४—यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः ।
विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः ॥ (शिशु० २ । १६)

१५—विपद्मखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा ।
अनीत्वा पंकतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते (शिशु० २ । ३४)

१६—संगमध्वं पुरः शत्रोर्मोदयध्वं रघूत्तमम् ।
मोपयध्वं भयं सीतां नोपायंस्त दशाननः ॥
ततः प्रास्थिषताद्रींद्रं महेंद्रं वानरा द्रुतम् ।
सर्वे किलकिलायंतो धैर्य चाधिषताधिकम् ॥ (भट्टि० ७ । १०१-१०२)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—आधी रात को जब मैं अपने बिस्तरे पर गहरी नींद में सो रहा था तो परस्पर विवाद करते हुए पुरुषों की तरफ से आने वाले कोलाहल से जाग पड़ा ।

२—कुटुम्ब की रक्षा ज्येष्ठ पुत्र को सौंप कर बुड्ढा आदमी तीर्थ-यात्रा के लिये चल दिया (प्र+स्था) ।

३—योग्यतम सेनापति से आज्ञप्त फ्रांसीसियों ने दुर्ग पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया (उप+क्रम्), परन्तु चीन-निवासियों ने उन्हें सरलता-पूर्वक हरा दिया (परा+जि) ।

४—जोर जोर बातें करते ही करते दोनों युवक एक दूसरे पर प्रहार करने लगे और दोनों में अधिक उग्र प्रकृति वाले युवक ने दूसरे को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारा (आ+ह्वे) ।

५—केवल धन प्राप्त करने की इच्छा से धनाढ्यों की सेवा करने वालों (उप+स्था) तथा चापलूसी करने वालों को धिक्कार है ।

६—यमुना जी प्रयाग में गङ्गाजी से मिल जाती हैं (सम्+गम्), और यह स्थान हिन्दुओं द्वारा बहुत ही पवित्र माना जाता है ।

७—क्रोध रोको (वि+रम्) और लोभ छोड़ो; किसी भी प्रकार अनर्थ करने की चेष्टा न करो ।

८—जब परशुराम जी एक उरुसत्त्व घोड़े पर चढ़ कर संचरण कर रहे थे (सम्+चर्) तो घोड़ा एक जलाशय देखकर चकित हो गया और अश्वारोही बड़े वेग से नीचे गिर पड़ा ।

९—इङ्गलैण्ड के युवराज ने डेनमार्क की राजकुमारी से विवाह कर लिया (उप+यम्)।

१०—जो व्यक्ति बालक का उपनयन कराता है (उप+नी) और ब्रह्मविद्या पढ़ाता है, वह आचार्य कहलाता है।

११—यह मार्ग सीधे नदी को जाता है; पर दूसरा बिल्कुल टेढ़ा-मेढ़ा है, जिसे चाहो उसे चुन लो।

१२—जब कि घाम इतना तपाने वाला है तो तुम बिना छाता के कैसे बाहर जा सकते हो।

१३—ब्राह्मण की प्रकृति मृदु होती है। चाहे वह थोड़ी देर के लिये क्षुब्ध भी हो जाय, परन्तु बहुत जल्द ही वह अपनी मौलिक स्थिति पर आ जाती है (सप्तमी के साथ अव+स्था)।

१४—कृपा के इच्छुक हम लोगों ने दुष्ट के व्यंग्यों को तथा अभिमानियों द्वारा किये हुए अपमानों को बहुत देर तक क्लीबव्रत् सहा; तो, ऐ आशे ! अपना कार्य कब करेगी ?

१५—शुकनास चन्द्रापीड के पास गया (उप+स्था) और उसे कई महत्त्व-पूर्ण विषयों पर मन्त्रणा (परामर्श) देकर प्रसन्नचित्त हो घर लौट आया।

त्रिंशत्तम पाठ

अदादिगणी धातुएँ

३२६—**पहिचानने** के अर्थ में **सम्** पूर्वक **विद्** (जानना) धातु आत्मनेपदी होती है; **पितरावपि मां न प्रतिसंविदाते** (दशकु० २।३)—मेरे माँ-बाप भी मुझे नहीं पहिचानते।

(क) सचेत होना, 'जानना' अर्थों में जब **सम्**-पूर्वक **विद्** धातु का अकर्मक प्रयोग होता है तब भी इसका आत्मनेपद में रूप चलता है; जैसे, **के न संविदन्ते वायोर्मैनाकाद्रिर्यथा सखा** (भट्टि० ८।१७)—कौन नहीं जानता कि मैनाक पर्वत वायु का मित्र है।

३२७—आशीर्वाद या वरदान अर्थ में **आ**-युक्त तथा किसी वस्तु के लिए प्रार्थना करने या याचना करने के अर्थ में **प्र**-युक्त **शास्** धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे **ऋक्छन्दसाशास्ते** (शा० ४)—एक ऋक् द्वारा उसे आशीर्वाद देता है। **इदं प्रशास्महे** (उत्तर० १)—हम लोग यह माँगते हैं या प्रार्थना करते हैं।

३२८—**हन्** साधारणतः परस्मैपदी होती है; पर अकर्मक के तौर पर प्रयोग में आने पर और अपने ही शरीर से सम्बन्ध रखने पर **आ**-पूर्वक हन् धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **आघ्नान इव संदीप्तैरलातैः सर्वतो मुहुः** (भट्टि० ८।१५,) मानों चारों ओर जलते हुए आग के अंगारों से मारते हुए। परन्तु **परस्य शिर अहंति** (सि० कौ०)।

विशेष—यह प्रतिबन्ध सदा नहीं माना जाता; **आजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्त्रः** (किरात० १७।६३)।

जुहोत्यादि, दिवादि तथा स्वादि गण की धातुएँ

३२९—**दा** धातु अकेले तो उभयपदी होती है; परन्तु **आ** से युक्त होने पर 'लेना' अर्थ में आत्मनेपदी होती है; जैसे, **नादत्ते भवतां स्नेहेन** या

पल्लवम् (शा० ४)—जो प्रेम के कारण आप लोगों की पत्तियों को नहीं तोड़ती थी। परन्तु, **मुखं व्याददाति**—मुँह बाता है (फैलाता है)। और भी, **विपादिकां व्याददाति**—अपने पाँव पर की फोड़ियों को फोड़ता है। **नदीकूलं व्याददाति**। परन्तु, **व्याददते पिपीलिकाः पतंगस्य मुखम्** (म० भा०)।

३३०—**सम्** पूर्वक **नह्** धातु **तैयार होने**, या **तैयारी करने** के अर्थ में आत्मनेपदी होती है; जैसे, **छेत्तुं वज्रमणीन् संनह्यते** (भर्तृ० २।६)—वज्र-मणियों को काटने के लिए तैयार होता है। **युद्धाय संनह्यते** (म० भा०)—युद्ध के लिए तैयारी करता है।

३३१—**सम्**-पूर्वक **श्रु** धातु का जब सकर्मक प्रयोग होता है तो वह परस्मैपदी होती है; जैसे, **मद्वचनं न संशृणोति**—मेरी बातें नहीं सुनता (मेरी बातों की परवाह नहीं करता)। परन्तु अकर्मक प्रयोग होने पर आत्मनेपदी होती है; जैसे, **संशृणुष्व कपे** (भट्टि० ८।१६)—ऐ वानर, सुनो।

तुदादिगणी धातुएँ

३३२—**अप**-पूर्वक **कृ** धातु '**ऊपर फेंकना**' या जीविका के लिए **अथवा** घर बनाने के लिए '**हर्ष के मारे खरोचना**' अर्थ में आत्मनेपदी होती है; जैसे, **छायापस्किरमाणविष्किर** इत्यादि (उत्तर० २)—छाया में भोजन प्राप्त करने के लिए जमीन को खरोचते हुए पशु। **अपस्किरते कुक्कुटो भक्षार्थी, श्वा आश्रयार्थी**। परन्तु **अपकिरति कुसुमम्**—फूलों को बिखेरता है।

३३३—**अव**-पूर्वक **गृ** धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **अवगिरते ग्रासम्**—कौर निगल जाता है।

(क) प्रतिज्ञा करने के अर्थ में **सम्**-पूर्वक **गृ** धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, **संगिरते शब्दम्**। परन्तु **संगिरति ग्रासम्**।

३३४—**बिदा होने** के अर्थ में **आ**-पूर्वक **प्रच्छ्** धातु आत्मनेपदी होती है, **आपृच्छस्व प्रियसखममुम्** (मेघ० ६)—अपने इस प्रिय मित्र से बिदा होना।

३३५—**नि**-पूर्वक **विश्** धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, **किष्किन्ध्याद्रिं न्यविशत** (भट्टि० ७।१४३)—किष्किन्धा पर्वत में प्रवेश किया।

(क) अभि-पूर्वक **विश्** धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **भयं तावत् सेव्यादभिनिविशते सेवकजनम्** (मुद्रा० ५)—पहिले तो नौकर के हृदय में सेव्य पुरुष का भय घुस जाता है।

रुधादिगणी धातुएँ

३३६[1]—केवल रक्षणार्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थों में **भुज्** धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **ओदनं भुंक्ते**—भात खाता है। **सदयं बुभुजे स मेदिनीम्** (रघु० ८।७)—उसने दयापूर्वक पृथ्वी को भोगा। **वृद्धो जनो दुःख शतानि भुंक्ते**—बूढ़े लोग सैकड़ों दुःख भोगते हैं।

३३७[2]—यज्ञपात्रों के अतिरिक्त अर्थों में **प्र** तथा **उप** पूर्वक अथवा किसी भी स्वरान्त या स्वरादि उपसर्ग पूर्वक **युज्** धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **प्रयुंजानः प्रिया वाचः** (भट्टि० ८।३६)—प्रियवाणी का प्रयोग करता हुआ। **आश्रमधर्मे नियुंक्ते** (शा० १)। **तमन्वयुंक्त** (रघु० ८।१८)। **पणबन्ध-मुखान् गुणानजः षडुपायुंक्त** (रघु० ८।२१)—अज ने शम आदि छहों उपायों का प्रयोग किया।

तनादिगणी धातुएँ

३३८[3]—**कृ** (करना) धातु स्वतः उभयपदी होती है; परन्तु उपसर्गपूर्वक **कृ** निम्नलिखित अर्थों में आत्मनेपदी होती है :—

(१) किसी को चोट पहुँचाना; जैसे, **उत्कुरुते**—किसी के विरुद्ध समाचार देता है।

(२) निन्दा, या विजय; जैसे, **श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते**—बाज बटेर को जीत लेता है।

(३) सेवा करना; जैसे, **हरिमुपकुरुते**—हरि की सेवा करता है।

(४) धर्षणा या बलात्कार करना; जैसे, **परदारान् प्रकुरुते**—दूसरे की स्त्री के साथ बलात्कार करता है।

१—भुजोऽनवने (१।३।६६)

२—प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु। (१।३।६४)
स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वक्तव्यम्। (वार्तिक)

३—गन्धनावक्षेपण - सेवन - साहसिक्य-प्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः। (१।३।३२)

(५) **तैयार करना**; जैसे, **एधोदकस्योपस्कुरुते**—इंधन पानी को तैयार करता (उबालता) है।

(६) **कहना**; जैसे, **गाथाः प्रकुरुते**—कहानियाँ कहता है।

(७) **लगाना**; **काम में लगाना**; जैसे, **शतं प्रकुरुते**—(किसी धार्मिक कृत्य में) एक सैकड़ा लगाता है। इसी प्रकार, **उपकुर्वन्तमत्यर्थं प्रकुर्वाणोऽनुजीविवत्** (भट्टि० ८।१८)।

(क) **उपकार करने के अर्थ में उप-पूर्वक कृ** धातु उभयपदी होती है; जैसे, **न हि दीपौ परस्परस्योपकुरुतः** (शांकर भाष्य ४२०)—दो दीपक आपस में एक दूसरे का उपकार नहीं करते। **किं वा भूयः प्रियमुपकरोमि** (मुद्रा० ७)। **सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम्** (किरात० ७।२८)—लक्ष्मी वह है जिससे लक्ष्मीवान् पुरुष दूसरे का उपकार करता है।

(ख)[1] **अनु** तथा **परा** उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु परस्मैपदी होती है; जैसे **पराकरोति दानम्**—दान को अस्वीकार कर देता है। **अनुकरोति भगवतो नारायणस्य** (कादम्० ६)।

३३९[2]—**सहन करने** अथवा **अभिभूत करने** के अर्थ में **अधि-पूर्वक कृ** धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **शत्रुमधिकुरुते**—शत्रु को क्षमा कर देता है अथवा पराभूत कर देता है। परन्तु **मनुष्यानधिकरोति शास्त्रम्** (शांकर भाष्य) —शास्त्र मनुष्यों को अधिकार देता है।

३४०[3]—**बोलने** या **बड़बड़ाने** के अर्थ में जब **वि-पूर्वक कृ** धातु का कर्म शब्द या आवाज होता है, तो यह आत्मनेपदी होती है; जैसे, **स्वरान् विकुरुते**—स्वर (आवाज) पैदा करता है—बोलता है। परन्तु **चित्तं विकरोति कामः**—कामदेव चित्त में विकार पैदा कर देता है।

(क) जब **वि-पूर्वक कृ** धातु का **अकर्मक** प्रयोग होता है, तो आत्मनेपदी होती है; जैसे, **विकुर्वे नगरे तस्य** (भट्टि० ८।२१)—उसके नगर में स्वेच्छापूर्वक आचरण करूँगा। (विविधं चेष्टे)।

१—अनुपराभ्यां कृञः। (परस्मैपदम्। १।३।७९)

२—अधः प्रसहने। (१।३।३२)

३—वेः शब्दकर्मणः। अकर्मकाच्च (१।३।३४-३५)

क्रयादिगणी धातुएँ

३४१[1]—**परि, वि तथा अव पूर्वक क्री** (खरीदना) धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **कृतेनोपकृतं वायोः परिक्रीणानम्** (भट्टि० ८।८)—वायु द्वारा किए हुए उपकारों का बदला कार्य द्वारा करते हुए को। **यस्तानि विक्रीणीते** (याज्ञ०)—जो उन्हें बेचता है।

३४२[2]—स्वतः **ज्ञा धातु** उभयपदी है; जैसे, **जानासि विनोदयितुम्** (उत्तर०१)। **जानीते हि भवान्** (विक्रमो०२)। अप-पूर्वक **ज्ञा** धातु 'छिपाने', **इनकार करने** के अर्थ में आत्मनेपदी होती है; जैसे, **शतमपजानीते**—एक सैकड़ा इनकार करता है।

(क) **सोचने, विचारने** या **ध्यान करने** के अतिरिक्त अर्थों में **सम**-पूर्वक तथा **प्र**-पूर्वक **ज्ञा** धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **शतं संजानीते**—एक सैकड़ा खोजता है। **हरचापारोपणेन कन्यादानं प्रतिजानीते** (प्र० श० ४)—हर के धनुष की डोर चढ़ा देने की शर्त पर कन्या प्रदान करने की प्रतिज्ञा करता है। **परन्तु मातरं मातुर्वा संजानाति**—अपनी माता के विषय में सोचता है।

(ख) **अनु**-पूर्वक **ज्ञा** धातु उभयपदी होती है; जैसे **अनुजानीहि मां गमनाय** (उत्तर०३)। **ततोऽनुजज्ञे गमनं सुतस्य** (भट्टि० ३।२३)—तब पुत्र को जाने की अनुमति दे दी।

(ग) सन्नन्त **ज्ञा** धातु सर्वदा आत्मनेपदी होती है; जैसे, **जिज्ञासमानानुचरस्य भावम्** (रघु० २।२६)—अपने अनुचर का भाव जानने की इच्छा करती हुई।

चुरादिगणी और प्रेरणार्थक धातुएँ

३४३—चुरादिगण की धातुएँ तथा प्रेरणार्थक धातुएँ उभयपदी होती हैं। परन्तु इस नियम के अनेक अपवाद भी हैं।

१—परिव्यवभ्यः क्रियः। (१।३।१८)

२—अपह्नवे ज्ञः। संप्रतिभ्यामनाध्याने। (१।३।४४,४६)

(क)[1] जब सकर्मक धातुओं के प्रेरणार्थक रूप प्रयोग में आते हैं, अथवा जब मूल रूप का कर्म प्रेरणार्थक में कर्ता हो जाता है, तब आत्मनेपद का प्रयोग होता है, परन्तु उत्कण्ठापूर्वक **स्मरण करने** के अर्थ में नहीं; जैसे, **भक्ता भवं पश्यन्ति**—भक्त लोग भव को देखते हैं। **भवो भक्तान् दर्शयते**—भव अपने आप को भक्तों को दिखा देते हैं। **दर्शयसे नित्यं मनुष्यान्** (महा०२।५।८६)। परन्तु **स्मरयति वनगुल्मः कोकिलम्**—उत्कण्ठापूर्वकस्मृतौ **विषयो भवति** (सि० कौ०)। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्रेरणार्थक के साधारण प्रयोग से यह प्रयोग सर्वथा भिन्न है; **भक्तान् भवं दर्शयति देवदत्तः**।

(ख) साधारणतया, जब क्रिया का फल कर्ता के ऊपर आता है, तब प्रेरणार्थक आत्मनेपद में होता है; जैसे **कटं कारयते**—अपने लिए चटाई बनवाता है। **स्वार्थं कारयमाणाभिः** (भट्टि० ८।४८)—अपना मतलब साधन करवाने वाली (स्त्रियों) से।

३४४[2]—**बुध, युध्, नश्, जन्, अधि+इ, प्रु, द्रु, स्रु** परस्मैपदी होती हैं; जैसे, **बोधयति पद्मम्, नाशयति दुःखम्, जनयति सुखम्** इत्यादि। (१) **भक्षणार्थक; निगल जाना** अर्थ वाली, तथा **कम्पनार्थक** धातुएँ परस्मैपदी होती हैं। जब **अद्** धातु की क्रिया कर्ता के लिए नहीं की जाती उस दशा के अतिरिक्त अन्य अर्थों में यह अपवाद-स्वरूप है।

३४५[3]—**पा** (पीना) का प्रेरणार्थक रूप, **दम्, आ+यम्, आ+यस्, परि+मुह्, रुच्, नृत्** और **अभि+वद्** धातुओं का फल जब कर्ता के लिए होता है, तब ये आत्मनेपदी होती हैं; जैसे, **पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः** (रघु०१३।६)।

(क) सम्बोधन करने तथा बिदा होने या बिदा करने के अर्थ में **आ**-पूर्वक **मंत्र** धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे, **आमन्त्रयस्व सहचरम्** (शा० ३)—अपने मित्र से बिदा होओ।

१—णेरणौ यत्कर्म णौ चेत् स कर्ताऽनाध्याने। (१।३।६७)

२—बुधयुधनशजनेङ् प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः। (१।३।८६)

३—न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः। (१।३।८२)

अभ्यास

१—सा दूरस्थितैव पाणिना वेणुलतामादाय नरपतिप्रबोधनार्थं सुकृत्सभाकुट्टिममाजघान। (कादम्० १०)

२—सखे सीरध्वज हृदयमेवामन्त्रयस्व किमर्थं कृतार्थमसीति। (अ० रा० १३)।

३—सखे सैव धन्या गणिकादारिका यामेवं भवन्मनोभिनिविशते (दशकु० २।२)।

४—इयमतिक्रम्य स्वकुलधर्ममर्थनिरपेक्षा गुणेभ्य एवं स्वं यौवनं विचिक्रिषते (दशकु० २।२)।

५—राज्ञा च तथानुशिष्टा सत्यप्यनाश्रवैव सा यदासीत्तदास्याः स्वसा माता च निर्बंधेन राज्ञे समगिरेताम्। (दशकु० २।२)।

६—मानी मानसारो महेश्वरं समाराध्यास्माद्भयदां गदां लब्ध्वा आत्मानमप्रतिभटं मन्यमानो महाभिमानो भवंतमभियोक्तुमुद्यंक्ते (दशकु० १।१)।

७—ततः प्रवृत्तासु प्रीतिसंकथासु सुहृदां वृत्तांतं श्रोतुं कृतप्रस्तावस्तांश्च तदुक्तावन्वयुंक्त। (दशकु० २।१)।

८—तथास्मासु प्रतिविधाय तिष्ठत्सु राजापि विज्ञापितोदंतो जातांनुतापः पारग्रामिकान् प्रयोगान् प्रायः प्रायुंक्त। (दशकु० २।४)

९—मदसिक्तमुखैर्मृगाधिपः करिभिर्वर्तयते स्वयं हतैः।
लघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यतः॥
(किरात० २।१८)।

१०—उज्झत्सु संहार इवास्तसंख्यमह्नाय तेजांस्विषु जीवितानि।
लोकत्रयास्वादनलोलजिह्वं न व्याददात्याननमत्र मृत्युः॥
(किरात० १६।१६)।

११—मृदुव्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते।
प्रदीपः स्नेहमादत्ते दशाभ्यंतरस्थया॥ (शिशु० २।८५)

१२—षाड्गुण्यमुपयुंजीत शक्त्यपेक्षो रसायनम्।
भवन्त्यस्यैवमङ्गानि स्थास्नूनि बलवंति च॥ (शिशु० १।६८)।
१३—कृतसीतापरित्यागः स रत्नाकरमेखलाम्।
बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केवलाम्॥ (रघु० १५।६)।
१४—कुलभार्यां प्रकुर्वाणमहं द्रष्टुं दशाननम्।
यामि त्वरावान् शैलेंद्र मा कस्यचिदुपस्कृथाः॥
योऽपचक्रे वनात्सीतामधिचक्रे न यं हरिः।
विकुर्वाणः स्वरानद्य बलं तस्य निहन्म्यहम्॥ (भट्टि० ८।१६,२०)।
१५—आत्मानमपजानानः शशमात्रोऽनयद्दिनम्।
ज्ञास्ये रात्राविति प्राज्ञः प्रत्यज्ञास्त क्रियापटुः॥ (भट्टि० ८।२६)
१६—संजानानान् परिहरन् रावणानुचरान् बहून्।
लंकां समाविशद्रात्रौ वदमानोऽरिदुर्गमाम्॥ (भट्टि० ८।२७)।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अथ कुपितोऽर्थपतिर्व्यवहर्तुमर्थगर्वादभियोक्ष्यते। तं च भूयश्चित्रैरुपायैः कौपीनावशेषं करिष्यावः। (दशकु० २।२)।
२—प्रजाभिस्तु बंधुमंतो राजानो न ज्ञातिभिः। तदुत्तिष्ठ कुरुष्व पुरेव सर्वाः क्रियाः। कृताहारे त्वय्यहमपि सुखमुपभोक्ष्ये पथ्यमित्येवमभिहितस्यास्य दिधक्षन्निव हृदयमतितरां शोकानलः संदुधुक्षे। (हर्ष० ५)।
३—सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुंक्ते। (रघु० १३।४३)
४—स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः। सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसंपदः॥ (किरात० १।५)।
५—सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः समानमानान् सुहृदश्च बंधुभिः। स संततं दर्शयते गतस्मयः कृताधिपत्यामिव साधु बंधुताम्॥ (किरात० १।१०)
६—मदमानसमुद्धतं नृपं न वियुंक्ते नियमेन मूढता।
अतिमूढ उदस्यते नयान्नयहीनादपरज्यते जनः॥ (किरात० २।४६)।
७—स राजलोकः कृतपूर्वसंविदारंभसिद्धौ समयोपलभ्यम्। आदास्यमानः प्रमदामिषं तदावृत्य पन्थानमजस्य तस्थौ॥ (रघु० ७।३१)।

८—असंविदानस्य ममेश संविदां तितिक्षितुं दुश्चरितं त्वमर्हसि ।
विरोध्य मोहात्पुनरभ्युपेयुषां गतिर्भवानेव दुरात्मनामपि ॥(किरात० १८।४२)

९—तत्प्रतीपपवनादि वैकृतं प्रेक्ष्य शांतिमधिकृत्य कृत्यवित् । अन्वयुंक्त गुरुमीश्वरः क्षितेः स्वंतमित्यलघयत्स तद्व्यथाम् ॥ (रघु० १९।६२) ।

१०—नृपतिः प्रकृतीरवेक्षितुं व्यवहारासनमाददे युवा । परिचेतुमुपांशु धारणां कुशपूतं प्रवयास्तु विष्टरम् ॥ (रघु० ८।१८) ।

११—समनद्ध किमंग भूपतिर्यदि संधित्सुरसौ सहामुना ।
हरिराक्रमणेन सन्नतिं किल बिभ्रीत भियेत्यसंभवः ॥ (शिशु०१६।३४)

१२—न्यस्ताक्षरामक्षरभूमिकायां कार्त्स्न्येन गृह्णाति लिपिं न यावत् ।
सर्वाणि तावच्छ्रुतवृद्धयोगात् फलान्युपायुंक्त स दंडनीतेः । (रघु० १८।४३)

१३—नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति ।
आशंसंते समितिषु सुराः सक्तवैरा हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे ॥ (शा० २)

१४—यन्मां विधेयविषये स भवान्नियुंक्ते
स्नेहस्य तत्फलमसौ प्रणयस्य सारः । (मालती० १)

१५—अवाद्वायुः शनैरस्यां लतां नर्तयमानवत् ।
नायासयंत संत्रस्ता ऋतवोऽन्योन्यसंपदः ॥
ज्योत्स्नामृतं शशी यस्यां वापीर्विकसितोत्पलाः ।
अपाययत संपूर्णः सदा दशमुखाज्ञया ॥
प्रादमयंत पुष्पेषुं यस्यां बंद्यः समाहृताः ।
परिमोहयमाणाभी राक्षसीभिः समावृताः ।
यस्यां वासयते सीतां केवलं स्म रिपुः स्मरात् ।
न त्वरोचयतात्मानं चतुरो वृद्धिमानपि ॥ (भट्टि० ८।६१ से ६४)

१६—उत्क्षिप्तगात्रः स्म विडंबयन्नभः समुत्पतिष्यन्तमगेन्द्रमुच्चकैः ।
आकुंचितप्रोहनिरूपितक्रमं करेणुरारोहयते निषादिनम् (शिशु० १२।५)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—ऋष्यशृंग ने सीता जी को आशीर्वाद दिया (आ+शास) कि तू वीर पुत्र पैदा कर ।

२—जब इस द्वन्द्व युद्ध की तैयारी करना (सम्+नह) तो अपने साथ अपने सर्वोत्तम अस्त्रशस्त्रों को ले लेना (आ+दा)।

३—महाराज, सुनिए, चाहे आप मेरे ऊपर अत्याचार कर लें, चाहे मेरी सारी सम्पत्ति छीन लें, पर सत्य के प्रति मेरी आस्था मुझसे आप नहीं ले सकते।

४—व्याघ्रचर्म से ढका हुआ गदहा क्षेत्र में चरने वाले पशुओं को डराता था (भी+णिच्)।

५—छः उपायों में से राम को सर्वदा पहिले काम में लाना चाहिये (प्र+युज्); उसके असफल हो जाने पर अन्य उपायों का अवलम्बन करना चाहिये।

६—ग्वाला अपनी गायों को तालाब का निर्मल जल पिलाकर (पा णिजन्त) सूर्यास्त के समय अपने घर गया।

७—जब मनुष्य दूर जाने लगता है, तो वह अपने गुरुजनों से बिदाई लेता है (आ+प्रच्छ्) और अपने कुलदेवता को प्रणाम करता है।

८—सूर्य की प्रखर गर्मी से पीड़ित होकर हाथी तुरन्त अगाध जल वाले तालाब में घुस गया।

९—अपनी प्रजा की सन्तानवत् रक्षा करने वाला (भुज्) राजा स्वयं ही अनन्त सुख भोगता है और सिंहासन के प्रति प्रजा की श्रद्धा प्राप्त करता है।

१०—एक जलपात्र के ऊपर लटकती हुई मछली की परछाईं को नीचे से देखकर उसे बींध देने वाले को द्रुपदराज ने कन्यादान की प्रतिज्ञा की।

११—यज्ञीय अश्व को खोजते-खोजते सगर-पुत्रों ने कपिल मुनि को देखा और उनके ऊपर अश्वापहारक का अभियोग लगाया (अभि+युज्)।

१२—अभाग्यवशात् अंधाधुन्ध (सरभस) भगदड़ में, त्वरा से अंधी माता ने अपने प्रिय शिशु का सिर एक प्रस्तरखंड से टकरा कर (आ+हन्) उसे मार डाला।

१३—कौवा रोटी के तथा अन्य खाद्य पदार्थों के टुकड़ों को चुन-चुनकर (अप+हृ) अपना प्राण धारण करता है।

१४—एक बार फारस देश के एक राजा ने किसी दार्शनिक से पूछा (अनु+युज्) कि आप राजाओं में किस चीज को सब से अधिक सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। उसने उत्तर दिया—तृष्णा का अभाव।

१५—इस कलियुग में माँ-बाप प्रायः अपनी कन्याओं को द्रव्य के लिये बेंच डालते हैं (वि+क्री) और वृद्धावस्था से दोहरे झुके हुए पुरुषों के साथ उनका ब्याह कर देते हैं। क्या यह राक्षसी कर्म नहीं।

चतुर्थ भाग

वाक्य-विश्लेषण तथा वाक्य-संकलन

३४६—प्रथम तीन भागों में हमने संस्कृत व्याकरण के उन सिद्धान्तों पर विचार किया जिनके द्वारा एक संस्कृत वाक्य में आये हुए शब्दों का एक-दूसरे से सम्बन्ध निर्धारित किया जाता है अथवा दूसरे शब्दों में यह कहिये कि जिन सिद्धान्तों के अनुसार विभिन्न शब्दों को जोड़ कर हम संस्कृत वाक्य-रचना करते हैं। हमने व्याकरण के बहुत ही मुख्य-मुख्य रूपों तथा उपयोगी संयोजक शब्दों, जिनकी प्रोफेसर बेन ने इन शब्दों में प्रधानता बतलाई है—'सभी प्रकार के विषयों और शैलियों से समान सम्बन्ध रखने वाले (ये रूप और संयोजक शब्द) संस्कृत निबन्ध-रचना की कबुजा (Hinges) हैं' को भी समझाया है। चूँकि वर्तमान या प्राप्त संस्कृत व्याकरणों में इन रूपों और शब्दों पर बहुत विरल और अधूरा विचार किया गया है अतः इन रूपों और वाक्यों की व्याख्या संस्कृत में और भी आवश्यक हो जाती है। यद्यपि यह विषय शब्द-कोष-संग्रह-कर्त्ता के क्षेत्र का है।

संस्कृत-रचना या कारक-प्रक्रिया के नियमों को सरल और सुबोध बनाने के लिए वाक्य-विश्लेषण पर विचार करना आवश्यक है। इससे विद्यार्थियों को किसी के विभिन्न अंगों के और उनके आपस के सम्बन्धों को निर्धारित करने की योग्यता प्राप्त होगी। वाक्य-विश्लेषण संस्कृत निबन्ध-रचना को सुगम बना देगा और विद्यार्थियों को संस्कृत से अन्य भाषाओं या अन्य भाषाओं से संस्कृत में अनुवाद करने में सहायता मिलेगी।

३४७—वाक्य शब्दों का वह समूह है जिसमें कोई पूर्ण भाव, अर्थ या विचार व्यक्त होता है।

केवल एक विचार मात्र की अभिव्यक्ति को पद (word) कहते हैं, उद्देश्य तथा विधेय से रहित दो या दो से अधिक पदों के समूह को पदसमुच्चय

(Phrase) कहते हैं और शब्दों का समूह जिससे एक निश्चित और पूर्ण विचार या भाव व्यक्त होता है, वाक्य है। जैसे,

रामः, सुवर्णम्, नीतिः—ये पद हैं। **रामविवासनम्, अग्नितप्तं सुवर्णम्, जनहितावहा नीतिः**—ये पद-समुच्चय हैं। **रामविवासनं कैकेय्या अभिमतम्, अग्नितप्तं सुवर्णं विलिनाति, जनहितावहा नीतिः राज्ञा अनुरुध्यते**—ये वाक्य हैं।

टिप्पणी—वाक्य चाहे साधारण हो, चाहे आज्ञा (लोट्) में हो, चाहे आशीर्वादात्मक हो, चाहे प्रश्नवाचक हो, तत्वतः सब एक ही हैं।

३४८—प्रत्येक वाक्य में दो भाग होते हैं—उद्देश्य तथा विधेय। जिसके विषय में कुछ कहा जाता है, वह उद्देश्य कहलाता है। उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाता है वह विधेय है। जैसे, **सविता उदेति**—सूर्य उदित होता है। यहाँ **सविता** उद्देश्य है और **उदेति** विधेय है।

३४९—वाक्य तीन प्रकार के होते हैं—**साधारण, मिश्रित (संकीर्ण)** तथा **संयुक्त**।

साधारण वाक्य वह है जिसमें एक उद्देश्य और एक प्रधान क्रिया हो अथवा जो भी विधेय का काम करता हो वह हो (और आगे देखिए); जैसे, **अहं पापकारिणी महाभागमद्राक्षम्** (कादम्० १६६); **धिक् ताम्** (भर्तृ० २।२)

मिश्रित (संकीर्ण) वाक्य वह है जिसमें केवल एक प्रधान उद्देश्य (कर्त्ता) और एक ही प्रधान विधेय होता है परन्तु दो या तीन प्रधान क्रियाएँ (finite verbs) होती हैं; जैसे, **यां चिंतयामि सततं मयि सा विरक्ता** (भर्तृ० २।२), **यदि गजति वारिधरो (स) गर्जतु** (मालविका० ५)

संयुक्त वाक्य वह है जिसमें दो या दो से अधिक स्वतन्त्र वाक्य हों; जैसे, **दुदोह गां स यज्ञाय शस्याय मघवा दिवं (दुदोह च)** (—रघु० १।२६)

साधारण वाक्य

३५०—साधारण वाक्य में एक कर्त्ता और एक प्रधान क्रिया (finite verb) होती है।

यह साधारण वाक्य का सबसे प्रारम्भिक स्वरूप अथवा मूल स्वरूप है। आगे उन विधियों का वर्णन किया जायगा जिनसे कि वृहत्तर तथा पेचीदे स्वरूप बनते हैं।

३५१—साधारण वाक्य के मूल तत्वों—उद्देश्य और विधेय—में और भी गौण अवयव जोड़कर उनको बढ़ाया जा सकता है; और उन गौण अवयवों में भी और अधिक अवयव जोड़कर वे भी बढ़ाए जा सकते हैं।

उद्देश्य

३५२—**उद्देश्य** (कर्त्ता) संज्ञा (साधारण अथवा संयुक्त) अथवा सर्वनाम हो सकता है।

'आत्मा' तपस्यायोजितः (कादम्० १६३) ;**'शुकनाशः' सविस्तरमुवाच** (कादम्० १०२); **'भरतशत्रुघ्नौ' द्वन्द्वं बभूवतुः** (रघु० १०।८१); **'त्रैलोक्यमपि' पीडितम्; 'पटुत्वं' कथायोगेन बुध्यते** (हितो० १); **'मरणं' प्रकृतिः शरीरिणाम्** (रघु० ८।८७); **'सो'ऽप्याचचक्षे** (दशकु० २।८)।

विशेष—(क) क्रिया से स्वयं हीन कर्त्ता का वचन और पुरुष मालूम हो जाता है। अतः प्रायः उसे (कर्त्ता को) बिल्कुल ही प्रकट नहीं करते; जैसे, **(भगवान्) अपनयतु नः कुतूहलम्** (कादम्० १८); **कथं मन्दभाग्यः करोमि (अहम्)** (उत्तर० ३), (त्वं) **ब्रूहि रामचरितम्** (उत्तर० २)।

(ख) प्रायः विशेषण अपने विशेष्य के बिना ही प्रयुक्त होता है; जैसे, **'विद्वान्' सर्वत्र पूज्यते, 'द्वावपि' आगमिनौ** (मालविका० ३)।

(ग) प्रायः संख्यावाचक शब्द वाक्य के उद्देश्य के तौर पर प्रयुक्त होते हैं, जैसे, **शरदाम् अयुतं ययौ** (रघु० १० । १), **शतम् अनूच्यमायुष्कामस्य**।

३५३—संज्ञा अथवा सर्वनाम की विशेषता बताने वाले भिन्न-भिन्न साधनों से साधारण कर्ता का विस्तार किया जा सकता है—

(१) **विशेषण द्वारा**—विशेषण चाहे सार्वनामिक हो, चाहे कृदन्तीय हो, चाहे गुणबोधक हो, चाहे परिमाण-बोधक हो;

'स' राजा किमारम्भः संप्रति (उत्तर० २); **का 'इयमन्या' बिभीषिका** (उत्तर० ४), **'व्रजंश्च' (स) समर्थयामास** (कादम्० १३३);

एवम् 'अभिधीयमानः' स प्रत्यवादीत् (कादम्० १४७), पदपंक्तिर्दृश्यते 'अभिनवा' (शा० ३), 'चतुर्दश' सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणां हतानि (उत्तर० २)।

(२) षष्ठ्यन्त संज्ञापद अथवा सर्वनामपद से; जैसे, 'रामस्य' करुणो रसः (उत्तर० ३), अपि कुशली 'ते' गुरुः (रघु० ५ । ४), अन्यविषया न तु दृष्टिः 'अस्याः' (शा० ३),

(३) समानाधिकरणसंज्ञा द्वारा, जैसे, तस्मिन् 'भोजवंशभूषणं' 'संभावयिता बुधान्' पुण्यवर्मा नामासीत् (दशकु० २।८)।

विशेष—सकर्मक क्रियाओं से बने हुए कृदन्तीय विशेषणों के योग में कर्म कारक भी आता है; जैसे,

'आसेदिवान्' रत्नवत् 'आसनं' स गुहेनोपमेयकान्तिरासीत् (रघु० ६ । ४), अनुयास्यन् 'मुनितनयां' (अहं) विनयेन वारितप्रसरः (शा० १), 'रसिकमनांसि समुल्लासयन्' वसन्तसमयः समाजगाम (दशकु० १।५)।

टिप्पणी—रूप-परिवर्तन-हीन संस्कृत के सुबन्त शब्द समय-सूचक अव्यय के स्वभाव वाले होते हैं। विधेय के विस्तार का वर्णन करते समय उन पर विचार किया जावेगा।

३५४—संस्कृत में प्रायः समासों द्वारा विस्तार किया जाता है। समास संस्कृत का सार है, और समासहीन अनुच्छेद पा जाना बड़ा कठिन हो जाता है। इन समासों के लम्बान की कोई भी सीमा निर्धारित नहीं है। यदि यह देखना हो कि संस्कृत-लेखकों ने इस अधिकार को कितनी स्वतंत्रता-पूर्वक प्रयुक्त किया है तो दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट तथा भवभूत की कृतियाँ देखिये (मालतीमाधव के तृतीयांक में लवंगिका की उक्तियाँ तथा पंचमांक में सुप्रसिद्ध दण्डकछन्द देखिये)। उचित लम्बान वाले समासों से वाक्य की शोभा बढ़ जाती है, और शब्दों के प्रयोग में बहुत किफायत भी हो जाती है।

३५५—संज्ञा और सर्वनाम के विस्तार में सब से अधिक प्रयोग तत्पुरुष तथा बहुव्रीहि समासों का होता है।

(१) साधारण विशेषण के स्थान पर व्यधिकरण तत्पुरुष, कर्मधारय, उपपद तत्पुरुष और बहुव्रीहि का प्रयोग किया जा सकता है,

क्षपिता 'तत्विटपाश्रिता' लता (रघु० ८।४७); 'अबलाविप्रयुक्तः कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः' स कामी (मेघ० २), 'उटजद्वारविरूढम्' नीवारबलिम् (शा० ४); 'ताम्बूलकरंकवाहिनी' तरलिका (कादम्० १४८) 'गृहीतप्रतिमुक्तस्य' तस्य (रघु० ४।४३); कुल्यम्भोभिः 'पवनचपलैः' (शा० १)।

षष्ठीतत्पुरुष प्रायः सम्बन्ध सूचित करने के लिये प्रयुक्त किया जाता है;

कौत्सः प्रपेदे 'वरतन्तुशिष्यः' (रघु० ५ । १); नष्टाशंका 'हरिण-शिशवः' चरन्ति (शा० १)।

३५६—उपर्युक्त विधियों में से दो या दो से अधिक को एक साथ मिलाकर उद्देश्य का और भी आगे विस्तार किया जा सकता है, और यदि वे विस्तार वाले शब्द संज्ञा या सर्वनाम हों तो उनका विस्तार और भी आगे किया जा सकता है :—

एकदा तत्रस्थ एव मृगयानिर्गतो विचरन् [विशेषण] काननं किंनर-मिथुनमद्राक्षीत् (कादम्० ११६)। तत्तनयश्च (षष्ठीतत्पुरुष) हारीतनामा (विशेषण) तापसकुमारकः (सामानाधिकरण संज्ञापद) सनत्कुमार इव सर्वविद्यावदातचेताः (विशेषण बहुव्रीहि) सिस्नासुः (विशेषण) उपागमत् (कादम्० ३७)। ताभिरष्टाभिः प्रत्यक्षाभिः (तनुभिः का विशेषण) तनुभिः प्रपन्नः (कर्ता का विशेषण) ईशो वः अवतु (शा० १)। मदम्बा पूर्ण-भद्रबोधितार्था (विशेषण) तादृशेपि व्यसने (क्रिया-विशेषण) नातिविह्वला (विशेषण) कुलपरिजनानुयाता (विशेषण) मत्पितुरुत्तमांगम् उत्संगेन धारयन्ती (कर्म सहित कृदन्तीय विशेषण और क्रिया विशेषण) राज्ञे समादि-देश (दशकु० २।४)। इसी प्रकार 'तस्य' 'त्रयः', पुत्राः 'परमदुर्मेधसः' 'वसुशक्तिरुग्रशक्तिरनेकशक्तिश्चेति नामानो' बभूवुः (पंच० १); दुःखेन तप्यन्ते 'त्रयो' 'नः' पितरः 'अपरे' (उत्तर० ५)।

विशेष—बाण, सुबन्धु और दण्डी ने पुरुषों, स्थानों, नगरों, नदियों आदि के वर्णन में इस विस्तार की पराकाष्ठा कर दी है। वस्तुतः विस्तार उसी सीमा तक किया जाना चाहिए जहाँ तक वाक्यार्थ जटिल अथवा दुरूह न हो जाय। जब वाक्यार्थ जटिल होता हुआ दिखाई पड़े, तो वाक्य को दो या दो से अधिक वाक्यों में विभक्त कर देना चाहिए।

कर्म अथवा विधेय का पूरक

३५७—यदि विधेय कोई सकर्मक क्रिया, या गत्यर्थक क्रिया हो, या कोई ऐसी क्रिया हो जो कर्मप्रवचनीय के बल से सकर्मक हो जाती हो, तो वह कर्म द्वारा पूरी की जाती है। वह कर्म या तो संज्ञापद हो सकता है, या सर्वनाम पद या कोई भी ऐसा शब्द जो संज्ञा का काम कर सकता है;

जाबालिम् अपश्यम् (कादम्० ४२); आखंडलः 'कामभिदं' बभाषे (कुमार० ३।२)। याति अस्त-शिखरं पतिरोषधीनाम् (शा०)। विचचार 'दावम्' (रघु० २। ८)। पत्तिः पदातिम् अभ्यपतत् (रघु० ७।३७)।

३५८—कर्म का भी विस्तार उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार कर्ता का (सेक्शन ३५३ लगायत ३५६ तक देखो।)—त्र्यम्बकं 'संयमिनं' ददर्श (कुमार० ३। ४४)। "विलपंतं' कपिंजलमश्रौषम् (कादम्० १६५)। तं 'तस्थिवांसं' नगरोपकण्ठे (विशेषण की विशेषता बतलाता है) प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रः (रघु० ५।६१) प्रकृतिवक्रः स 'कस्य' अनुनयं प्रतिगृह्णाति (शा० ४)। इदम् 'अव्याजमनोहरं' वपुः 'तपःक्षमं' साधयितुं य इच्छति (शा० १); मेघम् 'आश्लिष्टसानुम्' 'वप्रक्रीडा-परिणतगजप्रेक्षणीयं' ददर्श (मेघ० २)। अवनिपतिस्तु प्रतीहार्या निर्दिश्यमानां तां 'पावृषमिव घन-केशजालाम्' 'अलकोद्भासिनीम्' 'अचिरोपरूढयौवनाम्' 'अतिशयरूपा-कृतिम्' अनिमेषलोचनो ददर्श (कादम्० ११)

३५९—बनाना, नाम रखना, पुकारना, सोचना, विचारना, नियुक्त करना—इत्यादि अर्थों को द्योतित करने वाली धातुओं का, मुख्य कर्म के अतिरिक्त, एक पूरक कर्म भी होता है; जैसे,

तमात्मजन्मानम् 'अजं' चकार (रघु० ५।३६) आज्ञामपि 'वरप्रदानं' मन्यन्ते, दर्शनप्रदानमपपि 'अनुग्रहं' गणयन्ति (कादम्० १०८)। प्रत्याख्या-नमपि 'ईर्ष्यां' संभावयति, 'आक्रोशमपि परिहासम् आकलयति', दोष-संकीर्तनमपि 'स्मरणोपायम्' अवगच्छति, अवज्ञानमपि 'अनियंत्रणं प्रणयम्' उत्प्रेक्षते (कादम्० २३५)।

३६०—**दुह्, याच्, शास्, नी** इत्यादि धातुएँ दो कर्म लेती हैं। उनमें से एक प्रधान कर्म कहलाता है, दूसरा गौण कर्म अथवा एक प्रत्यक्ष कर्म, दूसरा अप्रत्यक्ष कर्म अथवा अकथित कर्म (सेक्शन ४० देखिये)।

३६१—अर्थदृष्टि से सकर्मक की श्रेणी में गिनी जानी वाली धातुएँ कभी कभी नियम-विशेष के कारण चतुर्थ्यन्त अथवा पंचम्यन्त अथवा षष्ठ्यन्त अथवा सप्तम्यन्त पद लेती हैं। ऐसे प्रयोगों को विधेय का पूरक समझना चाहिए, क्योंकि उनके बिना अर्थ पूर्ण नहीं होता; **स्पृहयामि दुर्ललिताय अस्मै** (शा० ७)। **कुप्यन्ति 'हितवादिने'** (कादम्० १०८) **असूयन्ति 'मह्यं' प्रकृतयः** (विक्रमो० ४)। **'पापात्' जुगुप्सते** (म० भा०)। **स्मरसि वा 'तस्य प्रदेशस्य'** (उत्तर० ६)। **स स्निह्यति 'आवयोः'** (उत्तर० ६)।

३६२—**देना, बतलाना, प्रतिज्ञा करना, भेजना**—इन अर्थों का बोध कराने वाली धातुओं के योग में चतुर्थी होती है, और चतुर्थी में वह व्यक्ति रक्खा जाता है जिसे कोई चीज दी जाती है अथवा जिससे कोई चीज बताई जाती है। इस चतुर्थ्यन्त पद को अप्रत्यक्ष कर्म अथवा अकथित कर्म समझना चाहिए।

'विप्राय' गां प्रतिश्रृणोति; भोजेन दूतो 'रघवे' विसृष्टः (रघु० ५।३०); **'तस्मै' प्रस्तुतमाचचक्षे** (रघु० ५।१६)।

विशेष—एक दूसरे दृष्टिकोण से ये विधेय के विस्तार कहे जा सकते हैं, और उनसे इन प्रश्नों का उत्तर मिलता है - **'किसको', 'कहाँ'**।

विधेय

३६३—विधेय अकेली प्रधान क्रिया हो सकती है; जैसे, **'आज्ञापयतु' भवन्** (शा० ४) **त्वया सह गौतमी 'यास्यति'** (शा० ४)।

३६४—**गम्यमान** अथवा प्रत्यक्ष 'अस'-धातु-युक्त कोई विशेषण पद या विशेष्य पद या संज्ञापद भी विधेय हो सकता है; जैसे,

'अविवेकः परमापदां पदम्' (किरात० २।३०)। **त्वम् 'असि' महसां 'भाजनम्'** (मालती० १)। **वत्से, किमेव 'कातरा' 'असि'** (शा० ४)। **'गृहीतः' सन्देशः** (शा० ४) **'अवहितोस्मि'** (शा० ७) **तेन हि श्रेयांसि 'अनतिक्रमणीयानि'** (शा० ७)। **'दूषिताः स्थ' 'परिभूताः स्थ' रामहतकेन** (उत्तर० १)। **व्यावर्तिततुरगश्चपुनः 'चिंतितवान्'** (कादम्० १२१)।

(क) **'अस्'** धातु अपूर्णविधेया धातु है, अतः अर्थ को पूर्ण करने के लिए इसे एक संज्ञापद अथवा सर्वनाम पद की अपेक्षा होती है, जैसा कि ऊपर के उदाहरणों में है। परन्तु जब यह **'अस्तित्व'** अर्थात् **'सत्ता'** का बोध कराती है, तब यह अकेली ही आती है; जैसे,

हिमालयो नाम नगाधिराजः अस्ति (कुमार० १।१)।

इसी प्रकार, **भू** धातु भी जब केवल **अस्तित्व** का बोध कराती है तब अकेली ही आती है, परन्तु जब 'होना' अर्थ में आती है तब अपूर्णविधेया रहती है; जैसे, **'बभूव' योगी किल कार्तवीर्यः** (रघु० ६ । ३८)।

(ख) कभी-कभी विधेय (**अस्, विद्, और वृत्**) बिल्कुल ही नहीं प्रकट रहता; **मातले कतमस्मिन् प्रदेशे मारीचाश्रमः** (शा० ७)। इस वाक्य में **अस्ति** अथवा **विद्यते** छिपा हुआ है।

३६५—अपूर्णविधेया धातुएँ और भी हैं; जैसे, **भू, वृत्** (होना), **जन्** (होना या उत्पन्न होना), **भा** (मालूम पड़ना), **दृश्** कर्मवाच्य (मालूम पड़ना), **लक्ष्** कर्मवाच्य (मालूम पड़ना)। विधेय को पूर्ण करने के लिए इन्हें भी संज्ञापद अथवा विशेषणपद की अपेक्षा होती है; जैसे,

तेऽपि 'यथोक्ताः' 'संवृत्ताः' (पंच० १)। **तव प्रजासु विडौजाः प्राज्यवृष्टिर्भवतु** (शा० ७)। **ईदृशानां विपाकोऽपि 'परमाद्भुतो' जायते** (उत्तर० ३)। **स्वात्यां सागरशुक्तिसंपुटगतं (पयः) 'सन्मौक्तिकं जायते'** (भर्तृ० ३।६७) (एक सुन्दर मोती होता है)। **अयं पाण्ड्यः 'अद्रिराजः' इवाभाति** (रघु० ६ । ६०)। **'मदनक्लिष्टा' इयमालक्ष्यते** (शा० ४) प्रेम-पीड़ित प्रतीत होती है।

(क) **मन्** (समझना, सोचना) तथा **कृ** धातु जब कर्मवाच्य में रहती हैं तब उनका भी प्रयोग इसी प्रकार होता है; जैसे,

नलिनी 'पूर्वनिदर्शनं मता' (रघु० ८।४५)। **व्याघ्रः 'कुक्कुटः कृतः'** (हितो० ४)। **स 'सेनापतिः नियुक्तः'**।

इसलिए जब विधेय संज्ञापद अथवा विशेषणपद होता है तब उसी विभक्ति में रक्खा जाता है जिस विभक्ति में कर्ता रहता है, अथवा वह प्रथमा विभक्ति में रक्खा जाता है।

३६६—कभी-कभी अव्ययों का प्रयोग करके वाक्य संक्षिप्त रूप में प्रकट किया जाता है और उद्देश्य तथा विधेय दोनों ही गम्यमान रहते हैं, प्रकट नहीं रहते, और उन्हीं अव्ययों में से निकालकर प्रकट किए जाते हैं; जैसे,

'धिक्' तां च तं च = 'सा' च 'स' च 'निन्द्यौ' स्तः।

शिवाय 'नमः' = शिवः प्रणम्यते।

अलं प्रयत्नेन = प्रयत्नेन न 'किमपि' साध्यम् इत्यादि।

३६७—प्रायः अव्यय पद विधेय का काम देते हैं; जैसे,

विपवृक्षोऽपि छेत्तुम् 'असाम्प्रतम्' (कुमार० २।५५) — न युज्यते।

पवनः आलिंगितुं 'शक्यम्' (शा० ३) = शक्यते। 'कष्टं' खलु अनपत्यता (शा० ६)। मनसिजरुजं सा वा दिव्या मम 'अलम्' अपोहितुम् (विक्रमो० ३)।

विधेय का विस्तार

३६८—विधेय का विस्तार निम्नलिखित साधनों से हुआ करता है—

(१) अव्यय द्वारा;

(२) जिस किसी में क्रियाविशेषण अव्यय की क्षमता हो, उसके द्वारा;

(३) जो भी क्रियाविशेषण अव्यय के तुल्य हो, उसके द्वारा।

काल-स्थान-प्रकार-वाचक क्रियाविशेषण अव्यय, विस्मयादि-बोधक अव्यय, बहुत से सुबन्त पद (प्रथमा, द्वितीया, षष्ठी, और सम्बोधन के अतिरिक्त) इसी प्रकार का कार्य करते हैं अर्थात् विधेय के विस्तार के काम में आते हैं। संज्ञापदों के साथ परसर्गों (कर्म-प्रवचनीयों) अथवा क्रियाविशेषणों का जुड़ जाना भी विधेय के विस्तार के काम में आता है, मया सार्धम्, रामाद् विना, वृक्षाणामधः, राज्ञः समक्षम् आदि।

३६९—विधेय के विस्तार का चार श्रेणियों में वर्गीकरण हो सकता है—

(१) समयवाचक,

(२) स्थानवाचक,

(३) प्रकारवाचक,

(४) कार्य तथा कारणवाचक।

कालवाचक-क्रियाविशेषण-विस्तार

३७०—कालवाचक-क्रियाविशेषण वाले विस्तारों से निम्नलिखित वस्तुएँ प्रकट होती हैं—

(१) कब के उत्तर में समय अथवा अवधि का बोध होता है; जैसे,

द्वयं गतं 'सम्प्रति' शोचनीयताम् (कुमार० ५।७१)। 'ततः' प्रविशति कंचुकी (शा० ५)। यास्यति 'अद्य' शकुन्तला (शा० ४)। आषाढस्य 'प्रथमदिवसे' मेघं ददर्श (मेघ० २)। 'अनुदिवसम्' परिहीयसे अंगैः (शा० ३)। गिरिशमुपचचार 'प्रत्यहम्' सा सुकेशी (कुमार० । ६०)। 'अस्मात् परं' को नः कुले निवपनानि नियच्छति (शा० ६)।

विशेष—(क) भावेसप्तमी से बने हुए वाक्यांश प्रायः कालवाचक क्रिया-विशेषण अव्यय माने जा सकते हैं;

'अन्तर्हिते शशिनि' सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति (शा० ४) (चन्द्रमा के छिप जाने पर)। 'गते च केयूरके' चन्द्रापीडमुवाच (कादम्०१८१)।

(ख) इसी प्रकार क्त्वान्त और ल्यबन्त शब्द भी कालवाचक क्रिया-विशेषण हैं। वे जब सकर्मक क्रियाओं से बने होते हैं तब उनका कर्म होता है;

'प्रतिनिवृत्य' तं प्रदेशं व्यलोकयम् (कादम्० १२५)। महाश्वेता 'तच्छ्रुत्वा' सुचिरं 'विचार्य' केयूरकं प्राहिणोत् (कादम्० १८)। अचिरात् 'पावनं तनयं प्रसूय' मम विरहजां शुचं न गणयिष्यसि (शा० ४।१८)

(२) 'कब तक' 'कहाँ तक' प्रश्न के उत्तर में कालान्तर अथवा अवधि का बोध होता है; जैसे, 'इयंति दिवसानि' प्रजागरकृशो लक्ष्यते (शा० ३)। दत्तदृष्टिः 'सुचिरं' व्यचरम् (कादम्० १५२)। 'क्रोशं' कुटिला नदी (सि० कौ०)। स्तन्यत्यागं यावत् अवेक्षस्व (उत्तर० ७)।

(३) 'कितनी बार' प्रश्न के उत्तर में जैसे, 'वारंवारं तिरयति दृशोरुद्गमं बाष्पपूरः (मालती० १)। अहो 'द्विः' भुङ्क्ते (सि० कौ०)। ताम्यन्मूर्तिः श्रयति 'बहुशः' चन्द्रपादान् (मालती० ३)

स्थानवाचक-क्रियाविशेषण-विस्तार

३७१—स्थानवाचक-क्रियाविशेषण-विस्तार तीन बातें सूचित करते हैं—

'कहाँ' प्रश्न के उत्तर में किसी स्थान में रहना सूचित करता है।

अस्ति 'अवंतीषु' उज्जयिनी नाम नगरी (कादम्० ४८)। 'कस्मिंश्चिद-धिष्ठाने' कौलिकरथकारौ प्रतिवसतः स्म (पंच० १।५)। एष कण्वस्य महर्षेः 'उपमालिनीतीरम् आश्रमो दृश्यते (शा० १)। अस्ति 'उत्तरस्यां दिशि' नगाधिराजः (कुमार०१।१)। निर्मलनखलग्नमूर्तिः 'पादयोः' पतति (कादम्०१६३)।

(२) किसी स्थान की तरफ गति प्रकट करता है, और 'किस तरफ'—इस प्रश्न का उत्तर देता है; जैसे,

सा तरलिका 'क' गता (कादम्०१७६)। 'नीचैः' गच्छति 'उपरि' च दशा (मेघ० ११२)। 'गृहाभिमुखं' प्रतस्थे (हितो०४)। मदोद्धताः 'प्रत्यनिलं' विचेरुः (कुमार० ३३१)।

(३) किसी स्थान से पृथक्त्व प्रकट करता है, और 'कहाँ से' इस प्रश्न का उत्तर देता है; जैसे, यदि मे 'दर्शनपथात्' नापयाति (कादम्० १३२)। 'वनस्पतिभ्यः' कुसुमान्याहरत (शा० ४) 'कुतः' इदं सौधमागतम् (दशकु०२।५)।

विशेष—कारण अथवा अभिप्राय के अतिरिक्त पंचमी के शेष अर्थ इसी प्रकार प्रकट किए जाते हैं, 'तीक्ष्णात्' उद्विजते (मुद्रा० ३)। 'दिवाकरात्' अन्धकारं रक्षति (कुमार० १।१२)।

प्रकारवाचक-क्रियाविशेषण-विस्तार

३७२—प्रकारवाचक-क्रियाविशेषण-विस्तार निम्नलिखित बातें प्रकट करते हैं—

(१) किसी क्रिया का प्रकार या ढंग (कैसे); चन्द्रापीडः 'सविनयम्' अवादीत् (कादम्० १३४)। माधवः 'सलज्जम्' अधोमुखस्तिष्ठति (मालती०१)। को वा दुर्जनवागुरासु पतितः 'क्षेमेण' यातः पुमान् (पंच०१।२)। तदिदं 'कणशो' विकीर्यते (कुमार० ४।२७)। 'त्वरितम्' अपसर्पतां तरुगहनेन (उत्तर० ४)। अथवा 'कथं' भवान् मन्यते (माल-विका० १)। 'अयत्नेनैव' उपहासास्पदतामीश्वरो नयति जनम् (कादम्० १५१) 'प्रकृत्या' यद् वक्रम् (शा० १)।

(७) मात्रा,

तमवेक्ष्य सा 'भृशं' रुरोद (कुमार० ४।२६)। स राज्यं गुरुणा दत्तं प्रतिपद्य 'अधिकं' बभौ (रघु० ४।१)। 'यावच्छक्यं' सुहृदसवो रक्षणीयाः (कादम्० १५१)

विशेष—तुलनावाची पंचमी इस वर्ग में रक्खी जा सकती है;

'मोहात्' प्रबोधः कष्टतरोऽभूत् (रघु० १४।५६)। गृहं 'कान्तारात्' अतिरिच्यते (पंच० ४।१)।

(८) किसी क्रिया का करण या साधन;

संचूर्णयामि 'गदया' न सुयोधनोरू (वेणी० १)। क्वचित् 'पथा' संचरते सुराणाम् (रघु० १३।१६)। विसृजति 'हिमगर्भैः मयूखैः' अग्निमिन्दुः (शा० ३)।

विशेष—किसी क्रिया से कर्ता का बोध कराने वाली तृतीया इस वर्ग में रक्खी जा सकती है;

जनपदहितकर्ता त्यज्यते 'पार्थिवेन' (पंच० १।२)। 'त्वया' 'चन्द्रमसा' च अतिसन्धीयते कामिजनसार्थः (शा० ३)। इदम् 'अशरणैः' अद्याष्यैवं रुद्यते (उत्तर० ३)।

अथवा इस प्रकार की तृतीया कर्ता के खाने में रक्खी जा सकती है क्योंकि वह क्रिया के कर्ता का बोध कराती है।

(९) सहगामिनी परिस्थितियाँ,

'त्वया सह' निवत्स्यामि (उत्तर० २)। रत्नं समागच्छतु 'कांचनेन' (रघु० ६।७६)। 'जटाभिः' तापसः (भवति अथवा ज्ञायते)। 'महत्या' सेनया निर्जगाम। स्मरः क्षणमप्युत्सहते न 'मां विना' (कुमार० ४।३६)।

कार्यकारणवाचक-क्रियाविशेषण-विस्तार

३७३—इस प्रकार के विस्तार से निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं :—

(१) किसी क्रिया का कारण, या अभिप्राय (तृतीया तथा पंचमी से सूचित होने वाले अर्थ)—

'दौर्मन्त्र्यात्' नृपतिः विनश्यति (भर्तृ० २।४२)। 'भर्तृगतचिन्तया' आत्मानमपि नैषा विभावयति (शा० ४)। 'आवेगस्खलितया गत्या', ऽभ्रष्टं

मे पुष्पभाजनम् (शा० ४)। **कापुरुषः 'स्वल्पकेनापि' तुष्यति** (पंच० १।१) **लज्जेऽहम् 'अनेन प्रागल्भ्येन'** (कादम्० १८७)। **'त्वया' जगन्ति पुण्यानि** (उत्तर० १)। **नाथवन्तः 'त्वया' लोकाः** (उत्तर० १)।

(२) किसी क्रिया का अंतिम कारण अथवा निमित्त; जैसा, कि चतुर्थी से अथवा तुमुनन्त से सूचित होता है;

'समिदाहरणाय' प्रस्थिता वयम् (शा० १)। **श्रयति बहुशो 'मृत्यवे' चन्द्रपादान्** (मालती० ३)। **प्रवर्तताम् 'प्रकृतिहिताय' पार्थिवः** (शा० ७)। **'अमीषां प्राणानां कृते' किं नास्माभिः व्यवसितम्** (भर्तृ० ३।३६)। **तद् गच्छ 'सिद्ध्यै'** (कुमार० ३।१८)। **'लोकान् दग्धुं' तत्तपोऽलम्** (कुमार० २।५६)। **यावद्यते 'साधयितुं तवार्थम्'** (रघु० ५।२५)। **'छेत्तुं वज्रमणीन्' शिरोषकुसुमप्रान्तेन संनह्यते** (भर्तृ० २।६)।

(३) विरोध (Concession) शर्त;

'तथापि' घटिष्ये (मालविका० १)। **नन्दा हताः 'पश्यतो राक्षसस्य'।** (मुद्रा० ३)

३७४—एकविंशतितम पाठ से लेकर **अष्टाविंशतितम** पाठ तक में जिन अव्ययों का निरूपण किया गया है, वे वाक्य-विश्लेषण में या तो छोड़ दिए जाते हैं या प्रकारवाचक-क्रियाविशेषण-विस्तार के खाने में रक्खे जा सकते हैं।

३७५—ऊपर जो चार विधियाँ बताई गई हैं, उनमें से दो को या दो से अधिक को एक में मिलाकर विधेय का विस्तार किया जा सकता है। सेक्शन ३५३ से लेकर सेक्शन ३५६ तक में जिन विधियों का उल्लेख किया गया है, उनमें से किसी एक का प्रयोग करके विस्तारों का और भी आगे विस्तार किया जा सकता है।

'दिष्ट्या' 'धर्मपत्नीसमागमेन' 'पुत्रमुखदर्शनेन' चायुष्मान् वर्धते (शा०७)। **अयं च 'मन्दाकिनीचित्रकूटवनविहारे' 'सीतादेवीमुद्दिश्य' रघुपतेः श्लोकः** (उत्तर० ६)। **'नियतं' 'स्वयमेव' इयम् 'अतिविनीततया' 'कतिपयैरेव दिवसैः' कुमारमाराधयिष्यति** (कादम्० १०१)। **'प्रत्यूषे' 'उत्थाय' 'तेनैव क्रमेण' 'अनवरतप्रयाणकैः' 'प्रतिप्रयाणकम् उपचीयमानेन सेनास-**

मुदायेन' जर्जरयन् वसुन्धरां प्रातिष्ठत (कादम्० ११८)। 'अथ' राजवाहनः 'पुष्पोद्भवेन सह' 'स्वमन्दिरमुपेत्य' 'सादरं' 'बालचन्द्रिकामुखेन' 'निज-वल्लभायेन' 'संगमोपायं वेदयित्वा' कौतुकाकृष्टहृदयः अतिष्ठत्। (दशकु० १।५)

साधारण वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण

३७६—साधारण वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण करने की यह विधि है—

१—पहिले वाक्य का कर्त्ता ढूँढ़ निकालिए।

२—तब कर्त्ता के विस्तारों को ढूँढ़ लीजिए।

३—विधेय (प्रधान क्रिया) को ढूँढ़िये।

४—कर्म बतलाइए (यदि प्रधान क्रिया सकर्मक है)।

५—कर्म के विस्तारों को लिख डालिए।

६—अन्त में, प्रधान क्रिया के क्रिया-विशेषणात्मक विस्तारों को लिख दीजिए।

उदाहरण

(१) विश्वंभरात्मजा देवी राज्ञा त्यक्ता महावने।
प्राप्तप्रसवमात्मानं गङ्गादेव्यां विमुंचति॥ (उत्तर० ७)

(२) एवं क्रमेण समारूढयौवनारंभं परिसमाप्तसकलकलाविज्ञानमव-गम्यानुमोदितमाचार्यैश्चन्द्रापीडमानेतुं राजा बलाधिकृतं बलाहक-नामानं बहुतुरगबलपदातिपरिवृतं प्राहिणोत्। (कादम्० ७७)

(३) पौरस्त्यानेवमाक्रामंस्तांस्ताञ्जनपदाञ्जयी।
प्राप तालीवनश्याममुपकंठं महोदधेः॥ (रघु० ४।३४)

(४) पुराणस्य कवेस्तस्य चतुर्मुखसमीरिता।
प्रवृत्तिरासीच्छन्दानां चरितार्था चतुष्टयी। (कुमार० २।१७)

(५) एवं गते मंत्रिणि राजनि च कामवृत्ते चंद्रपालितोऽभ्येत्य विवि-धाभिः क्रीडाभिर्विहारभद्रमात्मसादकरोत्। (दशकु० २।८)

(६) कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशांतये।
काकपक्षधरमेत्य याचितः (रघु० ११।१)

(७) धिक् सानुजं कुरुपतिं। (वेणी० ३)

वाक्यविश्लेषण का रूप

कर्ता	कर्ता का विस्तार	क्रिया	कर्म	कर्म का विस्तार	क्रिया के क्रिया-विशेषण विस्तार
१. देवी	विश्वंभरात्मजा, राज्ञा महावने त्यक्ता	विमुंचति,	आत्मानं	प्राप्तप्रसवं	गङ्गादेव्यां (स्थान)
२. राजा		प्राहिणोत्	बलाधिकृतं	बहुतुरगबलपदाति-परिवृतं (विशेषण) बलाहकनामानं	एवं क्रमेण परिसमाप्तः विज्ञानमवगम्य (काल), आचार्यैरनुमोदितं चन्द्रापीडमानेतुं (अभिप्राय)
३. जयी	तांस्तान् पौरस्त्यान् जनपदानेवमाक्रामन्	प्रा	उपकंठं	तालीवनश्यामं (विशे०) महोदधेः (सम्बन्धे षष्ठी)	
४. प्रवृत्तिः	शब्दानां, चतुष्टयी तस्य पुराणस्य कवेश्चतुर्मुख-समीरिता	चरितार्था आसीत्			
५. चंद्र-पालितः		आत्मसात् अकरोत्	विहारभद्रं		एवम् अभ्येत्य (काल) विविधाभिः क्रीडाभिः (साधन)
६. क्षितीश्वरः कौशिकेन (कर्ता)	सः (सार्वनामिक विशेषण)	याचितः	रामं (गौण कर्म)	काकपक्षधरं	एत्य (काल), किल (प्रकार), अध्वर-विघातशांतये (अभिप्राय)
७. कुरुपतिः	सानुजः	धिक् – निंद्यः			

मिश्रित वाक्य

३७७—मिश्रित वाक्य में एक प्रधान कर्ता और विधेय के अलावा दो या दो से अधिक प्रधान क्रियाएँ होती हैं।

'यस्यार्थाः' तस्य मित्राणि (हितो० १)। 'इतश्चेतश्च निर्गतो युवराजः इति' आकर्ण्य आचकम्पे मेदिनी (कादम्० ११३)।

जिस अंश में प्रधान कर्ता और विधेय होते हैं उसे प्रधान उपवाक्य कहते हैं, शेष को आश्रित अथवा अधीन उपवाक्य कहते हैं।

३७८—आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं—संज्ञा-उपवाक्य, विशेषण-उपवाक्य और क्रिया-विशेषण-उपवाक्य।

वस्तुतः मिश्रित वाक्य साधारण वाक्य का एक विस्तृत स्वरूप है, जिसमें संज्ञा-उपवाक्य संज्ञा का प्रतिनिधित्व करता है, विशेषण-उपवाक्य विशेषण का और क्रिया-विशेषण-उपवाक्य क्रियाविशेषण का।

संज्ञा-उपवाक्य

३७९—संज्ञा-उपवाक्य संज्ञा के स्थान पर आता है; अर्थात्, वह निम्न-लिखित कार्य करता है—

(१) प्रधान क्रिया का कर्त्ता,

(२) प्रधान क्रिया का कर्म,

(३) प्रधान उपवाक्य-स्थित किसी संज्ञापद का समानाधिकरण,

(४) प्रधान उपवाक्य में आई हुई किसी क्रिया का कर्म :—

(१) 'अयं पुनरविरुद्धः प्रकार इति' वृद्धेभ्यः श्रूयते (उत्तर० ४)—('श्रूयते' का कर्ता)। 'स स पापाहते तासां दुष्यंतः इति घुष्यताम्' (शा० ६)—('घुष्यताम्' का कर्ता)।

(२) प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि 'कियदवशिष्टं रजन्याः इति' (शा० ४)—('अवलोकयामि' का कर्म)

(३) 'अप्रतिष्ठे रघुज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य नः'। इति दुःखेन तप्यन्ते त्रयो नः पितरोऽपरे॥ (उत्तर० ५)—(दुःखेन का समानाधिकरण)। तस्य कदाचित् चिन्ता समुत्पन्ना 'यदर्थोत्पत्त्युपायाश्चिन्तनीयाः (पंच० १।१)— (चिन्ता का समानाधिकरण)।

(४) 'तथापि सुहृदा सुहृदसन्मार्गप्रवृत्तो यावच्छक्तितो निवारणीय इति' मनसा अवधार्य अब्रवम् (कादम्० २५५)—(अवधार्य का कर्म)।

३८०—संज्ञा-उपवाक्य प्रायतया 'इति' से सूचित किए जाते हैं, अथवा यथा, यद् से आरम्भ होकर कभी इति से और कभी बिना इति के समाप्त होते हैं।

अकथितोपि ज्ञायत् एव 'यथायं तपोवनस्याभोग' इति (शा० १)। सत्योयं जनप्रवादो 'यत्संपत् संपदमनुबध्नातीति' (कादम्० ७३)। अविज्ञात-मदनवृत्तान्ता 'क्व गच्छामि इति' नाज्ञासिषम् (कादम्० १४७)।

विशेष—कभी-कभी इति का प्रयोग नहीं भी होता; जैसे, कथय 'सत्संगतिः पुंसां किं न करोति' (भर्तृ० २।२८)। एतत् कल्याणाभिनिवेशिनः श्रुतिविषयमापतितमेव 'यथा विबुधसद्मन्यप्सरसो नाम कन्यकाः सन्ति'। (कादम्० १३६)

विशेषण-उपवाक्य

३८१—विशेषण-उपवाक्य किसी संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताता है, और विशेषणधर्मा होता है। इसका आरम्भ सम्बन्धवाचक सर्वनाम "यद्" के स्वरूपों (यावत्, यादृश आदि) से होता है।

विशेषण-उपवाक्य निम्नलिखित के साथ प्रयुक्त हो सकता है—

(१) कर्ता के साथ, 'यदालोके सूक्ष्मं' व्रजति सहसा तद् विपुलताम् (शा० १)। तत्तस्य किमपि द्रव्यं 'यो हि यस्य प्रियो जनः' (उत्तर० २)। 'अहेतुः पक्षपातो यः' तस्य नास्ति प्रतिक्रिया (उत्तर० ५)—कर्ता की विशेषता बताने वाले तस्य' की विशेषता बता रहा है।

(२) कर्म के साथ; 'यस्यागमः, केवलजीविकायै' तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति (मालविका० १)। स तावदभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौ वसु। यावतैषां समाप्येरन् यज्ञाः पर्याप्तदक्षिणाः ॥ (रघु० १७।७)।

(३) विधेय के विस्तार के साथ; 'युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकाशमासत'। तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागम-सम्भवा मुदः (शिशु० १।२३)—'ममुः' के विस्तारसूचक शब्द 'तनौ' की विशेषता बताता है।

विशेष—विश्लेषण-उपवाक्य की स्थिति को ध्यानपूर्वक देखिये। यह या तो प्रधान उपवाक्य के पहिले आता है या बाद में आता है।

३८२—प्रायः विशेषण-उपवाक्य विशेषणधर्मा समासों द्वारा सूचित किए जाते हैं अर्थात् व्यधिकरण तत्पुरुष और कर्मधारय समास तथा बहुव्रीहि समास द्वारा और क्त-प्रत्ययान्त, क्तवतु-प्रत्ययान्त, कृत्य-प्रत्ययान्त शब्दों द्वारा—

तन्नंदिनीं सुवृत्तां नामैतस्मात् द्वीपादागतो रत्नोद्भवो नाम रमणीय-गुणालयो भ्रांतभूवलयो व्यवहारी उपयेमे (दशकु० १।१)। यहाँ पर 'आगतः और 'भ्रांतभूवलयः', द्वीपादागच्छत् और यो भूवलयं बभ्राम—इन विशेषण-उपवाक्यों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

क्रियाविशेषण-उपवाक्य

३८३—क्रियाविशेषण-उपवाक्य क्रियाविशेषण अव्यय का समानधर्मा होता है और क्रिया की विशेषता बताता है। यह क्रियाविशेषण अव्यय के स्थान पर आता है और उसी की रचना के समान इसकी भी रचना होती है। क्रियाविशेषण अव्यय ही के समान यह भी काल, स्थान, प्रकार, कारण और कार्य सूचित करता है।

३८४—कालवाचक क्रिया-विशेषण उपवाक्य प्रधान उपवाक्य के अन्दर आई हुई क्रिया का काल बताता है।

सत्वरं निवेदय 'यावत् दंष्ट्रान्तर्गतो न भवसि' (पंच० १।८)। **अत्रैव तावद्रथं स्थापय यावदवतरामि** (शा० १)। **'यदा हरः पार्वतीं परिणेष्यति' तदा स्मरं स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति** (कुमार० ४।३२)। **'यावदसौ पान्थः सरसि स्नातुं प्रविशति तावत्' महापंके निमग्नः** (हितो० १)।

विशेष—कालवाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य को बहुधा भावे सप्तमी आदि के प्रयोग द्वारा सूक्ष्म करते हैं।

३८५—स्थानवाचक-क्रियाविशेषण-उपवाक्य किसी स्थान में किसी वस्तु की स्थिति अथवा किसी स्थान के प्रति किसी वस्तु की गति सूचित करते हैं। **'यत्र यत्र धूमः' तत्र तत्र वह्निः**।

३८६—प्रकार-वाचक क्रियाविशेषण-उपवाक्य निम्नलिखित बातें सूचित करते हैं—

(१) समानता—यह इव और यथा से द्योतित की जाती है (इव और यथा इतरेतरसम्बन्धी हैं तथा और तद्वत् के); जैसे, **पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपं**

'भवन्तमीड्यं भवतः पिता इव' (अलभत)—(रघु० ५।२४)। आसीदियं दशरथस्य गृहे 'यथा श्रीः' (अस्ति)—(उत्तर० ४)। 'यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ। समेत्य च 'व्यपेयाताम्' तद्वद् भूतसमागमः। (हितो० ४)।

विशेष—यथा अथवा इव से प्रारम्भ किए हुए उपवाक्य प्रायः संक्षिप्त रहते हैं।

(२) मात्रा अथवा सम्बन्ध (समानता, अगाधता आदि)—

'वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव' तथा जडे (वितरति) (उत्तर० २)। 'यथा यथा अम्बुधाराभिराहन्यते' तथा तथा स्फुरति मदनपावकः। (कादम्० २५२)

३८७—बहुव्रीहि समासों को क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर प्रयोग करके भी प्रकार-वाचक क्रियाविशेषण उपवाक्यों को सूचित करते हैं; जैसे, राजा 'सविलक्षस्मितम्' आह = 'यथा विलक्षस्मितं स्यात्' तथा आह। 'उद्योति-ताम्बरदिगन्तरम् अंशुजालः' शक्तिः पपात हृदि तस्य महासुरस्य (कुमार० १७।५१)।

३८८—कार्य-कारण-वाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य निम्नलिखित बातें सूचित करते हैं :—

(१) कारण;

'वत्से कठोरगर्भेति' नानीतासि (उत्तर० १)। ममापि ताह धर्मतस्तथैव 'यतः प्रियवयस्य इत्यात्थ' (उत्तर० ५)। इत्यादि नन्विह निरर्थकमेव 'यस्मात्कामो जृम्भितगुणः' (मालती० १)। कमपरमवशं न विप्रकुर्युः 'विभुमपि तं यदमी स्पृशन्ति भावाः' (कुमार० ६।६५)। कच्चिद् भर्तुः स्मरसि रसिके 'त्वं हि तस्य प्रियेति' (मेघ० ८८)।

(२) शर्त;

श्रूयतां 'यदि कुतूहलम्' (कादम्० ४६)। 'अथ तु वेत्सि शुचिव्रतमात्मनः' पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् (शा० ५)। जात्या चेदवध्योहम्' एषा सा जातिः परित्यक्ता (वेणी० ३)।

(३) Concession;

'काममननुरूपमस्या वपुषो वल्कलं' न पुनरलंकारश्रियं न पुष्यति (शा० १)। 'नेत्रे पुनर्यद्यपि रक्तनीले', तथापि सौभाग्यगुणः स एव। (उत्तर० ६)

(४) अभिप्राय, प्रयोजन;

दोषं तु मे कंचित् कथय 'येन स प्रतिविधीयेत'। (उत्तर० १) 'तदागच्छ यथा दर्शयामि' (पंच० १।८)। भो धीरं गच्छ 'मा खलु तत्रभवती धारिणी विसंवदिष्यति' (मालविका० १) 'अस्य शरीरस्य मा विनाशो भूदिति' मयेदमुत्क्षिप्य समानीतम् (कादम्० २२०)

(५) परिणाम;

कुमार तथा प्रयतेथाः 'यथा नोपहस्यसे जनैः' (कादम्० ११०)। स ऋत्विजस्तथानर्च 'यथा साधारणीभूतं नामास्य धनदस्य च' (रघु० १७।८४)। सा वेणुलतामादाय। सभाकुट्टिममाजघान 'येन सकलमेव तद्राजकं तदभिमुखमासीत्'। (कादम्० १०)

३८९—संज्ञा, विशेषण अथवा क्रियाविशेषण उपवाक्य की द्विरुक्ति कर मिश्रित वाक्य का विस्तार किया जा सकता है। परन्तु उस दशा में वह वाक्य संयुक्त वाक्य हो जायगा, जिसके प्रत्येक अंशभूत वाक्य मिश्रित वाक्य होंगे।

'कथं स त्वया दृष्टः' 'किं किमभिहितासि तेन' 'कियंतं कालमवस्थितासि तत्र' 'कियदनुसरन्नस्मानसावागतः' इति पुनः पुनः पर्यपृच्छम् (कादम्० १५०)। 'यस्य चेन्द्रियाणि सन्ति' 'यः पश्यति वा' 'श्रुतमवधारयति वा' स खलूपदेशमर्हति। (कादम्० १५६)

३९०—पुनश्च, आश्रित उपवाक्यों में से दो या दो से अधिक एक ही मिश्रित वाक्य में आ सकते हैं,

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति (संज्ञा) यावद्गिरः खे मरुतां चरंति (क्रियाविशेषण)। तावत् स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार॥ (कुमार० ३।७२)। राष्ट्रमुख्यमाहूयाख्यातवान्। योऽसौ अनंतसीरः प्रहारवर्मणः पत्त्र इति (क्रियाविशेषण) निनाशयिषितः (विशेषण, सोऽपि पितरि मे प्रकृतिस्थे किमिति नाश्येतेति (संज्ञा)—(दशकु० २)।

आश्रित उपवाक्य बनाने वाले शब्द

संज्ञा उपवाक्य—'इति', 'यथा', इति-सहित अथवा इति-रहित 'यद्'।

विशेषण उपवाक्य—यद् शब्द के रूप।

क्रियाविशेषण उपवाक्य—(१) कालवाचक—यदा, यावत्, यावत् न··· तावत्, यदा यदा।

(२) स्थानवाचक—यत्र, यत्र यत्र।

(३) प्रकारवाचक—इव, यथा—तथा या तद्वत्, यथैव···तथैव, यथा यथा।

(४) कारण-वाचक (क) इति यतः·····ततः, यद्, यथा···तथा, हि,

(ख) यदि···तर्हि, तद्, ततः, चेद्, अथ।

(ग) यद्यपि, काम (तु, पुनः)।

(घ) येन; इति, यथा, मा (लृट्, लुट् अथवा लोट् के साथ)।

(ङ) यथा, येन।

मिश्रित वाक्यों का विश्लेषण

३६१—मिश्रित वाक्यों का विश्लेषण इस प्रकार किया जाना चाहिए मानो प्रत्येक आश्रित उपवाक्य एक शब्द अथवा एक वाक्यांश हो। तदनन्तर, आश्रित उपवाक्यों का अलग से साधारण वाक्यों के समान विश्लेषण किया जाना चाहिए।

उदाहरण

(१) अथ स निःश्वस्य लज्जाविशीर्यमाणविरलाक्षरं सखे कपिंजल-विदितवृत्तांतोपि किं मां पृच्छसीति कृच्छ्रेण शनैरवदत्। (कादम्० १५५)

(२) एष नामानुगृहीतः यः शूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः। (शा० ६)

(३) अन्वेषमाणश्च यथा यथा नापश्यं तं तथा तथा सुहृत्स्नेहकातरेण मनसा तत्तदशोभनमाशंकमानो निपुणमितस्ततो दत्तदृष्टिः सुचिरं व्यचरम्। (कादम्० १५२)

वाक्यविश्लेषण की विधि

कर्ता	कर्ता का विस्तार	क्रिया	कर्म	कर्म का विस्तार	क्रिया के क्रियाविशेषणात्मक विस्तार
१. स	,,	अवत्	सखे कपिंजल ··· पृच्छसीति (क)		अथ (काल), निःश्वस्य (काल) लज्जाविशीर्यमाण—विरलाक्षरम् (प्रकार), कृच्छ्रेण शनैः शनैः (प्रकार)
(क) (ख) सखे कपिंजल कर्ता के साथ	विदितवृत्तांतोपि (विशेषण)	पृच्छसि		मां (मुख्य) किं (गौण)	
२—एष	यः—प्रतिष्ठापितः (क)	अनुगृहीतः			नाम (प्रकार)
(क) यः		प्रतिष्ठापितः			हस्तिस्कंधे (स्थान) शूलादवतार्य (काल)
३—(अहं)	सुहृत्स्नेह-शंकमानः (शानजन्त विशेषण) निपुणं इतस्ततो दत्तदृष्टिः (विशेषण)	व्यचरम्			तथा तथा (मात्रा) यथा यथा अन्वेषमाणो नापश्यं तं (मात्रा) सुचिरं (काल)
(क) अहं	अन्वेषमाणः (शानजन्त विशेषण)	अपश्यं (न)	तं		यथा यथा (मात्रा)

संयुक्त वाक्य

३६२—संयुक्त वाक्य में दो या दो से अधिक साधारण अथवा मिश्रित वाक्य होते हैं जो आपस में एक दूसरे के समानाधिकरण होते हैं।

संयुक्त वाक्य के अंशभूत उपवाक्य निम्नलिखित श्रेणी के हो सकते हैं।

(१) साधारण वाक्य,

(२) कुछ तो साधारण वाक्य हो सकते हैं और कुछ मिश्रित,

(३) सभी मिश्रित वाक्य हो सकते हैं।

१—**तथाप्येष प्राणः स्फुरति न तु पापो विरमति।** (उत्तर० ६)
मनो निष्ठाशून्यं भ्रमति च किमप्यालिखति च॥ (मालती० १)

(इसमें प्रत्येक साधारण वाक्य है)

२—**दाक्षिण्यं नाम बिम्बौष्ठि वैधिकानां कुलव्रतम्।**
तन्मे दीर्घाक्षि
ये प्राणास्ते त्वदाशानिबन्धनाः (मालविका० ४)

(इसमें दूसरा अंश मिश्रित वाक्य है)

३—**यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कलया त्वया।**
अथ तु वेत्सि शुचिव्रतमात्मनः पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्॥
(शा० ५)

(दोनों अंश मिश्रित वाक्य हैं)

इन उदाहरणों में जो पृथक्-पृथक् वाक्य हैं, वे किसी भी प्रकार एक दूसरे के आश्रित नहीं हैं। प्रत्येक उक्ति स्वतः स्वतंत्र है। परन्तु मिश्रित वाक्य स्वतंत्र अर्थ रखने वाले वाक्यों में विभक्त नहीं किया जा सकता।

३६३—संयुक्तवाक्य के अंशों में परस्पर निम्नलिखित सम्बन्ध हो सकते हैं—

(१) Cumulative relation **सामूहिक संबन्ध**। यह सम्बन्ध **च, तथा, अपिच** से सूचित किया जाता है और इस में दो या दो से अधिक कथन साथ-साथ जोड़े जा सकते हैं।

(२) Adversative relation **प्रतिकूल सम्बन्ध अथवा विरोध-सूचक सम्बन्ध**। यह सम्बन्ध **वा, तु, पुनः, परन्तु** आदि। समुच्चयबोधक

अव्ययों से सूचित किया जाता है, और इसमें दूसरा वाक्य पूर्वगामी वाक्य का विरोधी होता है।

(३)**आनुमानिक सम्बन्ध**। यह सम्बन्ध अतः, तत्, ततः से सूचित किया जाता है और इस में किसी पूर्वगामिनी घटना से किसी परिणाम अथवा कार्य का प्रादुर्भूत होना दिखलाया जाता है।

सामूहिक सम्बन्ध

Cumulative Relation

३६४—सामूहिक सम्बन्ध में उक्तियों का परस्पर सम्मिलन तीन प्रकार से हो सकता है—

(१) उक्ति के ऊपर समान बल देकर—

तटस्थः स्वानर्थान् घटयति 'च' मौनं 'च' भजते (मालती० १) **त्रिलोचनस्तां प्रतिग्रहीतुमुपचक्रमे 'च' पुष्पधन्वा धनुष्यमोघं बाणं समधत्त 'च'** (कुमार० ३।६६)। **तृणमिव वने शस्ये (स) त्यक्ता न 'चापि' अनुशोचिता**। (उत्तर० ३)

(२) दूसरे उपवाक्य के ऊपर अधिक बल देकर—

न केवलं तातनियोग एव 'अस्ति मे सोदरस्नेहोप्येतेषु' (शा० १)। **पुण्यानि नामग्रहणान्यपि महामुनीनां 'किं पुनः दर्शनानि'** (कादम्० ३३)।

(३) विचारों में उत्तरोत्तर उत्थान दिखला कर—

उदेति पूर्व कुसुमं 'ततः' फलम् (शा० ५)। **जगज्जीर्णारण्यं भवति हि विकल्पव्युपरमे। कुकूलानां राशौ 'तदनु' हृदयं पच्यत इव**। (उत्तर० ६)

विशेष—इस सम्बन्ध में कई समानाधिकरण वाक्य एक दूसरे के पास-पास रक्खे हुए एक दूसरे के पीछे आते जाते हैं। परन्तु इनको जोड़ने के लिए भी शब्द इनके बीच में नहीं रक्खा जाता, उनका अर्थ गम्यमान रहता है।

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने, भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी। (शा० ४) (इसमें चार कथन या उक्तियाँ हैं)।

जाड्यं धियो 'हरति' 'संचति' वाचि सत्यम्, मानोन्नतिं 'दिशति' पापम् 'अपाकरोति'। चेतः 'प्रसादयति' दिक्षु 'तनोति' कीर्तिम् सत्संगतिः (भर्तृ० २।२३)।

दारिद्र्याद् ह्रियमेति ह्रीपरिगतः प्रभ्रश्यते तेजसो, निस्तेजाः परिभूयते परिभवात् निर्वेदमापद्यते। निर्विण्णः शुचमेति शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यते, निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम्। (मृच्छ० १)

विरोधसूचक सम्बन्ध

३६५—विरोधसूचक सम्बन्ध तीन प्रकार से सूचित किया जाता है—

(१) बहिष्कार-सूचक समुच्चयबोधक अव्ययों द्वारा, जिनसे पहिली परिस्थिति का बहिष्कार द्योतित होता है :—

प्रज्ञाहीनोऽयं राजा 'नोचेत्' नीतिशास्त्रकथाकौमुदीं वागुल्काभिः कथं तिमिरयति (हितो० ३)। व्यक्तं नास्ति कथम् 'अन्यथा' वा संत्यपि तां न पश्येत् (उत्तर० ३)। अद्यापि हरकोपवह्निस्त्वयि ज्वलति। 'अन्यथा' त्वं भस्मावशेषः कथमित्थमुष्णः (शा० ३)।

(२) Alternative Conjunction—द्वारा; वा-वा; किम्—अथवा; उत; आहोस्वित् :—

तदेषा भवतः कान्ता त्यजैनां 'वा' गृहाण 'वा' (शा० ५)। सूतो 'वा' सूतपुत्रो 'वा' यो 'वा' को 'वा' भवाम्यहम् (वेणी० ३)। किं धर्मोपदेशांगमिदम् 'उत' मोक्षप्राप्तिरियम् 'आहोस्वित्' अन्यः कश्चिन्नियमप्रकारः (कादम्० १५०)।

(३) Arrestive Conjunctions के द्वारा; तु, किन्तु, परम् (तु), पुनः, तथापि, और कभी-कभी केवलम् :—

दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं 'तु' पौरुषम् (वेणी० ३); (अयं कथाप्रविभागः) प्रणीतो न 'तु' प्रकाशितः (उत्तर० ४); सखे पुण्डरीक सुविदितमेतन्मम 'किन्तु' इदमेव पृच्छामि (कादम्० १५५); नं च न परिचितो न चाप्यगम्यः चकितमुपैमि 'तथापि' पार्श्वमस्य (मालती० १); लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते। ऋषीणां 'पुनः' आद्यानां वाचमर्थोनुधावति। (उत्तर० १); अनुदिवसं परिहीयसे अंगैः 'केवलं' लावण्यमयी छाया त्वां न मुंचति (शा० ३)।

Illative Relation

३६६—आनुमानिक सम्बन्ध Illative Relation निम्नलिखित शब्दों से सूचित किया जाता है—अतः, तस्मात्, ततः, तद्, अनेन हेतुना, एवं च तेन हि—

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां भर्तुर्मतीं जनोन्यथा विशंकते 'अतः' क्षमदा स्वबन्धुभिः परिणेतुः समीपे इष्यते (शा० ५); भो उपस्थितं मयनमधु संनिहिता च मल्लिका । तत् अप्रमत्त इदानीं पश्य (मालविका० २); जनकोद्य गतो विदेहान् । 'ततो' विमनसो देव्याः परिसांत्वनाय नरेंद्रो वासगृहं विशति (उत्तर० १); अत्यद्भुतादपि गुणातिशयात्प्रियोसि 'तस्मात्' सखा त्वमसि (उत्तर० ५); मध्यस्था नौ गुणदोषतः परिच्छेत्तुमर्हति । 'तेन हि' प्रस्तूयतां विवादवस्तु (मालविका० १) ।

३६७—प्रायः संस्कृत में जब संयुक्त वाक्य के समानाधिकरण भागों का एक ही कर्ता या एक ही क्रिया होती है या कोई भी अंश उभयनिष्ठ होता है तो उभयनिष्ठ अंश दोहराया नहीं जाता, और इस प्रकार से वाक्य संक्षिप्त बना दिया जाता है ।

(१) तटस्थः स्वानर्थान् 'घटयति च मौनं च भजते' (मालती० १);
हृदयमशरणं मे पद्मलाक्ष्याः कटाक्षैः,
'अपहृतं' 'अपविद्धं' 'पीतं' 'उन्मूलितं' च (मालती० १)

(२) दिष्ट्या न केवलं 'उत्संगः' चिरात् 'मनोरथोपि' मे 'पूर्णः'
(उत्तर० ४)

न मां त्रातुं 'तातः' 'प्रभवति' न 'चांबा' न 'भवती' (मालती०२)

समानाधिकरण वाक्यों को जोड़ने वाले शब्दों का वर्गीकरण

Cumulative Relation.	(१) च, च-च, तथाच, अपि, अपिच, अपरंच, अन्यच्च (२) केवलं-अपि, किमुत, किंपुनः (३) अथ, तदनु, पूर्वं-ततः, अनंतरं, ततः परं, ततश्च, अनंतरं च,
Adversative Relation	(१) अन्यथा, न (नो) चेत् (२) वा, का-वा, न वा (३) तु, किन्तु, परं (तु), तथापि, पुनः, केवलं
Illative Relation.	तत्, तस्मात्, अतः, ततः, तथा, एवं, च, एवं तेन हि

संयुक्त वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण

३६८—संयुक्त वाक्यों का विश्लेषण करने में पहिले भिन्न-भिन्न समानाधिकरण उपवाक्यों का परस्पर सम्बन्ध बताइए। तदनन्तर इन समानाधिकरण उपवाक्यों का अलग से विश्लेषण कीजिए। यदि वे साधारण वाक्य हों तो साधारण वाक्यों का सा विश्लेषण कीजिए, यदि वे मिश्रित वाक्य हों तो मिश्रित वाक्यों का सा विश्लेषण कीजिए।

उदाहरण

(१) वर्ष वा गर्ज वा शक्र मुंच वा शतशोऽशनिम्। (मृच्छ० ५)

(२) उचितः प्रणयो वरं विहंतुं बहवः खंडनहेतवो हि दृष्टाः। उपचारविधिर्मनस्विनीनां तु पूर्वाभ्यधिकोपि भावशून्यः। (मालविका० ३)

(३) दृष्टा खलु मया तत्रभवत्या मालविकायाः प्रियसखी बकुलावलिका श्राविता च तमर्थं भवता यः संदिष्टः। (मालविका० २)

१—शक्र (त्वं) वर्ष वा (क)—प्रधान वाक्य

(त्वं) गर्ज वा (ख)—प्रधान—क का समानाधिकरण

त्वं शतशोऽशनिं मुंच वा (ग)—प्रधान—क और ख का समानाधिकरण विरोध-सूचक सम्बन्ध है।

	कर्ता	क्रिया	कर्म	क्रियाविशेषणात्मक विस्तार
क	(त्वं) शक्र	वर्ष (वा)		
ख	(त्वं)	गर्ज (वा)		
ग	(त्वं)	मुंच (वा)	अशनिं	शतशः (प्रकार)

२—उचितः प्रणयो विहंतुं वरं बहवः खंडनहेतवो दृष्टाः हि (क)

न तु पूर्वाभ्यधिकोपि भावशून्यो मनस्विनीनामुपचारविधिः वरं (ख)

विरोध-सूचक सम्बन्ध है।

(क) का विश्लेषण जो कि मिश्रित वाक्य है

कर्ता	क्रिया	कर्म	क्रियाविशेषणात्मक विस्तार
(क) प्रणयः	वरं		विहंतुम् (अभिप्राय)
(उचितः—विशेषण)			बहवः...दृष्टाः (कारण)
खंडनहेतवः			

बहवः (विशेषण) **दृष्टाः** **हि** (कारण)
(ख) **उपचारविधिः**
मनस्विनीनां (षष्ठी)
पूर्वाभ्यधिकोपि न (वरम्)
भावशून्यः (विशेषण)

३—पहिला साधारण वाक्य है, दूसरा मिश्रित वाक्य है, जिसका विश्लेषण ऊपर दे दिया गया है। सामूहिक सम्बन्ध है।

अभ्यासार्थ विविध उदाहरण

निम्नलिखित वाक्यों का विश्लेषण ऊपर बताई हुई विधि के अनुसार कीजिए और यह भी बताइए कि वे साधारण वाक्य हैं अथवा मिश्रित अथवा संयुक्त :—

१—महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोस्मि। (शा० २)

२—कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि। (शा० ५)

३—प्रमाणादधिकस्यापि गंडश्याममदच्युतेः।
पदं मूर्ध्नि समाधत्ते केसरी मत्तदंतिनः॥ (पंच० १)

४—लघुहृदयां मां लोकः कलयिष्यतीति निर्ह्रीकया मया नाकलितम्। (कादम्० १७७)

५—दर्शनादारभ्य शरीरस्याप्ययमेव प्रभुः किमुत भवनस्य विभवस्य वा। (कादम्० १६६)

६—स चानुयुक्तो धूर्तः सविनयमावेदयत्। विदितमेव खलु वो यथाहं युष्मदाज्ञया पितृवनमभिरक्ष्य तदुपजीवी प्रतिवसामि। (दशकु० २।६)

७—यदा किंचित् किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः। (भर्तृ० २। ८)

८—अहमतिमृदुनि पुलिनवति सरस्तीरेऽवरोप्य सस्पृहं निर्वर्णयंस्तां मत्प्राणैकवल्लभां राजकन्यां कंदुकावतीमलक्षयम्।
(दशकु० २।६)

९—एवमेतत्। किंतु न कदाचिदार्यस्य निष्प्रयोजना प्रवृत्तिरित्यस्ति नः प्रश्नावकाशः। (मुद्रा० ३)

१०—विचिंतयंती यमनन्यमानसा तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्। स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव। (शा० ४)

११—अये महाराजेति निष्प्रणयमामंत्रणपदं सौमित्रिमात्रे च वाष्पस्खलिताक्षरः कुशलप्रश्नः। तथा मन्ये विदितसीतावृत्तांतेयमिति। (उत्तर० ३)

१२—वरेषु यद्बालमृगाक्षि मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने। (कुमार०। ७५)

१३—तद् ब्रूत वत्साः किमितः प्रार्थयध्वं समागताः।
मयि सृष्टिर्हि लोकानां रक्षा युष्मास्ववस्थिता॥
(कुमार० २। २८)

१४—कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः पित्रा च महता प्रयत्नेन समारोपितसंस्कारः। तथापि भवद्गुणसंतोषी मामेवं मुखरीकृतवान्॥ (कादम्० १०६)

१५—वध्ये मयि मत्तहस्ती मृत्युविजयो नाम हिंसाविहारी राजगोपुरोपरितलाधिरूढस्य पश्यतः उत्तमामात्यस्य शासनाज्जनकंठरवद्विगुणितघंटारवो मंडलितहस्तकांडं समभ्यधावत्। (दशकु० २।४)

१६—यज्ञोपवीतं नाम
अमाक्तिकमसौवर्णं ब्राह्मणानां बिभूषणम्।
देवतानां पितॄणां च भागो येन प्रदीयते॥ (मृच्छ० १०)

१७—अत्रांतरे ब्राह्मणेन मृतं पुत्रमुत्क्षिप्य राजद्वारे सोरस्ताडनमब्रह्मण्यमुद्घोषितम्। ततो न राजापराधमंतरेण प्रजास्वकालमृत्युश्चरतीत्यात्मदोषं निरूपयति करुणामये रामभद्रे सहसैवाशरीरिणी वागुदचरत्। (उत्तर० २)

१८—अथ कदाचित् पिंगलको नाम सिंहः सर्वमृगपरिवृतः पिपासाकुल उदकग्रहणार्थं यमुनातटमवतीर्णः संजीवकस्य गंभीरतरशब्दं दूरादेवाशृणोत्। (पंच० १)

१६—यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्भयमिति युक्तमितोन्यतः प्रयातुम्।
अथ मरणमवश्यमेव जंतोः किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे ॥
(वेणी० ३)

२०—प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यांत्यापदः। (भर्तृ० २।६०)

२१—यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्।
(भर्तृ० २।८८)

२२—यथा तिरश्चीनमलातशल्यं प्रत्युप्तमंतः सविषश्च दंशः।
तथैव तीव्रो हृदि शोकशंकुर्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः ॥
(उत्तर० ३)

२३—परस्परविरोधिन्योरेकसंश्रयदुर्लभम्।
संगतं श्रीसरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम् ॥ (विक्रमो० ५)

२४—सर्वैरुक्तः समग्रैस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः
(मालविका० २)

२५—अस्त्वमर्षो मा भूद्वा। एतत्तु पृच्छामि, दांतं हि राघवं राजानं शृणुमः। स किल नात्मना दृप्यति न चाप्यस्य प्रजा ईदृश्यो जायन्ते। तत् किमस्य मनुष्या राक्षसी वाचं वदंति। (उत्तर० ५)

२६—यथा नौ प्रियसखी बंधुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वाहय।
(शा० ३)

२७—अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे
नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम्।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम्॥ (रघु० ३।७०)

और अधिक अभ्यास करने के लिए विद्यार्थी पूर्व पाठों से वाक्यों को चुन लें और उनका विश्लेषण करें।

द्वितीय सेक्शन

वाक्यों में शब्दों का क्रम

३६६—प्रथम भाग के भूमिकांश में पहले ही बताया जा चुका है कि संस्कृत वाक्य में शब्दों का क्रम कोई इतना महत्त्वशाली विषय नहीं है जिस पर विचार किया जाय। संस्कृत में अव्यय तथा कुछ और अन्य शब्दों को छोड़ कर बाकी सभी शब्दों का रूप चलता है और व्याकरणीय रूप-परिवर्तन स्वयं एक शब्द का दूसरे के साथ क्या सम्बन्ध है, इसे प्रकट कर देता है। इस प्रकार, व्याकरण की दृष्टि से क्रम-नामक कोई ऐसा विषय नहीं है जिस पर बहुत ध्यान दिया जाय। **कथमपि तत्याज वने सीतां लक्ष्मणः कठोरगर्भाम्**—इस प्रकार का वाक्य भले ही देखने में बड़ा भद्दा लगता हो, परन्तु व्याकरण की दृष्टि से यह अशुद्ध नहीं है। परन्तु यदि व्याकरण-सम्बन्धी क्रम न भी हो, तो भी विचारों का एक तार्किक क्रम ऐसा होता है जो एक विशेष रीति के अनुसार एक दूसरे के पीछे आना ही चाहिये। यदि हम किसी भी संस्कृत गद्य-ग्रंथ के पृष्ठों को देखें तो हमें उसमें शब्दों का कोई विशेष क्रम अवश्य मिलेगा; उदाहरणार्थ, पहले विशेषण सहित कर्ता कारक आता है, चाहे प्रकट रूप से चाहे अप्रकट रूप से; तब यदि कर्म रहता है, तो वह आता है, और अन्त में क्रिया अथवा विधेय; जैसे,

सा तु महाश्वेताया एव मुखमवलोकितवती (कादम्० ३०७)। **महीपतिस्तं विद्येश्वरं सबहुमानं विससर्ज** (दशकु० १।२५)।

यद्यपि काव्य और नाटकीय कविताएँ साधारण गद्य के नियमों से मुक्त हैं, तथापि उनमें भी अधिकतर इन नियमों का बड़ी कड़ाई के साथ पालन किया जाता है;

रघूणामन्वयं वक्ष्ये [रघु० १।८]
तृष्णां छिन्द्धि, पापे रतिं मा कृथाः [भर्तृ० २।७७]
वदनकमलकं शिशोः स्मरामि [उत्तर० ४]
असिर्गात्रं गात्रं सपदि लवशस्ते विकिरतु [मालती० ५]

अब वाक्यों में शब्दों के क्रम के विषय में कुछ नियम विहित किए जायेंगे।

४००—गद्य-वाक्य में शब्दों की व्यवस्था करने के लिए सर्वोत्तम अनुसरणीय नियम यह है—[१] पहिले विशेषण-सहित तथा विशेषणवाक्यांश-सहित कर्ता को रखना चाहिए, [२] तब विशेषण-सहित कर्म को रखना चाहिए; [३] अन्त में विधेय [चाहे वह कृदन्तीय हो, चाहे तद्धितीय हो]। क्रियाविशेषण तथा क्रियाविशेषण-वाक्यांश अन्तिम स्थान के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान पर रक्खे जा सकते हैं। कुछ समुच्चयबोधक अव्ययों को छोड़ कर शेष सभी कर्ता के पूर्व आते हैं। यदि कोई विद्यार्थी निम्नलिखित वाक्य लिखे या बोले तो वह वाक्य महा भद्दा होगा—"**सकाशं गुरोः आशिषं राज्ञे अग्रजन्मा प्रयुज्य प्रतीयायेत्थम्**"।

इसके स्थान पर यदि वह निम्नलिखित प्रकार से वाक्य को लिखे या बोले तो क्या ही अच्छा लगेगा—

"**इत्थं राज्ञे आशिषं प्रयुज्य अग्रजन्मा गुरोः सकाशं प्रतीयाय**"। [रघु० ५।३५]।

४०१—जब किसी श्लोक का अन्वय किया जाता है, तब उपर्युक्त क्रम साधारणतया पालन किया जाता है। उदाहरणार्थ यह श्लोक लीजिये।

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम्।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ॥ (रघु० २।१)

इसका अन्वय इस प्रकार होगा—

अथ (समुच्चयबोधक अव्यय) **यशोधनः** (विशेषण) **प्रजानां** (षष्ठी) **अधिपः** (कर्ता) **प्रभाते** (कर्म के विशेषण का विस्तार) **जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्यां** (विशेषण) **पीतप्रतिबद्धवत्साम्** (दूसरा विशेषण) **ताम्** (कर्म का वि०) **ऋषेः** (कर्म का वि०) **धेनुं** (कर्म) **वनाय** (विधेय का विस्तार) **मुमोच** (क्रिया)।

इसी प्रकार, **अभिहन्ति हन्त कथमेष माधवं सुकुमारकायम् अनवग्रहः स्मरः** (मालती० १); **हन्त कथमेषोऽनवग्रहः स्मरः सुकुमारकायं माधवमभिहन्ति, अथवा हन्त एष·····कथमभिहन्ति**।

अब साधारण नियम को विशेष विशेष उदाहरणों में तोड़कर दिखाया जा सकता है कि भिन्न-भिन्न शब्दों का परस्पर क्या सम्बन्ध होना चाहिए।

४०२—साधारण नियम से सबसे पहली बात यह सीखनी चाहिये कि शब्दों का विन्यास इस प्रकार किया जाय कि एक विचार दूसरे विचार के पीछे अपने प्राकृतिक क्रम में आता चले। अर्थात् आश्रित शब्द साधारण तथा उन शब्दों के पूर्व आवें जिन पर वे निर्भर हैं अथवा जिनके द्वारा वे शासित हैं। इस प्रकार, विशेषण और उसका विशेष्य, सकर्मक क्रिया और उसका कर्म, क्रियाविशेषण तथा क्रियाएँ, कर्मप्रवचनीय तथा सम्बन्ध-सूचक अव्यय तथा उनके द्वारा शासित शब्द जहाँ तक हो सके बिल्कुल समीप में रक्खे जायँ।

४०३—जब किसी वाक्य में कोई साधारण सा कर्ता और क्रिया होती है, तो कर्ता पहिले रक्खा जाता है; **रघुपतिस्तिष्ठति** (उत्तर० ६)।

विशेषण विशेष्य के पहिले आता है; 'देवो' **रघुपतिस्तिष्ठति** (उत्तर०६)। 'उपात्तविद्यो' 'गुरुदक्षिणार्थी' **कौत्सः तं प्रपेदे** (रघु० ५।१)। 'अपगतश्रमः' **चाभिमतं दिगन्तरमयासीत्** (कादम्०३२)।

(क) जब विशेषण विधेय बनकर आता है, तब वह अपने विशेष्य के बाद आता है।

(ख) जब किसी वाक्य में सार्वनामिक तथा गुणबोधक विशेषण दोनों ही आते हैं, तो सार्वनामिक विशेषण पहिले रक्खा जाता है, गुणबोधक विशेषण बाद में; **तस्याम् अतिदारुणायां हतनिशायाम्** (कादम्० १९६)—**उस महाभयङ्कर और अभागी रात में**। परन्तु कभी-कभी गुणबोधक विशेषण सार्वनामिक विशेषण के पहिले आता है; जैसे, **विचक्षणो वर्णी सः** (रघु० ५।१९) पर मल्लिनाथ की टीका। **यूना 'अनेन' पार्थिवेन सह** (रघु० ६।३२) पर मल्लिनाथ की टीका।

४०४—समानाधिकरण संज्ञा पहिले आनी चाहिए :—

आसीदशेषनरपतिशिरःसमभ्यर्चितशासनः 'आदर्शः सर्वशास्त्राणाम्' 'उत्पत्तिः कलानां' 'कुलभवनं गुणानां' राजा शूद्रको नाम (कादम्० ५)। **अथ 'मीनकेतनसेनानायकेन' दक्षिणानिलेन मन्मथानलमुज्ज्वलयन्** (दशकु० १।५)।

४०५—षष्ठी का जिससे सम्बन्ध होता है, प्रायः उसके पहिले आती है; 'जगतः' **पितरौ वन्दे** (रघु० १।१) इसी प्रकार 'अर्थानाम्' ईशिषे(भर्तृ० ३।३०)।

(क) जब संज्ञा की विशेषता बताने वाला कोई विशेषण होता है, तो प्रायः यह क्रम रहता है—विशेषण, षष्ठी, तब संज्ञा; जैसे, **अयम् अस्या देव्याः सन्तापः** (कादम्० ६१)। **तस्य एवंविधस्य पद्मसरसः पश्चिमे तीरे** (कादम्० २३)।

४०६—सम्बोधन को वाक्य के एकदम प्रारम्भ में रखना चाहिए; जैसे, **'तात' क एष बालः** (दशकु० २।८)। **'सखे पुण्डरीक' नैतद् भवतोऽनुरूपम्** (कादम्० २५१)। **'आर्यपुत्र' इयमस्मि** (शा० १)।

४०७—**विधेय** (चाहे वह कृदन्तीय हो, चाहे तद्धितीय हो) सर्वदा वाक्य के अन्त में रखा जाता है; वाक्य के द्वारा विवक्षित भाव को वह पूर्ण कर देता है। अतः उसका सर्वोत्तम स्थान अन्त में ही है।

(क) जब किसी कथा या कहानी का वर्णन करते हैं तो 'रहता है' या 'रहता था' अर्थ में 'अस्' और 'भू' धातुओं का प्रयोग वाक्य के आरम्भ में होता है;

'अस्ति' गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः (हितो० १)। **'अस्ति' मगधदेशशेखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी** (दशकु० १।१)। **'अभूत्' अभूतपूर्वो राजा चिन्तामणिर्नाम** (वासवदत्ता ३);

(ख) कभी-कभी बल देने के लिये—प्रभाव-शाली बनने के लिये—विधेय पहिले आता है।

'भवेयुः' तावत् प्राणादयः पञ्च जना माध्यंदिनानाम् (शाङ्कर भाष्य ३७); **'आस्ताम्' तावत् सर्वमेवेदम्** (कादम्० ८); **'उत्सर्पिणी' खलु महतां प्रार्थना** (शा० ७); **'कृतं' त्वया रामसदृशं कर्म** (उत्तर० २) **'विरला.' हि तपामुपदेष्टारः** (कादम्० १०६); **'भवितव्यमेव' तेन** (उत्तर० ४)।

(ग) जब प्रश्नवाचक शब्द का प्रयोग नहीं होता है तो प्रश्नवाचक वाक्यों में भी यही बात होती है; जैसे, जात **'अस्ति' ते माता 'स्मरसि' वा तातम्** (उत्तर० ४); **'स्मरसि' च तदुपान्तेष्वाववयोर्वर्तनानि** (उत्तर० १)।

४०८—संस्कृत में उपसर्ग शब्द बहुधा धातुओं के पहले लगे रहते हैं और वकेल कर्मप्रवचनीय-प्रयोग को छोड़कर उनका अकेला प्रयोग नहीं होता। जब वे

अकेले प्रयुक्त होते हैं (अर्थात् कर्मप्रवचनीय दशा में) तो साधारण नियम के अनुसार वे अपने अधीन शब्द के पीछे आते हैं।

इति मन्दमतीन् 'प्रति' भायात् (शांकर भाष्य)। अयोध्याम् 'अनु' जलानि वहति (रघु० १३।६१)।

(क) सह, ऋते, विना, अलम्, आदि संज्ञाओं अथवा सर्वनाम पर शासन करते हैं और प्रायः जिन शब्दों पर शासन करते हैं उनके बाद में आते हैं; जैसे, रामेण सह, ईश्वरात् ऋते, मां विना, संतोषाय अलम् आदि।

४०६—संस्कृत में अव्ययों का क्षेत्र अंग्रेजी के क्रियाविशेषणों के क्षेत्र की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत है। अव्ययों में उन सभी शब्दों का समावेश है जिनका रूप नहीं चलता; जैसे, क्रियाविशेषण, स्थानबोधक, समुच्चयबोधक तथा विस्मयादिबोधक। संज्ञाओं तथा सर्वनामों की सभी विभक्तियाँ क्रिया-विशेषण मानी जा सकती हैं, परन्तु प्रथमा तथा द्वितीया विभक्तियों को छोड़कर, क्योंकि ये विभक्तियाँ क्रिया के कर्ता और कर्म का काम करती हैं; तथा षष्ठी विभक्ति को भी छोड़कर, क्योंकि यह विभक्ति एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ सम्बन्ध सूचित करती है। क्रियाविशेषणों की स्थिति के विषय में निम्नलिखित नियम कारक-विभक्तियों में भी लागू होंगे।

४१०—कालवाचक, स्थानवाचक, प्रकारवाचक, कारणवाचक तथा परिणामवाचक क्रियाविशेषण अव्यय प्रायः उन शब्दों के समीप रक्खे जाते हैं जिनकी वे विशेषता बताते है :—

'हंसधवलशयनतले' निषण्णं पितरमपश्यम् (कादम्० ६२)—यहाँ 'तले' 'निषण्णम्' की विशेषता बताता है, इसलिए इसे 'निषण्णम्' के पहिले ही रखना चाहिए। इसी प्रकार 'आलोकमात्रेणैव' (कारणवाची क्रियाविशेषण) अपगतश्रमो मनसि (स्थानवाची क्रियाविशेषण) एवम् (प्रकारवाची क्रियाविशेषण) अकरोत् (कादम्० १२४)। 'इति मनसावधार्य' अब्रवम् (कादम्० १५५)। तमवेक्ष्य (कालवाची क्रियाविशेषण) सा भृशं रुरोद (कुमार० ४। २६)—यहाँ 'भृशम्' पहिले नहीं रक्खा जा सकता, क्योंकि पहिले रखने से अर्थ ही बदल जायगा।

४११—जब क्रियाविशेषण शब्द विधेय की विशेषता बताते हैं तब वे **कर्ता** के पहिले भी आ सकते हैं, **कर्ता** के बाद में भी आ सकते हैं अथवा यदि कोई कर्म हो तो **कर्म** के बाद भी; परन्तु अन्त में नहीं आ सकते;

अनेकवारम् (समय) **अपरिश्लथम्** (प्रकार) **मां परिष्वजस्व** (उत्तर० ६); **प्रजानामेव भूत्यर्थम्** (अभिप्राय) **स ताभ्यो** (स्थान) **बलिमग्रहीत्** (रघु० १। १८); **सर्वं सौदामिन्यां** (स्थान) **सम्भाव्यते** (मालती० १)। **दारिद्र्यात्** (कारण) **ह्रियम् एति** (मृच्छ० १)। **हरिणा** (कर्ता) **असुराः तव शरव्यं कृताः** (शा० ६)। **शिवाभ्यो** (अभिप्राय, वस्तुतः तो अकथित कर्म) **मांसबलिपिंडम् अनुदिनं निशि** (समय) **समुत्ससर्ज** (कादम्० ६५)। **गुरौ भक्त्या मयि अनुकम्पया** (कारण) **च प्रीतास्मि** (रघु० २। ६३)।

टिप्पणी—यदि कर्ता अथवा कर्म के कोई विशेषण शब्द हों तो दुविधा मिटाने के लिए क्रियाविशेषण को कर्म के बाद में रखना चाहिए।

(क) भाववाचक उपवाक्य अर्थतः कालवाचक और कभी-कभी कारणवाचक अव्यय हुआ करते हैं, इसलिये प्रायः पहिले रक्खे जाते हैं :—

'चन्द्रिकायामभिव्यक्तायां' किं दीपिकापौनरुक्त्येन (विक्रमो० ३)।

'युष्माकं प्रेक्षमाणानाम्' एनं स्मर्तव्यशेषं नयामि (वेणी० ४)।

विशेष—कालवाची तथा स्थानवाची क्रियाविशेषण अव्यय प्रायः समुच्चय-बोधक अव्ययों के अत्यन्त सन्निकट, वाक्य के प्रारम्भ में रक्खे जाते हैं।

४१२—संयोजक शब्दों अथवा समुच्चय-बोधक अव्यय शब्दों में से **'च', 'वा', 'तु', 'हि', 'चेत्'** कभी भी आदि में नहीं आते जब कि **'अथवा', 'अथ', 'अपिच', 'किंच'** प्रायः आदि में ही आते हैं। इतरेतर-सम्बन्ध-बोधक-समुच्चयवाची अव्यय, जैसे, **यथा—तथा, यावत्—तावत्, यद्—तद्, यतः—ततः** जिन उपवाक्यों के जोड़ते हैं उनके प्रारम्भ में आते हैं। उदाहरण के लिए प्रासंगिक सेक्शनों को देखिए।

४१३—प्रश्नवाचक शब्द बहुधा वाक्य के प्रारम्भ में आते हैं;

'अपि' एतत् तपोवनम्; 'अपि' कुशली ते गुरुः; 'कथं' शास्त्राणां परिचयः; 'कियद्' वा वयः इत्यादि (कादम्० १८)।

(क) 'एव', 'नाम', 'किल', 'खलु', 'हि' आदि बल देने वाले शब्द जिन पर बल देते हैं, उन्हीं से जोड़ दिए जाते हैं। 'इव', 'नु', 'अपि' जिन शब्दों की विशेषता बताते हैं, उन्हीं के साथ आते हैं।

(ख) हा, हन्त, अहह आदि विस्मयादि-बोधक अव्यय तथा 'अहो', 'अये', 'अयि' सम्बोधन-सूचक शब्द प्रायः वाक्य के आरम्भ में आते हैं।

४१४—पुनरुक्त शब्द, अथवा किसी पूर्व प्रयुक्त शब्द का सजातीय शब्द जहाँ तक हो सके उसी शब्द के समीप रक्खा जाना चाहिये; जैसे, **गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः**।

संस्कृत वाक्य में शब्दों का क्रम या शब्द-चयन लैटिन भाषा के वाक्य में शब्दों का जो क्रम होता है, उससे बहुत कुछ मिलता है। सबसे साधारण नियम लैटिन भाषा में यह है कि साधारण वर्णन या कथन में समुच्चयबोधक अव्यय के पश्चात् कर्त्ता आता है और तब governed case with adverbs और समय, स्थान, प्रकार आदि के सूचक पद आते हैं और सबसे पश्चात् क्रिया आती है।

तृतीय सेक्शन

वाक्यों का संश्लेषण

४१५—संस्कृत वाक्यों के विश्लेषण की व्याख्या करके और शब्दों के क्रम के विषय में कुछ नियम बनाकर, अब हम विद्यार्थी को एक पग और आगे ले चलेंगे; वाक्य-निर्माण या वाक्य-रचना।

आपने पहिले ही देख लिया है कि किसी भी वाक्य में कम से कम एक कर्ता और एक क्रिया होनी चाहिए और यह भी देख लिया कि कर्ता अथवा कर्म का विस्तार विशेषण द्वारा, षष्ठ्यन्त संज्ञा शब्द द्वारा, समानाधिकरण संज्ञा द्वारा, समासों द्वारा अथवा इन सब विधियों को एक में मिलाकर भी किया जा सकता है और यह भी देखा कि क्रिया का विस्तार कालवाची, स्थानवाची, कारणवाची तथा परिणामवाची परिस्थितियों से किया जा सकता है। अब वाक्यों को बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

साधारण वाक्य

४१६—'राम' और 'गम्' शब्दों को ले लीजिए। इन दोनों को मिलाकर एक वाक्य बनाया जा सकता है—**रामो जगाम**। यह वाक्य—**रामो जगाम**—अपने मूल स्वरूप में है। कर्ता का विस्तार यों किया जा सकता है :—

(१) **दशरथस्य पुत्रः अथवा दशरथपुत्रो रामो जगाम,**

(२) **कौसल्यानन्दवर्धनः अखिलजनप्रियो दशरथपुत्रो आदि,**

(३) **भरताग्रजः कौसल्यानन्दनवर्धनः आदि आदि,**

(४) **भरताग्रजः कौसल्यानन्दनवर्धनः अखिलजनप्रियो दशरथपुत्रो रामः ससीतालक्ष्मणो रम्याणि उपवनानि पश्यन् जगाम।**

अब स्पष्टतया देखा जा सकता है कि किस प्रकार अन्तिम वाक्य दो साधारण शब्दों से अर्थात् **राम** और **गम्** से—प्रादुर्भूत हुआ है।

अभ्यास १

अर्जुन, हनुमत्, गंगा और **हरि** शब्दों को कर्ता बनाकर वाक्य बनाइए और क्रमशः उपर्युक्त विधि के अनुसार उनका विस्तार कीजिए।

अभ्यास २

रु, रुच्, पत्, रम् धातुओं का विधेय के तौर पर प्रयोग करते हुए वाक्य बनाइए, और किन्हीं भी दो विधियों के अनुसार कर्ता का विस्तार कीजिए।

अभ्यास ३

इन शब्द-युग्मों को लीजिए और किसी षष्ठ्यन्त संज्ञा शब्द तथा विशेषण द्वारा कर्ता का विस्तार करते हुए वाक्य बनाइए।

शुक—**डी**। **अंगना**—**या**। **सैनिक**—**युध्** और **गज्**—**हन्** (कर्मवाच्य) **भृत्य**—**तड्** (कर्मवाच्य)।

अभ्यास ४-५

रावणः सीतां जहार और **सारमेयोऽम्रियत**—इन वाक्यों को लीजिए और कर्ता का विस्तार सभी विधियों के अनुसार कीजिए।

४१७—विधेय यदि सकर्मक क्रिया हो तो उसको कर्म द्वारा पूरा करते हैं। **कर्म** संज्ञा अथवा सर्वनाम होता है; अतः कर्ता के समान कर्म का भी विस्तार किया जा सकता है; उदाहरणार्थ, **अहं प्रासादमपश्यम्**—यहाँ पर कर्म का विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है,

अहं विशालं प्रासादमपश्यम्। अहं वंगाधिपस्य विशालं प्रासादमपश्यम्। अहं सौख्यनिकेतनं नगरभूषणं च अनेकरक्षिपरिवृतं वंगाधिपस्य विशालं प्रासादमपश्यम्। इसी प्रकार **'राजा अमात्यं प्रोवाच'** विस्तृत किए जाने पर **राजा शास्त्राध्ययनकठोरधियम् अनुरंजितसकलप्रजाजनं सुरगुरोः प्रत्यादेशं स्वम् अमात्यं प्रोवाच।**

अभ्यास ६

(विशेषणों द्वारा विस्तृत किए हुए) उद्देश्य और विधेय देते हुए ऐसे वाक्य बनाइए जिनमें निम्नलिखित शब्दों में से प्रत्येक शब्द कर्म बन कर आवे।

ऋतूनां शतम्, अजाकुलम्, मद्गात्रम्, सभृंगाणि कमलानि, स्वं नाम, शुष्कपर्णानि, महागजम्, तण्डुलकणान्, हिमाद्रेः शिखरम्, और विपुलधनम्।

अभ्यास ७

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग करते हुए तथा कृदन्तीय विशेषणों द्वारा विस्तारित कर्मकारक देते हुए वाक्य बनाइये :—

श्रु, ग्रह्, सृज्, चुर्, पा [पीना], अद्, प्र+दा, व्यध्, रुध् और नी।

अभ्यास ८

निम्नलिखित शब्दों को कर्ता बनाकर तथा कर्ता और कर्म का विस्तार कर वाक्यों को पूर्ण कीजिए :—

सर्प, धृतराष्ट्र, कंचुकिन्, यति, पथिक, इन्द्र, राज्ञी, पाठशाला, पुत्र, पितृ।

अभ्यास ९-१०

वाक्य बनाइए और उनमें निम्नांकित धातुओं में से प्रत्येक का उपयुक्त कर्ता तथा कर्म दीजिए और कर्ता तथा कर्म का किन्हीं दो विधियों के अनुसार विस्तार कीजिए,

तृ, अभि+लिह्, परि+भ्रम्, आप्, प्रच्छ पिष्, कृ, क्री, मन, तड्।

अभ्यास ११

छः वाक्य बनाइए जिनमें कर्ता का विस्तार कृदन्तीय विशेषण द्वारा कीजिए और कर्म का विस्तार कृदन्तीय विशेषण द्वारा करके विधेय को पूरा कीजिए।

अभ्यास १२

छः वाक्य बनाइए जिनमें कर्ता तथा कर्म दोनों का विस्तार कृदन्तीय विशेषण तथा षष्ठ्यन्त संज्ञा अथवा सर्वनाम द्वारा हो।

४१८—कालवाची, स्थानवाची, प्रकारवाची, कारणवाची तथा परिणामवाची परिस्थितियों से विधेय का विस्तार किया जा सकता है। 'त्वं यासि' इस वाक्य को लीजिए। विधेय का विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है :—

त्वम् अधुना यासि (काल)। **त्वम् अधुना कुत्र यासि** (काल तथा स्थान)। **त्वम् अधुना सत्वरं कुत्र यासि** (काल, स्थान प्रकार)। **त्वम् अधुना समिदाहरणाय सत्वरं किमिति पद्भ्यामेव यासि** (काल, प्रकार,

अभिप्राय, कारण)। त्वमधुना समिदाहरणाय गुरुमपृष्ट्वा सत्वरं किमिति आदि यासि। इसी प्रकार सखे मां प्रतिपालय का विस्तार भिन्न-भिन्न विधियों से किया जा सकता है :—

सखे विरचितायां प्रयाणसंविधायां पितारावापृच्छ्य द्वारे क्षणं' मां प्रतिपालय। स 'निशितेन शरेण मध्याह्नाहारार्थं' कमपि विलोलनेत्रं हरिण-शिशुं 'नितंबदेशे' विव्याध। 'पश्यतोऽपि पितुः' त्वं ह्यः स्ववेश्मनः निष्क्रम्य किंकरेण सार्धं अतिचटुलया गत्या कुत्र खलु, अगच्छः।

अभ्यास १३

निम्नलिखित वाक्यों में क्रियाओं में उपयुक्त कालवाची तथा प्रकारवाची क्रियाविशेषणात्मक विस्तार जोड़िए :—

(१) विहगा डयन्ते (२) पुस्तकं वाचय (३) अहं गामानयम् (४) गुरूननुरुध्यस्व (५) त्वया रुद्यते (६) आपणं याति (७) सैनिका युयुधिरे (८) कृषीवलः क्षेत्रमकृषन् (९) प्रमदा उद्यानं जग्मुः (१०) संपद् उद्यमम् अनुगच्छति।

अभ्यास १४

निम्नलिखित क्रियाविशेषणात्मक विस्तारों का प्रयोग करते हुए वाक्य बनाइए जिनमें कर्ता का विस्तार दो से अधिक विधियों के अनुसार किया गया हो :—

सहसा, वारं वारं, त्रीन् संवत्सरान्, सपदि, कदा, पुनः, कल्याणाय, पूर्वं (अपादान के साथ) तदानीम्, प्रत्यनलम् प्रतिदिनम्, उपनदि द्विक्रोशं, रात्रिंदिवम्।

अभ्यास १५

निम्नलिखित का प्रयोग करते हुये वाक्य बनाइये जिनमें कर्ता का विस्तार एक विशेषण द्वारा तथा षष्ठ्यन्त संज्ञा या सर्वनाम द्वारा हो :—

सेनया सह, श्रमाद् ऋते, अनेन हेतुना, कस्य हेतोः, मित्रं सान्त्वयितुम्, जठरस्यार्थे, अपवादश्रवणात्, तथानुष्ठिते, पाठमधीत्य, गृहस्योपरि, मामंतरेण, दुर्दैवात्, अरण्ये, प्रबलवेदनया, अनु-गंगम्।

अभ्यास १६

निम्नलिखित शब्द-युग्मों को लेकर क्रिया का विस्तार कालवाची तथा स्थानवाची क्रिया-विशेषणात्मक विस्तारों द्वारा कीजिए :—

मुनि—वस्। राजन्—रक्ष। पुत्र—सेव्। कोकिल—वि+रु। हरि—क्रुध्। शिष्य—प्र+नम्।

अभ्यास १७

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग करते हुए तथा विधेय का प्रकारवाची, कारणवाची तथा परिणामवाची क्रियाविशेषणों द्वारा विस्तार करते हुए वाक्य बनाइए :—

मृ, प्र+या, प्र+स्था, मृज्, उत्+वह्, याच्, पा (रक्षा करना), स्निह्, ईश्, अधि+इ।

अभ्यास १८

निम्नलिखित कर्तृपदों को लेकर क्त्वान्त अथवा ल्यबन्त द्वारा विधेय का विस्तार कीजिए :—

भृगाः, नरः, देवाः अमी, राक्षसैः (कर्तृपद), भीमः, सामाजिकाः, दूतः, अधिराजः, अश्वत्थामा, सुभद्रा और यवनाः।

अभ्यास १९

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग करते हुए भाववाचक वाक्यांश द्वारा क्रिया का विस्तार कीजिए :—

भाष्, दह्, प्रच्छ्, कृ (क्तान्त), स्पृह्, वद्, हन् (क्तान्त), पठ्, सम्+मन्त्र्, या।

अभ्यास २०

कालवाची एवं प्रकारवाची क्रिया-विशेषणों द्वारा तथा निम्नलिखित धातुओं को तुमुनन्त बनाकर क्रिया का विस्तार कीजिए :—

बन्ध्, कथ्, चुद्, शास्, ज्ञा, स्तु, ग्रह्, आ+दा, वि+श्वस्, उप+आस्, सू, परि+नी।

अभ्यास २१

बारह वाक्य बनाइए जिनमें क्रिया का विस्तार कालवाची, स्थानवाची, प्रकारवाची, कारणवाची तथा परिणामवाची, क्रियाविशेषण-वाक्यांशों द्वारा हो।

४१६—जब विधेय के साथ-साथ कर्ता और कर्म का भी विस्तार हुआ रहता है, तब वाक्य अपने पूर्णतम स्वरूप में दृष्टिगोचर होता है। 'रविरुद्-गच्छत्' साधारणतम स्वरूप वाला वाक्य है। कर्ता और क्रिया का विस्तार करके इस प्रकार का वाक्य हो सकता है :—

'अरुणपुरःसरो' रविः 'तमोजालं निरस्य जनक्रियाप्रवृत्तये प्राच्यां दिशि झटिति' उदगच्छत्। इसी प्रकार साधारण वाक्य 'स पदवीमन्वयात्' विस्तृत होकर इस प्रकार हो सकता है—'गुरुभिरुपदिष्टः' स प्रथमे वयसि वर्तमानोऽपि संसाराद् उद्विजमानः अनेकयतिप्रतिपन्नां परमसुखदायिनीं साधुपदवीं निवारयतोऽपि पितुः पारत्रिकसुखावाप्तये प्रशान्तचेतसा अन्वयात्, इसी प्रकार 'पांथः भुजंगं ददर्श' विस्तृत किए जाने पर इस प्रकार हो सकता है :—

अथ असौ पांथः ग्रामांतरं गच्छन् अध्वश्रमार्तः कथमपि पदानि न्यस्यन् अनाक्रान्ते एवार्धपथे कंचिद् बृहत्कायं प्रसारितफणं श्यामदेहं भुजंगं यदृच्छया तरुतले ददर्श।

अन्य उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

इति परिकलय्य किंचिदुन्नमितकन्धरो भयचकितया दृशा दिशोवलोक्य तृणेऽपि चलति पुनः प्रतिनिवृत्तं तमेव पदे पदे पापकारिणम् उत्प्रेक्षमाणो निष्क्रम्य तस्मात् तमालतरुमूलात् सलिलसमीपम् उपसर्तुम् प्रयत्नमकरवम् (कादम्० ३५)। अनुबध्यमानश्च तया तां सर्वाम् अतिथिसपर्याम् अतिदूरावनतेन शिरसा सप्रश्रयं प्रतिजग्राह (कादम्० १३३)।

किंनिमित्तं वा अनेकसिद्धसाध्यसंबाधानि सुरलोकसुलभान्यपहाय दिव्याश्रमपदानि एकाकिनी वनमिदममानुषमधिवसति (कादम्० १३५)।

अभ्यास २२

छः वाक्य बनाइए जिनमें कर्ता तथा विधेय दोनों का विस्तार सभी विधियों से रहे। धाव्, प्रकाश्, उत्+स्था, पत्, आस्, भ्रम् धातुओं का प्रयोग कीजिए।

अभ्यास २३

छः वाक्य बनाइए जिनमें क्रिया और कर्म का विस्तार रहे। भू, स्तु, मन, 'दुह् चि, विद्' धातुओं का प्रयोग कीजिए।

अभ्यास २४

छः वाक्य बनाइए जिनमें कर्ता, क्रिया तथा कर्म का विस्तार एक से अधिक विधियों के अनुसार रहे।

४२०—साधारण वाक्यों में अर्थ को बिना बदले हुए क्रिया के वाच्य का परिवर्तन करके शब्दों का रूपान्तर किया जा सकता है। **दासी पुष्पाण्यानयत्** इस वाक्य का वही अर्थ है जो **दास्या पुष्पाणि आनीयन्त** का है। कभी-कभी वाक्यांश बदलकर उक्ति या वाक्य का रूपान्तर किया जा सकता है; **कस्माद् हेतोरत्र निवससि, पिता सपुत्रो ग्रामं गतः**; इन वाक्यों का वही अर्थ है जो **किमर्थमत्र निवससि और पिता पुत्रेण सह (अथवा सहितः) ग्रामं गतः** का है। परन्तु संस्कृत में हम एक ही भाव को भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा प्रकट कर किसी भी वाक्य के शब्दों का रूपान्तर कर सकते हैं। **उद्यमात् विभवः प्रभवति**—इस वाक्य को लीजिए। अर्थ को बदले बिना यह वाक्य निम्न-लिखित ढंगों से अनेकधा प्रकट किया जा सकता है :—

उद्यमाद् विभव उत्पद्यते-संजायते।
उद्यमो विभवाय कल्पते-भवति-जायते।
उद्यमप्रभवो विभवः।
उद्यमेन नरो विभवं याति-विभवयुतो भवति।
उद्यमी नरो विभवसंपन्नो भवति।
उद्यममवलम्ब्य नरो विभवं याति।
उद्यमपरेण नरेण (प्रायः) विभवयुतेन भाव्यम्।
उद्यमबीजाद् विभवांकुरः प्ररोहति।

अभ्यास २५

उपर्युक्त वाक्य के आदर्श पर निम्नलिखित वाक्यों को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकट कीजिए :—

(१) निर्धनता सर्वापदामास्पदम्, (२) अस्य कोपः सनिमित्तः, (३) मूर्खाणामुपदेशः प्रकोपाय भवति, (४) अविवेकः आपदां परं पदम्, (५) न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते, (६) विद्वान् सर्वत्र पूज्यते, (७) दैवपरा नरा

विनश्यन्ति (८) सुतो लालनाद् विनश्यति, (९) त्वमेव नः परमा गतिः, (१०) पराभवोऽपि मानिनाम् उत्सव एव।

मिश्रित वाक्य

४२१—मिश्रित वाक्य को देखने से यह स्पष्ट ही है कि उसमें एक प्रधान कथन होता है और कम से कम एक आश्रित कथन। प्रधान उपवाक्य स्वतन्त्र हुआ करता है और आश्रित उपवाक्य बनावट में प्रधान के ऊपर आश्रित रहते हैं। इस प्रकार इस वाक्य को लीजिए—**दूतो राज्ञे वार्तां न्यवेदयत्**। यह साधारण वाक्य है। तीन प्रकार के आश्रित उपवाक्यों में से कोई एक भी जोड़कर यह मिश्रित बनाया जा सकता है।

सामंता महाराजमभिद्रोग्धुम् अहर्निशं यतन्ते इति वार्तां दूतो राज्ञे न्यवेदयत् (संज्ञा उपवाक्य)।

यः पौरजानपदानपसर्पितुं प्रयुक्तः स दूतः

(विशेषण उपवाक्य)।

काले उपायश्चिन्त्येतेति हेतोः दूतः आदि।

(क्रियाविशेषण उपवाक्य)।

४२२—अब मिश्रित वाक्य बनाने के लिए कुछ अभ्यास दिए जायँगे। आश्रित वाक्य बनाने के लिए जो शब्द प्रयोग में लाए जाते हैं, वे पृष्ठ २८४ पर सेक्शन ३९० के चक्र में दिखाए गए हैं। उन शब्दों को इस अवसर पर देख लेना चाहिए।

अभ्यास २६-२८

पाँच वाक्य बनाइए जिनसे संज्ञा उपवाक्य (१) कर्ता अथवा कर्म बने (२) प्रधान उपवाक्य के कर्ता अथवा कर्म का समानाधिकरण हो, अथवा (३) प्रधान उपवाक्य में स्थित किसी शब्द का कर्म बने।

अभ्यास २९

निम्नलिखित में से प्रत्येक का एक मिश्रित वाक्य बनाइए;

सुवर्णकार, गुरु, विद्या, सुशिष्य, बाजीनृप, शिवराज।

अभ्यास ३०

चार मिश्रित वाक्य बनाइए जिनमें विशेषण-उपवाक्य क्रमशः कर्ता, कर्म, किसी क्रिया-विशेषणात्मक विस्तार की, और कर्ता, कर्म या क्रिया के किसी विस्तार की विशेषता बतावे।

अभ्यास ३१-३४

छः मिश्रित वाक्य बनाइए जिनमें (१) कालवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य हो (२) स्थानवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य हो (३) प्रकारवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य हो (४) कारणवाची, दशावाची, अभिप्रायवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य हो। निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग कीजिए—

स्वन्, उप+स्था, हन्, लभ्, पत्, आ+राध् (प्रेरणार्थक)।

अभ्यास ३५

छः मिश्रित वाक्य बनाइए जिनमें क्रमशः कालवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य, स्थानवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य, सादृश्यवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य, प्रकारवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य, परिणामवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य तथा दशावाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य आवे।

४२३—ऐसे मिश्रित वाक्यों का अभ्यास दिया जा चुका जिनमें एक प्रकार का आश्रित उपवाक्य प्रयुक्त था। अब ऐसे वाक्य लिए जायँगे जिनमें दो या दो से अधिक प्रकार के आश्रित उपवाक्य आवेंगे। इस वाक्य को लीजिए—**"वृषलः समाज्ञापयति।" य एष क्षपणको जीवसिद्धिः नाम राक्षस-प्रयुक्तो विषकन्यया प्रवर्तकं घातितवान्, स एकमेव दोषं प्रख्याप्य सनिकारं नगरात् निर्वास्यताम् इति** (मुद्रा० १)।

यहाँ **'समाज्ञापयति'** का कर्म **"स एकमेव दोषं प्रख्याप्य सनिकारं नगरात् निर्वास्यताम् इति"** यह उपवाक्य है। इस उपवाक्य के कर्ता की विशेषता एक विशेषण-उपवाक्य कर रहा है; वह विशेषण-उपवाक्य यह है, **"य एष क्षपणको जीवसिद्धिः नाम राक्षसप्रयुक्तो विषकन्यया प्रवर्तकं घातितवान्।"**

इसी प्रकार **"यदैव मयायं देवस्य उज्जयिनीगमनवृत्तान्तो निवेदितः तदैव सनिर्वेदमेवमेतदित्युक्त्वा उत्थाय महाश्वेता पुनस्तपसे स्वमाश्रमपदमाजगाम"** इस वाक्य में प्रधान क्रिया की विशेषता एक कालवाची क्रियाविशेषण-उपवाक्य कर रहा है; वह कालवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य यह है—**"यदैव मयायं देवस्योज्जयिनीगमनवृत्तान्तो निवेदितः** और इसके एक विस्तार के साथ एक संज्ञा-उपवाक्य जुड़ा हुआ है (**उक्त्वा** का कर्म **एवमेतत्** है)।

इस प्रकार एक ही मिश्रित वाक्य में दो या दो से अधिक प्रकार के आश्रित उपवाक्य जोड़े जा सकते हैं; **यदा अतितृष्णा नराणां हृदये पदं करोति तदा ते यदीश्वरेणात्मने स्थित्यनुरूपं दत्तं तेनापरितुष्टाः सन्तस्ततोधिकतरमीहमाना यत्तैः सुखेन भोक्तुं शक्यं तृष्णातिरेकात् प्रायो हापयन्तीति असकृद् वयमस्मिन् जगति प्रतीमः** । इस मिश्रित वाक्य में एक क्रियाविशेषण-उपवाक्य यह है—**यदा···करोति** जो **'हापयंति'** की विशेषता बताता है, दो विशेषण-उपवाक्य हैं (१) **यत्···दत्तम्** और (२) **यत्·····शक्यम्** और एक संज्ञा-उपवाक्य है **'तत्ते ···हापयन्ति'** ।

अभ्यास ३६-४०

पाँच मिश्रित वाक्य बनाइए, जिनमें प्रत्येक में (१) एक विशेषण-उपवाक्य और एक संज्ञा-उपवाक्य हो (२) एक क्रियाविशेषण-उपवाक्य और एक विशेषण-उपवाक्य हो (३) एक संज्ञा-उपवाक्य और एक क्रियाविशेषण-उपवाक्य हो (४) एक क्रिया-विशेषण-उपवाक्य और एक संज्ञा-उपवाक्य हो, और इनमें से प्रत्येक की विशेषता एक विशेषण-उपवाक्य करे । (५) तीनों उपवाक्य साथ-साथ प्रयुक्त हों ।

संयुक्त वाक्य

४२४—संयुक्त वाक्य में दो या दो से अधिक प्रधान कथन रहते हैं । ये कथन सब के सब साधारण अथवा मिश्रित, या साधारण और मिश्रित (मिले हुए) हो सकते हैं । यह नियम सामूहिक, विरोधात्मक और आनुमानिक तीनों सम्बन्धों में होता है ।

एक साधारण वाक्य लीजिए **"यात्रिकः काशीमगच्छत् ।"** इसको तीनों सम्बन्धों को दिखलाते हुए संयुक्त वाक्य में परिवर्तित करने के लिए हम इस प्रकार कह सकते हैं :—

(१) **यात्रिकः काशीमगच्छत्, गंगायाः पावने सलिलेऽस्नात्, सकलानि च तत्रत्यानि तीर्थानि दृष्ट्वा स्वग्रामं न्यवर्तत** ।

(२) **यात्रिकः काशीमगच्छत् किन्तु गंगासलिले स्नानार्थमवतीर्णः केनचित् महानक्रेण सहसा गृहीत्वाऽभक्षयत** ।

(३) **यात्रिकः काशीमगच्छत् तेनात्मानं परिपूतं मेने** ।

यहाँ पर संयुक्त वाक्यों के भिन्न-भिन्न अंश साधारण वाक्य के स्वरूप में हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे मिश्रित बनाए जा सकते हैं। इस प्रकार वाक्य (२) को लीजिये,

यात्रिकः काशीमगच्छत् किंतु यावत् स्नानार्थं गंगासलिलेऽवतरति तावत् केनचित् महानक्रेण सहसा गृहीत्वा भक्षितः।

यहाँ द्वितीय अंश मिश्रित वाक्य है और पहिला अंश साधारण वाक्य है, जो मिश्रित वाक्य बनाया जा सकता है :—

श्रीविश्वेश्वरदर्शनेनात्मानं निर्धौतकल्मषं करोमीति यदा गाढाभिलाषो मनसि पदं चकार, तदा स यात्रिकः आदि आदि।

अभ्यास ४१-४२

ऊपर के आदर्श पर (१) पाँच संयुक्त वाक्य बनाइये जिनके अंग साधारण वाक्य रहें (२) पाँच संयुक्त वाक्य बनाइये जिनके अंग मिश्रित वाक्य हों।

अभ्यास ४३

एक संयुक्त वाक्य लिखिये जिसमें निम्नलिखित में से प्रत्येक का वर्णन हो :—

(१) वर्षाकालः (२) पाणिनिः (३) अराजको जनपदः (४) राजधर्मः (५) धनम् और (६) कलिदासः

४२५—अंग्रेजी भाषा में हम participial, prepositional या अन्य phrases तथा Subordinate या Co-ordinate clauses द्वारा साधारण वाक्यों को संश्लिष्ट या संयुक्त कर सकते हैं। इस प्रकार जो वाक्य बनता है वह साधारण, मिश्रित अथवा संयुक्त हो सकता है। उदाहरण के लिये इन वाक्यों को लीजिये, "With these thoughts, I came near the place. Just then I heard sounds of loud lament. I, therefore, eagerly pressed forward. Then I could clearly distinguish, Kapinjala's voice upbraiding Pundarika for his cruelty. The cruelty lay in leaving his friend to live without him". इन वाक्यों का निम्न प्रकार से एक वाक्य बनाया जा सकता है;

"With these thoughts as I came near the place I heard sounds of loud lament; and pressing eagerly forward, I could clearly distinguish Kapinjala's voice upbraiding Pundarika for his cruelty in leaving his friend to live without him" इस प्रकार यह एक संयुक्त वाक्य बना जिसका पूर्व भाग एक मिश्रित वाक्य है।

संस्कृत में बहुव्रीहि तथा तत्पुरुष समासों द्वारा बहुत से साधारण वाक्य एक वाक्य में जोड़े जा सकते हैं। इस प्रकार जो नया वाक्य बनेगा, वह या तो साधारण वाक्य होगा या मिश्रित या संयुक्त।

एकदा सा गम्भीरध्वनिं शुश्राव। तमाकर्ण्य तस्याः कुतूहलमुपजातम्। अतः सा तस्यां दिशि दृष्टिं प्रेरितवती महान्तं च शबरगणं ददर्श। इन सब वाक्यों को मिलाकर एक साधारण वाक्य इस प्रकार बनाया जा सकता है—**एकदा श्रुते गंभीरे ध्वनौ सा तदाकर्णनोपजातकुतूहला तद्दिशि प्रेरितदृष्टिः महान्तं च शबरगणं ददर्श।** इसी प्रकार **अथैकदा राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनमियाय। तं तस्य सैनिका अमात्याश्चानुजग्मुः। वने स बहून् जघान। तेषु एकं मृगं पलायमानमनुससार मार्गे दिव्याश्रमपदं ददर्श।** ये वाक्य एक मिश्रित वाक्य में इस प्रकार जोड़े जा सकते हैं :—

सैनिकैरमात्यैश्चानुगतो यदैकदा राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनमियाय तदा स तत्र बहून् मृगान् हत्वा तेष्वेकं मृगं पलायमानमनुसरन् मार्गे दिव्याश्रमपदं ददर्श। अथवा इससे भी अधिक संक्षिप्त इस प्रकार किया जा सकता है—**ससैनिकामात्यो राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनं गतः बहून् मृगान् आदि आदि।**

अभ्यास ४४

निम्नलिखित वाक्यसमूहों को जोड़कर एक साधारण अथवा मिश्रित अथवा संयुक्त वाक्य बनाइये।

(१) एवं महाश्वेता आहारं परिसमाप्य संध्योचिताचारान्निवर्तयामास। पश्चात्सा एकस्मिन् शिलातले विश्रब्धमुपाविशत्।

तथास्थितां तां चन्द्रापीडो निभृतमुपससार मुहूर्तमिव स्थित्वा च तां स सविनयमवादीत्।

(२) तस्मिन्दिव्याश्रमपदे दुष्यंतः कामपि कन्यकामपश्यत्। सा कन्या चारुसर्वाङ्गी आसीत्। स कण्वमुनेराश्रमः। तं राजा प्राविशत्। तदा तत्सत्कारार्थं शकुन्तला आश्रमादूबहिराजगाम। शकुन्तला कण्वस्य कृतिका दुहितासीत्। सा सप्रश्रयं दुष्यंतं स्वागतं व्याजहार।

(३) पेशवे इति ख्यातानां महाराष्ट्राधिकारिणां मध्ये चरमो बाजीराव इत्येको बभूव। स पुण्यपत्तनमधितष्ठौ। स किल बहुगुणोपपन्न आसीत्। किन्तु तस्य राजकार्यावेक्षणविषयेऽतीव मंदादर आसीत्। अतः कर्मसचिवस्थाने बहवो नर्मसचिवा एव तं पर्यवारयन्। तैस्तस्य मनो विषयभोगेषु सुतरामाकृष्यत। एवं कामाधीने राजनि तच्छंदानुवर्तिनि चामात्यगणे महाराष्ट्रदेशोऽनायासेनैव रंध्रान्वेषणदक्षाणां शत्रूणामामिषतां गतः।

४२६ – ऊपर बता दिया गया है कि कतिपय दिए हुए वाक्यों को जोड़ कर किस प्रकार एक वाक्य बनाया जा सकता है। अब यह बताया जायगा कि किसी दिए हुए वाक्य को किस प्रकार भिन्न-भिन्न वाक्यों में तोड़ना चाहिए। इससे विद्यार्थी को किसी भी दिए हुए मौलिक संस्कृत वाक्य की टीका संस्कृत में ही करने का अच्छा अभ्यास प्राप्त हो जायगा। इस प्रणाली से टीका करने के कार्य में बड़ी सुविधा प्राप्त हो जायगी। यदि दिए हुए वाक्य को भिन्न-भिन्न वाक्यों में तोड़कर विद्यार्थी मौलिक शब्दों के स्थान पर अन्य पर्यायवाची शब्द रख दे तो मानों उसने उस वाक्य का स्वतंत्र अनुवाद कर दिया।

उदाहरणार्थ यह श्लोक लीजिए—गुणदोषौ बुधो गृह्णात्निदुर्बेडाविवेश्वरः। शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कंठे नियच्छति। इसे भिन्न-भिन्न वाक्यों द्वारा इस प्रकार अनूदित कर सकते हैं—

शिवः इन्दुं विषं च द्वे अपि स्वीकरोति, किन्तु इन्दुं शिरोधारणपूर्वकं प्रशंसति विषं च स्वकण्ठे नियच्छति। एवं प्राज्ञो नरः कस्यचिन्नरस्य गुणं दोषमुभावपि गृह्णाति। किन्तु गुणं ग्रीवान्दोलनपूर्वकं श्लाघते, दोषं तु स्वकंठे नियम्य तन्नाममात्रमपि विलोपयति।

वस्तुतः यह मौलिक श्लोक की स्वतन्त्र टीका है, पर इससे अर्थ पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। एक दूसरा वाक्य लीजिए :—

संग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुरष्टादशद्वीपनिखातयूपः।
अनन्यसाधारणराजशब्दो बभूव योगी किल कार्तवीर्यः॥

यह श्लोक निम्नलिखित प्रकार से कई वाक्यों में तोड़ा जा सकता है :—

पुरा किल कार्तवीर्यो नाम योगी समजायत। तस्य युद्धेषु (एव) बाहुसहस्रं परैरनुभूतम् (अन्यत्र स द्विभुज एव)। तेन अष्टादशसु द्वीपेषु यज्ञस्तम्भाः स्थापिताः। तथा च तस्य राजशब्दो नान्यसामान्य आसीत्। इसी प्रकार **'श्रुतिसुभगं गीतध्वनिं श्रुत्वा संजातकुतुको ध्वनिप्रभवजिज्ञासया कृतगमनबुद्धिः दत्तपर्याणम् इन्द्रायुधमारुह्य प्रियगीतैः प्रथमप्रस्थितैः वनहरिणैरुपदिश्यमानवर्त्मा पश्चिमया सरस्तीर-वनलेखया निमित्तीकृत्य तं गीतध्वनिमभिप्रतस्थे'** वाक्य का विस्तार इस विधि से किया जा सकता है—**यदा स सुखश्रवं गीतशब्दमशृणोत् तदा संजातकुतूहलः तत्प्रभवमुपलब्धुं स ऐच्छत। तदनुरोधात् गमनाय मतिं विधाय इन्द्रायुधपृष्ठे पर्याणं समारोप्य तमारुरोह। तन्मार्गोपदेशाय इव सदाप्रियगीतरवाः वनहरिणाः तस्मात् पूर्वमेव तदभिप्रेतां दिशं प्रस्थिताः। ताननुसरन् स पश्चिमेन सरस्तीरप्रान्तेन तं गीतध्वनिम् उद्दिश्य ययौ।**

ऊपर दिए हुए उदाहरणों की शैली के अनुसार तथा सेक्शन ४२० की सहायता से विद्यार्थी संस्कृत-लेखकों की कृतियों से वाक्यों को लेकर उनकी टीका कर सकते हैं।

चतुर्थ सेक्शन

पत्र-लेखन

४२७—पत्र-लेखन के विषय में संस्कृत लेखकों ने बहुत ध्यान नहीं दिया। जितने संस्कृत ग्रन्थ विद्यमान हैं उनमें पत्रों के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं, क्योंकि हमारे पूर्वज पत्र-लेखन-प्रणाली का अधिक आश्रय नहीं लेते थे। अतएव संस्कृत में पत्र-लेखन में वे कठिनाइयाँ नहीं आतीं जो प्रायः अंग्रेजी में आती हैं क्योंकि अंग्रेजी में विविध प्रकार के पत्र चलते हैं—वैयक्तिक, व्यापारिक, राजकीय आदि आदि। अंग्रेजी में कुछ निश्चित विधियाँ होती हैं जिनके अनुसार पत्र प्रारम्भ किए जाते हैं। सम्बोधित व्यक्ति की स्थिति के अनुसार पत्रों के इन स्वरूपों में भी वैभिन्नय होता है। इस अन्तर के अतिरिक्त दूसरी कोई भी ऐसी बात नहीं रहती जिससे यह पहिचाना जा सके कि अमुक वैयक्तिक पत्र है (पिता का पत्र पुत्र को), अमुक राजकीय पत्र है (अमात्य की ओर से राजा को) अथवा अमुक पत्र किसी अन्य प्रकार का है (एक व्यक्ति की ओर से अन्य व्यक्ति को)। संस्कृत में पत्र-लेखन की जो बहुत प्रचलित विधियाँ हैं, वे उदाहरणपूर्वक इस सेक्शन में दी जायँगी।

४२८—इसके पूर्व कि विद्यार्थियों को पत्र-लेखन के विस्तार अथवा विवरण का अध्ययन करने को कहा जाय, हम पहले दो उदाहरण प्रस्तुत करेंगे :—

(१) स्वस्ति, महेन्द्राद्रीपात् परशुरामो लंकायाम् अमात्यं माल्यवन्तमभ्यर्हयति। अत्रैव परममाहेश्वरं लंकेश्वरम् अभिनन्द्य ब्रवीति। विदितमेतद् वो यदस्माभिः दण्डकारण्यतीर्थोपासकेभ्यः तपोधनेभ्यः प्रतिज्ञातमभयम्। तत्र विराध-दनु-कबन्ध-प्रभृतयः केप्यभिचरन्तीति श्रुतम्। तत् तान् प्रतिषिध्य सद्वृत्तिम् अस्मद्धितां च माहेश्वरप्रीतिमनुरुध्यतां भवंतः।

ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये।

जामदग्न्यश्च वो मित्रमन्यथा दुर्मनायते ॥ इति ।

(२) और भी अधिक अर्वाचीन प्रणाली का नमूना यह है :—

स्वस्ति । श्रीमत्संस्कृताद्यनेकविद्याविनयविराजमाना राजमान्याः श्रीयुतगोखले उपनामधारिणः कृष्णरावाख्याः शतशः साष्टांगप्रणाम-पुरस्सरं विज्ञाप्यन्ते। यत् काशीतो भवदर्थेन आनीतस्य मानवधर्म-शास्त्रग्रन्थस्य वार्ताहरदेयभागे सहितं मूल्यं सार्धदशरूपकपरि-मितमिमां पत्रिकां भवद्धस्तं प्रापयतो गोविंदस्य हस्ते दीयतामिति एषा विज्ञप्तिः ।

पुण्यपत्तने
मार्गशीर्षमुदि १८०७ संवत्सरे
१५

पटवर्धनकुलोत्पन्नस्य
हरिसूनोर्नारायणस्य

४३६—अब विद्यार्थियों का ध्यान निम्नलिखित विषयों की ओर आकर्षित किया जाता है,

(१) प्रत्येक पत्र 'स्वस्ति' शब्द से प्रारम्भ होता है ।

(२) जिस स्थान से पत्र लिखा जाता है उस स्थान का उल्लेख पहिले किया जाता है, और पंचमी विभक्ति में रक्खा जाता है । इस पंचमी विभक्त्यन्त शब्द का अन्वय प्रधान क्रिया के साथ रहता है । कभी-कभी उस स्थान का उल्लेख अन्त में किया जाता है और सप्तमी में रक्खा जाता है, जैसा कि ऊपर दिए हुए उदाहरण नं० २ में है ।

(३) सम्बोधन का शब्द प्रत्यक्ष प्रकट नहीं किया जाता । प्रत्युत **तत् तत्** सम्बन्धों को सूचित करने वाले किसी शब्द द्वारा प्रकट कर दिया जाता है; जैसे, **'आयुष्मत्'** शब्द किसी छोटे सम्बन्धी के लिए प्रयुक्त होता है । **'मित्र'** शब्द मित्रता का सम्बन्ध सूचित करने के लिए प्रयोग में आता है ।

(४) लेखक का नाम अन्त में नहीं लिखा जाता, बल्कि प्रारम्भ में आता है, और आदि वाक्य का कर्ता बनाकर रक्खा जाता है । सम्बन्ध की घनिष्ठता की मात्रा प्रथम वाक्य की क्रिया में प्रकट की जाती है (**'अभ्यर्हयति'** का अर्थ है 'श्रद्धांजलि अर्पण करता है' जिसका अर्थ यह हुआ कि लेखक सम्बोधित व्यक्ति का मित्र है । **'विज्ञाप्यन्ते'** से यह प्रकट होता है कि लेखक और सम्बोधित व्यक्ति में केवल साधारण परिचय मात्र है । **'परिष्वज्य दर्शयति'**

से प्रकट होता है कि लेखक सम्बोधित व्यक्ति का निकट सम्बन्धी है; जैसे, पिता, पति आदि।

टिप्पणी—अर्वाचीन पत्रों में लेखक का नाम अन्त में आता है और षष्ठी विभक्ति में रखा जाता है (जैसा कि ऊपर के उदाहरण नं० २ के पत्र में है)। इस षष्ठ्यन्त शब्द का सम्बन्ध **'विज्ञप्ति'** **'प्रार्थना'** या इसी प्रकार के अन्य शब्द से रहता है। ध्यान रहे कि यह शैली अधिक लोकोपचारपूर्ण है, और उसी दशा में काम में लाई जानी चाहिए जब कि लेखक सम्बोधित व्यक्ति को न जानता हो, अथवा सम्बोधित व्यक्ति से परिचित न हो।

(५) पत्र का प्रारम्भ प्रथम पुरुष में हुआ करता है, यद्यपि पत्र के मध्य भाग में दूसरे पुरुष भी आ सकते हैं।

(६) सम्बोधित व्यक्ति का जो नाम कभी-कभी अंग्रेजी में कागज के बाएँ कोने पर अन्त में लिखा जाता है और लिफाफे के ऊपर पूरा-पूरा लिखा जाता है—वही नाम संस्कृत में लेखक के निवास-स्थान के सहित आदि वाक्य में दिया जाता है, और क्रिया का कर्ता अथवा कर्म बना कर (जैसा कि ऊपर के उदाहरण नं० २ में है), अथवा उसके साथ किसी अन्य प्रकार से सम्बद्ध करके रक्खा जाता है। यही पत्र का पता कहलाता है।

(७) संस्कृत में पत्र लिखने की तारीख नहीं दी जाती। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उसे क्रिया का क्रियाविशेषण विस्तार बनाकर सप्तमी विभक्ति में या पत्र के बाएँ कोने में अन्त में रखते है; जैसे, **शुभानुसंवत्सरे वैशाखवदि १३ भौमे।**

४३०—सुविधा के लिए पत्र दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं—

(१) **घरेलू पत्र** वे हैं जो किसी कुटुम्ब के भिन्न-भिन्न प्राणियों के बीच में लिखे जाते हैं।

(२) **अन्य पत्र** वह है जो मित्र द्वारा मित्र के पास, शिष्य द्वारा आचार्य के पास, अमात्य द्वारा राजा के पास, अथवा एक व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्ति के पास भेजा जाता है। इन्हें हम **"विविध पत्र"** के नाम से सम्बोधित करेंगे।

१—घरेलू पत्र

४३१—पिता द्वारा पुत्र के पास भेजे हुए, बड़े द्वारा छोटे के पास भेजे हुए, अथवा पति द्वारा पत्नी के पास भेजे हुए पत्रों में सम्बन्ध की घनिष्ठता की मात्रा 'स्नेहात् परिष्वज्य,' 'उत्तमांगे चुम्बन्' 'सस्नेहमालिंग्य' आदि आदि से प्रकट की जाती है।

यहाँ पर कुछ उदाहरण दिये जायँगे :—

(क) पिता की ओर से पुत्र को पत्र :—

स्वस्ति। यज्ञशरणात्सेनापतिः पुष्पमित्रो वेदिशस्थं पुत्रमायुष्मंतमग्निमित्रं स्नेहात्परिष्वज्य अनुदर्शयति। विदितमस्तु। योसौ राजसूययज्ञे दीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृतं वसुमित्रं गोप्तारमादिश्य निरर्गलस्तुरगो विसृष्टः स सिंधोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनानां प्रार्थितः। ततः उभयोः सेनयोर्महानासीत्संमर्दः। किंतु वसुमित्रेण प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निवर्तितः। सोहमिदानीं पौत्रेण प्रत्याहृताश्वो यज्ञे। तदिदानीमकालहीनं विगतरोषचेतसा भवता वधूजनेन सह यज्ञसंदर्शनायागंतव्यमिति।

(ख) स्वस्ति। उज्जयिनीतः परममाहेश्वरो महाराजाधिराजो देवस्तारापीडः सर्वसंपदामायतनं चंद्रापीडमुत्तमांगे चुम्बन्नंदयति। कुशलिन्यः प्रजाः किंतु कियानपि कालो भवतो दृष्टस्य। बलवदुत्कंठितं नो हृदयम्। देवी च सहांतःपुरैर्म्लानिमुपनीता। अतो लेखवाचनविरतिरेव प्रयाणकालतां नेतव्येति।

(ग) और भी आधुनिक ढंग का पत्र निम्नलिखित प्रकार का होगा :—

स्वस्ति। पंचवटीतो गोविंदशर्मा पुण्यपत्तने पुत्रं विश्वनाथं (अथवा आयुष्मंतं विश्वनाथं) सोत्कंठं सस्नेहं निर्भरमालिंग्य कुशलं वार्तयति यथा। कार्यं च। कुशलमिहास्माकं सर्वेषाम्। भवदीया कुशलवती वार्ता सर्वदा प्रहेया। अद्यैव भवदर्थेस्मिन्मित्रस्य परशुरामस्य हस्ते विंशती रूपका दत्ताः। तेषां विनियोगः कथं कृत इति यथावसरं निवेदनीयमिति।

शके १८०७ मार्गशीर्षवदि १४ भौमेऽहनि।

४३२—पिता अपने पुत्र को, बड़ा अपने छोटे को तथा बड़ा सम्बन्धी अपने छोटे सम्बन्धी को अधोनिर्दिष्ट ढंग से पत्र लिखेगा—

स्वस्ति। श्रीमच्चिरंजीविषु अमुकशर्मसु प्राणाधिकतरेषु अमुकस्य (पितुः, भ्रातुः आदि जैसा भी हो) सस्नेहा आशिषः स्फुरंतु। विदितमस्तु आदि; या,

स्वस्ति। अमुकस्थानात् अमुकस्थानवासिनं चिरंजीविनम् अथवा आयुष्मंतम् अमुकशर्माणम् अमुकशर्मा सस्नेहमाशीःसहस्रपूर्वकं कुशलं वार्तयति; अथवा सोत्कंठं सस्नेहं समालिंग्य कुशलं वार्तयति यथा। आदि,

(क) पति की ओर से पत्नी को,

स्वस्ति। अमुकस्थाने पालितपरमपतिव्रतगुणां सौभाग्यशालिनीं भार्यामुकानाम्नीम् अमुकः सस्नेहं समालिंग्य कुशलं वार्तयति यथा। कार्यं च। कुशलमिहास्माकम्। तत्रत्यसमस्तमानुपाणां कुशलवती वार्ता प्रहेया। अथवा एवंगुणासु प्राणेभ्योपि प्रियतरासु नितांतालिंगनपूर्वकस्नेहसमूहाः आदि।

४३३—जब छोटा अपने बड़े को अथवा पत्नी अपने पति को पत्र लिखे तो इस ढंग से लिखे—

१—पुत्र की ओर से पिता को:—

(१) स्वस्ति। अमुकस्थाने अनेकगुणालंकृतस्नेहगुणभूषितपुत्रवत्सलपूज्यपितृपादारविंदान् अमुकस्थानात्सदाविनीतः सुतः (अथवा सदाज्ञाविधायी पितृभक्तितत्परः सुतः) अमुको महाभक्त्या सबहुमानं क्षितितलनिहितमौलिना साष्टांगं प्रणम्य सविनयं विज्ञापयति। × × × सर्वाभ्यो मातृप्रभृतिभ्यो मदीयः प्रणामो वाच्यः। कार्यादिकं च सदादेष्टव्यमिति।

(२) स्वस्ति। श्रीमत्पितृचरणेषु अकिंचित्करकिंकरस्य सुतस्य (कभी कभी मम) बद्धकरसंपुटं प्रणतिततिसहस्रमजस्रम्। कार्यं च इत्यादि

(३) स्वस्ति श्रीजन्मकर्मार्थयज्ञेषु जनकेष्वतः।
स्नेहार्द्रभावसहिताः स्फुरन्तु नतयः पराः॥

टिप्पणी—जब छोटा भाई बड़े भाई को अथवा पुत्र अपनी माता को पत्र लिखे तो उसे आवश्यक परिवर्तन कर देना चाहिए।

२—पत्नी की ओर से पति को :—

स्वस्ति। यथास्थाने सकलपूज्यतमगुणगणालंकृतभर्तुः पादान् (कभी-कभी नाम दे दिया जाता है) अमुकस्थानात्सदाज्ञाविधायिनी अमुका पतिसेवातत्परा कंठश्लेषपूर्वकं सस्नेहं सोत्कंठं सविनयं प्रणम्य विज्ञापयति यथा। कार्यं च।

२—विविध

४३४—अब 'विविध' वर्ग वाले पत्रों को लेंगे। मित्र को लिखते समय लोग प्रायः सम्मानद्योतक शब्दों का प्रयोग करते हैं; जैसे, अमुकम् अर्हयति, अभिनन्दयति, अभिनन्द्य ब्रवीति, सस्नेहम् अनुदर्शयति, प्रणतिपुरःसरं निवेदयति इत्यादि।

इस प्रकार के एक पत्र का उदाहरण पहिले ही दे दिया गया है (उदाहरण नं० १ देखिए)। मित्र को पत्र लिखते समय विद्यार्थी उस पत्र को नमूना मान सकता है।

नीचे कुछ आधुनिक नमूने दिए जाते हैं :—

(१) स्वस्ति यथास्थाने विद्वत्त्वदाक्षिण्यौदार्यादिगुणालंकृतशरीरं परमप्रेमनिधानं वयस्यम् अमुकम् अमुकस्थानादमुकः सोत्कंठं सस्नेहं गाढमालिंग्य कुशलं वार्तयति यथा। कार्यं च।

(२) स्वस्ति। अस्मदेकाश्रयीभूतेषु विद्याविनयादिमंडितेषु पूज्यतमेषु अमुकस्थाननिवासिषु अमुकशर्मसु अमुकस्थानवासिनः अमुकस्य प्रणतिसहस्रमजस्रम्।

४३५—अपरिचित लोग निम्नलिखित सामान्य ढंग को काम में ला सकते हैं :—

स्वस्ति। अमुकस्थाननिवासी अमुकनामकः श्रीमतः सकलविद्यावदातचेतसः अमुकान् अनेकप्रणामपूर्वकं विज्ञापयति। अथवा, अमुकाः एवंगुणोपेताः अमुकेन प्रणामपुरःसरं विज्ञाप्यन्ते निवेद्यन्ते वा; अथवा, श्रीमताम् अमुकनाम्नां—समक्षं (संनिधौ) अमुकस्थानवासिनः अमुकनाम्नः सविनया विज्ञप्तिः। इत्यादि

इस नमूने के ढंग पर किसी भी पुस्तक-प्रणेता को पत्र लिखकर प्रार्थना की जा सकती है कि अमुक पुस्तक की एक प्रति डाक द्वारा भेज दें।

स्वस्ति। आंग्लभौमगीर्वाणादिभाषासु परां प्रतिष्ठां गताः कलिकातानगरस्थमहापाठशालाधिकृताः श्रीतर्करत्नवागीशाख्याः प्रणामपुरःसरं विज्ञाप्यन्ते। यत् भवत्प्रणीतम् अलंकारदर्पणाख्यं ग्रंथम् अधिकृत्य काचित् विज्ञप्तिपत्रिका मया मित्रहस्ते अद्य दृष्टा। तदवलोकनेन तं ग्रथं क्रेतुं मन्मनसि बलवतीच्छा प्रादुर्भवति। तदनुरोधात् राजशासनपत्रद्वारेण वार्ताहरभागसहितं मूल्यं सार्धचतुष्टयरूपकम् इतः प्रेषितम्। तद्यावच्छक्यं सत्वरं तद्ग्रंथस्य प्रेषणेनानुग्राह्यमात्मानमिच्छामि। ग्रंथश्च निम्नलिखितबाह्यनामा प्रेषणीय इति विज्ञप्तिः।

पुण्यपत्तने संस्कृतपाठशालायाम्
संवत् १९३५ श्रावणवदी ११ शनौ

अभ्यंकरोपनामकस्य गोविंदसूनोः
रामशास्त्रिणः

टिप्पणी—इन सभी पत्रों में प्रायः सम्बोधित व्यक्ति के कुशल के लिए भगवान् से या किसी देव या देवी से प्रार्थना कर दी जाती है। यह अन्त में रक्खी जाती है, इस प्रकार—शमिह भावत्कं भवयमनुदिनमेधमानमाशास्महे अथवा अत्यन्त संक्षेपतः इति शम्।

४३६—विद्यार्थी अपने अध्यापक को इस प्रकार लिखेगा :—

स्वस्ति। अमुकस्थाने अनेकतीर्थावगाहनापवित्रीकृतमानसान् परमाराध्यपरमपूज्यश्रीगोविंदाचार्यपादारविंदान् अमुकस्थानात्सदादेशवर्ती अमुकनामकः परमभक्त्या क्षितितलनिहितमौलिना साष्टांगं प्रणम्य सविनयं विज्ञापयति; अथवा, एवंगुणोपेताः श्रीमदुपाध्यायपादा भक्तितत्परेण अमुकनाम्ना शिष्येण सविनयप्रणामपूर्वकं विज्ञाप्यन्ते; इति विज्ञप्तिः अमुकशर्मणः इत्यादि।

इस ढंग के अनुसार विद्यार्थी बीमारी की छुट्टी के लिए अध्यापक को इस प्रकार लिख सकता है :—

स्वस्ति। सकलविद्यावगाहनविशदीकृतमानसाः परमपूज्याः गोपालरावाख्याः अनेकप्रणामपूर्वकं सविनयं विज्ञाप्यन्ते। यन्मम गेहेद्य मातापितरावुभावपि ज्वरपीडितौ संतौ शय्याग्रस्तौ। द्वौ तथा परित्यज्य

पाठशालां गंतुं नाहमुत्सहे। मामपि च बलवती शिरोबाधा पीडयति। अतः अद्य मम अनुपस्थितिं मर्षयितुमर्हंति आचार्यपादाः इति सविनया विज्ञापना सदाभवदादेशवर्तिनः शिष्यस्य।

खिस्ताब्दे दशममासस्य द्वादशवासरे १८८५ } कालेकुलोत्पन्नस्य गोविंदसूनोर्हरेः

४३७—कुछ और नमूने देकर इस सेक्शन की समाप्ति की जाती है। (प्रत्येक नमूने में प्रयुक्त किया जा सकता है)।

(१) मंत्री अथवा अन्य राज-पुरुष की तरफ से राजा को :—

श्रीसमस्तसामंतसेनानिर्वाहकेषु परोपकारसत्कारनिपुणेषु निजकीर्तिधवलितदिगंतरेषु महाराजाधिराजचरणेषु, आदेशवर्तिनो महाराजकिंकरस्य समस्ताशीराशीःसहस्रमजस्रम्; अथवा 'का: 'णाः, 'राः, 'णाः आशीःसहस्रपूर्वकं निवेद्यन्ते; अथवा अमुकस्थाने देवं विनयनतशिराः अमुकः पदद्वंद्वारविंदे भक्त्या मूर्ध्नि अंजलिं रचयति। कार्यं च लिख्यते इत्यादि।

(२) बड़े की तरफ से छोटे को :—

अमुकस्थानात् अमुकः अमुकस्थाने अमुकं स्वप्रसादं समादिशति यथा (कार्यं च) इत्यादि।

(३) छोटे की तरफ से बड़े को :—

पूज्यपरमाराध्यस्वामि अमुकपादान् अमुकस्थानात्सदादेशकारी अमुकः साष्टांगप्रणामपूर्वकं विज्ञापयति।

(४) संन्यासी को :—

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यदेवभूदेवनरदेवपूजितेषु श्रीपादेषु अमुकस्य प्रपंचविस्मरणपूर्वकं नारायणस्मरणप्रणामसहस्रमजस्रं विज्ञप्तिश्च।

४३८—अब हम विद्यार्थी से कहेंगे कि ऊपर के पृष्ठों में दिए हुए नियम के अनुसार कतिपय पत्र लिखे। इन नियमों का अनुसरण करने से वह किसी भी प्रकार का पत्र किसी भी हैसियत से लिख सकता है। लेख्य विषय में पर्याप्त वैभिन्नय मिलेगा, परन्तु ऊपर दी हुई विधियाँ प्रायः काम दे जायँगी।

अभ्यास ४५—५२

१—अपने पिता को एक पत्र लिखिए जिसमें यह दिखाइए कि आप ने पाठशाला में अपने अध्ययन में क्या प्रगति की।

२—पिता की ओर से पुत्र के पास एक पत्र लिखिए, जिसमें यह दिखलाइए कि आप उसके पास कुछ पुस्तकें तथा उपहार भेज रहे हैं।

३—अपने मित्र के पास एक पत्र लिखिए, जिसमें यह प्रार्थना कीजिए कि अमुक प्रीति-भोज में अथवा अमुक धार्मिक उत्सव के अवसर पर आकर दर्शन दीजिए।

४—एक पुस्तक-विक्रेता के पास पत्र लिखिए, जिसमें उससे प्रार्थना कीजिए कि अमुक-अमुक पुस्तकों की आप को आवश्यकता है, अतः उन्हें शीघ्र भेजिए।

५—अपने गुरु को एक पत्र लिखिए जिसमें यह दिखलाइए कि अमुक-अमुक गृह-कार्य के कारण आप पाठशाला में उपस्थित न हो सकेंगे, अतः अमुक अवधि तक के लिए अवकाश प्रदान किया जाय।

६—किसी मित्र को पत्र लिखिए जिसमें उससे यह प्रार्थना कीजिये कि मेरे लिए कुछ आर्थिक सहायता भेज दीजिए।

७—अपने सहपाठी को एक पत्र लिखिए जिसमें यह प्रार्थना कीजिए कि अपनी संस्कृत व्याकरण की पुस्तक कुछ दिनों के लिए उधार दे दीजिए।

८—किसी पाठशाला के प्रधानाध्यापक की ओर से जिले के शिक्षाधीश के पास कतिपय सहकारी अध्यापक माँगते हुए एक पत्र लिखिए।

कठिन शब्दों की व्याख्या

प्रथम पाठ

पृ० ८ अ० २—**सर्वत्रौ···विषयः**—विदूषक के विषय में पुरूरवा द्वारा कथित, जब कि उसने चन्द्रमा की उपमा मोदक से दी। 'प्रत्येक दशा में भोजन ही भुक्खड़ आदमी का उपयुक्त क्षेत्र हुआ करता है' अर्थात् उसके रूपक और उसकी उपमाएँ भी भोजन विषयक होती हैं।

अ० ३—**सैवेयमिति**। 'निश्चयपूर्वक कौन व्यक्ति यह विश्वास कर सकता है कि यह स्त्री वही है'—इसकी मुखाकृति में ऐसा घोर परिवर्तन हो गया है।

अ० ४—**सार्थवाहस्यार्थपतेः···प्राणाः**। **'अर्थपति'**—व्यक्तिवाचक संज्ञा (कुवेर); इसका अर्थ है—'मानों विमर्दक अर्थपति का बाह्य जीवन है', वह उसे अपने प्राणों के समान प्यारा समझता है, वे प्राण जो **'अन्तश्चराः'** हैं।

अ० ५—**ममापि···पाण्डवाः**॥ एक प्रश्न, 'क्या पांडव लोग भयोत्पादक वस्तु हैं'।

अ० ७—**प्रवृद्धं यद्वेरं···च युवाम्** ॥ भीम सहदेव से कहते हैं 'न तो मेरे सुयोग्य भ्राता (धर्म), न अर्जुन, न तुम ही, कारण हो।' **मम शिशोरेव**—मुझ जैसे बच्चे ही का।

पृ० ६ अ० ८—**हृदयम् द्वितीयम्**—दूसरा हृदय, तू मेरे अस्तित्व (जीवन) का अंशभूत है।

अ० ६—**बलवानपि···पदम्**॥ **निस्तेजाः**—तेजहीन, साहसहीन तथा अग्निरहित, दाहशक्ति-रहित। यह **भस्मचय** से भी अन्वित है, जो बहुत बड़ा होते हुए भी सरलता से ही पाँव तले रौंदा जाता है, क्योंकि उसमें आग नहीं रहती।

पृ० = पृष्ठ।

अ० = अभ्यास।

अ० वा० = अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य।

अ० ११—इक्ष्वाकु···अभूत्। **आहितलक्षणः**—'**काकुत्स्थ**' ऐसा नाम रक्खा गया, '**काकुत्स्थ**' इस नाम से विख्यात हुआ, अथवा (अमरकोशानुसार 'अपने सद्गुणों के कारण प्रसिद्ध')।

अ० वा० १—यस्त्वमिव···निबन्धनम् 'जो तुम्हारे ही समान मेरे मन की दूसरी गाँठ है।' कामन्दकी द्वारा मालती से कहा गया है जब कामन्दकी ने उससे यह बताया कि माधव कौन था।

अ०वा० २—पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य—अपनी अन्तिम अवस्था में वर्तमान जिसकी अवस्था काफी बड़ी हो चुकी थी।

पृ० ६ अ० वा० ३—शुकमादाय—अपने साथ एक सुग्गा लिए हुए। **आश्चर्यभूतः**—आश्चर्य की वस्तु। **इति कृत्वा**—ऐसा विचार कर; इस विचार से। **देवपादमूलमागता**—श्रीमान् के चरणों में आई।

अ० वा० ४—गर्भस्थस्यैव—जब कि वह गर्भ ही में रहता है, तभी; अर्थात् ये पाँचों उसके साथ-साथ पैदा होते हैं।

अ० वा० ६ भूपतेः—भूपतिना; केवल तीन वस्तुएँ उसके द्वारा नहीं दी जा सकती थीं क्योंकि वे राजत्व के आवश्यक लक्षण थीं।

अ०वा० ७—निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च। इस पंक्ति का अर्थ यह है कि यद्यपि सम्पत्ति तथा विद्या (सरस्वती) के प्रकृत्या भिन्न-भिन्न स्थान (स्थितियाँ) होते हैं तथापि इस राजा में वे साथ-साथ रहती हैं। लक्ष्मी और सरस्वती का साथ-साथ निवास बड़ा दुर्लभ हुआ करता है, पर इस राजा में दोनों का साथ-साथ निवास पाया जाता है। **एकसंस्थम्**—एका संस्था यस्य।

अ० वा० ८—व्यतिकरितदिगन्ताः—जिन्होंने दिगन्तों (दिशाओं के अन्तों) को व्याप्त कर रक्खा है। **दिशाम् अन्ताः इति दिगन्ताः। सुकृतविलसितानां स्थानमूर्जस्वलानाम्**—जो उत्तम कार्यों के जबर्दस्त विलासों (प्रदर्शनों) के घर हैं अर्थात् जिन्होंने अनेक पुण्य कार्य किए हैं।

द्वितीय पाठ

पृ० १४ अ० २—यदेते चन्द्रसरोरक्षकाः—चन्द्र-सरोवर की रक्षा करने वाले अर्थात् खरगोश।

अ० ३—यस्मिन्नेवाधिकं चक्षुरारोपयति पार्थिवः। जिसके ऊपर राजा अपनी आँखें अधिक लगाता है अर्थात् जो औरों की अपेक्षा अधिक प्रियतर दृष्टि से देखा जाता है।

अ० ४—कृताः···विकृष्यताभिदम्। इसका अर्थ यह है 'राक्षस तुम्हारे बाणों के लिए उपयुक्त निशाने हैं; इसलिए अपने धनुष को इनके ऊपर झुकाओ।'

पृ० १५ अ० ८—उमा···तत्समौ। उसी प्रकार राजा और मागधी (सुदक्षिणा) जो कि उनके (शिव तथा उमा और इन्द्र तथा शची के) समान थे, अपने पुत्र से प्रसन्न थे जो कि उनके समान था (अर्थात् कार्तिकेय और जयन्त के समान था)।

अ० वा० १—बहु मन्यते माना जाता है, बड़े सम्मान की दृष्टि से माना जाता है। **आशानिबंधनं जाता जीवलोकस्य**—सारे संसार भर की आशा का बन्धन हो गई। श्रीसीता जी के कहने का तात्पर्य यह है—'वस्तुतः वह स्त्री धन्य है जिसने मेरे स्वामी का मनोरंजन करके लोगों की आशाओं को अपने ऊपर केन्द्रित करा लिया है।'

अ० वा० २—सोऽयं···तस्य जातः। सीता द्वारा बड़े प्रेम से पालित हाथी के बच्चे के विषय में राम ने कहा, **यत् कल्याणं** आदि 'वह युवावस्था की अच्छाइयों का पात्र बन गया है।' अर्थात् युवावस्था की ताजगी और वीरता से युक्त है।

अ० वा० ३—न प्रमाणीकृतः···न सन्ततिः॥ पृथ्वी के कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीसीता जी को त्यागने में राम इन विचारों से जरा भी प्रेरित नहीं हुए थे, जिनमें एक के भी अनुसार श्रीराम जी के विरुद्ध निर्णय हो सकता था।

अ० वा० ५—दूषण, खर, त्रिमूर्धा—राम द्वारा मारे हुए राक्षसों के नाम हैं।

अ० वा० ६—यज्जीवति···विश्रामः। वस्तुतः उसका जीना मृत्यु है और उसके लिए मृत्यु विश्राम है, अर्थात् इस प्रकार के मनुष्य का अस्तित्व जीती-जागती हुई मौत है, बल्कि साक्षात् मौत उसके लिए विश्राम है।

अ० वा० ७—ये चान्ये···तेषां विपत्। यह पंक्ति संख्या ६ सन्देहात्मक पंक्ति है। इसका अर्थ यह मालूम पड़ता है। 'हर्ष और विषाद दोनों में

(सम्पत्ति तथा विपत्ति) ठीक एक मित्र की भाँति जो उपयुक्त विषय या वस्तु बन सकता है, उसका पाना दुर्लभ या कठिन है।' अर्थात् सम्पत्ति तथा विपत्ति के दिनों में मित्र के अतिरिक्त दूसरा कोई भी साथ नहीं दे सकता। **ये चान्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुलाः ते सर्वत्र मिलन्ति** इसकी तुलना **सैम्सन एगोनिस्ट** की उक्ति से कीजिये 'सम्पत्ति के दिनों में वे लोग झुण्ड के झुण्ड इकट्ठा हो जाते हैं; विपत्ति के दिनों में वे अपना मुँह छिपा लेते हैं, खोजने पर भी नहीं मिलते।' **तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत्**—परन्तु विपत्ति उनके तत्त्व को पहिचानने की कसौटी है (जिस पर उनका वास्तविक चरित्र परखा जा सकता है)।

अ० वा० ६—हिंसाशून्यम्—क्षतिरहित, किसी को कष्ट पहुँचाए बिना प्राप्त। गोल्ड-स्मिथ की उक्ति से तुलना करो 'And from the mountain's grassy side, a *guiltless* feast Ibring.' **'अशनम्'** का अन्वय **'व्यालानां समाप्तिं प्रयान्ति'** के साथ होगा—'नष्ट हो जाते हैं, क्षीण हो जाते हैं', 'जीविका उपार्जन करने के प्रयत्न में बिल्कुल क्षीण हो जाते हैं'।

पृ० १६—अ० वा० १०—महिमानं···न गुणानामियत्तया॥ भगवान् विष्णु के प्रति सम्बोधित है 'हमारे शब्द आप की महिमा का वर्णन करके बन्द हो जाते हैं—यह या तो हमारी क्षीणता (थकावट) के कारण हो जाता है, अथवा वर्णन करने की असमर्थता के कारण, न कि इस कारण कि आप के गुणों का अन्त हो चुका।'

तृतीय पाठ

पृ० २२; अ० २—बिन्दूत्क्षेपान्—चक्कर करती हुई पहिये के द्वारा 'ऊपर की तरफ फेंकी हुई जल की बूँदें।'

अ० ५—क इदानीं···सहते—प्रियंवदा के कहने का तात्पर्य यह है—दुष्यन्त के अतिरिक्त उस स्त्री का जीवन कौन बचा सकता है जिसने गाढ़े प्रेम के लक्षण प्रदर्शित किये हैं।

पृ० २३, अ० ६—प्रावृषा संभृतश्रीः—जिसकी शोभा वर्षा ऋतु के कारण बढ़ जाती है।

पृ० २३ अ० १०—**कृतकार्य**—वनम् का विधेय है। इसका अर्थ हुआ "जिसका मनोरथ सिद्ध हो चुका है।" 'यद्' कर्म है 'अध्यास्ते' का।

अ० ११—**अधिष्ठाय**—नेता अथवा संचालक होकर; पथ-प्रदर्शक होकर।

अ० १४—**'अमी'** का सम्बन्ध है 'वह्नयः क्लृप्तधिष्ण्याः' से। 'क्लृप्तधिष्ण्याः' का अर्थ है 'जिसके स्थान नियत कर दिये गए हैं'।

अ० १५—मण्डप की लम्बाई चौड़ाई दो। **शतमध्यर्द्ध**—एक सौ पचास।

अ० १६—**रघुप्रतिनिधिः**—रघु के प्रतिनिधि अर्थात् अज। कामदेव के समान बाल्यावस्था के अतिरिक्त किसी भी अवस्था को धारण कर।

अ० १७—**सम्प्रति आवसत्**—हाल ही में रह चुका है।

अ० १८—**क्रमेण···तिष्ठत्**। वह उसके बाद सोता था और प्रातःकाल उसके जागने पर जागता था।

अ० वा० १—**सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः**। 'अयं जनः' का सम्बन्ध साधारणतया वक्ता से हुआ करता है। दुष्यन्त के कहने का तात्पर्य है 'इस व्यक्ति ने (अर्थात् मैंने) एक बार उससे अर्थात् हंसपदिका से प्रेम किया, इसी कारण रानी वसुमती के सम्बन्ध में मुझे बहुत कड़े-कड़े व्यंग्य सुनने पड़े हैं।

पृ० २४, अ० वा० ४—**दोषं विवक्षता त्वया**—दोष को कहने की इच्छा करने वाले आप के द्वारा।

अ० वा० ६—**क्रियान्तरान्तरायमन्तरेण**—आपके अन्य कर्तव्यों में विघ्न पहुँचाए बिना अर्थात् ऐसे समय पर जब कि आप को दूसरा कुछ भी काम न करना रहे।

अ० वा० ६—**कल्पितशस्त्रगर्भम्**—जिसके अन्दरूनी भाग में शस्त्र तैयार करके रक्खे हुए थे।

अ० वा० १०—**चतुरस्रयानम्**—एक ऐसी सवारी जिसमें चार कोने हों अर्थात् पालकी। चतस्रः अस्रयः यस्य तत्। **मञ्चान्तरराजमार्गम्**—वह राजमार्ग जो कि मंचों की पंक्तियों से बना हुआ था—**क्लृप्तविवाहवेषा**—विवाह के वेष में सजी हुई।

अभ्या० वा० १२—**कष्टसंश्रयाः**—दुखों से भरा हुआ।

पृ० २४ अ० वा० १३—**यत्**—चूँकि । इसका अर्थ यह है कि पागल कुत्ते के जहर के समान सीता-विषयक यह बदनामी हर जगह फैल गई है, यद्यपि बड़े-बड़े अद्भुत उपायों द्वारा यह हटाई जा चुकी थी।

अ० वा० १४—**प्रियासहचरः**—मेरी प्रिया की साथी अर्थात् मेरी प्रिया के साथ।

अ० वा० १४—**गोदावरीपरिसरस्य**—जिसके समीप गोदावरी नदी है।

अ० वा० १५—**दंष्ट्रानखलांगुलप्रहरणः**—जिसके अस्त्र उसके दाँत, पंजे और दुम हैं। **तृष्णां छिनत्ति**—प्यास बुझाता है।

अ० वा० १६ **अजातशत्रुम्**—'धर्म' जिसका कोई शत्रु ही नहीं था। **लिखितैरिव**—चित्र में खिंचे हुए से; मानों हम लोग चित्र थे जिसमें हिलने-डुलने तथा बदला लेने की शक्ति नहीं हुआ करती।

अ० वा० १७—**जलानि सा तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनु-राजधानीम्**—सरयू नदी जिसके तट पर यज्ञ-स्तम्भ बने हुए हैं, अयोध्या राजधानी से बगल में अपना जल बहाती है।

पृ० २५; अ० वा० १८—**वाच्यदर्शनात्**—निन्दा को देखकर। **नृपतिः सन्**—राजा होता हुआ।

चतुर्थ पाठ

पृ० २६ अ० १—**अचिरप्रवृत्तोपदेशम्**—जिसमें उपदेश को प्रारम्भ हुए बहुत दिन नहीं बीते हैं, चूँकि हाल ही में वह अपने स्वामी के हाथों में सौंपी गई थी। **कीदृशी मालविका**—मालविका का क्या हाल है? उसने कितनी निपुणता प्राप्त कर ली है?

अ० २—**सुखं प्रदुग्धम्**—यह पूछने के लिए कि उसका क्या हाल है।

अ० ४—**पृथूपदिष्टाम**—महाराज पृथु द्वारा यह बताई हुई कि यदि उचित ढङ्ग से दुहा जाय तो अनेक बहुमूल्य वस्तुओं को देने में क्षम्य।

अ० ५—**स कल्पितार्थे...बभाषे**। इन्द्र द्वारा उद्दिष्ट कार्य के सम्बन्ध में जो अपनी शक्ति दिखा चुका था; जो उद्दिष्ट कार्य को करने की क्षमता सिद्ध कर चुका था।

अ० ६—**सोऽहम्**—इसलिए मैं।

पृ० २६ अ० ७—किमत्र.....दुग्धा। जब कौत्स ने देखा कि रघु ने कुबेर से आकाश से सम्पत्ति (निधि) की वर्षा करवाई है, तब उन्होंने यह कहा था। **वृत्तेस्थितस्य**—(राजाओं के) कर्तव्य में लगे हुए के। **मनीषितम्**—आकाश ने भी आपके अभिलषित मनोरथ को प्रदान किया है।

अ० ६—ज्येष्ठां—हिमवान् की बड़ी कन्या। **त्रिपथगा**—तीन मार्गों से अर्थात् आकाशवाली, पृथ्वी और पाताल से होकर बहनेवाली।

पृ० ३०; अ० वा० १—राज्याश्रममुनिम्—वह राजा जो राज्यरूपी आश्रम मुनि के तुल्य था।

अ० वा० ३—काकपक्षधरम्—जिसके घुँघराले बाल थे अर्थात् जो अभी बिल्कुल बालक था, षष्ठी तत्पुरुष समास। **तेजसाम् हि न वयः समीक्ष्यते**—जो तेजयुक्त होते हैं, उनके विषय में उम्र नहीं देखी जाती। भर्तृहरि जी के "**न खलु वयस्तेजसो हेतुः**" से तुलना कीजिए।

अ० वा० ४—कृपयाविष्टम्—कृपा की भावना से भरे हुए को।

अ० वा० ५—भर्तुस्तथा...प्रसन्नाम्। यहाँ पर शरद् ऋतु की उपमा एक चतुर दूत से की गई है जो अपने मित्र (गंगा जी) को स्वामी (अर्थात् समुद्र) के पास पूर्णतया प्रसन्न चित्तवृत्ति की दशा में (अत्यन्त शुद्ध जलवाली—गंगा-पक्ष में) बड़ी कठिनाइयों को पार करके उन गंगा जी को ठीक रास्ते पर लाया है (गंगा पक्ष में—नदी को उसके सामान्य मार्ग पर लाकर), जो दुबला पड़ गया है (जो गंगा जी मार्ग में संकीर्ण हो गई हैं), जो स्वामी से क्रुद्ध हो गया है क्योंकि स्वामी ने बहुत-सी पत्नियाँ रख ली हैं (गंगा पक्ष में—जिसका जल वर्षाऋतु में गँदला हो जाता है चूँकि समुद्र भी नदी रूपी बहुत-सी पत्नियाँ रख लेता है)।

अ० वा० ६—मम वचनात्—मेरे कहने से। **पूर्वाभाष्यम्** आदि - जो लोग प्रायः विपत्तिग्रस्त रहा करते हैं, उनके बातचीत करने का यही (कुशल प्रश्न) एकमात्र ढंग है।

अ० वा० ७—सः—राम। **याचमानः शिवं सुरान्**—देवताओं से आशीर्वाद माँगता हुआ। देवताओं से सीता जी के कल्याण की प्रार्थना करता हुआ। **यथास्थितं सर्वम्**—सभी बातें जैसी थीं, वैसी हैं। **भिक्षमाणो वनं प्रियाम्**—अपनी पत्नी के बारे में कोई समाचार जंगल से पूछता हुआ।

प्राणान् दुहन्निवात्मानम्—मानों अपने शरीर में से प्राणों को निचोड़ते हुए उसने शोक को अपने मस्तिष्क में सीमित रक्खा अर्थात् वह जीवन से निराश हो गया, इसी से हृदय में दुःखी था।

'आ यत्र तापसान्'—अनुमान भिड़ाता है। **'आ'** का अर्थ हुआ करता है "हाँ, शायद ऐसा ही हो।"

पंचम पाठ

पृ० ३७; अ० २—**अनाययत्** अर्थात् **हारीतः**, जब उसने सुग्गे को उस निस्सहाय अवस्था में देखा। **मुक्तप्रयत्नम्**—जिसने प्रयत्न करना (छटपटाना) बन्द कर दिया था।

पृ० ३८; अ० ३—**येनासत्यसन्धे जने सखी पदं कारिता**—जिसने मेरी सखी को उस असत्य-प्रतिज्ञ पुरुष में विश्वास करवाया।

अ० ४—**आसनं प्रतिग्राहितः**—तुमसे (गुरुजो का) आसन ढुलवाया गया।

अ० ५—**धात्रीकर्मवस्तुतः परिगृह्य**—दाई के कर्तव्य से लेकर अन्य सभी कार्यों का भार लेकर; यानी जो कार्य दाइयाँ करती हैं, वह सब काम करता हुआ। कदाचित् यह वाक्य यों पढ़ा जा सकता है **'धात्रीकर्मवस्तुतः परिगृह्य'**—दाई के कर्तव्यों का भार वस्तुतः लेकर। **वृत्तचूडौ**—जिनका चूडाकर्म (मुण्डन संस्कार) हो चुका था। **त्रयीवर्जम्**—तीनों वेदों को छोड़कर।

अ० ७—**आर्यो...भवति**—शुकनास से वैशम्पायन को जाकर लाने की आज्ञा अपने पिता से प्राप्त करने की प्रार्थना करते हुए चन्द्रापीड ने कहा।

अ० १०—**तौ दंपती बहु विलप्यं शिशोः प्रहर्त्रा शल्यं निखातमुदहार-यतामुरस्तः**—विलाप करके वे दोनों (स्त्री-पुरुष) अपने शिशु के वध करने वाले से छाती में गड़े हुए बाण को निकलवाने लगे।

अ० ११—**सांग च वेदमध्याप्य**—अंगों-समेत वेद पढ़ाकर। अंग छः हैं—शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, और ज्योतिष। **उत्क्रान्तशैशवौ**—जो अपनी शैशवावस्था पार कर चुके थे। **कविप्रथमपद्धतिम्**—कवियों का पहिला मार्ग, जिसने पहिले पहल कवियों को रास्ता दिखाया। वह श्री वाल्मीकिजी **'आद्यः कविः'** हैं, अतः उनके लिए उक्त विशेषण दिया गया है।

पृ० ३८, अ० वा० १—**भावेन**—श्रीमान् जी के द्वारा; इसका संकेत सूत्रधार की तरफ है।

पृ० ३६, अ० वा० ४ - **रजनीतिमिरावगुण्ठिते पुरमार्गे घनशब्द-विक्लवा:** इत्यादि--शिव द्वारा कामदेव के भस्म कर दिए जाने पर रति द्वारा कहा गया है। "रात्रि के अन्धकार में आच्छादित"।

अ० वा० ५—**तां कुलप्रतिष्ठां कुलदेवताभ्यः प्रणमय्य**—जो अपने कुल की शक्ति अथवा वैभव थी, ऐसी उस कन्या से कुल देवताओं को प्रणाम करवा कर। **कारयितव्यदक्षा**—जो कुछ (दूसरों से) कराया जाना चाहिए, उसको भली-भाँति जानती हुई। **सतीनां पादग्रहणमकारयत्**—उससे सती स्त्रियों के चरण पकड़वाए।

अ० वा० ६—**एकोन्मीलनपेशलः**—तुरन्त स्मरण करा देने वाले।

अ० वा० ७—**उत्सवसंकेतान्**—एक जाति विशेष के लोगों का नाम है। **जयोदाहरणं**--अपनी विजय को घोषणा अर्थात् पद्य जो उसकी सेना की सफलता की घोषणा करें।

अ० वा० ८—**अथ**—दशरथ की मृत्यु के बाद। **अनाथाः**—राजा के मर जाने के कारण 'स्वामी से हीन'।

अ० वा० ६—**'त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता'** इत्यादि—राम ने सीता से कहा। **रक्षसा**—रावण द्वारा।

अ० वा० १०—**गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः** इत्यादि—द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा है—अपने उपयुक्त सभी साधनों को रखने वाला तथा अपने कुल पर गर्व करने वाला, तुम्हारे अतिरिक्त कौन सा राजा, गुणों के कारण पति में अनुरक्त रहने वाली तथा उच्चकुल में पैदा हुई पत्नी-तुल्य सम्पत्ति को दूसरे से हरण करवा लेगा। क इव—सम्भवतः कौन सा ?

अ० वा० ११—**यः पयो दोग्धि पाषाणं स रामाद्भूतिमाप्नुयात्** इत्यादि—ये चार पंक्तियाँ तथा आगे की दो पंक्तियाँ रावण ने सीता जी से कही हैं। रावण सीता जी का चित्त अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न कर रहा था। इन पंक्तियों का अर्थ है 'जो पुरुष पत्थर में से दूध निकालता है वही श्रीरामजी से भक्ति (ऐश्वर्य) प्राप्त कर सकता है।' कहने का तात्पर्य यह है कि 'यह

बिल्कुल असम्भव है' । **बोधयन्तं हिताहितम्**—जो तुम्हें हितकर तथा अहितकर बातें समझा रहा है । **किं विलापयसे**—मुझसे क्यों ज्यादा बातचीत करवाते हो ?

अ० वा० ११—आज्ञां कारय रक्षोभिर्मां प्रियाण्युपहारय कः शक्रेण कृतं नेच्छेदधिमूर्धानमंजलिम्—मुझसे और राक्षसों से प्रिय लगने वाले कार्य कराइये । सिर पर हाथ लगाकर और अंजलि जोड़कर इन्द्र द्वारा किए हुए प्रणाम को कौन न चाहेगा, अर्थात् मुझसे हराया हुआ इन्द्र जिस प्रकार मुझे प्रणाम करता है, उसी प्रकार मेरी प्यारी को (तुझको) भी प्रणाम करेगा । मूर्धानमधिगतः अथवा अधिगतो मूर्धा येन तमधिमूर्धानम् ।

पृ० ३६; अ० वा० १२—एनम् अर्थात् रामं । **रक्षोगणं क्षिप्तुम्**—राक्षसों के समूह को नष्ट करने के लिए । **गाधिसुतः**—विश्वामित्र ।

छठवाँ पाठ

पृ० ४५; अ० १—अधरोत्तरव्यक्तिर्भविष्यति—यह स्पष्ट हो जायगा कि कौन छोटा है, कौन बड़ा है ।

अ० २—अहम् अयम्—गणदास, जिसने हरदत्त के विषय में राजा से शिकायत की ।

अ० ३—शापितासि मम लवंगिकावलोकितयोर्जीवितेन यदि वाचा न कथयसि—यदि तुम इसे वाणी द्वारा नहीं कहोगे तो मैं तुम्हें अपने प्राणों की शपथ दिलाता हूँ । जब मालती माधव के प्रश्नों का उत्तर केवल सिर हिलाकर देती थी, तब माधव ने यह बात कही थी ।

पृ० ४६; अ० ८—जरद्द्रविडधार्मिकः—बुड्ढा द्रविड़ संन्यासी । 'इच्छया' का अन्वय '**निसृष्टैः**' के साथ होगा । इसका अर्थ है '**संतोषजनक**' '**स्वेच्छानुसार**' । '**अभिमतम्**' का अन्वय '**मनोरथम्**' के साथ होगा । इसका अर्थ है 'चाहा हुआ, वाञ्छित' ।

अ० १०—किं बहुना—बहुत कहने से क्या लाभ ? अर्थात् संक्षेपतः ।

अ० ११—स्वहृदयेनापि विदितवृत्तान्तेनामुना जिह्रेमि—चूँकि मेरा हृदय सारा वृत्तान्त जान गया है, इसलिए मैं उससे अपने हृदय से लज्जित हूँ ।

पृ० ४६; अ० १४—दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः—गुणों में, वनलताओं ने बगीचे की लताओं को बहुत ज्यादा मात कर दिया है। अर्थात् अनलंकृत प्रकृति सबसे अधिक अलंकृत कर देती है।

अ० १५—शरीरसादसमग्रभूषणा—जब सुदक्षिणा गर्भवती थी, उस समय उसकी जो दशा थी, उसका वर्णन है। सुदक्षिणा अपने सारे आभूषणों को नहीं पहिने हुए थी, बल्कि थोड़े से अत्यन्त आवश्यक आभूषणों को पहिने हुए थी—जैसे, मङ्गलसूत्र, कंकण इत्यादि। **मुखेन**—मुखेन उपलक्षिता। **तनुप्रकाशेन**—धुँधले प्रकाश वाले (चन्द्रमा) से। **विचेयतारका**—ऐसी रात्रि जिसमें सितारों को खोजना पड़ता है, क्योंकि वे प्रभातकाल में बहुत कम रहते हैं।

अ० १६—मर्त्येषु असंमूढः—तमाम मनुष्यों में जो मूढ़ नहीं है, वही मुझे जानता है आदि आदि।

पृ० ४६ अ० वा० १—अकथ्यमाने—अर्थात् पुण्डरीकवृत्तान्ते।

पृ० ४७, अ० वा० ३—अवधूतप्रणिपाताः पश्चात्संतप्यमानमानसोऽपि इत्यादि—यद्यपि मानवती स्त्रियाँ पहिले तो प्रणाम को ठुकरा देती हैं, तथापि बाद में वे पश्चात्ताप से दुःखित होती हैं और अपने प्रिय को मनाने से हृदय में भीतर ही भीतर लज्जित होती हैं। अर्थात् वे खुलकर मनाना पसन्द नहीं करतीं।

अ० वा० ४—कष्टंजनः कुलधनैरनुरंजनीयः—जब लक्ष्मणजी ने कहा **'यावदार्यायाः हुताशने विशुद्धिं'** अर्थात् अग्निद्वारा सीता जी की विशुद्धि तक, तब श्रीरामचन्द्र जी कहते हैं "हा, कितने दुःख की बात है कि जिनका विमल वंश ही धन है, उन्हें प्रजा को प्रसन्न रखना पड़ता है। इसलिए वह कार्य (विशुद्धि) केवल प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए किया गया था। इसलिए जो कुछ बुरी बातें हमने तुम्हें कही हैं वे वस्तुतः तुम्हें उचित नहीं हैं। **नः**—अस्माभिः।

अ० वा० ५—अविनयबहुलतया—क्योंकि चढ़ती हुई जवानी तमाम अविनयपूर्ण कार्यों से भरी रहती है। **तमपि**—पुंडरीकम्।

अ० वा० ६—स्पृशति बहुमानोन्नतिपदम्—पदवी को प्राप्त कर लेता है।

अ० वा० ८—विनयप्रधानैः—विनयः प्रधानः येषाम्, जिसमें विनय सबसे प्रधान है।

पृ० ४७; अ० वा० १०—'नन्दमौर्यनृपयोः' का अन्वय 'अस्तोदयौ' के साथ होगा। **अविभिन्नकालम्**—साथ ही साथ। इन पंक्तियों से सूर्य की अपेक्षा चाणक्य की उत्कृष्टता सूचित होती है। जो अपने प्रकाश के कारण सहस्र किरण वाले सूर्य भगवान् के प्रकाश को भी मात कर देता है—यह प्रकाश जो सर्वव्यापी नहीं है और पर्याय से (अन्तर से) शीत और उष्ण पैदा करता है चाणक्य की तरह एक ही समय में नहीं—चाणक्य एक साथ ही शीत तथा उष्ण पैदा कर देता है।

पृ० ४८ अ० वा० १३—"शत्रुओं के विरुद्ध उठाया गया हुआ अथवा खींचा गया हुआ।" **न तेन···शासनम्**—उसकी आज्ञाएँ राजाओं द्वारा बड़े सम्मान के साथ पाली जाती हैं। 'गुण' का अर्थ 'डोरा' भी है।

अ० वा० १५—**स बाल आसीद्वपुषा चतुर्भुजः**—नारद मुनि विष्णु से शिशुपाल के विषय में कह रहे हैं। **बालः**—लड़का होते हुए (भी)। **मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचनः**—मुख में पूर्ण चन्द्रमा के समान वह त्रिनेत्र भगवान् शंकर के तुल्य था। अब, युवा होने के कारण, उसने राजा को कर देने के लिए विवश कर दिया है और वस्तुतः सर्वथा सूर्य के समान है (जो अपनी किरणों से पर्वतों को व्याप्त कर लेता है)।

सातवाँ पाठ

पृ० ५६; अ० १—'**सर्वज्ञस्य**' में तृतीया का अर्थ है। केवल एक आदमी के द्वारा फैसला कराने का उत्तरदायित्व, चाहे वह आदमी कितना भी सर्वज्ञ क्यों न हो, दोषपूर्ण हो सकता है।

अ० ४—**अस्मै**=बालकाय

अ० ५—**साधोः**—नेक आदमी को दिया हुआ

अ० ६—राम द्वारा अपनी पुत्री सीता जी के त्यागे जाने पर जब पृथ्वी राम से क्रुद्ध थी, तब गंगा जी ने पृथ्वी से कहा। **शरीरमसि संसारस्य**—'आप तो इस भौतिक जीवन की स्वयं शरीर (आधार) हैं।'

अ० ७—**मिथ्या···निर्भराः**—झूठी-मूठी महिमा के घमंड से भरे हुए। **आत्मप्रज्ञा** इत्यादि—वे मन्त्री की राय से घृणा करते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि मन्त्री की राय को मानने में मेरी बुद्धिमत्ता का अपमान है।

पृ० ५५ अ० ६—**महाश्वेताप्रणामपुरःसरम्**—पहिले महाश्वेता को प्रणाम करके।

अवाङ्मनसगोचरम्—जो वाणी और मन की पहुँच के बाहर है; अर्थात् जिसका न तो वर्णन हो सकता है, न चिंतन हो सकता है।

अ० ११—**हविस्सावस्मते''''''नमस्ते** ॥ चन्द्रमा को सम्बोधन है। जब चन्द्रमा सूर्य-मण्डप में प्रवेश करता (आवसति) है तब अमावस्या (नवीन चन्द्रमा का दिन) होता है परन्तु उस दिन दर्शन का दिन न होने के कारण पवित्र आत्माओं द्वारा पवित्र कार्य (हवन-पूजा आदि) सम्पादित नहीं होते। **सुधया** आदि—रघुवंश के पाँचवें सर्ग के १६ वें श्लोक **'पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः'** का तुलना करो। चन्द्रमा के दिन प्रतिदिन क्षीण होने का कारण उसके एक-एक अंश का देवताओं और पितरों द्वारा पान किया जाना बताया जाता है।

अ० १२—**उमा''''विधिः** ॥ जब सातों ऋषियों ने उमा का विवाह शिव से करने के लिए हिमालय से कहा तो उस समय उन ऋषियों ने हिमालय से ऐसा कहा। **त्वत्कुल** इत्यादि—'यह ढंग (परिस्थितियों का समुदाय) तुम्हारे कुटुम्ब को उन्नत करने के लिए प्रचुर है'।

पृ० ५६ अ० १३—**तृणबिन्दोः परिशंकितः**—तृणबिन्दु घोर तपस्या कर रहे थे, इसलिए उनसे डरा हुआ इन्द्र।

देवता और प्रधानतः इन्द्र दूसरों की तपस्या से सर्वदा भयभीत रहते हैं। शाकुन्तल अंक १ में की इस पंक्ति से तुलना करो—**'अस्त्येतदन्यसमाधिभीरुत्वं देवानां'**। **हरिणी**—एक अप्सरा का नाम।

अ० १५—जब कौत्स ने देखा कि महाराज रघु बिल्कुल धनहीन हो गए हैं, तो वह वहाँ से चलने लगा। **निर्गलिताम्बुगर्भम्**—शरद्-घन से चातक भी नहीं माँगता क्योंकि उसका जलरूपी गर्भ निकल चुका रहता है।

अ० १६—**ताभ्यां दुष्कृताम्** ॥ उन (श्रवण के माता-पिता) के पास पहुँचकर राजा (दशरथ) ने उस दशा में स्थित एकलौते पुत्र को (के विषय में) तथा अज्ञानपूर्वक किया हुआ अपना कृत्य कह सुनाया। **'उपेत्य'**—कुछ विद्वानों का मत है कि 'उपेत्य' का अर्थ है 'उद्दिश्य'।

अ० वा० १—दण्डवत्प्रणम्य—'भूमि पर मुँह के बल लेट कर', पट पड़े हुए दण्ड की भाँति।

पृ० ५६, अ० वा० २—रामस्य दर्शनं सुहृदाम्—राम का अपने मित्रों को देखना।

अ० वा० ३—कुलपांशवः—कुल के कलंक, जो कुल की प्रतिष्ठा को दूषित करते हैं।

अ० वा० ५—स···दिलीपः। यज्ञाय गां दुदोह—देवताओं को प्रसन्न रखने वाले यज्ञों का सम्पादन करने के लिए। अन्न उपजाने के लिए इन्द्र वृष्टि करते थे (अह्नरार्थ—आकाश को दुहते थे); इस प्रकार वे दोनों परस्पर अदल-बदल में सेवाएँ करते थे और संसार का पोषण करते थे। **गां दुदोह**—पृथ्वी को दुहते थे (कर वसूल करते थे)।

अ० वा० ६—'केवलात्मने' से ब्रह्म की तरफ संकेत है जो एक तथा अविभाज्य हैं। **'गुणत्रयम्'**—सत्व, रजस् और तमस्। बाद में सृष्टि के समय ब्रह्म विभक्त हो गया जिसके ये तीनों गुण क्रमशः रचना, पालन और नाश के समय प्रतीत होते हैं।

अ० वा० ६—दुःखात् सुखमुपनतम्—विपत्ति भोग लेने के बाद जो प्रसन्नता होती है।

अ० वा० ११—अरुणाय कल्पते—अरुण का स्वागत करने के योग्य है। **'अरुण'** सूर्य भगवान् के अग्रगामी दूत हैं जो रात्रि की समाप्ति सूचित करते हैं।

अ० वा० १४—अनुहुंकुरुते—बदले में गरजता है, दूसरे का गरजना सुनकर स्वयं गरजता है।

अ० वा० १५—तथेति—'हाँ' कहते हुए। **सन्तानकामाय**—सन्तान का इच्छुक।

'तस्याः' का अन्वय **'प्रसादम्'** के साथ होगा।

अ० वा० १८—पुराणशोभाम् अधिरोपितायाम्—अपनी पहिले की सी शोभा को प्राप्त। **न स्पृहयाम्बभूव**—जरा भी स्पर्धा नहीं करते थे, क्योंकि वह तो पहिले ही से अपनी राजधानी में उसका उपभोग कर रहे थे।

अ० वा० १६—**सानुनीतिः**—सानुनयः, मेल-मिलाप वाला रुख धारण करके।

दिदृक्षुम्—'त्वं शुभा न वा इति द्रष्टुमिच्छन्तम्। राक्षसों की यही विशेषता है कि वे दूसरों की स्त्रियों के विषय में पूछ-ताछ करें। **नमस्कुर्याः**—यदि त्वं नमस्कुर्याः।

आठवाँ पाठ

पृ० ६५; अ० १—**सत्क्रियाविशेषात्**—विशेष प्रकार के सत्कार (स्वागत) के कारण। राजा के कहने का तात्पर्य यह है कि मैंने ऐसा कोई कार्य नहीं किया है जिसके कारण इन्द्र के हाथों से ऐसा ऊँचा स्वागत पाऊँ।

पृ० ६५; अ० २—**सूर्योपस्थानात् प्रतिनिवृत्तम्**—सूर्य का उपस्थान करके लौटे हुए को, यानी सूर्य की पूजा करके लौटे हुए को।

अ० ७ **उज्जिहानजीविताम् वराकीम्**—जिसका प्राण निकल रहा था, ऐसी उस स्त्री को छोड़कर।

अ० ८—**अलम् उत्तरोत्तरम्**—और ज्यादा बातें न करो।

अ० ६—**तासां चतुर्दशकुलानि**—अप्सरसां चतुर्दशकुलानि।

अ० १०—**मां तावदुद्धर शुचो दयिताप्रवृत्त्या** इत्यादि—पुरूरवा ने हंस से कहा है। **तावत्**—पहिले अर्थात् अन्य कोई भी कार्य करने के पूर्व ही। **स्वार्थात् सतां गुरुतरा प्रणयिक्रियैव**—सज्जन पुरुषों के विचार में याचक का कार्य अपने स्वार्थ की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

पृ० ६६; अ० १२—**प्रजां संरक्षति नृपः** इत्यादि। **तदभावे**—उसके (अर्थात् रक्षा के) अभाव में सत् वस्तु अर्थात् विद्यमान वस्तु भी **असत्** (अविद्यमान) हो जाती है। तात्पर्य यह कि जान और माल की कोई सुरक्षा नहीं रह जाती।

अ० १३—**सः—रघुः**। **अस्त्रम्**—अस्त्रविद्याम्, रघु के पिता दिलीप स्वयं ही रघु के गुरु थे।

अ० १४—**अनम्राणां समुद्धर्तुः तस्मात्**—जो राजे नम्र नहीं हुए थे अर्थात् जिन्होंने रघु के सामने मस्तक नहीं झुकाया था, उन राजाओं को जीतने वाले रघु से। **आत्मा संरक्षितः सुहृद्भिः**—सुहृदों ने अपने प्राणों को रक्षा की।

वैतसीवृत्तिम् आश्रित्य—बेतों की नीति का सहारा लेकर, बेतों की-सी नीति धारण कर, अर्थात् अपने से प्रबलतर शत्रु से हार मान कर।

अ० १६—मध्यदेश की स्थिति का वर्णन करो।

अ० वा० १—जन्मकर्मतो मलिनतरजनम्—जहाँ के लोग अपने जन्म तथा कर्मों की अपेक्षा बहुत ज्यादा मैले थे। **निघृणतर आदि**—जिनके सारे कृत्य उनके हृदयों की अपेक्षा कहीं अधिक घृणित थे।

अ० वा० २—कुसुमघटित—वह प्रमोदोद्यान को कामदेव का धनुष समझती है जो पुष्पनिर्मित बाणों के कारण सुन्दर लगता है, और बगीचा भी सुन्दर है क्योंकि उसमें भौंरे फूलों में चिपके हुए हैं। **शिलीमुख**—बाण और भौंरा भी। **पीतरक्तः**—पीताश्च ते रक्ताश्च, चम्पक पीला होता है और अशोक लाल होता है। **राक्षस-पक्ष में**- 'पीतरक्ताः' का अर्थ होगा पीतं रक्तं यैः ते।

अ० वा० ३—आत्मसंपत्—अपनी उत्कृष्टता। **अभिजनात् प्रभृति**—उच्चकुल से लेकर।

अ० वा० ४—लब्धप्रसरा—स्वच्छन्द व्यवहार (कार्य) के लिए अवसर पाकर। **दुःखोपचर्या**—बड़ी मुश्किल से मनाई जा सकने वाली।

अ० वा० ६—विनयाधानम्—नैतिक शिक्षा प्रदान करना, शिष्टता सिखलाना।

अ० वा० ७—नवः—अजः। **नवेतरः**—रघु। स्थिर संकल्प वाले महाराज अज ने तब तक अपने कार्य (समाधि लगाने का कार्य) नहीं बन्द किए जब तक उन्होंने परमात्मा का दर्शन नहीं कर लिया।

अ० वा० ९—स्वनुष्ठित—अच्छी तरह से संपादित।

अ० वा० १२—पूर्व···मम॥ जब श्रीसीता जी ने श्रीहनुमान् जी को अशोकवाटिका में अपने समीप में देखा तो यह कहा था। **पूर्वस्मात्** इत्यादि—यह तो पहिले (अर्थात् रावण) से भिन्न मालूम पड़ता है क्योंकि यह बड़ी श्रद्धा-पूर्वक श्रीराम जी का गुणानुवाद गा रहा है। अथवा, क्या बिना किसी प्रकार की क्रूरता किए मुझमें विश्वास पैदा करने के लिए यह यहाँ आया है? **प्रभातात् प्राक्**—दृष्टानि स्वप्नदर्शनादीनि शुभनिमित्तानि।

अ० वा० ११—सः—मारुतिः। **ताम्**—सीताम्। **प्रीतेः पराजयमानाम्**—जिसे रावण की बातें असह्य लगती थीं।

अ० वा० १४—**एकाक्षरम्**—एक अक्षर, ओम्। **सावित्र्यास्तु परं नास्ति**—जगत्प्रसिद्ध गायत्रीमन्त्र अर्थात् सावित्री से बढ़ कर कोई चीज़ नहीं। (जिसको कि शान्तिपूर्वक जपना है)

नवाँ पाठ

वर्तमानकविः—जीता हुआ अथवा समकालीन कवि।

त्वयि बद्धभावा—तुम्हारे ऊपर उसका प्रेम लगा हुआ है। **इतो गतम्**—त्वयि आहितम्।

संसर्गमुक्तिः खलेषु-खलसंसर्गमुक्तिः—खलों की संगत से घृणा करता हुआ।

पृ० ७४; अ० १२—**सन्तानार्थाय विधये**—सन्तानार्थक किसी विधि का सम्पादन करने के लिए जब इन्द्र कामदेव को एक बड़ा कार्य सौंप रहा था, तब उसने यह कहा था।

अ० वा० १४—**आत्मसमम्**—मेरे सदृश तुम। **भूधरतामवेक्ष्य**—पृथ्वी को धारण करने की योग्यता देखकर।

अ० वा० १६—**कृत्स्नं गोत्रमंगलम्**—सीता ने दोनों कुलों का मंगलकृत्य किया था।

पृ० ७५; अ० वा० १८—**ईशम्**—उसके स्वामी अर्थात् श्रीरामचन्द्र। **नितान्तरूक्षाभिनिवेशम्**—जो सीता जी के विषय में बड़ी निर्दय धारणा रखते थे (अर्थात् त्यागने का विचार रखते थे)।

अ० वा० १६—**परकर्मापहः**—अपने शत्रुओं के कार्यों को नष्ट करता हुआ; "परे" **शत्रवः इत्यर्थः**।

आवृणोदात्मनो रन्ध्रं रन्ध्रेषु प्रहरन् रिपून्—शत्रुओं की कमजोरी देखकर उन्हें प्रहार कर अपनी कमजोरियों को छिपा लिया।

अ० वा० २०—**भगवति कमलालये भृशम् अगुणज्ञासि**—राक्षस ने लक्ष्मी से यह तब कहा है जब कि लक्ष्मी ने नन्द के गुणों का आदर न कर उसको त्याग दिया और चन्द्रगुप्त से प्रेम किया।

अ० वा० २१—साक्षात् प्रियामुपगतामपहाय पूर्वम्—पहले जब शकुन्तला स्वयं दुष्यन्त के पास आई थी तो उसने स्वयं ही उसको त्याग दिया था, तथापि शकुन्तला के चित्र को देखकर प्रसन्न हुए दुष्यन्त ने विदूषक से यह कहा।

अ० वा० २३—चरेणानुगुणं प्रोक्ता प्रतिपत्तिपराङ्मुखी—जब सीता जी ने तिरस्कारपूर्वक रावण की प्रार्थनाओं को ठुकरा दिया तो उसने यह कहा था। **प्रतिपत्तिपराङ्मुखी**—मुझे 'अपना पति' मानने के लिये (तू) तैयार नहीं।

अ० वा० २५—सः—जनकः। **आप्तवचनात्**—विश्वसनीय मुनि के कहने से। मुनि की इस बात को सुनकर, जनक जी का विश्वास हो गया कि राघव में पुरुषार्थ है, यद्यपि वे (राघव) बालक ही दिखाई पड़ते थे। **त्रिदशगोपमात्रके**—बीरबहूटी (इन्द्रगोप) नामक कीड़े के बराबर।

दसवाँ पाठ

पृ० ८७—अ० ५ विश्रम्भातिशय-प्रसंगसाक्षिणः (उत्तर० ६)—अत्यन्त घनिष्ठता (विश्रम्भ) वाली घटनाओं के साक्षी (गवाह) (हम दोनों के बीच)।

अ० ६—एवमवस्थिते (काद० १५८)—इन परिस्थितियों में।

तत्र प्रभवति देवी—इसे करने का श्रीमती जी को (आपको) पूर्ण अधिकार है।

अ० ८—अयं जनः (माल० ५)—मालती। **न खलु स उपरतः**—निश्चय ही वह जीव जिसे उसके प्यारे लोग स्मरण करें, मरा हुआ नहीं है।

अ० १३—समरशिरसि चंचत्पंचचूडध्वजूनाम् (उत्त० ५)—युद्ध के अग्रभाग में अर्थात् जिस स्थल पर खूब घनघोर युद्ध हो रहा हो, उस स्थल पर।

पृ० ८७—अ० वा० १ सर्वदेवमयस्य—(काद० ६)। जो नारायण सर्वदेवमय हैं उनके समान वह था, क्योंकि उसके अन्दर बहुत से देवता निवास करते थे। मन में "धर्म" देव रहते थे अर्थात् वह धर्म के समान न्यायी अथवा स्पष्ट वक्ता था।

अ० वा० २—नियतमिह सर्वात्मना कृतावस्थितिना इत्यादि (**काद० ४४**)—निश्चय ही धर्मदेव यहाँ पूर्णरूप से निवास कर रहे हैं, कलियुग की लीलाओं को ठुकरा देते हैं, और सतयुग की सुधि नहीं करते हैं—वह सतयुग जो धर्म-कर्म करने के लिए बहुत ही उपयुक्त है। इस आश्रम में रहने वालों का जीवन बहुत ही अच्छा है।

पृ० ८८—अ० वा० ३—तव प्रसादस्य आदि (शाकु० ७)—कारण-कार्य का जो सामान्य नियम है उसके विरुद्ध, आपके विषय में, आप की कृपा के पहिले ही सम्पत्तियों का आगमन हो गया।

अ० वा० १६—शीर्षच्छेद्यः (**उत्तर० १**)—उन्हें उसका सिर काट लेना चाहिए। **ते**=त्वया।

अ० वा०५—**अकामयेताम्** (**रघु० २४।४**) दोनों माताएँ कौशल्या और सुमित्रा "वीरसू" शब्द की इच्छा नहीं करती थीं—"वीरसू"—"वीर पुत्र पैदा करने वाली" नहीं कहलाना चाहती थीं।

अ० वा० ६—**वाच्यास्त्वया मद्वचनात् स राजा (रघु० १४।६१)**—जब श्रीरामचन्द्र जी ने निर्दयतापूर्वक सीता जी को त्याग दिया, तब सीता जी ने लक्ष्मण जी से यह कहा था। "**मद्वचनात्**"—मेरी ओर से, मेरे कहने से।

अ० वा० ७—देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः (उत्तर० ३)—जानकी से शून्य हुए (खाली हुए) संसार को बारह वर्ष हो गए। यानी जानकी जी को जङ्गल गए बारह वर्ष हो गए।

अ० वा० ८—मैथिल्यभिज्ञानम् (**भट्टि० ८।११८**)=मैथिलि+अभिज्ञानम्।

अ० वा० ९—पुरःप्रवेशमाश्चर्यं बुद्ध्वा शाखामृगेण सा (**भट्टि० ८।१२४**)—लंका जैसी दुष्प्रवेश्य नगरी में बन्दर के प्रवेश को एक आश्चर्यजनक घटना समझकर।

पृ० ८८ अ० वा० १०—तं दृष्ट्वाऽचिंतयत् सीता (भट्टि० ८।१०४)—श्री हनुमान जी को पहिले पहिल बगीचे में आया हुआ देखकर श्रीसीता जी विचारती हैं। पहिले वह हनुमान् जी को रावण समझती हैं। बताइये कि वह क्यों नहीं विश्वास करतीं कि यह व्यक्ति श्रीराम जी द्वारा भेजा गया है। "इस

समुद्र के उत्तर में रहने वाले श्री राम जी, खारे समुद्र के दक्षिण में बसी हुई इस नगरी को कैसे जान सकते थे ?"

ग्यारहवाँ पाठ

पृ० ६४ अ० १—अलमलमुपालम्भेन (मालवि० १)—जब दोनों नर्तकों के बीच विवाद उठ खड़ा हुआ तो परिव्राजिका से कहा गया कि इस मामले का निर्णय करो। तब परिव्राजिका ने कहा—"जब शहर बिल्कुल पास ही में बसा हुआ हो, तब क्या रत्न की परीक्षा गाँव में करवाई जाती है ? तात्पर्य यह कि जो काम तुम लोग मुझसे करवाना चाहते हो उसको करने का अधिकार केवल महाराज को है, अथवा उसे करने के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति महाराज हैं, न कि मैं।

अ० ३—मा तावदनात्मज्ञे (शा० ६)—अरे ऐसा न करो, ऐसा न करो।

अ० ४—किं दीपकपोनरुक्त्येन (विक्र० ३)—इतने अत्यधिक दीपकों का क्या प्रयोजन ? इनकी संख्या आवश्यकता से कहीं अधिक है।

अ० ५—किं वृत्तम् (उत्तर० २)—ऐ पूज्य आत्रेयी, उसका क्या हाल हुआ ?

पृ० ६५, अ० ६—रघुकदम्बकेषु (उत्तर० २)—रघुओं में सर्वश्रेष्ठ।

अ० ७—स्मर्तव्यशेषं नयामि (वेणी० ४)—उसको केवल स्मरण किए जाने लायक बनाए देता हूँ अर्थात् मारे डालता हूँ।

अ० ६—बीजम् (उत्तर० ५)—श्रीसीता जी स्वयं ही गर्भवती होने पर त्याग दी गई थीं।

पृ० ६५, अ० १०—(रघु० १५।८०)। सा—पृथ्वी। मामेति व्याहरत्येव—त्यों ही वह कह रहे थे "अरे उसे मत ले जाओ, मत ले जाओ।"

अ० वा० ४—अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभग्ने पतनाय वल्लरी (कुमा० ४। ३१)—वृक्ष के ऊपर आश्रित लता अवश्य गिर जाती है।

अ० वा० ६—दर्शितभयेऽपि धातरि (पंच० १। ६)—भय को देखकर दृढ़ चित्त वाले व्यक्ति (अपने कार्य को) बन्द नहीं कर देते।

अ० वा० ८—**सन्तानवाहीनि** (उत्तर० ४)—लगातार चलते रहने वाले; विरामरहित कार्य करने वाले।

(,,) **स्रोतःसहस्रैरिव संप्लवन्ते**—मार्गों हजारों धाराओं में होकर बहते हैं अर्थात् हजारों नए-नए मार्गों से प्रकट होते हैं।

अ० वा० ६—**पंचभिः** (हितो० ४)—पाँच तत्त्व (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा)। **पंचत्वं गते**—मर जाने पर।

पृ० ६६ अ० वा० १०—(रघु० १६। ७८)। **तस्मिन्**—अस्त्र। अपना वलय पुनः प्राप्त करने के लिए कुश ने वासुकि के ऊपर जो बाण चलाया था।

(,,) **तस्मिन् हृदः संहितमात्र एव क्षोभात् समाविद्धतरंगहस्तः**—क्षोभ (उथल-पुथल) के कारण तरंगरूपी हाथों के ऊपर उछालते हुए।

(,,) **रोधांसि निघ्नन्**—तटों को धक्का मारते हुए।

अ० वा० १३—**त्वय्युत्कृष्टबलेऽभियोक्तरि** (मुद्रा० ४)—राक्षस मलय केतु से कहता है कि कार्य सम्पादन की प्रत्येक वस्तु तैयार है और परिस्थितियाँ भी उनके अनुकूल हैं। **त्वद्वांछान्तरितानि**—आपकी इच्छाओं से रोक दी गई हुई अर्थात् आप केवल धावा बोलने की इच्छा कीजिए, शेष सब चीजें तैयार हैं। अनेक भाव-सप्तम्यन्त-पद परिस्थितियों की अनुकूलता सूचित करते हैं। **चलिताधिकारविमुखे**—अपने पद से हटा दिए जाने के कारण तटस्थ। **मार्गमात्रकथनव्यापारयोगोद्यमे**—जिसका काम केवल यह है कि मार्ग बतला देवे। "योग" शब्द अनावश्यक है।

अ० वा० १४—**अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरन्तरौर्वायमाणे** (वेणी० ३)—अश्वत्थामा ने कहा है। "फेंके हुए बाणों रूपी ज्वाला से चाटी गई हुई जो शत्रुसेना थी वही समुद्रतुल्य थी। उस शत्रु-सेना-रूपी समुद्र के अन्दर बडवानल के समान दिखाई पड़ने वाले अथवा पराक्रम करने वाले।"

बारहवाँ पाठ

पृ० १०३ अ० ३—**श्रीशस्त्वाऽवतु**—इन चारों पंक्तियों में "वः" "नः" "त्वा" "ते" इत्यादि छोटे रूपों का तृतीया के अर्थ में प्रयोग हुआ है—"तुम्हारे अथवा हम लोगों द्वारा सेवा किये जाने योग्य।"

अ० ५—कार्यवशात् (उत्त० १)—अपने काम के लिए। ताकि मैं उस समय की घटनाओं को जान जाऊँ और समझ जाऊँ।

पृ० १०४ अ० ६—जातनिर्विशेषाः (उत्तर० ३)—'साक्षात् अपने लड़कों के समान' सीता जी ने कहा है।

अ० ७—आयुष्मन्नेष वाग्विषयीभूतः (उत्तर० ५)—जो हमारे वार्तालाप का विषय था।

अ० ११—(काद० २३७)। सन्दिशन्ति—प्रणय सन्देश भेजते हैं। **समुपसर्पति**—अपने प्यारों के पास जाते हैं।

अ० १२—(रघु० ८। १६)। एकः अपरः—अज और रघु। **प्रभुशक्तिसम्पदा**—उसकी प्रभुशक्ति के ऐश्वर्य से। **प्रभुशक्ति**—कोष, दण्ड और बल से होती है। **प्रणिधानियाग्यया**—ध्यान के अभ्यास से **शरीरगोचरान्**—शरीर में भरे हुए (व्याप्त)।

अ० १३—कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः·····(श्रीमद्० ७। २०)। श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं "विभिन्न इच्छाओं के कारण भोगों की लालसा से जिनकी विवेक-बुद्धि नष्ट हो गई है, वे अपने स्वभाव से प्रेरित होकर दूसरे देवताओं को विभिन्न नियमों द्वारा पूजते हैं।"

अ० वा० २—लक्ष्म्योन्मादिता व्यसनशतशख्यतामुपगता (काद० १०७)—जो लोग धन पा जाने के कारण फूल कर कुप्पा हो जाते हैं, उनकी दशा का वर्णन है। **"व्यसनशत"** इत्यादि—यद्यपि सैकड़ों विपत्तियों के लक्ष्य बन जाते हैं, तथापि वे यह नहीं समझते कि हमारा अधःपतन बाँबी के ऊपर उगी हुई घास के अग्रभाग पर स्थित जलबिन्दु के समान सन्निकट है।

अ० वा० ३—तस्य तरुषण्डस्य मध्ये मणिदर्पणम् इव (काद० १२३)—विमल जल के कारण त्रैलोक्य-लक्ष्मी का मुँह देखने के लिए दर्पण का काम करती थी।

पृ० १०५ अ० वा० ५—अर्थोष्मणा विरहितः (अर्न० २)—धन की गर्मी से रहित।

अ० वा० ११—कोऽप्येष एव पिशुनोग्रमनुष्यधर्मः—(पंच० ११) पिशुन का यह गुण है कि वह किसी का तो कान भर देता है और किसी को जड़-सहित नष्ट कर डालता है (चुगली खा कर)।

अ० वा० १२—रूपं तदोजस्वि (रघु० ५। ३७)—अज के गुणों का वर्णन है। राजकुमार अज अपने कारण (पिता) से भिन्न नहीं थे, जैसे एक दिए से जलाया हुआ दूसरा दिया अपने कारण से भिन्न नहीं होता।

तेरहवाँ पाठ

पृ० १११ अ० ६—ते गतिं ज्ञास्यन् (दशकु० २। ७)—तुम्हारी दशा को जानने की इच्छा करता हुआ।

अ० ७—वारितप्रसरः (शा० १)—आगे बढ़ने से रोक दिया गया।

अ० ८—श्रुतमृषेः (रघु० ११। २)—ऋषि से सीखा गया। यद्यपि राघव अपने पूर्व जन्म (वामनावतार) के कार्यों से अनभिज्ञ थे, तथापि उत्तेजित हो गए।

अ० वा० १—(काद० १४२)। जब कामदेव द्वारा महाश्वेता का मन पुण्डरीक नाम के ऋषि की ओर आकर्षित हुआ, तो महाश्वेता ने कहा।

अ० वा० ३ (मालवि० १)। जब धारिणी उसको अपने शिष्य मालविका के रूप में अपनी बुद्धि का प्रदर्शन करने देना नहीं चाहती थी तब गणदास ने कहा। **क्रिया-संक्रान्ति**—जिस बात को कोई स्वयं जानता है या कर सकता है, उसको दूसरे को जानकारी में लाने या देने की शक्ति।

पृ० ११२ अ० वा० ६ (रघु० १५। ६)। **क्षेमाय**—सुरक्षा के लिए। शत्रून् हंति इति शत्रुघ्नः—यही उनके नाम की सार्थकता है।

अ० वा०८(रघु० ५। ६१)। **क्रथकैशिकेन्द्रः**—भोज, वैदर्भराज। **चन्द्रप्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली**—ऊँची-ऊँची उठी हुई लहरों के साथ चन्द्रमा से मिलने के लिए जाने वाले समुद्र के समान।

चौदहवाँ पाठ

पृ० ११८, अ० १ अत्रभवतोः—(मालवि० १)। गणदास और हरदत्त का। **ज्ञानसंवर्पः**—शास्त्रार्थ, शास्त्र-सम्बन्धी विवाद।

अ० २ (मालवि० ४)। जब विदूषक ने अग्निमित्र से कहा कि मालविका और वकुलाविका को किस प्रकार उसने माधविका से दो लड़कियों को छुड़वाया तो अग्निमित्र ने कहा।

अ० ७ (काद० १५८) अवश्यकर्तव्यतामापतितम्—अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य हो गया है

पृ० ११८, अ० ८ दक्षिणाक्षि (मुद्रा० १)—दाहिनी आँख को सिकोड़ कर दिये हुए संकेत को समझने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। तुम उन लोगों पर इस प्रकार से आँख का इशारा करो कि वे तुरन्त समझ जायँ कि तुम्हारा क्या मतलब है।

पृ० ११९—अ० १० (पंच० २।१५)। मैं उसको सबसे उत्तम मनुष्य समझता हूँ जो विपत्ति में सहायता करने वाले की तो भलाई करता है और विपत्ति में हँसने वाले से बदला चुकाता है।

अ० वा० १ (शकु० ३)—राजा को पीड़ित तथा अपने राज्य में रहने वाले व्यक्तियों के कष्टों को दूर करना चाहिए।

अ० वा० २ उत्क्रांतमिवासुभिः (काद० ३३)—मानो उनके प्राणों ने उन्हें त्याग दिया।

अ० वा० ४ (मुद्रा० २)। राक्षस ने कहा जब उससे यह बताया गया कि किसी आवश्यक कार्य से एक व्यक्ति उससे मिलना चाहता था।

अ० वा० ५ (वेणी० १) —जब इस प्रकार तुम अपने पाप के पलड़े को बिलकुल भर लोगे तो तुम को बरबादी अथवा मृत्यु की ओर ले जाने में पाण्डव केवल एक छोटा कारण-मात्र होंगे।

अ० वा० ८ -पृष्ठतः कृत्वा (हितो० १)—पीछे की तरफ करके।

अ० वा० (रघु० ६। ७७)। **अनुबन्धि**—सदा-निरन्तर, शाश्वत। **इयत्तया परिच्छेत्तुं नालम्**—सीमा के अन्दर नहीं रखा जा सकता, जिसकी सीमा है ही नहीं।

अ० वा० १० हसितं मुदा प्रसितम् (भट्टि० १०। ६)—हँसी प्रसन्नतापूर्वक जारी रही। **विलसितम्**—प्रेम से उज्जीवित प्रसन्नता से भरे खेल कूद चल रहे थे। **हृतसंमदाः**—जिनकी उत्तेजना नष्ट हो गई है। **पुरहितम्**—जो चीज नगर के लिए हितकारी थी और नगर को वाञ्छिता थी, वह नहीं की गई।

अ० वा० ११ संयमधनान् (शाकु० ४)—संयम ही जिनका धन है। **कथमप्यबान्धवकृताम्**—किसी भी प्रकार से बान्धवों द्वारा पैदा नहीं की गई। सानाथ्य सम्मान पूर्वक उसको अपनी स्त्री करके मानना। इसके आगे तो फिर भाग्य की बात है। बहू के घर वालों को यह बात न कहनी चाहिए।

पन्द्रहवाँ पाठ

पृ० १२८ आ० १ मिथ्यावार्तासन्देशैः (पंच१।७)—झूठे समाचारों और सन्देशों से।

आ० ५ इष्टिपशुमारं मारितः शा० ६)—यज्ञ-पशु के समान मार डाला गया। **सः**—मातलिः।

अ० ६ चित्रलेखाद्वितीया (विक्रमो० १)—चित्रलेखा के साथ।

पृ० १२६ अ० १०। क्रोधविह्वला—शूर्पणखा। **भ्रातरौ**—खरदूषणौ।

अ० वा० १ लतानुपातम् (भट्टि० २।१३)—बारंबार लताओं के झुका कर। **नद्यवस्कन्द**—नदी के जल को उथल-पुथल करता हुआ पानी सुड़कता था। **चारुशिलोपवेशम्**—किसी सुन्दर शिला पर बैठता हुआ।

पृ० १२६ अ० वा० ३ विश्वासप्रतिपन्नानाम् (हितो० ४)—विश्वास में आए हुये लोगों का।

अ० वा० ४—मन्थरविवेकम् (मालवि०)—निर्णय करने में मन्द।

अ० वा० ७—अमन्दलीलया (दश० १।५)—सुन्दर लीला से।

अ० वा० ८—स्थिते अर्धरात्रे (दश० २।४)—जब आधी रात हो गई।

अ० वा० ६—विप्रदर्श-यत्ना (भट्टि० ३।१४)— जिस किसी को ब्राह्मण समझती थी, उसी को मारने का प्रयत्न करती थी। **जिघांसुवेदम् भासुरास्त्रः**—जिस किसी को भी मारने वाला समझ लेता था, उसको मारने के लिये चमचमाते हुए अस्त्र लेता था।

अ० वा० १० (भट्टि० ३।१५)—जो कठिन वस्तुओं के मामले में अपने बड़ों की आज्ञा का अनुसरण नहीं करता है, उसका मर जाना या सूख जाना आदि ही अच्छा है।

अ० वा० ११ (मुद्रा० ६)—राक्षस मलयकेतु की निन्दा इस कारण से करता है कि उसने बिना किसी आधार के उसके चरित्र पर संदेह किया है।

सोलहवाँ पाठ

पृ० १३५ अ० १—नौ गुणदोषतः परिच्छेत्तुम् (मालवि० १)— हम लोगों के गुण तथा दोषों की परीक्षा करने के लिये।

अ० २—समयपूर्वम् (शा० ५)—प्रतिज्ञा (इकरारनामा) पूर्वक।

अ० ३—(विक्र० ५)—जब अपने पिता (पुरूरवा) के द्वारा राज्य का शासन करने की भारी जिम्मेदारी को पाने ही वाला था, तब पुरूरवा के पुत्र ने यह कहा।

पृ० १३६—अ० ५। का गणना (काद० १५)—क्या गिनती; कहने की कोई आवश्यकता नहीं।

अ० ६—अचिराधिष्ठितराज्यः (मालवि० १)—जो अभी हाल ही में राज्य पर (राजगद्दी पर) बैठा है। **आरूढमूलत्वात्**—चूँकि अभी अपनी प्रजा के मन में गहरी जड़ नहीं जमा पाई है, इसी कारण वह उस वृक्ष के तुल्य है जो अभी नया-नया लगाये जाने के कारण ढीला-ढाला है।

अ० ६—(रघु० १५।६४)—जीवन-चरित रामचंद्र का वर्णित किया गया; कीर्ति वाल्मीकि की थी और उनकी वाणी स्वयं किन्नरों की वाणी जैसी थी। अतः वहाँ कौन ऐसी बात थी जो कि सुनने वालों के मस्तिष्क को नहीं मुग्ध करती थी।

पृ० १३६—अ० वा० १ अनुभवसमां वेदनाम् (काद० १६८)—अनुभव की हुई वेदना के समान वेदना। **स्मरण**—कृपया अपने जीवन को उस शोकाग्नि का इन्धन न बनाइये जो अग्नि घटनाओं के स्मरण से पैदा होती है।

अ० वा० ४—(विक्र० ५)। वेगोदग्रम्—वेग (के साथ चक्कर करने) के कारण भयानक। **अयंभरः**—यह उत्कर्ष उनमें प्रकृत्या (जात्या) विद्यमान है।

पृ० १३७ अ० वा० ५—(कुमा० ५।४०)। ब्रह्मचारी के वेष में शिवजी ने कहा। **बहुक्षमा**—विपुल क्षमा-शक्ति को धारण करने वाली।

अ० वा० ७—**शुचो वशं गन्तुं नार्हसि** (रघु० ८।६०)—कृपया शोक के वशीभूत न हूजिये।

अ० वा० ८—(वेणी० २)। **यमौ**—'जुड़वाँ'। अर्थात् नकुल और सहदेव। **कथैव नास्ति**—कोई हिसाब लेने की आवश्यकता नहीं, कोई चर्चा ही करने की आवश्यकता नहीं। **विस्फुरित**—जिसने अपना गोल धनुष तान लिया है। अथवा जिसने अपना धनुष तथा चक्र दोनों तान लिया है (निकाल लिया है)।

सत्रहवाँ पाठ

पृ० १४६ अ० ५—(शा० ४)। '**भर्तुः**' शब्द '**प्रतीपम्**' से सम्बन्धित है। '**युवतियाँ**' इसी प्रकार '**गृहिणी**' की पदवी पाती हैं; इसके विपरीत आचरण वाली स्त्रियाँ अपने कुल का अभिशाप हैं।

अ० वा० २—(कुमा० ३।६३)। **अनन्यभाजम्**—जो किसी भी अन्य व्यक्ति के प्रति अनुरक्त न हो। **तथ्यमेव**—'**हर**' जो पीछे से उसे पति मिले वस्तुतः इसी प्रकार के थे। महान् पुरुषों की बातें इस संसार में विपरीत नहीं हुआ करती हैं अर्थात् झूठ नहीं सिद्ध होती हैं।

अ० वा० ३—(शिशु० १।५१)। यहाँ रावण की शक्ति का वर्णन किया गया है। जिसने दिन रात नमुचि के शत्रु (इन्द्र) के साथ झगड़ा करके स्वर्ग में अशान्ति फैला दी थी। **पुरी**—अमरावती।

अ० वा० ४—(मालवि० १०)। **घनबद्ध**—लोग अपने मित्रों और बान्धवों के साथ गोष्ठी करके आनन्द का अनुभव करते हुये खुशियाँ मनावें।

अ० वा० ६—**नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण** (मेघ० ११२)—पहिए का चाका जिस प्रकार ऊँचे-नीचे आता जाता है, उसी प्रकार मनुष्य की दशा ऊँचे तथा नीचे जाती आती है।

अठारहवाँ पाठ

पृ० १५२ अ० ३—(काद० २८६)। चन्द्रापीड के चरित्र की सफाई में शुकनास ने कहा।

अ० ५ (शा० ३)—जो श्री (लक्ष्मी) को प्राप्त करने की इच्छा करता है वह उसको पावे या न पावे परन्तु जिसको श्री स्वयं चाहती है, भला वह उसके लिए कैसे अप्राप्य हो सकता है ?

पृ० १५३ अ० ६ —**कार्यहन्तारम्** (रघु० १८) कार्य को नष्ट करने वाले को।

यहाँ कृष्ण धार्मिक कार्यों के महत्त्व का वर्णन कर रहे हैं।

अ० ६—(वेणी० ३)। **कथं भवत्**—उसकी क्या दशा होगी ? **तत्तुल्य**—भीष्मद्रोण तुल्य।

अ० वा० १—(विक्र० ३)। राजा उस सभी चीजों का नाम रखता है जिन्हें वह आशा करता है कि उर्वशी करेगी। **गढा**—स्वयं अदृश्य होने के कारण। **बलादानीयेत पदात् पदम्** —धीरे-धीरे जबर्दस्ती करके लाई जा सकती है। डर के मारे, आगे बढ़ने से वह इतना डरती है।

अ० वा० २— कुमा० ५।५)। **ध्रुवेच्छाम्**—दृढ इच्छा वाली। **इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्**—इस प्रकार उपदेश देती हुई मेना स्थिर इच्छा वाली (अपनी) पुत्री को (उसके) निश्चय से न हटा सकी। चाही हुई वस्तु के लिए जो मन दृढ़ निश्चय कर लेता है, उस मन को और नीचे की ओर जाने वाले जल को कौन पलट सकता है।

पृ० १५४ अ० वा० ५—(रघु० १४।६५) सीता जी ने कहा, 'या मुझे अपने इस दैन्य जीवन के प्रति अवश्य ही असावधान होना चाहिये, (यह मेरा जीवन) आपसे सदैव के लिए बिछुड़ा होने के कारण निष्फल है। (अर्थात् सहर्ष इस जीवन से मुक्ति पा जाता) यदि आपके कारण यह मेरा गर्भ जिसकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये मेरे मार्ग में रुकावट नहीं पैदा करता' ?

अ० वा० ६—**दंष्ट्रांकुरात्** (भर्तृ० २।४)—तेज दाँतों से।

अ० वा० ८—(मुद्रा० १)। '**भूतये**' का अन्वय '**नृपतेः**' के साथ होगा।

वे राजा के सच्चे सेवक हैं। दूसरे तो स्त्री-तुल्य हैं जो कि अपनी ही भलाई के लिये अपने पतियों का अनुसरण करती हैं।

अ० वा० ८—(रघु० ८।४६)। **जीवितापहा**—प्राणों को अपहरण करने वाली।

उन्नीसवाँ पाठ

पृ० १६१—अ० ४—**आविर्भूतज्योतिषाम्** (उत्त०४)—जिसको सर्वश्रेष्ठ ज्योति दिखाई पड़ गई है।

अ० वा० १—(दशकु० २।१)। **प्राणैः** आदि—उसका प्राण नहीं लिया।

अ० वा० २—(रघु० ३।१४)। **प्रसेदुः**—प्रसन्न हो गईं, चमकने लगीं। **प्रदक्षिणार्चिः हविरग्निरादद्दे**—अपनी लपट को दाहिनी ओर घुमा करके अग्निदेव ने पूजन स्वीकार किया।

अ० वा० ३—**परिमेयपुरःसरो (रघु० १।३७)**--बहुत थोड़े से नौकर-चाकरों को लेकर। **अनुभावविशेषात्**—अपनी उत्कृष्ट ज्योति के कारण।

अ० वा० ४—**अत्यगादाश्रमम्** (रघु० १५।३७)—आश्रम के पास से होकर निकल गए। "कहीं मुनि की तपस्या में बाधा न पहुँचे" इस डर के मारे वहाँ नहीं रुके।

बीसवाँ पाठ

पृ० १७३—अ० ३—(दशकु० २।३)। यदि दोनों राजकुमार बिना किसी क्षति के पले पोषे होंगे तो वे अब तक तुम्हारी अवस्था के हो गये होंगे।

पृ० १७४—अ० ५—(कुमार० ६।६८)। सप्त ऋषियों ने हिमालय से कहा 'यदि आप पृथ्वी को नहीं संभाले होते तो भला वह सर्प अपने कोमल फण पर कैसे उसे वहन करता'।

अ० ७—(मालती० ६) **असौ**--कपालकुण्डला। **पापम्**--मालती का वध।

अ० ८—(शा० ७)। अपने मालिक द्वारा प्राप्त सम्मान के फलस्वरूप नौकर बड़े कार्यों में भी सफलता पाते हैं। सम्मान वह जो कि मालिक कर्त्तव्यों को सौंपते समय करता है।

अ० वा० १—**अन्यलिखितम्** (मुद्रा० ५)—उसका लिखा हुआ कोई अन्य कागज।

अ० वा० ३—(**कुमा० ७।३५**) । **स्पृहणीयशोभम्**—जिसकी शोभा स्पृहणीय थी (ईर्ष्या करने योग्य थी) । **"परस्परेण"** का अन्वय **"द्वन्द्वम्"** के साथ होगा । 'इन दोनों को जोड़ा बनाने की इच्छा नहीं की थी' ।

अ० वा० ४—(**श्रीमद्० २।५२।५३**) । **मोहकलिलम्**—अज्ञान के कारण पैदा हुई घबराहट । **तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च**—जो कुछ तुमने सुना है अथवा सुनोगे, उस सब की तरफ से तटस्थ (विरक्त) हो जाओगे । **श्रुतिविप्रतिपन्ना**—जो कुछ तुमने सुना है, उसी से घबड़ाई हुई (व्याकुल हो गई हुई) ।

पृ० १७५—**अ० वा० ५**—(**श्रीमद्० २।३५**) । बड़े-बड़े योद्धा तथा रथ पर चढ़ कर युद्ध करने वाले यह समझेंगे कि डर के कारण तुमने लड़ना बन्द कर दिया और तब उनकी निगाहों में जो तुम बहुत बड़े हुए थे, गिर जावोगे ।

इकीसवाँ पाठ

पृ० १८१—**अ० २**—(**शा० २**) । **कान्तमात्मीयम् पश्यति**—अपनी चीज को सुन्दर समझती है ।

पृ० १८२—**अ० ६**—(**उत्त० ५**) । **द्वन्द्वसम्प्रहारम्**—आपसी संघर्ष । **प्रत्युपस्थिते**—जब ऐसी नौबत आ पड़ी ।

अ० ७—(**काद०—३६**) । **अलमप्रभुः**—बिल्कुल शक्तिहीन । **अन्धकारतामुपयाति**—धुँधली पड़ जाती हैं ।

अ० १२— (**उत्त० ४**) । **उत्कर्षनिकषः**—बड़प्पन अथवा अधिकता की कसौटी ।

पृ० १८२—**अ० वा० १**—(**मालविका० ५**) । **सभाजनाक्षराणि पातयिष्यामि**—बधाई (प्रशंसा) के कुछ शब्द कहलाऊँगा ।

पृ० १८३—**अ० वा० ५**—(**मुद्रा० १**) **अगृहीते राक्षसे**—जब तक राक्षस पकड़ नहीं लिया जाता । **तथा त्वमसि**=जारिणी ।

अ० वा० ६—(**कुमा० ५।३३**) । **क्रियार्थम्**—धार्मिक क्रियाओं के लिए ।

अ० वा० १०—(**श्रीमद्० २।२६**) । **एनम्**—आत्मानम् । **नित्यजातं-नित्यं-मृतम्**— सदैव पैदा हुआ, सदैव मरा हुआ ।

अ० वा० ११—(शा० १)। लक्ष्मीं तनोति—लक्ष्मी (शोभा) को बढ़ाता है।

बाईसवाँ पाठ

पृ० १६१—अ० १—(मालविका० ५)। स्वरसंयोगः—स्वरों का संयोग।

अ० ४—(उत्तर०१)। अतिभूमिं गतेन—उच्चतम शिखर पर पहुँचे हुए।

अ० ७—अहो जाने—मैं बहुत ही पसन्द करता हूँ।

अ० ६—(हितो० १)। चिन्ताविपन्नः—चिन्ता को नाश करने वाला।

पृ०।१६२—अ० वा० २—(कादम्० ३१२)। न वेद्मि इत्यादि—वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, चाहे प्रेम के वेग के कारण, चाहे....., सो मैं नहीं जानता।

सद्योविपाकस्य—जिनसे तुरन्त फल पाया।

अ० वा० ३—(मालविका० १)। पात्रविशेषन्यस्तम्—उत्तम पात्र में रक्खी हुई, अथवा उत्तम पात्र को दी हुई। गुणान्तरम्—उच्चतर गुण।

अ० वा० ६—(कुमार० ४।३०) स सखा—तुम्हारा मित्र, कामदेव। "मानों मैं इस असह्य विपत्ति-रूपी धूप से ढकी हुई दीप-वर्त्ती हूँ।"

अ० वा० ७—(रघु० ८। ८६)। स्वशरीरशरीरिणावपि श्रुतसंयोग-विपर्ययौ—.....जब मनुष्य का शरीर और उसकी आत्मा भी संयोगवान् तथा वियोगवान् होते हैं, तो भला बताओ बाह्य पदार्थों (पुत्र, कलत्र आदि) का वियोग विद्वान् पुरुष को कैसे दुःख पहुँचा सकता है?

अ० वा० ६—(रघु० १४।३४)। किमात्मनिर्वादकथामुपेक्षे जायाम-देवापामुत संत्यजानि—जब श्री रामचन्द्र जी का मन आगा-पीछा में पड़ा हुआ था कि सीता को त्याग दें अथवा अपनी बदनामी की चर्चा को सुनी अनसुनी कर दें। एकपक्षाश्रयविक्लवत्वात्—एक मार्ग का अनुसरण करने का निर्णय न कर सकने के कारण, उनका चित्त भूले के समान आगे पीछे आता जाता था।

तेईसवाँ पाठ

पृ० १६८--अ० ३--(शा० ४) **भर्तृगतया**—अपने पति के बारे में। गतया—संबंधिन्या।

अ० ४--(**मालविका० ३**) **गणदास उन्नमितोपदेशः**—गणदास के उपदेश अधिक उत्तम पाए गए।

पृ० १६६—अ० ६ (शा० ५)। **देवस्य**—दुष्यन्तस्य। **उपरोधकारि**—बाधा पैदा करने वाला।

अ० ११--(कुमा० ५।३८)। **स्फुरितोत्तराधरः**—स्फुरणभूयिष्ठः अधरो यस्य सः—अर्थात् जिसका ओठ बड़े जोरों से फड़क रहा था, बोलने के लिये चेष्टा कर रहा था। अथवा इससे भी बढ़िया अनुवाद यह होगा "जिसके नीचे का ओठ तथा ऊपर का ओठ—दोनों ओठ फड़क रहे थे"।

तस्मात्--महतोऽपभाषाते।

अ० १५--(शा० २)। **परोक्षमन्मथः**—जिसको कामदेव (अथवा प्रेम) का अनुभव न हो, जो प्रेम की पहुँच के बाहर हो। 'ऐ मित्र! जो बात केवल हँसी में कही गई है उनको सत्य न मान लो।

पृ० २००--अ० वा० ३ (शा० ५)। **शाठ्यमशिक्षितः**—जिसने शठता नहीं सीखी है। **अप्रमाणम्**—प्रमाण नहीं माना जाता, विश्वास-पात्र नहीं समझा जाता। **विद्या इति**—इसे विद्या की सुनियमित तथा सुव्यवस्थित शाखा मानकर।

अ० वा० ४--(विक्र० १)। **त्वं यस्य नेत्रयोः पथि स्थिता**—तुम जिसकी आँखों के विषय में संयोगवशात् खड़ी थी और जिसकी आँखें, इसी कारण से अवन्ध्य हो गईं। (अव्यर्थ हुईं क्योंकि उन्होंने अपना फल पाया)। **रूढसौहृदः**—गहरी मित्रता वाला।

अ० वा० ५--(कुमा० ६।६०)। **रजसोऽपि परम्**—हिमालय ने तेजस्वी सप्तर्षियों से कहा है। 'रजोगुण के भी परे'।

अ० वा० ७—(रघु० ३।३१) **सुखश्रवा**—सुनने में सुखदायक। **दिवौकसां पथि**—आकाश में।

अ० वा० ६—(मेघ० । ३)। अन्यथावृत्ति—विकृत, क्षुब्ध, आन्दोलित। **कण्ठश्लेषप्रणयिनि**—कण्ठ का प्रगाढ़ आलिंगन चाहने वाले।

अ० वा० ११—(शा० ५)। अशिक्षितपटुत्वम्—बिना सिखाई-पढ़ाई हुई चातुरी (छल, कपट)।

अ० वा० १२—(मेघ० । ३)। अग्निमित्र के कहने का अभिप्राय यह है कि कामदेव-जनित घोर पीड़ा उसके प्रत्यक्ष रूप से इतने अहानिकर हथियार के सानुकूल मुश्किल से ही अर्थात् नहीं है। चूँकि कामदेव का हथियार केवल फूलों से बना है, अतः यह कहावत है कि जितना ही मुलायम है उतना ही (सहन करने के लिये) कठिन है, कामदेव के सम्बन्ध में सिद्ध होती है।

अ० वा० १३—(शा० । २)। कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भाव-दर्शनाश्वासि—उसके (शकुन्तला के) प्रेम को देखकर आश्वासन पाने वाला। **रतिमुभयप्रार्थना कुरुते**—हम दोनों की इच्छा तृप्ति (सन्तोष) पैदा करती है। "हम दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं" इस बात के विचार-मात्र से ही हम लोग सुख का अनुभव करते हैं।

चौबीसवाँ पाठ

पृ० २०८—अ० ६—(काद० ३०४)। तिष्ठतु पुरस्तात्—सामने ठहरे।

अ० १०—(विक्र० ४)। नववारिधरोदयादहोभिर्भवितव्यं च निरातपत्वरम्यैः—गर्मी के अभाव के कारण दिन अवश्य रमणीक होंगे।

अ० ११—(कुमा० ३।६६)। प्रतिग्रहीतुं प्रणयिप्रियत्वात्—अपने भक्तों के ऊपर कृपा या प्रेम रखने के कारण। ताम्=मालाम्

अ० वा० १—(शा० । ५)। अत्रभवत्याप्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु—जब दुष्यन्त ने शकुन्तला को पत्नी मानने से इन्कार कर दिया तब, पुरोहित ने यह उपाय सुझाया है। **अत्रभवती**=शकुन्तला। **उपदिष्टः**—भविष्यवाणी द्वारा बता दिया गया हुआ। **तल्लक्षणोपपन्नः**—चक्रवर्ती के लक्षणों से युक्त। **विपर्यये**—यदि परिणाम कुछ दूसरा हो?

पृ०२०६—अ० वा० ४ (रघु० ६।७)। लब्धान्तरा—जब अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी ने राजमहल में प्रवेश प्राप्त कर लिया, यद्यपि राजमहल खूब

जोरों से बन्द कर दिया गया था, तब कुश ने उस देवी से कहा है। **लब्धान्तरा**—प्रवेश प्राप्त करके।

अ० वा० ६—(शा० ५)। **सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला बाहूत्क्षेपं**—यहाँ "**बाहूत्क्षेपम्**" का अर्थ है "अपनी भुजाओं को ऊपर की ओर फेंकती हुई।" **स्त्रीसंस्थानम् ज्योतिः**—स्त्री के स्वरूप में ज्योति (प्रकाश), स्त्री रूपधारिणी ज्योति। **अप्सरस्तीर्थम्**—एक पवित्र स्थान का नाम है।

अ० वा० ६—(शा० १)। **निशितनिपाताः**—तेज या पैने गिरने वाले।

अ० वा० १०—(**मालती० ६**)। **च-च**—प्रत्येक पंक्ति में **च-च** का अर्थ है—"ऐसी बात हो न पाई थी कि इतने ही में।" **घनाघनः**—खूब घना और संक्षिप्त।

पचीसवाँ पाठ

पृ० २१५—**अ० १**—(**मालवि० २**) **ज्ञानवृद्धभावः**—ज्ञान में बड़े होने के कारण, अर्थात् यद्यपि दो के दोनों एक समान विद्वान् हैं। **पुरस्कारमर्हति**—पुरस्कार का पात्र है, आगे किए जाने (रक्खे जाने) का पात्र है।

अ० ३—(शा० ६)। **अनियंत्रणानुयोगः**—बिना किसी रुकावट के यानी स्वतन्त्रतापूर्वक पूँछा जा सकता है।

अ० ६—(दश० २।२)। **तत्पाटवात्**—उसकी चातुरी के कारण।

अ० ७—(**दश० २।४**)। **बद्धकलकले**—जिसने बड़े जोरों का कोलाहल करना आरम्भ कर दिया था। **प्रदीप्तशिरसम्**—अपना फन फैला कर। **भीतोनाम**—भयभीत होने का बहाना करके अर्थात् भयभीत व्यक्ति के समान।

अ० ८—(**दश० १।५**)। **इमं ललनाजनं·····घुणाक्षरन्यायेन**—लकड़ी में अथवा पुस्तक के पृष्ठों में कीड़े द्वारा बनाया गया हुआ कटान जो अक्षरों के आकार से मिलता-जुलता है। कीड़े लकड़ी को अथवा पुस्तक के पृष्ठों को इस प्रकार से काट देते हैं कि मानों अक्षर बन जाते हैं। **घुणाक्षरन्यायेन**—संयोगवशात्, अकस्मात्।

पृ० २१६—**अ० १०**—(**उत्त० ३**)। जब सीता जी के करों के शान्तिदायक स्पर्श का श्रीरामचन्द्र जी ने अनुभव किया तब उन्होंने कहा।

अ० वा० १--(शा० १)। **प्रयोगेणाधिक्रियताम्**—प्रयोग (प्रदर्शन) का विषय बनाया जाय, अर्थात् रंगमंच पर लाया जाय।

अ० वा० ४—(उत्त० १)। **तातपरिजनस्य**—मेरे पिता जी के नौकर। **यथाभ्यस्तम्**—जैसे तुम्हारा अभ्यास पड़ गया है, वैसे ही।

अ० वा० ५--(दश० २।६)। **अष्टादशवर्षदेशीयः**—लगभग अठारह वर्ष का।

अ० वा० ६--(कुमा० ५।३२)। **अनुज्झितक्रमः**—मर्यादा (औचित्य) की सीमा को बिना त्यागे हुए, अर्थात् मर्यादा का पालन करते हुये।

अ० वा० ७—(शा० ५)। **आत्तदण्डः**—दण्ड को ग्रहण कर। **अतनुषु आदि**—ऐश्वर्य के दिनों में (अर्थात् जब रुपये पैसे की अधिकता रहती है) तो बहुत से साथी-सम्बन्धी होते ही हैं परन्तु तुम तो ऐसे साथी हो जिसमें हित के सभी कर्त्तव्य या गुण सन्निहित हैं। अर्थात् सौभाग्य के दिनों में पेटू या खाऊ साथी अनेक मिलते हैं परन्तु तुम तो प्रजा के सच्चे हितैषी हो—अच्छे एवं बुरे दोनों ही दिनों में।

अ० वा० ८--(रघु० ८।३८) **करणोज्झितेन**—स्पर्श आदि इन्द्रियों से त्यक्त। **तैलनिषेकबिन्दुना**—टप् टप् चूते हुए तेल की बूँद से।

२१७—अ० वा० ९--(विक्र० १)। **कान्तिप्रदः**—कान्ति (ज्योति, शोभा) का देने वाला। **मासा इत्यादि**—वैशाख का महीना, वसन्त ऋतु जब कि वृक्ष फूलों से लदे रहते हैं।

छब्बीसवाँ पाठ

पृ० २२०--अ० १--(शा० २)। **कुब्जलीला**—कुबड़े की चाल, कुबड़ी-कुबड़ी चाल।

अ० २--(शा० ५)। **प्रत्युत्पन्नमति**—तात्कालिक बुद्धियुक्त, धैर्यवान्।

अ० ४--(काद० ३५)। **खलीकरोति** (मनुष्य को) दुष्ट बना देता है।

पृ० २२१--अ० ७--(दश० २।७)। **यदणीयसि आदि**—छोटी सी बात पर बड़ा सम्मान प्रदर्शित किया जाता है।

अ० ८ - (**मालवि० १**) । **अलमन्यथा गृहीत्वा**—मेरे विषय में गलत धारणा मत बनाइए ।

साधारणतः ऐसे लोग जो समान पढ़े लिखे होते हैं, एक दूसरे की ख्याति के प्रति स्पर्धा करते हैं ।

अ० १०—(**मुद्रा० १**) । **चीयते**—फल से युक्त होता है, सफल होता है ।

अ० वा० ५—(**रघु० १।८७**) । **कल्याणी**—पवित्र गाय ।

अ० वा० ६—(**रघु० ८।४७**) । **अथ वा मम भाग्यविप्लवात्**—अज की उक्ति है । जब इन्दुमती के वक्षःस्थल पर गिरते ही स्वर्गीय माला ने उसके प्राण हर लिये और अज को तनिक भी हानि न पहुँचाई, तब अज ने कहा है ।

सत्ताईसवाँ पाठ

पृ० २२७—**अ० १**—(**मालवि० ३**) । **अभिनिवेश्य**—मन को पदार्थों या विषयों में लगाकर ।

कालान्तरक्षमो न भवति—विलम्ब को सहन करने में असमर्थ है, विलम्ब नहीं सहन कर सकता ।

पृ० २२८—**अ० ७**—(**उत्त० ४**) । **ईदृशः आदि**—तुम्हारे पैदा किये जाने की यह दशा हो गई है ।

अ० ६—(**काद० १०५**) । **अर्थ** यह है कि सम्पत्ति की जितनी ही अभिलाषा की जाती है, उतना ही ऐसी इच्छा वाला व्यक्ति बुरे कामों को करने की ओर प्रवृत्त होता है । यहाँ उपमा एक दीपक से दी गयी है जो कि जितनी उसकी लव तेज होती जाती है, उतना ही कालिख फेंकता जाता है ।

अ० १२—(**कुमा० ३।७२**) । **भस्मावशेषं चकार**—राख कर दिया ।

अ० १३—(**कुमा० ६।७०**) । **उच्छिरसा**—जिसका सिर (शिखर) आकाश में ऊपर को गया हुआ है ।

पृ० २२९—**अ० १६** (**रघु० १०।१७**) । **अभिषेकान्ते**—राज्याभिषेक के अन्त में ।

अ० वा० १—(**विक्रमो० २**) । **विरलजनसम्पाते**—जहाँ बहुत कम लोगों का आना जाना हुआ करता है ।

विमानोत्संग—किसी राजा के महल का नाम।

अ० वा० ५—(वेणी० ३) **लोकयात्रा सिद्धा**—इस प्रकार की जीवन-यात्रा निश्चित है।

पृ० २३०—अ० वा० ११—(रघु० १५।६८) **उभयोः—कुशलवयोः**। लोग उनके संगीत-नैपुण्य पर उतना आश्चर्य नहीं करते थे, जितना कि इस पर कि वे राजा द्वारा स्वेच्छापूर्वक दिये हुए उपहारों को बड़े तिरस्कारपूर्वक ठुकरा देते थे।

अ० वा० १२—(भर्तृ० ३।८८) । **यावत् स्वस्थमिदं कलेवरगृहं**—यह उन लोगों के लिये बड़ी लाभकारी शिक्षा है, जिनकी आदत ऐन मौके पर काम करने की होती है। ऐन मौके पर तैयारी करने से कार्य सिद्ध नहीं होता। पहिले ही से सब प्रबन्ध करना चाहिए।

अट्ठाईसवाँ पाठ

पृ० २३६—अ० ७—(कादम्० १०३) । **विशन्ति सुखं**—आसानी से प्रवेश प्राप्त कर लेते हैं।

अ० ८—(शा० ५) । **सर्वतोमुखी**—प्रत्येक बात में अपरिमित, पूर्ण।

अ० ६—(कुमा० १।३) । **यस्य**—हिमालय की ओर संकेत है।

पृ० २३७ —अ० वा० २—(शा० १)। **असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः**—सज्जनों के हृदय की आन्तरिक प्रेरणा उनके लिये बहुत ही शुभ पथप्रदर्शक होती है जिसकी राय उन्हें माननी चाहिये। क्योंकि उनका हृदय किसी अन्याय बात को सोच ही नहीं सकता।

अ० वा० ४—(विक्र० ३) । **एवमादिभिः**—अर्थात् उपायैः। सा= उर्वशी।

तदाश्रयिणी—उसके विषय की।

अ० वा० ६—(मेघ० ८८) । **भावगम्यम्**—मन द्वारा चिन्तन करने योग्य।

पृ० २३८—अ० वा० ६—(रघु० १।१६)। **मखजम्**—विश्वजित् नामक यज्ञ से पैदा हुई। विश्वजित् नामक यज्ञ में रघु ने अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी थी।

अ० वा० १०--(मालवि० ५)। **इयम्**—मालविका। **प्रेष्यभावेन**—नौकर की हैसियत से। **वा**—समान।

अ० वा० ११--(रघु० १।७४)। **पंक्तिरथः**—दशरथः। **पंक्ति**—दस नियमों का उल्लंघन करके जो दशरथ ने किया था, वह वस्तुतः उन्हें मना किया गया था। [तब बुद्धिमान् राजा होकर उन्होंने इस कार्य को कैसे कर डाला] क्योंकि अन्धकार (मद) से अन्धे होकर विद्वान् लोग भी गलत रास्ते पर चले जाते हैं।

अ० वा० १६--(मुद्रा० ५)। **शकटेन**—शकटदासेन।

अ० वा० १८--(मालवि० ३)। **खण्डनहेतवः**—उसको निराश करने के बहाने।

उन्तीसवाँ पाठ

पृ० २४६--अ० १--(दशकु० २।८)। **शक्ति**—राजा की शक्ति, जिसमें तीन अङ्ग होते हैं। **प्रभाव**—स्वयं राजा का ऐश्वर्य। **मंत्र**—अच्छी राय की शक्ति। **उत्साह**—शौर्य-शक्ति।

पृ० २५०—अ० ६--(भट्टि० २।३६)। ये पंक्तियाँ विष्णु से सम्बन्धित हैं। **कल्पान्तदुःस्था**—कल्प के अन्त में विपद्ग्रस्त दशा में। **कल्प**—अखिल विश्व के प्रलय का समय। **ऊहे**—उठा लिया गया अथवा खींच लिया गया।

अ० १०—(शिशु० २।१०) परः—शत्रुः। बढ़ते हुए शत्रु तथा रोग को विद्वान् लोग एक समान मानते हैं अर्थात् यदि उनका बढ़ना ठीक समय पर नहीं रोक दिया जाता तो वे घातक सिद्ध हो जाते हैं।

अ० ११--(रघु० ५।७४)। **त्वत्प्रबोधप्रयुक्ताम्**—आप को जगाने में प्रयुक्त की हुई।

अ० १३--(कुमा० २।३)। **सर्वतोमुखम्**—जिसके मुख सभी दिशाओं में हों।

अ० १४--(कुमा० २।१८)। **स—हिमालयः**। **पितृणां—मानसीं कन्याम्**—वह कन्या पितरों के मन से पैदा हुई थी।

अ० १५--(उत्त० ४)। **नव इव चिरेणापि**—यद्यपि चिरकाल व्यतीत हो गया, तथापि मेरा शोक मानो नया हो गया है।

अ० १७--(भट्टि० ८।२८) । **असौ**—हनुमान् ।

पृ० २५१--अ० वा० २ (काद० २८६) । **स्फुटन्निव**—मानों आन्तरिक उद्गार के कारण फूट रही थी ।

अ० वा० ३--(रघु० १५।६७) **वयो**—राम तथा लवकुश में जो समानता थी वह केवल अवस्था और वस्त्र में भिन्न थी, अन्यथा और सभी बातों में मिलती-जुलती थी, अर्थात् लव कुश तथा राम अवस्था और वेष के अतिरिक्त अन्य सभी बातों में मिलते जुलते थे ।

नात्तिकम्पं व्यतिष्ठत—बिना आँख झँपाये खड़ा था, उनकी ओर टकटकी लगाकर खड़ा था ।

अ० वा० ५--(किरा० २।२५) । **सुतं मरुतः**—भीम । **दर्शित विक्रियम्**—जिसने अपने मन का विकार दिखा दिया था ।

अ० वा० ७—(रघु० ४।६५) । **तद्योधा**—उसके योधा लोग ।

अ० वा० ८--(किरा० २।४१) । **श्रुतमधिगम्य**—प्रखर ज्ञान प्राप्त करके । **शरीरजन्मनः रिपून्**—काम, क्रोध, लोभ, इत्यादि छः विकार ।

वे शीघ्र लक्ष्मी (सम्पत्ति) पर चञ्चल होने का दोष आरोपित करते हैं । अर्थात् सम्पत्ति ऐसे व्यक्तियों को छोड़ देती है और चपल कहलाने लगती है ।

अ०वा० ६--(उत्त० २) । **प्रियप्राया**—प्रायः दया से भरी हुई । जिसका स्वाद पहिले अथवा पीछे कभी भी विकृत नहीं होता, अर्थात् जो सर्वदा एक समान रमणीय रहती है ।

अ० वा० १०--(भट्टि० ८।११) । **न संस्थास्यते**—नहीं रुकेगी, पूर्ण होगी ।

अ० वा० ११--(भट्टि० ८।२५) । **सीताम्**—द्रष्टुम् का कर्म । **उपाक्रंस्त**—समुद्रतट की तरफ बढ़ा ।

अ० वा० १४—(शिशु० २।१६) । **यावदर्थपदाम्**—अर्थ को स्पष्ट कर देने भर के लिये जिसमें शब्द थे ।

पृ० २५२--अ० वा० १५--(शिशु० २।३४) । **अखिलीकृत्य**—बिना उसको शक्तिहीन किये हुए ।

अ० वा० १६--(भट्टि० ७।१०१-१०२)। मोपयध्वम् भयम्—भय मत करो। **महेन्द्र**—एक पर्वत का नाम है। **धैर्यमाधिषत**—उनके हृदयों ने हिम्मत धारण की।

तीसवाँ पाठ

पृ० २६०--अ० १--(कादम्० १०)। नरपतिप्रबोधनार्थम्—राजकुमार की जो आँखें राजा के ऊपर लगी हुई थीं, उन्हें चाण्डालकन्या की तरफ फेरने के लिए।

अ० ५--(दश० २।२)। अनाश्रवासीत्—परवाह नहीं किया। **समगिरेताम्**—प्रण किया।

अ० ८--(दश० २।४)। प्रतिविधाय तिष्ठत्सु—राजा के जो मनसूबे सम्भव थे, उनके विरुद्ध कार्रवाई करके।

अ० ६--(किरा० २।१८)। वर्तयते—अपना भरण करता है। स्वतः मारे हुए हाथियों पर जीविका निर्वाह करता है। जो महान् पुरुष अपनी ही शक्ति से संसार को नीचा दिखा देता है, वह अपने भरण-पोषण के लिए दूसरों से इच्छा नहीं रखता।

अ० १०--(किरा० १६।१६)। अस्तसंख्यम्--अनगिनती--अत्र—इस युद्ध में।

पृ० २६१--अ० १२--(शिशु० १।६८)। शक्ति—बल और तीनों राजशक्तियाँ। **षाड्गुण्यम्**—छः उपाय। **अंगानि**—शरीर के अवयव तथा किसी राज्य के अंगभूत भाग।

अ० १४--(भट्टि० ८।१६,२०)। मा कस्यचिदुपस्कृथाः—मेरे लिये भोजन की बहुत सी सामग्रियाँ मत तैयार करो। (दृश्यपेयभोज्यादिकं किमपि मा कुरु)।

अ० १६—(भट्टि० ८।२७)। वदमानः—चमकता हुआ (भासमानः)।

अ० वा० १--(दश० २।२)। व्यवहर्तुमभियोक्ष्यते—अदालत में जाने के लिए प्रयत्न करेगा। **कौपीनावशेषम्**—उसे एक दम दरिद्र बना देंगे।

अ० वा० ७—(रघु० ७।३१)। **कृतपूर्वसंविद्**—जिन्होंने अपने मनसूबे की पूर्ति के लिए पहले षड्यन्त्र रचा था। **समयोपलभ्यम्**—अज के प्रस्थान के समय मिलने वाला।

पृ० २६२—अ० वा० ८—(किरा० १८।४२)। **संविदामीश**—शक्तियों के स्वामी। **विरोध्य**—जो मूर्खता के कारण शत्रुता कर लेते हैं परन्तु बाद में नम्र हो जाते हैं, उन लोगों का।

अ० वा० ९—(रघु० १९।६२)। **शान्तिमधिकृत्य**—शान्ति के विषय में। **स्वन्तम्**—शोभनः अन्तः परिणामः यस्य सः, तथोक्तम्।

अ० वा० ११—(शिशु० १६।३४)। **भूपतिः**—चेदिराजः। यह सम्भव नहीं है कि सिंह (कृष्ण) आक्रमण के डर के मारे आसानी से दुबुक जायँगे।

अ० वा० १३—(शा० २)। **उदधिश्यामसीमाम्**—जिसकी काली-काली सीमा समुद्र है, अर्थात् समुद्र तक। नगर·····पुर द्वार की अर्गला के समान लम्बी भुजाओं वाला अर्थात् विपुल शक्ति वाला।

अ० वा० १५—(भट्टि० ८।६१ से ६४) **लतां नर्तयमानवत्**—मानों हवा के झोंके के साथ लता को नचाता हुआ। **संत्रस्ता**—रावण से डरे हुए। **नायासयन्त**—हस्तक्षेप नहीं किया, कुछ भी प्रभाव नहीं डाला। **स्मरात्**—काम-पीड़ित होने के कारण।

परिशिष्ट—१

सूक्तियाँ तथा मुहाविरे

स दैवाधीनः कृतः, यद्भावि तद्भवतु इत्युक्त्वा परित्यक्तः—वह अपने भाग्य पर छोड़ दिया गया।

तव निर्णये स्थास्यामि, तव निर्णयः प्रमाणं—आप का निर्णय मुझे मान्य होगा। **प्रतिज्ञाम्-अभिसंधां-पालयति**—अपनी प्रतिज्ञा का पालन करता है।

यथाशक्ति, यावच्छक्यं—अपने भरसक, जहाँ तक हो सके।

बहुकौतुकः स देशः—वह देश कौतुकों से भरा हुआ है।

पंचवर्षदेशीयः—लगभग पाँच वर्ष का। **मध्याह्नप्रायः-कल्पः समयः**—लगभग दोपहर है। **किं कर्तुमुद्यतोसि, किंकार्यव्यग्रोसि, किमारंभस्त्वम्**—किस फेर फार में हो?

स सर्वेषां मूर्ध्नि तिष्ठति—वह सब के ऊपर है। **अदत्तावकाशो मत्सरस्य**—जलन या डाह से परे।

सा दारुणा प्रतिज्ञा लोके प्रकाशतां गता प्रकाशीभूता—वह भयंकर प्रतिज्ञा संसार में ज्ञात हो गई।

शून्यमनस्क, शून्यहृदय हृदयेनासन्निहित, विगतचेतन—अन्यमनस्क **कृतमेतादृशेन असंगतन प्रलापेन**—इस तरह की असंगत बातें न करो। **मनोरथानामगतिर्न विद्यते**—इच्छा के लिए कोई चाज अगम्य नहीं। **मरणं प्रकृतिः विकृतिर्जीवितमुच्यते**—मृत्यु प्राकृतिक चीज है, जीवन तो केवल विकारमात्र है।

भावमनुप्रविश्—अपने आप को किसी की इच्छा के अनुकूल बनाना।

एकचित्तीभूय—एक होकर। **यदृच्छया, स्वयं, स्वेच्छातः**—अपनी इच्छा से। **तद्वचनानुसारेण-अनुरोधेन**—उसके कहने के अनुसार। **अनुज्येष्ठम्**—ज्येष्ठता के अनुसार।

राजेति का मात्रा-गणना मम—मेरे लिए राजा किस लेखा में हैं, मैं राजा की कुछ भी परवाह नहीं करता।

दैवहतकम्, दग्धदैवम् हतदैवम्—अभाग्य, दुर्भाग्य।

बलवती शिरोवेदना मां बाधते—मुझे बहुत जबर्दस्त सरदर्द है।

भवतोऽविनयमन्तरेण परिगृहीतार्था कृता देवी—रानी को तुम्हारी धृष्टता के विषय में अवगत करा दिया गया।

ते स्वकर्म साधु निरवाहयन्-आचरन्—इन लोगों ने भली भाँति व्यवहार किया।

शासने तिष्ठ भर्तुः—अपने पति की आज्ञा के अनुसार कार्य करो। **लक्ष्मीभूमिकायां वर्तमाना**—लक्ष्मी का अभिनय करने वाली। **कुरु प्रिय-सखीवृत्तिं सपत्नीजने**—अपनी सौतों के प्रति प्रियसखी का सा व्यवहार करना। **मनो-वाक्-काय-कर्मभिः**—मनसा, वाचा, कर्मणा।

कुशाग्रबुद्धिः—तेज बुद्धि वाला।

यथाकालं व्यवहर—परिस्थितियों के अनुसार अपना आचरण बनाओ। **तस्यैकदेशः अभिनेयार्थः कृतः**—इसका एक अंश अभिनय के योग्य बना दिया गया है।

लक्ष्मीं तनोति—शोभा को बढ़ाती है। **गंडस्योपरि पिटिका संवृत्ता, अयमपरो गंडस्योपरि स्फोटः**—पहिले अनर्थ के ऊपर यह एक और नया अनर्थ आकर उपस्थित हो गया (फोड़ा के उपर फुंसी)।

मधुरालाप, प्रियंवद—मीठी वाणी बोलने वाला। **अदत्तबाह्यनामा लेखः**—ऐसा पत्र जिस पर कोई भी पता न लिखा हो। **दत्त-लिखितमदृबाह्य-नाम पत्रं प्रेषय**—पत्र को मेरे पते से भेज देना।

आमंत्रयस्व-आपृच्छस्व सहचरम्—अपने मित्र से विदा हो लो।

सर्वविश्रम्भेष्वभ्यन्तरीकरणीया—सभी गुप्त मामलों में उसे सम्मिलित रखना चाहिये। **तस्या विकारो विलंबान्नमः**—उसकी बीमारी ऐसी नहीं है जिसमें देर करने की गुंजाइश हो।

वयोवृद्ध, प्रवयस—उम्र में बड़ा। **ज्ञानवृद्ध**=ज्ञान में बड़ा।

मम छिद्रेण लब्धावकाशः—मेरी कमजोरी से फायदा उठाकर।

वसन्तसमयावतारः, मधुप्रवृत्तिः—वसन्त का आगमन। **क्लेशलेशैरभिन्नः**—जरा सा भी थकावट से प्रभावित न होकर। **वेतालोपहतः**—पिशाच (भूत) से ग्रस्त। **अनेकव्याध्युपसृष्टः**—अनेक रोगों से ग्रस्त। **नः किञ्चिद् छिद्यते**—इससे हमारी स्थिति पर जरा भी प्रभाव नहीं पड़ता। **कृतककलहं कृत्वा**—नकली झगड़ा करके। **मम वचसा तस्य हृदयं द्रवीभूतम्, मम वचस्तस्य हृदये दृढं पदं लेभे**—मेरी बातों का उसके हृदय पर बड़ा असर पड़ा। **पंडितम्मन्योसौ**—वह अपने को पंडित लगाता है।

द्वौ नञौ प्रकृतार्थं गमयतः—दो निषेधवाचक शब्दों से एक विधिवाचक अर्थ निकलता है।

इति वार्ता प्रसृता—ऐसी अफवाह फैली थी।

अनुपूर्वशः—एक के बाद दूसरा। **वृक्षं वृक्षं सिंचति**—एक वृक्ष के बाद दूसरे को सींचता है। **स पितामहनाम्नाऽभिधीयते-आहूयते**—उसका नाम उसके पितामह के नाम पर रक्खा गया है। **प्राप्तव्यवहारदशः**—बड़ा हो जाने पर। **षोडशवर्षवयोवस्थामस्पृशत्**—वह सोलह वर्ष का हो गया।

अस्मिन्विषये सर्वेषां तेषामैकमत्यम्—इस बात पर वे सब एकमत हैं।

शरसंधानं कुर्वन्—बाण का निशाना लेकर। **क्वानिर्दिष्टकारणं गम्यते**—बिना किसी निश्चित लक्ष्य के कहाँ जा रहे हो?

वातमासेव—हवा खाने के लिए। **प्रकाशतां गम्**—खुल जाना। **अवलेपमुद्रा**—अभिमान का रुख। **निकृतामिवात्मानं संदर्श्य**—क्रुद्ध व्यक्ति का सा आकार बनाकर। **गगनकुसुमानि-खपुष्पाणि-चि, मनोराज्यविजृम्भणं कृ**—मन के लड्डू खाना।

अकस्मात्, सहसा, एकपदे—यकायक। **एतावान्मे विभवो भवंतं सेवितुम्**—आप की सेवा करने के लिये इतना ही कर सकता हूँ। **जीवितसर्वस्वं**—किसी के जीवन के सर्वेसर्वा।

एवं पिंडीकृत्य मह्यं विंशतिं रूपकान्देहि—सब मिलाकर मुझे बीस रुपए दीजिए। **सर्वे मिलित्वा सप्त वयं**—सब मिलकर हमलोग सात हैं।

इयं कथा मामेव लक्ष्यीकरोति—यह कहानी मेरे ही विषय में है। **क्षीण-भयिष्ठायां क्षपायां**—जब रात लगभग समाप्त हो चुकी थी। **अधुना प्रभात-प्राया-कल्पा रजनी**—इस समय लगभग प्रातःकाल हो गया है। **मृतप्राय-कल्प**—लगभग मरा हुआ। **अन्या गतिर्नास्ति, अन्यच्छरणं नालोक्यते**—दूसरा कोई चारा नहीं है।

एष तव वचसो निष्कर्षः-पिंडितोऽर्थः—आपके भाषण का सारांश यह है।

अराजके जनपदे—ऐसे देश में जिसमें राजा न हों, जहाँ अराजकता हो।

जन्मदिवसः—जन्म-दिन। **मृततिथिः**—निधन-तिथि।

भवतु-तथा-इति स प्रत्युवाच—उसने उत्तर दिया "बहुत अच्छा"।

इदं मे इष्टसिद्धये कल्पेत—इससे मेरा काम चल जायगा।

चिंताविषघ्नोऽगदः—चिन्ता को मिटाने वाली दवा। **विषवैद्यः, जांगुलिकः**—जहरीली दवाइयाँ बेचने वाला।

व्याजस्तुतिः—ऊपर से देखने में प्रशंसा।

अस्मिन्नर्थेऽत्रभवंतं प्रमाणीकरोमि, अत्र भवान् प्रमाणं—इस विषय में मैं आप से फरियाद करता हूँ।

साक्षी नोपतस्थौ—गवाह उपस्थित नहीं हुआ। **शोभनाकृति. सुभगाकृति, चारूदर्शन, प्रेक्षणीय**—सुन्दर आकार वाला। **तव कथा सत्येव प्रतिभाति-अवभासते**--तुम्हारी कथा सच्ची-सी मालूम पड़ती है।

सुखार्थे विषयशब्दं न प्रयुंजते-- "विषय" शब्द सुख के अर्थ में नहीं प्रयोग किया जाता। **द्वितीयगामी न हि शब्द एष नः**—हमारी यह पदवी किसी दूसरे में लागू नहीं होती। **कोऽपरो नियोगोनुष्ठीयतामिति प्रार्थयामास**—उसने प्रार्थना की कि अब कौन-सी दूसरी आज्ञा बजा लाऊँ। **वयं स्वकर्मण्यभियुज्यामहे**—हम लोग अपने-अपने काम में लगते हैं।

देवि सामयिका भवामः—हे देवी, हम लोगों को समय का पाबन्द होना चाहिये।

तीक्ष्णमति—तेज बुद्धि वाला। **मंदधी, स्थूलबुद्धि**—मोटी बुद्धि वाला। **प्रस्तावसदृशं, प्राप्तकालं, कालोचितं, समयानुरूपं**—अवसर के लिए उपयुक्त।

न ते वचोऽभिनंदामि—मैं तुम्हारे वचनों का अनुमोदन नहीं करता।

युवानो विस्मरणशीलाः—नौजवान लोग भुलक्कड़ हुआ करते हैं चीजों को भूल जाया करते हैं। **अतिस्नेहः पापशंकी**—अतिस्नेह से पाप की शंका होने लगती है।

लोके गुरुत्वं विपरीततां वा स्वचेष्टितान्येव नरं नयति—मनुष्यों को अपने ही कार्य उन्हें बड़ा अथवा छोटा बना देते हैं।

बध्नाति मे चक्षुश्चित्रकूटः—चित्रकूट मेरे नेत्रों को आकृष्ट करता है।

अव्याजमनोहरम्-अकृत्रिमलावण्यं निसर्गरमणीयं वपुः—प्रकृत्या सुन्दर शरीर।

गुणास्तावत्तस्य नैव विद्यन्ते—गुण तो उसमें एक भी नहीं है।

शीघ्रमिति सुकरं—रहो शीघ्रता करने की, सो तो सरल है। **पितेति मां स मानयति**—यह पिता है, ऐसा समझकर मुझे मानता है।

वेलोपलक्षणार्थम्—समय मालूम करने के लिए।

कस्मिन् दोषं निक्षिपामि, कं दोषपदे स्थापयामि—किसके मत्थे दोष मढ़ूँ।

भस्मी-भस्मसात्कृ—राख कर डालना। **भस्मीभू**—राख हो जाना।

तस्य वदनं हर्षोत्फुल्लं बभौ—उसका मुखड़ा हर्ष से खिल उठा। **सर्वं विपर्यासं यातं**—सभी चीजें बदली हुई थीं।

उदगभिमुखं मे गृहम्—मेरे घर में उत्तरी झलक है।

दूरारूढाः-दूराधिरोहिणः-उत्सर्पिणः खलु एते मनोरथाः—वस्तुतः ये बड़ी उच्चाकांक्षाएँ हैं।

मृगा मृगैः संगमनुव्रजन्ति—हिरन हिरनों के साथ रहते हैं।

कृतक-मौनम्, मिथ्या-मौनं—दिखावटी मौन।

इति मे निश्चयः, दृढं मन्ये—मुझे पूरा विश्वास है।

उपचारातिक्रमं-प्रणिपातलंघनं-प्रमार्ष्टुमयमारंभः—दण्डवत् प्रणाम का तिरस्कार करने का प्रायश्चित्त करने के लिए यह कार्य है।

लोकापवादो बलवान्मतो मे—मैं लोकनिन्दा को बहुत महत्त्वशाली चीज मानता हूँ। **नृपे सुदृढमनुरक्ताः प्रजाः**—प्रजाएँ राजा में बहुत जबदस्त अनुराग रखती हैं।

युवतयो गृहिणीपदं यांति—युवती स्त्रियाँ गृहिणी की पदवी पाती हैं।

उदार-आर्य-नेपथ्यभृत्—बड़ी सजधज के साथ वस्त्र पहने हुए।

वैरभावः, विपक्षवृत्तिः—शत्रुता का रुख।

आत्मन्यारोपितालीकाभिमानाः—अपने में मिथ्या गौरव समझने (मानने) वाले।

राजदर्शनं लेभे—राजा से मुलाकात की। **दर्शनानुग्रहमिच्छामि**—दर्शन पाकर अनुगृहीत होना चाहता हूँ।

विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता, जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः—जो पैदा होता है, वह अवश्य मरता है।

चकितं नृपस्य पार्श्वमुपैमि—मैं राजा के पास भयभीत होता हुआ जाता हूँ।

परोक्षे, परोक्षम्—पीठ पीछे। **उर्वशी प्रत्यादेशः श्रियः**—उर्वशी लक्ष्मी को मात कर देती है।

सकलवचनानामविषय-वर्णनविषयातिक्रान्तं-मोघवर्णनप्रयत्नं तत्स्थानम्—वह स्थान वर्णनातीत है।

ते कुलस्याधयः—वे कुल के अभिशाप हैं।

इति समयः कृतः—ऐसा सौदा (शर्त) ठहरा था।

अपि च, अपरं च—अतिरिक्त।

तस्मिन्नवसरे तेन धीरं विक्रांतं—उस अवसर पर उसने वीरतापूर्वक व्यवहार किया। **चित्ते अवधृ, मनसि कृ, अनुस्मृ**—मन में धारण करना। **शोकवशं मा गमः**—शोक मत कीजिए।

सीतादेव्याः किं वृत्तं—महारानी सीता का क्या हुआ ?

आपतन्ति हि संसारपथमवतीर्णानामेते वृत्तांताः—इस प्रकार की घटनाएँ संसारी मनुष्यों के ऊपर पड़ती हैं।

अश्रुतपूर्व—पहिले कभी न सुना हुआ।

लतांतरित-लताव्यवहित विग्रहः—लताओं के पीछे अपने शरीर को छिपा कर।

भ्रूभंगं कृ—भौं टेढ़ी करना। **स पुनरपि स्वकार्ये मनो बबंधन्यवेशयत्**—वह फिर अपने काम में दत्तचित्त हो गया। **भवंति नम्रास्तरवः-**

फलागमैः—फलों के बोझ से वृक्ष झुक जाते हैं। **कृतनिश्चय, दृढ़निश्चय-कृतसंकल्प, विहितप्रतिज्ञ**—तुला हुआ, कटिबद्ध। **परस्परवधोद्यतौ**—एक दूसरे को मारने पर तुले हुए।

आनंदपरवशः, आनन्देन विगतचेतन इव भूत्वा—आनन्द के मारे अपने आपे में नहीं रह गया। **अप्रास्ताविकं, अप्रस्तुतं, अप्रासंगिकं, अप्रकृतम् एतत्**—यह तो प्रस्तुत विषय के बाहर है।

अस्ति मे विशेषोऽद्य—आज मेरी तबीयत अच्छी है। **अभिभू-अति रिच**—मात कर देना।

दुर्गम, दुर्ज्ञेय, दुर्बोध—जो समझ में न आवे। **आयाधिकं व्ययं करोति**—वह अपनी आय से अधिक खर्च करता है। **स श्रुतिपथम् अति-क्रांतः-व्यतीतः**—जहाँ तक सुनाई पड़ सकता था, उसके आगे चला गया। **गर्भेश्वरः**—जन्म से ही धनवान्।

न मनागपि, न स्तोकांशेनापि—जरा भी नहीं।

मृत्पिंडबुद्धिः—काठ का उल्लू।

समेत, संहत—एक साथ। **आसन्नपरिचारकः**—अंगरक्षक।

भिन्नोष्टधा विप्रससार वंशः—कुटुम्ब आठ भागों में विभक्त हो गया।

साहसे श्रीः प्रतिवसति—लक्ष्मी वीर पुरुष के ऊपर कृपा करती है।

प्रभाता रजनी—दिन निकल आया। **विच्छेदमाप कथाप्रबंधः**—कथा में भङ्ग हो गया। **सभ्याः स्वं-स्वं स्थानं प्रतिजग्मुः**—सभा विसर्जित हो गई। **तस्याश्चणोः प्रभातमासीत्**—उसके नेत्रों के सामने ही दिन निकल आया।

किं बहुना—संक्षेप में, बहुत कहने से क्या।

हर्षरोमांचित, पुलकित, कंटकित-तनुः—प्रसन्नता के मारे उसके शरीर पर रोंगटे खड़े हो गए।

तस्याः सहसा प्रावर्ततााश्रुधारा—वह फूट-फूटकर रोने लगी। **संभूय प्रशंसागिर उदतिष्ठन्**—(लोगों के मुँहों से) प्रशंसा फाट पड़ी।

अप्रस्तुतं किमिति अनुसंधीयते—क्यों गोलमोल बातें करते हो। **ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवनिषेवणं नेष्टम्, अध्रुवाद् ध्रुवं वरं, वरमद्य**

कपोतो न श्वो मयूरः, वरं तत्कालोपनता तित्तरी न पुनर्दिवसांतरिता मयूरी—नौ नकद न तेरह उधार।

अनुदिवसं-दिनं, दिने-दिने—प्रतिदिन। **शतशः**—सैकड़ों। **एकैकशः, आनुपूर्व्येण**—एक-एक करके।

प्रयत्नसंवर्धितः—बड़ी देखभाल से पाला पोसा हुआ। **निपुणमन्विष्य**—सावधानी के साथ खोजकर। **अधुनाहं वीतचिंतः**—अब मुझे चिंता नहीं। **न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते**—स्वेच्छाचारी पुरुष कलंक की परवाह नहीं करता। **प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः**—प्रत्येक पात्र की देखरेख की जाय।

प्रस्तुतविषये, प्रकृते—इस मामले में, वर्तमान मामले में। **तेन**—यदि ऐसी बात है तो।

किं मिष्टमन्नं खरसूकराणाम्—भैंस के आगे बीन बजावे, भैंस खड़ी पगुराय।

ज्वलनमपतत्-अधिष्ठीपत्-गृहम्—घर में आग लग गई। **कर्मगृहीत-**



दुःस्थत—विपत्ति में पड़ा हुआ। **येन केनापि प्रकारेण**—चाहे जिस तरह से भी हो। **यथावसरं, यथाकालं**—अवसर अथवा परिस्थितियों के अनुसार।

अतिभूमिं गतो रणरणकोऽस्याः—इस स्त्री की चिंता पराकाष्ठा को पहुँच गई है।

निमिमील नरोत्तमप्रिया—राजा की प्यारी ने आँखें बन्द कर लीं। **अद्य निर्वातं नभः**—आज बड़ी उमस है।

मृत्युमुखान्मुक्तः—काल के गाल से बचा हुआ।

यद्भावि तद्भवतु—जो होना हो सो हो। **यद्भावि तद्भवतु शुभमशुभं वा**—चाहे अच्छा हो चाहे बुरा, जो होना हो सो हो। **प्रकृतिमापद्, संज्ञां-चेतनां-लभ-प्रतिपद्, प्रकृतौ स्था**—होश में आना। **आगामिनि सोमवासरे**—आगामी सोमवार को।

तां सुखशयितं पृच्छ—उससे पूँछो कि नींद अच्छी आई या नहीं। **रात्रावपि निकामं शयितव्यं नास्ति**—रात को भी मैं आराम से नहीं सो सकता।

दीर्घिकावलोकनगवाक्षगता—एक ऐसी खिड़की पर बैठकर जहाँ से एक कुआँ दिखाई पड़ रहा था। **आकृतिविशेषेष्वादरः पदं करोति**—सुन्दर स्वरूप का आदर होता ही है। **पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते**—गुणों से सभी जगह लोग आकृष्ट हो जाते हैं। **तनुवाग्विभवोपि सन्**—यद्यपि मेरे पास भाषा-सम्पत्ति नहीं है। **तं वाग्वश्येवानुवर्तते**—उसको भाषा पर पूर्ण अधिकार है।

इदं वृत्तं लेख्यं-पत्रं आरोपय, पत्रे निवेशय—इसको लेखबद्ध कर दो।

अस्माभिः सहैककार्याणां—जिन्होंने हमारा सहयोग दिया है।

सहाध्यायिन्—सहपाठी। **समदुःखसुखः**—सुख तथा दुःख का साथी।

अहमहमिकया प्रणामलालसाः—प्रणाम करने की लालसा से एक दूसरे के साथ होड़ लगाते हुए।

अभिनंद्य वक्ति—अभिनन्दन करके कहता है। **च्यवनाय मां प्रणिपातय, मदीयो नमस्कारो वाच्यः**—च्यवन जी से मेरा प्रणाम कहना। **उपचारपदं**—लोकाचार (शिष्टाचार) के वाक्य।

स नाद्यापि पर्यवस्थापयति-संस्तंभयति आत्मानम्—वह अब भी अपने होश में नहीं आ रहा है।

महदपि राज्यं न मे सौख्यमावहति—मेरा बड़ा राज्य भी मुझे सुख नहीं पहुँचाता।

अपि रक्ष्यते त्वया रहस्यनिक्षेपः—क्या आप ने गुप्त बात को सुरक्षित रक्खा है। **विश्वास-विश्रंभ-भूमिः स मम**—वह मेरा विश्वास-पात्र है। **विश्रंभस्थाने मन्**—गुप्त ममलों में विश्वास करना।

प्रसवकालः, प्रसवावस्था—किसी स्त्री का प्रसवकाल (बच्चा जनने का वक्त)। **प्रसूता या प्राप्तप्रसवा तद्भार्या**—उसकी स्त्री सोहर में है।

दिष्ट्या सुतमुखदर्शनेन आयुष्मान्वर्धते—अपने पुत्र का मुख देखने पर आपको बधाई देता हूँ।

प्रसन्नः-उपपन्नः-ते तर्कः—आपका अनुमान ठीक है।

अग्निसात्कुरु, ज्वलनाय समर्पय—अग्निदेव को सौंप दो।

तस्याचरणं वचसा न विसंवदति—उसका आचरण उसकी बातों के विरुद्ध नहीं है। **स्वर्थाविरोधेन**—अपने मतलब का पूरा-पूरा ध्यान रखते हुए। **अभिरूपभूयिष्ठा परिषद्**—ऐसी परिषद् जिसमें अधिकतर विद्वान् लोग हों।

तस्य वचसि दुराशयं मा कल्पय-आरोपय—उसके वचनों में बुरी भावनाओं का आरोप न कीजिए।

तत्परतयैव वेदांतवाक्यानि योजयंति—वेदान्त-वाक्यों को उसी से सम्बन्धित बताते हैं।

जनहितमपि तावत् त्वया चिंतनीयं मनसि कार्यमेव-अवेक्षणीयं—आपको प्रजा के हित का भी ध्यान रखना चाहिए। **स्वहित परायणो मा भूः**—केवल अपना ही हित मत देखिए। **सांवत्सरिकैः संवाद्यताम्**—ज्योतिषियों से परामर्श ले ली जाय।

गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि, वपुषि न ममौ—उसकी खुशी समाती ही न थी।

तेन ह्यस्य गृहीतार्था भवामि—यदि ऐसी बात है तो मैं इसका अर्थ समझूँगी।

यथावकाशं, कार्यान्तरांतरायमन्तरेण—जब सुभीता हो, सुविधानुसार।

अन्यकार्यातिपातमंतरेण-कार्यांतरावरोधेन-भवान् कदा मया द्रष्टव्यः—आपको मुझसे मिलने के लिए कब सुविधा होगी।

अनभ्यंतरा वयं मदनगतस्य वृत्तांतस्य—हम लोग कामदेव सम्बन्धी चर्चाओं से अनभिज्ञ हैं।

प्राणव्ययेनापि—प्राणों को देकर भी।

त्वद्वचनप्रत्ययात्—आप की प्रतिज्ञा पर विश्वास करके।

आ-समा-श्वस्—धैर्य धारण करना। **धैर्यं आस्था, धैर्यं अवलंब् अवष्टंभ्, धैर्यावष्टंभं कृ**—साहस धारण करना।

कथाप्रसंगेन, कथायोगेन—वार्तालाप के सिलसिले में। **कालक्रमेण, गच्छता कालेन, दिनेषु गच्छत्सु, गच्छति काले**—कुछ समय में। **गत्यंतराभावात्, अनन्यगतिकत्वात्**—दूसरा कोई चारा न होने से।

स त्वत्तो लब्धोदयः—उसका अभ्युदय आप ही की बदौलत है।

एते संकल्पा मम प्रादुरासन् अथवा आसीत्-समभूत् मे मनसि—मेरे मन में ये विचार आए। **मम दर्शनपथमागतः, नयन-विषयमयतीर्णः**—वह मुझे दिखाई पड़ा। **व्यत्यस्तभुजः**—भुजाओं को एक दूसरे पर तिरछा रख कर। **व्यत्यस्तपादः**—टाँगों को टाँगों पर तिरछा रख कर।

सर्वेऽस्य प्रयत्नाः सफलतां ययुः-फलिताः—उसके सारे प्रयत्न सफल हो गए।

आचारपुष्पग्रहणार्थम्—लोकाचारानुसार फूलों को लेने के लिए। **आचारं प्रतिपद्यस्व**—लोकाचारानुसार प्रणाम करो।

मर्मच्छिद्-भिद्, मर्माणि कृंतत्—हृदय को भेदना। **मद्वचनमाच्छिद्य**—मेरी बात को बीच ही में काटकर।

तस्योत्साहभंगं मा कृथाः—उनके उत्साह को भङ्ग मत करो।

आतुरो जीवितसंशयं वर्तते—रोगी की हालत बहुत खतरनाक है।

अंधं तमः, सूचिभेद्यं तमः—घना अंधकार। **संतमस**—सब तरफ छाया हुआ अन्धकार।

हाहानिनादेन दिशो बधिरयंतः—"हा हा" की आवाज से दिशाओं को बहिरा करने वाले।

स्वासुभिर्भर्तुरानृण्यं गतः—प्राण देकर स्वामी से उऋण हो गया।

पश्चिमे वयसि, परिणतवयसि—वृद्धावस्था में।

दूरगतमन्मथा सा, अतिभूमिं गतोस्या अनुरागः—उसका बहुत गहरा प्रेम हो गया है।

मम विकारः परिच्छेदातीतः—मेरी मनोव्यथा वर्णनातीत है।

एकस्य मूल्येन व्ययः शुध्यति, सर्वा व्ययशुद्धिः संपद्यते—एक के मूल्य से प्राप्त आय से सारा खर्च चलता है।

वैद्ययत्नपरिभावी गदः—वैद्यों के प्रयत्नों को विफल करने वाला रोग।

दीर्घसूत्री विनश्यति—बहुत देर लगाने वाला नाश को प्राप्त होता है।

वसुधां तस्य हस्तगामिनीमकरोत्—पृथ्वी उसके हाथों में सौंप दी। **लेखं तस्य हस्तं प्रापयिष्यामि**—पत्र को उसके हाथ में दूँगा।

सर्वं दैवाधीनं-आयत्तं—सब कुछ भाग्याधीन हुआ करता है। **मया प्रायोपवेशनं कृतं विद्धि**—निश्चय समझिए मैं अनशन करके मर जाऊँगा। **असंशयं, नियतं, नूनं, खलु**—अवश्यमेव। **निमित्तसव्यपेक्ष**—किसी कारण के ऊपर निर्भर करने वाला।

विषण्ण, मुक्तावयव—खिन्न, दुःखित, उदास।

सर्वजनस्योपहास्यतामुपयांति—सभी लोगों से हँसे जाते हैं।

तस्य श्रीर्वचनानामविषया—उसका सौन्दर्य वर्णनातीत है।

सविस्तरं, सविस्तरेण, विस्तरतः-शः, सुविस्तर—विस्तारपूर्वक।

सा पुपोष लावण्यमयान् विशेषान् अथवा मनोहर वपुः, चीयमानावयवा—उसके सुन्दर-सुन्दर अंग बढ़ते गए।

ज्ञुण्णाद्वर्त्मनो रेखामात्रमपि न व्यतीयुः—पीटी हुई लकीर से बाल भर भी बाहर नहीं गए।

नाहमात्मविनाशाय वेतालोत्थापनं करिष्यामि—अपने ही नाश के लिए मैं पिशाच को नहीं उठाऊँगा।

पुत्रसक्रांतलक्ष्मीकाः, गुणवत्सुतरोपितश्रियः—पुत्रों को सम्पत्ति का सारा भार देकर।

लुप्तार्थवचनं—ऐसी बात जिसका नाम-निशान न रह गया हो। **अश्राम्यं वैरं**—गहरी शत्रुता। **स लोष्टघातं हतः**—ढेला मार-मार कर वह मार डाला गया।

अव्यतिरिक्तेयमस्मच्छरीरात्—यह मेरे शरीर से भिन्न नहीं है।

विषमपदविमर्शिनी टीका—कठिन-कठिन विषयों को स्पष्ट करने वाली टीका।

आत्मन्यप्रत्ययं चेतः—अपने आप में विश्वास नहीं है।

अलमप्रासंगिकेन अप्रसंगेन वा, प्रकृतमेवानुसंधीयतां—असम्बद्ध बातें न करो।

चक्षुर्विषयातिक्रांतेषु-नयनपथातीतेषु-अंतरितेषु-अदृष्टिगोचरेषु- अंतर्हितेषु-कपोतेषु—कबूतरों के गायब हो जाने पर।

कर्तव्यानि दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि—दुःखित व्यक्तियों को चाहिए कि अपने दुःखों की शान्ति कर लें।

शिष्य उपदेशं मलिनयति—शिष्य उपदेश की बदनामी कराता है।

प्रकृतं-प्रस्तुतं अनुसृ अथवा अनुसंधा—विचाराधीन विषय की तरफ आना।

प्रस्तावः, प्रस्तुत-प्रकृत-विषयः, प्रस्तुतं, प्रकृतं—विचाराधीन विषय।

तपस्विव्यंजनोपेताः, तापसच्छद्मना, तापसरूपधारिणः—तपस्वी का वेष धारण कर।

निष्कारणो बंधुः—निष्प्रयोजन मित्र।

मम द्रव्यस्य कथं त्वयाऽविनियोगः कृतः—मेरे द्रव्य को आप ने किस प्रकार व्यय किया।

अहं त्वदधीनोस्मि—मैं आपके अधीन हूँ। **अयमर्थस्त्वदायत्तः, अत्र भवान् प्रभवति**—यह मामला आपके अधीन है। कलहशील, कलहकाम—झगड़ा करने वाला।

किं वो विवादवस्तु—आप लोगों का झगड़ा किस बात पर है।

वादग्रस्तोर्थः—झगड़े वाला विषय।

अतिथिविशेषः—सम्माननीय अतिथि।

एवं तावदाक्षिपामि, अन्यतः संचारयामि—मैं इस प्रकार उसके विचारों को दूसरी तरफ लगाऊँगा।

अंतर्भेदाकुलं गृहं—अपने में ही फूटा हुआ घर।

अपि कुशलं-शिवं भवतः—आप का कुशल तो है? **त्वां सुखं-कुशलं पृच्छति**—आपका कुशल पूछता है। **देवीं सुखं प्रष्टुमागता**—वह रानी का कुशल-समाचार पूछने आई है। **अलं निर्बंधेन**—हठ मत करो। **किमस्माकं स्वामिचेष्टानिरूपणेन**—स्वामी की चेष्टाओं की देख-रेख करने से हमें क्या प्रयोजन!

मनो मे संशयमेव गाहते अथवा आशंकते—मेरा मन अब भी शंका में पड़ा है।

नतोन्नतभूमिभागः, उत्खातिनी भूमिः—ऊँची-नीची जमीन। **पातोत्पातः**—उत्थान-पतन। **नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण**—जिस प्रकार गाड़ी का पहिया ऊँचे और नीचे को जाता-आता रहता है, उसी प्रकार मनुष्य के जीवन में उत्थान-पतन हुआ करते हैं। **निपात्यतां-उच्छेद्यताम्**—असौ प्रजापीडकः—अत्याचारी का नाश हो।

परिणतप्रायमहः—दिन ढल रहा है, सूर्यास्त होने वाला है।

त्वया स्वहस्तेनांगाराः कर्पिताः—तुमने तो अपने हाथों ही सत्यानाश कर डाला।

द्वीपिचर्मपरिच्छन्नः गर्दभः—व्याघ्र की खाल से ढका हुआ गदहा।

चापलाय प्रचोदितः—चपलता करने के लिये प्रेरित होकर। **अविरलावारिधारासंपातः, पटुर्धारासारः**—निरन्तर जलधारा। **किमुद्दिश्य भवान्भाषते**—आप किस बात की तरफ़ लक्ष्य करके कह रहे हैं।

मा भवानंगानि मुंचतु—निराश मत होइए। **मुक्तैरवयवैरशयिषि**—अंग-अंग शिथिल हो जाने पर मैं सो गया। **स्रंसते देहबंधः**—सारा शरीर शिथिल हो रहा है।

जलबिंदुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः—बूँद-बूँद सों घट भरै। कन-कन जोरे मन जुरै।

संह्रियतामियं कथा—इस विषय को छोड़िए। **अवसन्नप्रायाणि मे गात्राणि, सीदंति मे अंगानि**—मेरे अंग-प्रत्यंग शिथिलप्राय हो रहे हैं।

शिखी केकाभिस्तिरयति मे वचनं—मोर अपनी बोली से मेरी आवाज को दबा लेता है।

श्रवणगोचरे तिष्ठ—ऐसे स्थान पर खड़े होओ (रहो) जहाँ बात सुनाई पड़ सके।

महति प्रत्यूषे—बड़े प्रातः काल।

न परिहसामि, नायं परिहासस्य समयः—हँसी नहीं कर रहा हूँ। **परमार्थेन ग्रह्**—सचा मानना।

लब्धं स्वास्थ्यं मया, अहं निर्वृतः, वीतचिंतः—मैं स्वस्थ-चित्त हूँ। **जातो ममायं विशदः प्रकामं अन्तरात्मा**—मेरी आत्मा पूर्णतया स्वस्थ है। **यथाकामं, पर्याप्तं, प्रकामं**—स्वेच्छानुसार। **सुखसुप्त**—सुख-पूर्वक सोया हुआ।

फल् मूर्च्छ्—प्रभाव करना। **मारुतस्य रंहः शिलोच्चये न मूर्च्छति**—वायु का वेग पर्वत के ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं कर सकता। **मूर्च्छत्यमी विकारा ऐश्वर्यमत्तेषु**—प्रभुता से मत्तवाले पुरुषों के ऊपर ये विकार बड़ा प्रभाव करते हैं। **निशि मूर्च्छतां तमसां**—रात्रि में घना होने वाला अंधकार। **वज्रं तपोवीर्यमहत्सु कुण्ठम्**—घोर तपस्या करने वालों पर वज्र कुछ भी प्रभाव नहीं डालता। **इति, एतदभिप्रायः अर्थतः, वस्तुतः**—असल में।

नृपस्तस्यां बद्धभावः, कृतानुरागः, प्रीतिं-भावं बबंध—राजा उससे प्रेम करने लगा।

शृणु मे सावशेष वचः—मेरी बात अन्त तक सुनो। **कल्याणोदर्क-स्वंत-भविष्यति**—इसका परिणाम अच्छा होगा।

अलमतिविस्तरेण—बहुत विस्तार मत करो। **अलं-कृतं-परिहासेन**—हँसी न करो।

कुतूहलेन तस्य चेतसि पद .कृतं—उसके हृदय में उत्सुकता पैदा हो गई।

मानमर्हति, मान्यः, पूज्यः—वह सम्माननीय है। **स पुरस्कारमर्हति**—वह प्रथम पूजे जाने योग्य है।

परसुखासहिष्णु—दूसरों के सुख से ईर्ष्या करने वाला। **ते परस्परयशः-पुराभागाः**—वे एक दूसरे की कीर्ति से ईर्ष्या करते हैं।

तुलया धृ—बराबर समझना। **तत्कार्यं साधयितुमलं सः**—वह इस कार्य को करने में समर्थ है।

प्रतिशासनम्—संदेशा लेकर भेजना।

बंधनभ्रष्टो गृहकपोतश्चिल्लाया मुखे पतितः—कुआँ से बचकर वह खाई में जा गिरा। **कथ कथमपि मुक्तः**—बाल-बाल बच गया।

सुरक्षितां तां प्रेषय—उसको सुरक्षित करके भेजो।

अत्यन्तविलुप्तदर्शनः—सर्वदा के लिए अगोचर या लुप्त हो गया। **एकांतनष्ट**—सदा के लिए नष्ट हो गया।

असन्निवृत्त्यै गतः, अत्यन्तगतः—सदा के लिए चला गया। **अप्रबोधाय सा सुष्वाप**—वह सदा के लिए सो गई।

अब्रह्मण्यं अत्याहितं—महान् अनर्थ हो गया।

स सत्कारो मम मनोरथानामप्यभूमिः—स्वागत आशातीत हुआ। मेरी आशाओं से भी बढ़कर सत्कार हुआ।

उत्सर्गाः सापवादः—नियमों में अपवाद हुआ करते हैं। **अपवादैरिवोत्सर्गाः कृतव्यावृत्तयः**—सामान्य नियम अपवादों से नियमित रहते हैं। **अव्यभिचारि तद्वचः, इति लोकवादः न विसंवादमासादयति**—इस उक्ति में अपवाद नहीं है। **प्रतिप्रसवः**—अपवाद का भी अपवाद।

शिरःशूलस्पर्शनमपदिशन्—सिर-दर्द का बहाना करता हुआ। **अनामयापदेशेन**—बीमारी का बहाना करके।

स्वनियोगमशून्यं कुरु, अनुतिष्ठात्मनो नियोगं—अपना काम करो।

असौ क्रमाद्यौवनभिन्नशैशवः—उसका शैशव धीरे-धीरे युवावस्था को प्राप्त हो गया। **हर्षोत्फुल्लनयनः**—हर्ष के कारण उत्फुल्ल नेत्रों वाला।

भवतात्मा क्लेशस्य पदमुपनीतः—आपने-अपने को क्लेश में डाल दिया। **स कातर इति वाच्यतां गतः**—'वह कायर है' ऐसी बदनामी हुई। **सा तंडुलान् सूर्यातपे दत्तवती, आतपायोज्झितवती**—उसने चावलों को धाम में फैला दिया।

कियताप्यंशेन, ईषत्, मनाक्—कुछ अंश तक। **सर्वथा**—सब प्रकार से।

लोकदृष्ट्या—सर्व साधारण जनता की दृष्टि से। **अक्षिगतोहं तस्य**—मैं उनकी आँखों की किरकिरी हूँ।

मुखामुखि, संमुखं—आमने सामने। **पूर्वाभिमुखं गृह**—ऐसा घर जिसका मुँह पूर्व की ओर हो। पूर्व की ओर द्वार हो जिस घर का।

वस्तुतः, तत्त्वतः—असल में। **वस्तुवृत्तेन, परमार्थतः, तत्त्वतः**—असल में।

सङ्कटेष्वविषण्णधीः--संकट के समय जिसकी बुद्धि व्यथित न हो। **फले विसंवदति**--फल देने में असमर्थ है। **रमणीयोऽवधिर्विधिना विसंवादितः**--भाग्य ने सुन्दर अवधि को असफल, क्षीण कर दिया।

तस्य धैर्यं न हीयते, न स्खलति--उसका धैर्य क्षीण नहीं होता। **पुत्राभावे**--पुत्र के अभाव में। **तस्य स्मृतिलोपः संजातः**--उसकी स्मरण-शक्ति लुप्त हो गई। **सन्ततिविच्छेदः-लोपः**--सन्तान का न होना।

अनिर्वेदः श्रियो मूलं--दुःखी न होना लक्ष्मी का मूल है।

सुदिनं--अच्छा दिन!

पातोत्पातौ, व्यसनोदयौ--उत्थान तथा पतन। **स लक्ष्यच्युत-सायकोऽभूत्**--उसका बाण निशाने से चूक गया। **तव महिमानमुत्कीर्त्य वचः संह्रियते**--आप की महिमा वर्णन करने में वाणी असफल हो जाती है।

लुप्तप्रतिज्ञ, असत्यसन्ध, भग्नप्रतिज्ञ--अपनी प्रतिज्ञा को न पालन करने वाला।

अतिपरिचयादवज्ञा--अत्यन्त घनिष्ठता होने से अपमान होने लगता है।

को वृत्तांतस्तत्रभवत्याः--श्रीमती जी का क्या हाल है!

नात्र मुनिर्दोषं ग्रहीष्यति--मुनि जी इसमें दोष न निकालेंगे।

दृष्टदोषा मृगया--शिकार के दोष विदित हैं।

सहृदयः; सचेताः--सहृदय, भावुक चित्त वाला। **सचेतसः कस्य मनो न दूयते**--किस कोमल हृदय व्यक्ति का मन दुःखी नहीं होता।

आत्मानं मृतवत्संदर्शयामास--अपने को मरा हुआ-सा दिखला दिया। **कृत्रकंकोपं कृत्वा**--झूठा गुस्सा करके, गुस्से का बहाना करके। **प्रसुप्तंलक्ष्ण, व्याजसुप्त, लक्षसुप्त**--सोने का बहाना करके।

पर्याप्तमाचामति--पेट भर पीता है।

तैः सोऽपराधी स्थापितः--उन लोगों ने उसे अपराधी ठहराया।

उदारः-प्रथमः-कल्पः--अच्छा (सुन्दर) प्रस्ताव।

सुश्लिष्टमेतत्--यह ठीक जँचता है।

मन्मुखासक्तदृष्टिः—मेरे मुँह की तरफ दृष्टि लगा कर। **आसक्त-बद्ध-दृष्टिः**—टकटकी लगाकर। **स्तिमित-अनिमेष-लोचन**—निश्चल दृष्टि से। **मनो निष्ठाशून्यं भ्रमति**—चञ्चल मन भ्रमता रहता है।

रंध्रान्वेषिन्, छिद्रान्वेषिन्—दोष ढूँढने वाला।

सप्तभमिकः प्रासादः—सात मंजिल वाला महल।

हस्तौ समानीय, अजलिं बद्ध्वा, कृतांजलिः, सां (प्रां) जलि—हाथ जोड़ कर। **भुजाभ्यां तामापीड्य**—दोनों भुजाओं से आलिंगन करके।

महतां पदमनुविधेयम्—बड़ों के मार्ग का अनुसरण कीजिये। **पदवीं प्रतिपद्य**—मार्ग का अनुसरण करता हुआ। **पुरस्कृतमध्यमक्रमः**—बीच के मार्ग का अनुसरण करके। **दुःखं दुःखानुबंधि, विपद् विपदमनुबध्नाति**—विपत्ति एक के बाद दूसरी आती जाती है। **अतः किं प्राप्नोति**—इससे क्या निष्कर्ष निकलता है। **परस्तादवगम्यते**—जो इसके बाद आवेगा, वह समझ लिया गया। **ततस्ततः**—आगे कहिए। **तद्यथा**—वह इस प्रकार है।

शांतं पापम्, प्रतिहतम् अमंगलम्—ईश्वर न करें।

स्वनामत्यागं करोमि—अपना नाम कहना त्याग दूँ।

तीर्ण-पूर्ण-प्रतिज्ञः, पालितसंगरः, सत्यप्रतिज्ञः, सत्यव्रतः, सत्य-संधः—प्रतिज्ञा पालन कर चुका हुआ।

अधुना मुंच शय्याम्—अब बिस्तर छोड़ दीजिये।

युद्धाय संनद्धाः अथवा बद्धपरिकरास्ते—उन लोगों ने युद्ध के लिए कमर कस ली है।

शुचो वशं मा गमः, शोकाधीनः मा भूः, वैक्लव्यं मावलंबस्व—शोक मत करो।

ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा—ब्रह्ममय तेज से चमकता हुआ सा।

इति ख्यातः, कृतनामधेयः, दत्तसंज्ञः—वह इस नाम से प्रसिद्ध है। **उमाख्यां सा जगाम**—वह उमा नाम से प्रसिद्ध हुई।

किं तस्य दृष्ट्या, कोर्थस्तस्या दर्शनेन—उसका दर्शन करने के क्या लाभ। **अलं परिदेवनेन**—रोने से क्या लाभ, मत रोओ।

मृत्योर्मुखे वर्तते, कालालीढः मृत्युगोचरं गतः—वह मृत्यु के मुख में है। **इदं च अशेषविद्याग्रहणसामर्थ्यं**—समस्त विद्या को प्राप्त कर लेने की

यह सामर्थ्य। **ममाशयं सम्यग्गृहीतवानसि**—आपने मेरा अभिप्राय पूर्ण रूप से समझ लिया है।

आनन्दस्य परां कोटिं-काष्ठाम्-अधिगतः—वह बहुत प्रसन्न हुआ।

रोषात् दंतैर्दंतान्निष्पिष्य—क्रोध के मारे दाँतों को पीसता हुआ।

यौवनपदवीमारूढः, प्राप्तयौवनः, यौवनदशामापेदे—वह युवावस्था को प्राप्त हो गया। **वत्सतरः महाऋतां स्पृशति, महोक्षभावं श्रयति**—बछवा बड़ा बैल हो जाता है।

तस्याः आबद्धधारमश्रु प्राववत; उद्वाष्पे नयने जाते—उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

चौर्यवृत्ति—चोरी की आदत। **ज्ञातदुःख, दुःखशील, परिचितक्लेश**—विपत्ति भोगने में अभ्यस्त।

रेखामात्रमपि—बाल भर भी।

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः—सर्बस जाता देखि करि आधा लेय बँटाय।

नियुद्धं, बाहुयुद्धं—मल्ल-युद्ध। **एकतः-अन्यतः, एकं-अपरं च**-एक तरफ तो यह दूसरी तरफ। **तु, तावत्**—इसके विपरीत। **सर्वथा, सर्वत्र**—सर्वत्र। **दत्तहस्तावलंब**—हाथ बँटा कर। **परंपरया आगम्**—परंपरा से चला आना।

त्रिशंकुरिवांतरा तिष्ठ—त्रिशंकु की तरह बीच ही में लटके रहो।

आवेदयंति प्रत्यासन्नमानंदं अग्रजातानि शुभानि निमित्तानि—होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

अहो दारुणो दैवदुर्विपाकः—हाय रे दुर्भाग्य। **प्रबलक्षुधावसन्न**—भूख से खूब व्याकुल।

तव मुखं कमलश्रियमुद्वहति-आहरति-कलयति—तुम्हारे मुख में कमल की शोभा है।

संशयितजीवितः—अपने जीवन को खतरे में डालने वाला।

धुरि कीर्तनीय, प्रतिष्ठापयितव्य—सब के आगे रक्खा जाना। **स सर्वेषां धुरि-मूर्ध्नि-तिष्ठति**—वह सब के ऊपर है। **वसिष्ठाधिष्ठिताः, वसिष्ठपुरःसराः-प्रमुखाः-पुरोगमाः**—जिसके अगुआ वसिष्ठ थे।

व्रणविरोपणं तैलम्—फोड़े को अच्छा करने वाला तेल।

सुस्थोसौ, कुशलमस्य—वह कुशल-पूर्वक है। **पूर्ववत्-प्रकृतिस्थः समजायत**—पहले की तरह स्वस्थ हो गया।

किमस्मान् संभृतदोषैरधित्तिपथ—हम लोगों के ऊपर लांछन क्यों लगाते हो?

इति कर्णपरंपरया श्रुतमस्माभिः—हमने लोगों के मुँहों से यह बात सुनी है।

सोत्साहं, सर्वात्मना—पूरे दिल से। **सर्वात्मना तस्मिन्कर्मणि स व्यापृतः**—वह तन-मन से इस काम में लगा है। **यथेच्छं, पर्याप्तं, प्रकामं, निकामं**—अपनी इच्छा भर।

दीर्घं-स्थूलस्थूलं निश्वस्य—बड़ी गहरी साँस लेकर।

भूस्वर्गायमानमेतत्स्थलं, भूलोकगतः स्वर्गः—यह पृथ्वी पर स्वर्ग है।

अहमनुपदमागत एव—मैं तुम्हारे पीछे-पीछे अभी आता हूँ।

जङ्घामवलंब्—नौ दो ग्यारह हो जाना।

विनापुरुषकारेण दैवं न सिध्यति—परमात्मा उनकी सहायता करता है, जो अपने आप अपनी सहायता करते हैं। **का गतिः, किमन्यच्छरणं**—दूसरा क्या चारा है।

हंत बीभत्समेवाग्रतो वर्तते—वह सामने बड़ा बीभत्स दृश्य है।

स त्वां बहुमन्यते—वह आप को बहुत मानते हैं।

इषवः सिध्यंति लक्ष्ये चले—बाण हिलते-डुलते हुए लक्ष्य को वेध देते हैं।

का अथवा कियती मात्रा तेषां मम; तानहं तृणाय मन्ये अथवा तृणीकरोमि—मैं उन्हें तृण बराबर समझता हूँ। **वाचंयमो भव, वाचं नियच्छ, तूष्णीं-जोषम् आस्व**—जबान सँभालो। **सर्वगामी-अव्यभिचारी अयं नियमः**—यह नियम सर्वत्र लग जाता है। **मुक्तग्रह**—छोड़ देते हुए। **रागः शुक्लपटे स्थायीभवति**—लाल रंग सफेद वस्त्र पर खूब पक्का पड़ जाता है। **स लोकस्य मन आददे**—सर्व-साधारण जनता के मन पर उसका पूरा प्रभाव था। **लेभेतरं चेतसि नोपदेशः, अपलब्धपदो हृदि**—उसके हृदय पर उपदेश का कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

तद्वचः तस्य हृदयमर्मास्पृशत्—वह बात उसके अन्तःकरण पर असर कर गई।

चतुरः शशकान् विश्वासस्थाने धृत्वा—चार खरगोशों को जमानत के तौर पर रख कर।

मानुषीं गिरमुदीरयामास—मनुष्य की सी बोली बोला।

इति राज्ञां शिरसि वामपादमाधाय—इस प्रकार राजाओं को नीचा दिखा कर।

ब्रह्मसायुज्यं प्राप्तः, ब्रह्मलीनः, ब्रह्मभूयं गतः—ब्रह्म में लीन हो गया।

दुर्दैवं, दुर्भाग्यं, मंदभाग्यं, दैवविपर्यासः, दुर्विपाकः—दुर्भाग्य।

अस्मार्तकालात्—युगों से, बहुत प्राचीन काल से।

स महति जीवितसंशये अवर्तत—वह बड़े भारी मौत के खतरे में था।

अलं सेवया (स्नेहभणितेन), मध्यस्थतां गृहीत्वा भण—चापलूसी न करो, न्यायपूर्वक बोलो।

उन्नमत्यकालदुर्दिनं—असमय का तूफान आ रहा है। **अनावृष्टिः संपद्यते लग्ना**—अकाल (सूखा) पड़ने वाला है।

निर्बन्धपृष्टः अथवा पुनः पुनश्चानुबध्यमानः स जगाद सर्वं—हठपूर्वक पूछे जाने पर उसने सब कुछ बता दिया।

जानकी करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव—जानकी करुण रस की साक्षात् अवतार है।

वाच्यतां याति, दोषभाजनं-दोषभाक्-दोषपात्रं-भवति—वह कलङ्क का पात्र बन रहा है।

किं कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य—उस दम्पती की शोभा अवर्णनीय है।

संभावनीयानुभावास्याकृतिः—उसके स्वरूप से उसके प्रताप का अनुमान लगाया जा सकता है। **आकृतिरेवानुमापयत्यमानुषतां**—उसका स्वरूप ही बता देता है कि वह मनुष्य-योनि से परे है।

अधरोत्तरव्यक्तिर्भविष्यति—स्पष्ट हो जायगा कि कौन बड़ा है, कौन छोटा है। **ओजस्वितया सा न परिहीयते शच्याः**—तेज में वह शची से कम नहीं है। **न प्रतिच्छंदात्परिहीयते मधुरता**—उसकी शोभा चित्र में कम नहीं है।

अमी विनोदनोपायाः सन्दीपना एव दुःखस्य—ये विनोद तो दुःख को और भी बढ़ाते हैं।

दर्पाध्मात, मदोद्धत, उत्सिक्त—घमंड से मतवाला।

निद्रावश, निद्राविधेय—नींद के वशीभूत। **मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः**—मूढ़ पुरुष के मन पर दूसरों के विश्वासों का प्रभाव जम जाता है।

पुरुषोत्तमे इति भणितव्ये—पुरुषोत्तम ऐसा कहने के बजाय। **अध्ययने आरब्धव्ये किमिति क्रीडसि**—अध्ययन आरम्भ करने के बजाय तुम खेलते क्यों हो। **हर्षस्थाने अलं विषादेन**—प्रसन्न होने के बजाय दुःखी न हो।

परोपकरणीकृत-भूत—दूसरों का साधन बन कर। **उपकरणीभावमायात्येवंविधो जनः**—इस प्रकार के लोग सहायक साधन बन जाते हैं।

चक्रवृद्धिः—ब्याज दर ब्याज। **सरला वृद्धिः**—साधारण ब्याज। **पंचकेन शतेन, पंचोत्तरं शतं**—पाँच रुपया सैकड़ा दर से। **दृष्टं युष्माभिः कथारस्यात्क्षेपसामर्थ्यम्**—आपने देख लिया कि कथा के रस ने किस प्रकार मुझसे विषयान्तर करा दिया। **स्वार्थपर, स्वार्थदृष्टि**—स्वार्थ को देखने वाला। **अतिरमणीयं कथावस्तु**—कथा का विषय अत्यन्त रमणीक है। **पक्षपातिनौ आवामनयोः**—हम दोनों इन दोनों में पक्षपात रखते हैं।

न चेदन्यकार्यातिपातः—यदि इस कार्य से अन्य कर्तव्यों में बाधा न पड़े। **अव्यापारेषु व्यापारं स करोति**—वह उन मामलों में हस्तक्षेप करता है जिनसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

मैनमंतरा प्रतिबध्नीत—उसे मत टोको।

काले-काले, अंतरा-अंतरा—समय-समय पर।

श्रमसहिष्णु, जितश्रम—थकावट सहने का अभ्यासी।

नायमेकांतो नियमः—यह ऐसा नियम नहीं है जो बदलता न हो।

रामस्य दैवदुर्नियोगः कोपि—यह राम का दुर्भाग्य था।

परिहासविजल्पित, नर्मभाषित—हँसी में कहा गया हुआ।

अध्वसंजातखेदात्—यात्रा की थकावट के कारण। **उत्थाय पुनरवहत्**—उसने फिर यात्रा प्रारम्भ की। **सप्ताहगम्योऽध्वा**—यह केवल एक हफ्ते की यात्रा है।

स्वगृहनिर्विशेषमत्र वस—यहाँ अपने घर के समान रहो।

स्वपुत्रनिर्विशेषं संवर्धित—साक्षात् अपने पुत्र के समान पाला हुआ।

जानुभ्यां अवनौ गम् अथवा **पत्**--घुटने टेकना। **जानुदघ्नद्वयसमात्र**—घुटने तक गहरा।

भ्रुकुटिं बन्ध या रच्, भ्रुवौ संकुच् या भिद्—भौं सिकोड़ना।

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य—बुद्धि ही बल है। **तदाख्यया भुवि पप्रथे, तदाख्यां जगाम**—उस नाम से विख्यात हुआ।

चिंताशतैर्बाध्यमान-अभिभूत--सैकड़ों चिन्ताओं से पीड़ित।

प्रतस्थे स्थलमार्गेण अथवा **स्थलवर्त्मना**—स्थल से रवाना हो गया।

अलसेक्षण--अलसाई हुई आँखों वाला।

एष ते जीविताविधिः प्रसादः—यह वार्ता तुम्हारी जिन्दगी भर चलेगी। **कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्रीः**—युवावस्था की शोभा केवल थोड़े दिनों रहती है। **कालांतरक्षमा माला**—बहुत देर तक टिकने वाली माला।

अर्गलानिरुद्धं पक्षद्वारं--पक्षद्वार अर्गला से निरुद्ध था।

किमिति चिरायितं त्वया, वेलातिक्रमः कृतः—तुमने देरी क्यों की?

मुहूर्तं तत् आस्तां, तिष्ठतु तावत्—थोड़ी देर इसे रहने दो।

विषयसुखनिरतो जीवितमत्यवाहयत्--विषय-वासनाओं से रहित जीवन बिताया। **चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि**--चित्रकूट जाने वाले मार्ग में। **अयं पंथा नदीमुपतिष्ठते**--यह रास्ता नदी को जाता है।

अनुदिवसं परिहीयसेऽङ्गैः--तुम प्रतिदिन दुबले होते जा रहे हो। **मदलेखया दत्तहस्तावलंबा**—मदलेखा की भुजाओं पर टेक लगा कर। **वामहस्तोपहितवदना**--अपना मुँह अपने बाएँ हाथ पर रख कर।

त्र्यवराः साक्षिणो ज्ञेयाः—कम से कम तीन गवाह होने चाहिए।

अस्मास्ववहीनेषु--हम लोगों के पिछड़ जाने पर। **शान्ते पानीयवर्षे**--वृष्टि शान्त हो जाने पर।

सुखमुपदिश्यते परस्य--दूसरे को उपदेश देना बड़ा सरल है।

लब्धावकाश, प्राप्तावकाश, निर्व्यापार, लब्धक्षण—फ़ुरसत में।

परित्रायस्वैनां, मा कस्यापि तपस्विनो हस्ते पतिष्यति--इसकी रक्षा करो। कहीं ऐसा न हो कि यह किसी तपस्वी के हाथ में पड़ जाय।

भूमिसात्कृ—जमीन के बराबर कर देना। **दरिद्रसमानतां नीत-गमित**—गरीबों के समान कर दिया गया।

मनुष्याः स्खलनशीलाः—मनुष्य से गलती होती ही है।

यदत्रावसरप्राप्तं तत्र प्रभवति भवती—श्रीमती जी को पूर्ण स्वतंत्रता है कि अवसर के उपयुक्त जो चाहें करें। **बंधे मोक्षे चाधुना सा ते प्रभवति**—वह आप को रोकने अथवा छोड़ देने में पूर्णतः स्वतन्त्र है।

सर्वथा त्वमेवात्र दोषभाक्—इस में आप ही सब प्रकार से दोषी हैं। **सखीगामी अयं दोषः**—यह दोष मेरी सखी का है।

प्राणयात्रा-धारणं रक्षणं—जीवन का अवलम्ब। **साधुवृत्त**—सदाचारी। **दशांतराणि**—भिन्न-भिन्न दशाएँ।

अनया दृष्ट्या—इस विचार से गौर करने पर।

एवमादि—इसी प्रकार की। **यस्ते छन्दः; यद्भवते रोचते**—जैसा आप को पसन्द आवे। **कामचार, स्वच्छन्द, स्वैरिन्, कामवृत्ति**—स्वेच्छानुसार व्यवहार करना। **कामरूपः**—इच्छानुसार रूप करने वाला। **यथाभिलषितं क्रियताम्**—जैसा तुम्हारा मन हो वैसा करो। **स न तस्या रुचये बभूव**—वह उसकी रुचि का नहीं था।

अल्पविषय—छोटे दायरे का, संकुचित। **तस्य यश इयत्तया परिच्छेत्तुं नालम्**—उसके यश की कोई सीमा नहीं। **न गुणानामियत्तया**—गुणों की सीमितता के कारण नहीं।

यावदहं ध्रिये—जब तक मैं जीवित हूँ। **वन्यफलैः शरीरवृत्तिं निर्वर्तयति**—जंगली फलों पर जीवन निर्वाह करता है। **स्मार्ते काले**—जहाँ तक स्मरण-शक्ति जाती है।

राजकुले-राज्ञे-निविद्—मुकदमा दायर करना। **नयनैः दृष्टिभिः पा, निध्यै**—किसी की तरफ बड़े गौर से ताकना। **जनन्या मे योगक्षेमं वहस्व, जननीमवेक्षस्व-चिंतय**—मेरी माता की देखभाल करना। **विगतासुर्बभूव, प्राणैरहीयत**—वह मर गया। **मित्रैर्वियुज्यते**—वह मित्रों से वियुक्त होता है। **उन्मार्गगामी अभूत्**—वह रास्त भूल गया। **च्युताधिकारः, अधिकारभ्रष्टः**—अधिकार से च्युत हो गया हुआ।

किंकर्तव्यता-प्रतिपत्तिमूढ—क्या करूँ, क्या न करूँ—ऐसा सोचकर चकराया हुआ।

उपनम्, उपस्था—भाग्य में बदा होना। **तव दुःखमुपनमेत्**—तुम्हारे भाग्य में दुःख ही बदा होगा। **कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं**—निरन्तर सुख किसके भाग्य में बदा है?

दोषमपि गुणत्वमुपपादयितुं—बुरी परिस्थिति में पड़कर जहाँ तक हो सके, लाभ उठाना। **लक्ष्यभेदः**—लक्ष्य को बींधना।

अप्रभुरस्मि आत्मनः, न प्रभवाम्यात्मनः, गात्राणामनीशोस्मि संवृत्तः—मैं अपने आप का प्रभु नहीं रह गया। **सकलशास्त्रपारंगतः, शास्त्रपारदृश्वा**—जो सारी विद्याओं का पंडित हो चुका है। **गतोसि सर्वास्वायुधविद्यासु परां प्रतिष्ठाम्**—आप ने सारी अस्त्रविद्याओं पर पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त कर लिया है।

आवां प्रतिद्वंद्विनौ भवाव—आओ हम दोनों होड़ बद लें। **दैत्येभ्यो हरिरलं**—हरि दैत्यों के लिए काफी हैं। **अतीत्य-अतिक्रम्य वृत्**—उससे बहुत बढ़कर है। **तुल्यप्रतिद्वंद्वि बभूव युद्धं**—बराबर का युद्ध था।

यत्किंचित्करमेतत्—कोई हर्ज नहीं। **किं तस्या वृत्तं, कस्तस्या वृत्तांतः**—उसका क्या मामला है? **किं मम तेन कार्य-कोऽर्थः**—मुझसे इससे क्या प्रयोजन? **सन्निधानस्य अकिंचित्करत्वात्**—सन्निधान से कोई मतलब नहीं।

परिणतप्रज्ञ, कठोरधी—पक्की बुद्धि वाला। **साकूतं मां निर्वर्ण्य**—मेरी तरफ इशारा-पूर्वक देखते हुए।

प्रत्युद् या व्रज-गम-इ—मिलने के लिए जाना। **प्रत्युत्था, अभ्युत्था**—मिलने के लिए उठना।

आपः संप्लवंते संभिद्यंते—जल मिलते हैं।

तस्य हृदयं स्नेहार्द्रीभूतं, स्नेहेनाभ्यष्यंदत—उसका हृदय स्नेह से पिघल गया।

मेधावि, धारणावत्—अच्छी स्मरण-शक्ति वाला। **स्मृतिविषयतां-स्मृतिपथं-स्मर्तव्यशेषं-कथावशेषं गम् अथवा नी**—केवल स्मरण में रह जाना।

एको दोषो गुणसन्निपाते निमज्जति—अच्छे गुणों के समूह में एक दोष विलीन हो जाता है।

चित्त-मनो-व्यापारः-वृत्तिः—मन का व्यापार। **मनसि उत्-इ, उद्भू, वुद्धौ संजन्**—मन में आना। **आस्तां-तिष्ठतु तावत् प्रथमः प्रश्नः**—पहिली बात की कोई परवाह नहीं।

उत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि—मुझे पश्चात्ताप-मिश्रित प्रसन्नता होती है।

मार्गात् भ्रष्टः—रास्ता भूल गया।

गोत्रस्खलितं—नाम लेने में गलती। **तस्माद् गर्दभाद् व्याघ्रधिया-बुद्ध्या पशवः पलायंते**—पशु गदहे को बाघ समझकर भागे जाते हैं।

अलमन्यथा गृहीत्वा—मेरे विषय में गलत धारणा न करो।

आपातरमणीय—इस समय अच्छा मालूम पड़ने वाला।

खलः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति। आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति—अपना ढेढर न देखना दूसरों की फूली देखना। 'पर का अवगुन देखियत अपनो देखत नाहिं'।

तिले तालं पश्यति, अणुं पर्वतीकरोति–वह राई का पर्वत बना देता है।

अस्मात्स्थानात्पदात्पदमपि न गंतव्यम्—एक पग भी आगे न बढ़ो।

कर्मणो गहना गतिः—भाग्य की अद्भुत गति है।

अपि ज्ञायंते ते नामधेयतः—क्या उनके नाम जानते हो?

अस्य मातरं नामतः पृच्छेयम्—मैं उसकी माता का नाम पूछूँगा।

नामग्राहं मामाह्वयति—वह मेरा नाम लेकर मुझे पुकारता है। **वचनेन, वचनात्**—किसी की ओर से, तरफ से।

वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा—मेरी तरफ से राजा से कह देना।

मामुद्दिश्य तस्मै सभाजनाक्षराणि पातय—मेरी तरफ से नमस्कार कह देना।

मानुषतासुलभो लघिमा—ऐसी लघुता जो मनुष्य-मात्र में स्वाभाविक होती है।

दुर्जातबंधुः—विपत्ति में मित्र। **स सुहृद् व्यसने यः स्यात्**—जो विपत्ति में मित्रता बनाए रक्खे, वही मित्र है।

मालती मूर्धानं चालयति--मालती अपना सिर हिलाती है।

ननु शब्दपतिः क्षितेरहं—मैं पृथ्वी का नाम-मात्र का स्वामी हूँ।

बहुलीभूतमेतद् वृत्तं—यह मामला सब को मालूम हो गया है।

यत्नादुपचर्यतामसौ—खूब ध्यानपूर्वक उसकी देख-भाल होने दो।

स्नेहस्यैकायनीभूता--प्रेम का एक-मात्र पात्र।

किमुद्दिश्य, किंनिमित्तं, किमपेक्ष्य फलं--किस उद्देश्य से?

प्रत्यर्थिभूता सा समाधेः--समाधि करने में वह एक बाधा थी।

श्लाघ्ये गृहिणीपदे स्थिता--गृहिणी के सम्माननीय पद पर आरूढ़।

इति तस्य बुद्धौ न संजातं, इति तस्य हृदये नापतितम्--यह बात उसके मन में नहीं सूझी।

स्मृत्युपस्थितौ इमौ द्वौ श्लोकौ--ये दोनों श्लोक हमें स्मरण हो आये।

कस्मिन्नपि पूजार्हे अपराद्धा शकुन्तला--शकुन्तला ने किसी पूज्य पुरुष का अपराध कर दिया है। **तव न कदापि मया विप्रियं कृतं, प्रतिकूलमाचरितं**—मैंने कभी एक बार भी तुम्हारा अपराध नहीं किया है।

शीघ्रकोपिन्, सुलभकोप—जल्दी क्रुद्ध हो जाने वाला।

च्युत-भ्रष्ट-अधिकार--पद से गिरा हुआ।

प्रकाशं निर्गतः—खुल जाने पर, प्रकाशित हो जाने पर।

तवोपालंभे पतितास्मि, उपालंभपात्रं जाता--मैं तुम्हारे व्यंग्यों का पात्र हो गई।

गृहीतावसर, लब्धावकाश—अवसर पाकर।

लोकाचारविरुद्ध, लोकविद्विष्ट--संसार की रीति के विरुद्ध।

अत्र स्वरुच्या वर्ततां भवान्, यथाभिलाषं क्रियताम्--इस मामले में जैसा आप को रुचे, वैसा कीजिए।

यथाज्ञापयति देवः—श्रीमान् की आज्ञा का पालन किया जायगा।

आनुलोम्यं—स्वाभाविक क्रम। **प्रातिलोम्य, व्युत्क्रमः, विपर्ययः, व्यत्यासः**--उलटा क्रम।

अपह्विये परिश्रमजनितया निद्रया—थकावट से पैदा हुई नींद से अभिभूत हूँ।

आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा—हर्ष-भरी आँख से। **प्रथमकुतूहलं सपरिवाहमासीत्**—पहिले तो मेरी उत्सुकता बढ़ चली।

विवर्णभावं प्रपेदे—पीली पड़ गई।

शरीरभूता मे शकुन्तला—शकुन्तला मेरे शरीर का अंग हो गई है।

भूमिकाकल्पनम्—पार्ट-निर्वाचन।

तस्य नरस्य विशेषं ब्रूहि—उस व्यक्ति का पूरा-पूरा विवरण दो।

तेनाष्टौ परिगमिताः समाः कथंचित्—बड़ी कठिनता से उसने आठ वर्ष बिताए।

इदं धियः पथि न वर्तते—यह बात समझ के बाहर है।

आस्तां, तिष्ठतु तदधुना, यातु किमनेन—अब इसे हटाओ।

किमर्थमगृहीतमुद्रः कटकान्निष्क्रामसि—बिना टिकट लिये क्यों शिविर से बाहर जाते हो।

अमुद्रालांछितः—पास (टिकट) के बिना।

तया हृदयवल्लभोऽभिलिख्य कामदेवव्यपदेशेन सखीपुरतोऽपहृतः—उसने अपने प्रियतम का चित्र यह कह कर अपनी सखी को दे दिया कि यह कामदेव का चित्र है। **मध्यमांबावृत्तांतोऽन्तरित आर्येण**—श्रीमान् जी मध्यम माता का हाल छिपा गए।

जालांतरप्रेषितदृष्टिरन्या—जँगले में से झाँकती हुई दूसरी।

आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया—बड़ों की आज्ञा पर विचार नहीं किया जाता, उसका पालन करना अनिवार्य है।

नाटकं न प्रयोगतो दृष्टम्, प्रयोगेणाधिकृतं न दृष्टं—नाटक को रंग-मंच पर अभिनय किया हुआ नहीं देखा है।

स्थिरप्रतिबन्धो भव—विरोध करने में दृढ़ रहो।

आसन्न-शरीर-प्रचारकः—अंग-रक्षक। **स्वानुभवः**—निजी अनुभव।

यौवनमंगेषु सन्नद्धं—अंगों में यौवनावस्था व्याप्त हो गई है।

ज्ञायतां कः कार्यार्थीति—पता लगाओ कौन-कौन प्रार्थी हैं।

विरहोत्कंठं हृदयं—विरह (अनुपस्थिति) में उत्कण्ठित रहने वाला हृदय।

स गृहं गंतुमुदताम्यत्—वह घर जाने के लिए उत्कंठित था।

अन्तःपुरविरहपर्युत्सुको राजर्षिः—राजर्षि अपनी रानियों के विरह के कारण क्षीण होते जा रहे हैं।

पितृस्थाने, पितृभूमौ—पिता के स्थान पर। **प्रथमं, प्रथमतः, प्रथमं तावत्**—पहिले तो। **अपरं च, पुनः, पुनश्च**—दूसरे।

अर्थिन्, वादिन्, अभियोक्तृ—मुद्दई।

प्रत्यर्थिन्, अभियुक्तः, प्रतिवादिन्—मुद्दालेह।

द्वित्रीण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्—ऐ पूज्य! दो-तीन दिन प्रतीक्षा कीजिए।

यदभिरोचते वयस्याय—मेरे मित्र को जो अच्छा लगे।

हृदयंगमः परिहासः—आनन्ददायी मजाक। **सुखश्रव, श्रुतिसुख, श्रवणसुभग, मंजुलस्वन**—कानों को सुखद।

विहितप्रतिज्ञः-गृहीतलक्षणः-अहं—मैंने प्रतिज्ञा कर ली है।

तव विरूपकरणे तेन सुकृतमंतरे धृतं—उसने अपने, पुण्यकर्मों की शपथ लेकर कहा है कि तुम्हें हानि न पहुँचावेगा।

मरणोन्मुख, आसन्नमृत्यु, मुमूर्षु—मरने के करीब। **प्रसवोन्मुखी, आसन्नप्रसवा**—बच्चा देने वाली।

दासी महिषीपदं ग्राहिता, देवीभावं गमिता—दासी को रानी की पदवी दे दी गई।

तदुभयथापि घटते—यह दोनों प्रकार से सम्भव है।

चिरप्रवृत्त—बहुत दिनों से चालू। **सदाचार, सद्वृत्त, साधुवृत्त**—सदाचारी।

कां वृत्तिमुपजीवन्त्यार्यः—आपका क्या व्यवसाय है? **प्रयोगः**—क्रिया। **शास्त्रं**—**आगमः**—सिद्धान्त, मत।

शासनात् करणं श्रेयः, वाचः कर्मातिरिच्यते—कहने से करना अच्छा होता है।

स कथयत्यागामिनमप्यर्थं—वह तो भविष्य की घटनाओं को भी बता देता है।

वरं मृत्युः न पुनरपमानः—मृत्यु अच्छी है पर अपमान नहीं।

दौर्हृदलक्षणं दधौ—उसकी गर्भावस्था के लक्षण दिखाई पड़े। **कठोरगर्भा**—बढ़े हुए गर्भ वाली।

त्वयोपस्थातव्यं, सन्निहितेन भाव्यं—आपको उपस्थित रहना चाहिये।

समतीतं च भवच्च भावि च—भूत, वर्तमान तथा भविष्य। **अग्निं साक्ष्ये आधाय**—अग्नि को साक्षी बनाकर।

तं वक्षसा परिरभ्य-क्रोडीकृत्य—उसको छाती से लगाकर।

भावितविषवेगः—विष से प्रभावित होने का बहाना करके। **अश्रुतिमभिनयति**—न सुनने का बहाना करता है।

आर्यध्वजिन्-लिंगिन्—न्याय-शील होने का बहाना करता हुआ।

साक्षी वाक्यभेदान् बहूनकथयत्—साक्षी ने बहुत सी विरुद्ध बातें कीं।

प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरं—कीचड़ को धोने की अपेक्षा उसे न छूना ही अच्छा है।

द्विषामामिषतां ययौ—शत्रुओं का शिकार बन गया।

प्रथमवयः, नव-अक्षत-यौवनं—नई जवानी।

ततस्ततः, ततः परं कथय—आगे कहो। **प्रस्तूयतां विवादवस्तु**—झगड़े वाला मामला बताओ। **प्रवर्त्यतां भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाकः**—पूज्य ब्राह्मणों के स्वागतार्थ भोजन की तैयारी करो। **किंनिमित्तं ते संतापः**—तुम्हारे दुःख का क्या कारण है?

क्षुद्बोधित—क्षुधा से प्रेरित।

परमार्थतः प्रेम—सच्चा प्रेम। **स सदा प्रत्युत्पन्नमतिः, प्रबोधननिरपेक्षः**—उसे प्रेरणा देने (सिखाने) की आवश्यकता नहीं।

एष सनिकारं नगरान्निर्वास्यते—यह पुरुष अपमान-पूर्वक नगर से निकाला जाता है।

ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कंठेन निजोपयोगितां—सज्जन लोग अपनी उपयोगिता कार्यों से सिद्ध कर देते हैं, मुँह से कहते नहीं।

अनागतविधातृ—भविष्य के लिये व्यवस्था करने वाला। **आपदर्थं धनं रक्षेत्**—आपत्ति के दिनों के लिए धन को बचा रखना चाहिये।

स्तूयमाना नोत्सिच्यन्ते अथवा अनुद्धताः—प्रशंसा किये जाने पर फूल कर कुप्पा नहीं हो जाते। **दर्पाध्मात, उत्सिक्त, अवलिप्त, उद्धत**—अभिमान से फूले हुए।

चौरदंडेन दण्डयेत्—अपराधी को चोर की सी सजा देनी चाहिए।

अनियंत्रणानुयोगस्तपस्विजनः—तपस्वियों से बिना किसी संकोच के प्रश्न करना चाहिये।

मंदोप्यविरतोद्योगः सदा विजयभाग्भवेत्—धीमे-धीमे परन्तु निरंतर कार्य करने वाला विजयी होता है।

तद्वचो मम हृदये शल्यं जात—वे बातें मेरे हृदय में काँटे के समान लगती हैं।

स प्रहारः करालतां गतः—घाव भयानक हो गया।

वृत्तांतेन श्रवणविषयप्रापिणा—जब यह वृत्तांत उसके कानों में पहुँचा।

इदं प्रायेण तव कर्णपथमायातं, श्रुतिविषयमापतितमेव—सम्भवतः यह आप के कानों में पड़ा होगा।

प्रत्युत्पन्नमति—हाजिर जवाब।

धनी उपगतं दद्यात् (धनं) स्वहस्तपरिचिह्नितं—महाजन को चाहिये कि अपने हाथ से लिखी हुई रसीद दे।

दर्शनप्रतिभुवं ददौ—उसने पहचान की जमानत दी।

तदहं विदधे तव स्तवं दमयंत्याः सविधे—इसलिये मैं दमयन्ती के पास तुम्हारी प्रशंसा करूँगा।

नाद्यापि प्रसादं गृह्णासि, प्रसन्ना न भवसि—आप अभी तक प्रसन्न नहीं हो रही हैं। **वाक्यानि प्रतिसमादधाति**—कथनों (वक्तव्यों) का समाधान करता है।

कृतकालोपनेयः आधिः—निश्चित समय पर पूरी की जाने वाली प्रतिज्ञा।

आत्मवशं नी, वशी कृ—अपने अधीन कर लेना। **अस्थिमात्रावशेष, कंकालशेष**—जिसकी केवल हड्डियाँ हो हड्डियाँ रह गई हों।

अत्र पुरावृत्तकथा अनुसंधेया—यहाँ पौराणिक कथा का हवाला दिया गया है।

भर्तुः प्रतीपं मास्म गमः—पति के विरुद्ध न होना.

नार्हसि मे प्रणयं विहन्तुम्—कृपया मेरी प्रार्थना को न ठुकराना।

तस्य मनो मार्दवमभजत, कठिनतामजहात्—उसका हृदय कोमल पड़ गया।

स चानुनीतो मृदुतामगच्छत्—अनुनय-विनय करने पर उसका हृदय कोमल पड़ गया। **किमपि सानुक्रोशः कृतः**—वह कुछ-कुछ कोमल पड़ा।

दुःखविश्रामं ददाति—दुःख में आराम देता है।

हृदि एनां भारतीं उपधातुमर्हसि—कृपया इस वाणी को खूब अच्छी तरह याद रखना।

पातालं मामद्य संस्मरयतीव भुजंगलोकः—शूरों का यह समूह मानों मुझे पाताल की याद दिलाता है।

अये सम्यगनुबोधितोस्मि—ओहो, मुझे अच्छी याद आई।

इति जनप्रवादः-किंवदंती-श्रूयते, इति प्रवादः—ऐसी अफवाह है।

विश्वासप्रतिपन्न—विश्वास में आया हुआ।

दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयंति, गुणपक्षे स्थापयन्ति—दोषों को भी गुण करके बताते हैं।

संवदंत्यक्षराणि—अक्षर एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं।

सागरे नद्यो विलीयंते—नदियाँ सागर में विलीन हो जाती हैं।

वामहस्तोपहितवदना—बाएँ हाथ पर मुँह रखकर।

खुरत्रये भरं कृत्वा—तीन खुरों पर खड़ा होकर।

भाग्यायत्तमतः परम्—इसके आगे तो भाग्य पर निर्भर है।

सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते—जिस पर तुम्हारे पुत्रों ने शत्रुओं को जीतने की सारी आशा लगा रखी है।

हरः स्मरं स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति—हर कामदेव को उसका शरीर पुनः दे देंगे।

एवं सर्वतो निरुद्धचेष्टाप्रसरस्य मे—इस प्रकार जब सभी तरफ मेरे कार्य बन्द हो जायँगे।

अपवादः उत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः—अपवाद किसी भी नियम के क्षेत्र को सीमित कर सकता है।

अतः परं पुनः कथयिष्यामि--इसके आगे फिर कहूँगा।

तस्य चार्थस्य सततं मनसि विपरिवर्तमानत्वात्--यह मामला निरन्तर उसके मस्तिष्क में नाच रहा था।

गमिष्याम्युपहास्यताम्--मैं हँसी का पात्र बनूँगा।

अवितथमाह प्रियंवदा--प्रियंवदा ठीक कहती है। **न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति**—स्त्री को स्वतन्त्रता नहीं मिलनी चाहिए।

तत् देवीहस्ते निक्षिपता मया युक्तमेवानुष्ठितं--तो मैंने उसे महारानी के हाथों में देकर उचित ही किया।

ते नाभ्युपतिष्ठन्ति गुरून्--वे अपने गुरुजनों को आगे से लेने के लिए नहीं उठते। **उत्तिष्ठमानः शत्रुः**—उभड़ता हुआ शत्रु।

स्थाने खलु सज्यते दृष्टिः--ठीक ही है जो नेत्रों ने टकटकी बाँध रक्खी है।

प्रथमं गणितमिव तवोत्तरं--तुम्हारा उत्तर मानों रटा हुआ सा है।

प्रजाः प्रजाः स्वा इव तंत्रयित्वा--प्रजाओं के ऊपर अपनी सन्तान सा शासन करके।

कियदवशिष्टं रजन्याः--कितनी रात बाकी रह गई है?

सफलीकृतभर्तृपिंडः--नमक हलाल करके।

का कथा-गणना (सप्तमी के साथ), **कथैव नास्ति** (प्रति के साथ)--क्या कहना है। **जनप्रवादः**--लोक-निन्दा। **तथा च लोकिकानामाभाणकः**--लोकोक्ति इस प्रकार है; जैसी कहावत है।

मुद्रां परिपालयन् उद्घाट्य दर्शय--मुहर को बचाकर इसे खोलिए और मुझे देखाइये।

प्रत्यक्षीकृ—अपनी आँखों देखना।

क्रय्य, क्रयार्थं प्रसारित--बिक्री के लिये, बिकाऊ।

कृतज्ञता, कृतवेदित्वं—एहसान मानना। **जरावलुप्तमानावमानचिंतः**--वृद्धावस्था के कारण मानापमान का विचार बिल्कुल त्याग कर। **यौगिकार्थ**—शब्दार्थ। **रूढार्थ**—प्रचलितार्थ।

अन्वर्थ, यथार्थ, परमार्थतः--सच्चा अर्थ। **अन्यथा एषा वीप्सा न चरितार्था भवति**—वर्ना यह पुनरुक्ति कोई अर्थ नहीं रखती।

एकैक, व्यस्त—एक एक करके (**सर्वाविनयानामेकैकमप्येषामायतनं, तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने**)

कोपोद्दीपनाय अलं अथवा पर्याप्तमिदं—उसके क्रोध को भड़काने के लिये यह काफी होगा। **उपयोगं व्रज्, स्थाने-भूमौ भू**--किसी चीज के तौर पर काम आना।

मरुतः परिवेष्टारः आसन्--देवता लोग भोजन परसने वाले थे।

इदं पादोदकं भविष्यति--यह पाँव धोने के लिए जल का काम देगा।

सार्वांगिका आभरणसंयोगाः--शरीर के अंग प्रत्यंग में अच्छे लगने वाले आभूषण। **रत्नानुविद्ध, मणिप्रत्युप्त, रत्नखचित**--जवाहरात से जड़ा हुआ। **पदं कृ**--स्थान कर लेना।

मनः-धियं-चित्तं बंध् अथवा **आ + धा** अथवा **सन्निविश** (प्रेरणार्थक) या **युज्** (प्रेरणार्थक)--हृदय को किसी चीज पर लगाना।

अनेन समयेन परिणतो दिवसः--इस समय तक सूर्य डूब गया था।

आधीयतां धर्मे धीः--धर्म में बुद्धि लगाओ। **विनाशधर्मसु विषयेषु मनो मा सन्निवेशय**--नश्वर पदार्थों में मन को मत लगाओ। **अचिरप्रवृत्तो ग्रीष्मसमयः**--अभी ही शुरू होने वाला ग्रीष्म। **गुणा विनयेन शोभंते**--गुणों की शोभा नम्रता से होती है।

व्यवस्थापितवाक्, वाचं व्यवस्थाप्य--"क्या कहना है", इस बात का निश्चय करके।

इति प्रतिपादितमाकुलीभवेत्--यह स्थिति डगमग हो जायगी।

स्निग्धजनसंविभक्तं दुःखं--प्रिय मित्रों द्वारा बँटाया गया हुआ शोक।

केन वान्येन सह साधारणीकरोमि दुःखं--किस दूसरे पुरुष के साथ अपना शोक बँटाऊँ।

चर्मिन्, फलकपाणि--ढाल से सुसज्जित। **खड्गचर्मधर**--ढाल और तलवार लिए हुए।

नयनोपांतविलोकितं, **साचिवीक्षणं**, **अपांगदृष्टिः**, **कटाक्षः**—तिरछी चितवन।

विदूषकं संज्ञां लभयति—विदूषक को संकेत करता है। **अर्थवत्**, **सार्थ**, **चरितार्थ**, **अर्थयुक्त**, **अन्वर्थ**—अर्थ से भरा हुआ।

सीदति मे हृदयं—मेरा हृदय बैठा जाता है। **प्रबलपिपासावसन्नानि अंगकानि**—प्रबल प्यास के कारण अंग-अंग शिथिल पड़ रहे हैं।

तस्य धैर्यमहीयत, **स लुप्तस्खलितधैर्यः**—उसका धैर्य टूट गया।

मया रथस्य मंदीकृतो वेगः—मैंने रथ के वेग को धीमा कर दिया है।

शिथिलितप्रयत्नाः, **श्लथोद्यमाः**—जिन्होंने अपने प्रयत्नों को शिथिल कर दिया है।

मंथरविवेकं चेतः—वह चित्त जो विवेक करने में मन्द हो।

प्रत्यभिज्ञानमंथर— पहिचानने में मन्द।

पराभवो मम हृदि प्रत्युप्तं शल्यमिव, **न्यक्कारो हृदि वज्रकील इव मे तीव्रं परिस्पंदते**—हार के कारण मैं व्यथित हो रहा हूँ।

बधिरान्मंदकर्णः श्रेयान्—जहाँ कुछ न मिल रहा हो, वहाँ थोड़ा मिल जाना अच्छा है।

वक्तुं सुकरमिदमध्यवसितुं तु दुष्करं—करने से कहना सरल होता है।

तंतुनाभः स्वत एव तंतून् सृजति—मकड़ी स्वयं अपने जाले को तानती है।

सोल्लास, **प्रमुदितचित्त**—प्रसन्नचित्त।

मिषतां नः आमिषं आच्छिनत्ति—हम लोगों के देखते-देखते शिकार छीन लेता है।

चारचक्षुर्महीपालः—राजा गुप्तचरों के द्वारा देखता है।

उपक्रोशमलीमसैः प्राणैः किम्—अपकीर्ति से कलंकित प्राणों को रखकर क्या लाभ?

संशयस्थं जीवितं तस्य, स संशयितजीवित आसीत्, जीवितं संशय-दोलाधिरूढं—उसके प्राण संकट में थे।

वचनीयमिदं व्यवस्थितं—यह मेरे ऊपर एक चिरस्थायी दाग लग जायगा।

कुंठित-प्रतिहत-रुद्ध-गति—ठप्प, शांत।

इदं सोपपत्तिकं न भाति—यह युक्ति-संगत अथवा तर्क-संगत नहीं मालूम पड़ता। **लब्धप्रतिष्ठः**—जिसने प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। **पुलकित, रोमांचित**—रोंगटे खड़े हो गये।

यात्राभिमुखं प्रवृत्—यात्रा के लिए प्रस्थान करना।

अभिन्नगतयः शब्दं सहंते मृगाः—सहज गति को न छोड़ते हुए मृग शब्द सुन लेते हैं। **सचकितं**—चौंककर।

अविदितगतयामा रात्रिः—वह रात जिसके पहर अज्ञात बीत गए।

शनैर्निद्रा निमीलितलोचनं मामकार्षीत्—निद्रा ने धीरे-धीरे मेरी आँखें बन्द कर दीं।

ज्वलति चलितेंधनोऽग्निः—जब इंधन में खोद खाद कर दी जाती है, तब आग जल पड़ती है।

नैतावता पीडा निष्क्रामति—अनर्थ की इति यहीं नहीं हो जाती।

मुखे चपेटां दा—मुँह पर चाँटा मारना। **चित्ते भयं जनयति**—मन में भय पैदा करता है।

बद्ध-प्ररूढ-मूल—जिसकी जड़ गहरे गई हो। **तस्य हृदयं पस्पर्श विस्मयः**—वह आश्चर्य से चकित हो गया।

तद्धि प्रसिद्धतरेण प्रयोगेण शीघ्रं बुद्धिमारोहति, प्रसिद्धबलेन प्रथमतरं प्रतीयते—चूँकि यह अत्यन्त सामान्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, इसलिए यह सरलता से चित्त में जँच जाता है।

जर्जरितकर्णविवरः-जर्जरीकृतकर्णपुटः-नादः—कान के पर्दे को फाड़ देने वाली आवाज।

सा देवीशब्देनोपचर्यते—वह 'रानी' कह कर पुकारी जाती है।

पितुरनंतरमुत्तरकोशलान्समधिगम्य—उत्तर-कोशल प्रदेश को पिता के बाद प्राप्त करके।

यदि नावसीदति गुरु प्रयोजनं—यदि किसी बड़े कार्य की हानि न हो। **खलः करोति दुर्वृत्तं तद्धि फलति साधुषु**—दुष्ट पुरुष अपराध करता है और सज्जन उसका फल भोगता है।

आतपलंघनात्—लू लगने के कारण।

पुनरुक्ततां नी—व्यर्थ बना देना, व्यर्थ कर देना।

अभिव्यक्तायां चंद्रिकायां किं दीपिकापौनरुक्त्येन—जब स्पष्ट चाँदनी विद्यमान है तो मशाल व्यर्थ है।

अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते-विशिष्यते—सत्य हजारों अश्वमेध यज्ञों से कहीं बढ़कर है।

कथं जीवितं धारयिष्यामि—मैं कैसे जिऊँगा? **न ह्ययं मन्त्रः स्वातंत्र्येण कंचिदपि वादं समर्थयितुमुत्सहते**—यह मंत्र स्वतः किसी भी सिद्धान्त का समर्थन नहीं कर सकता।

नियम्य शोकावेगं—शोक की तेजी को रोक कर।

विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता—मैं तो विकार से प्रभावित होने वाली बना दी गई। **विकारि यौवनं**—जवानी पर बड़ी जल्दी प्रभाव पड़ जाता है।

धृतद्वैधीभावकातरं मे मनः—मेरा मन दुविधा में पड़ा है, इसी से चिन्तित है।

विहगाः समदुःखा इव चुक्रुशुः—पक्षी मानों समवेदना के कारण चीख पड़े।

भिन्नरुचिर्हि लोकः—लोगों की पसन्द भिन्न-भिन्न होती है।

निर्गंतुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्तोऽस्मि—बेंत के घर में से निकलने में असमर्थ हूँ। **विललाप विकीर्णमूर्धजा**—बालों को बिखेर-बिखेर कर रोई।

गमयति रजनीं विपाददीर्घतरां—शोक के कारण बहुत बड़ी लगने वाली रात्रि को बिताता है।

शास्त्रे प्रयोगे च मां विमृश—शास्त्र में तथा प्रयोग में मेरी परीक्षा ले लो।

अनुगृहीतोऽस्मि, महानयं प्रसादः—मैं अनुगृहीत हो गया। मेरे ऊपर यह बड़ी कृपा हुई।

द्वावप्यागमिनौ प्रयोगनिपुणौ च—दोनों शास्त्र-सम्पन्न तथा प्रयोग में निपुण हैं।

नगरगमनाय मतिं न करोति—वह राजधानी में जाने की इच्छा नहीं करता।

सखीमुखेनोचे—सखी के द्वारा बोली।

अपत्यमन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः—सन्तान माँ-बाप का पारस्परिक बन्धन है।

अतिपिनद्धेन वल्कलेन नियंत्रितास्मि—मैं इस कसे हुए वल्कल-वस्त्र से जकड़ी हुई हूँ।

समयः स्नानभोजनं सेवितुं—स्नान और भोजन करने का समय है।

कालानुवर्तिन्—समय देख कर काम करने वाला। **नैवं वारांतरं विधास्यामि**—अब दूसरी बार ऐसा न करूँगा।

अनवसरप्रस्तोऽर्थिभावः—अब भीख माँगने की प्रथा नहीं रह गई है।

अकालक्षेपेण, अविलंबितं, अकाल-हीनं—बिना समय खोए हुए।

अमुष्य विद्या रसनाग्रनर्तकी, समस्ता एव विद्या जिह्वाग्रेऽभवन्—विद्या तो उसकी जिह्वा के अग्र भाग पर नाचती थी।

धारासारैर्महती वृष्टिर्बभूव—मूसलाधार पानी बरसा।

शतसंख्या मामियं स्पृशति—१०० की संख्या मुझे स्पर्श करती है।

हृदयं संस्पृष्टमुत्कंठया—हृदय उत्कंठा से प्रभावित हो गया।

मित्राणां तत्त्वनिकषग्रावा विपत्—विपत्ति मित्रता की कसौटी है।

ग्राहकैर्गृह्यते चौरः पदेन—चोर अपने पाँव के निशानों से पकड़ा जाता है। **ब्रह्मशब्दस्य व्युत्पाद्यमानस्य**—जब ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति की जाती है। **क्षुण्णाद्वर्त्मनः**—पीटी हुई लकीर से।

परंतपो नाम यथार्थनामा—वस्तुतः यथार्थ नाम वाला परन्तप।

ध्रुवसिद्धेरपि यथार्थनाम्नः—सार्थक नाम वाले ध्रुवसिद्धि का।

उपकारः प्रत्युपकारेण निर्यातयितव्यः—उपकार का बदला उपकार से दिया जाना चाहिए।

असमर्थित, अतर्कित, अतर्कितोपनत—अप्रत्याशित।

समवायो हि दुस्तरः, संहतिः कार्यसाधिका—मेल में शक्ति है।

ज्योतिःशब्दस्तेजसि प्रयुज्यते—"ज्योतिः" शब्द "प्रकाश" के अर्थ में आता है।

ज्योतिःशब्दो ज्वलन एव रूढः—"ज्योतिः" शब्द रूढ़ि से "अग्नि" के लिए प्रयुक्त होता है।

अनुपभुक्तभूषण—आभूषण पहिनने में अनभ्यस्त।

रणधुरां वह, समरशिरसि वृत्—सेना का अग्रणी होना।

वाचिकं, वाचनिकं शब्दाख्येयं—मौखिक सन्देश।

वाग्व्यवहारः—मौखिक वाद-विवाद।

लोकव्यवहार-दृष्ट्या—सांसारिक व्यवहार की दृष्टि से।

निर्व्यूढस्तेऽपत्यस्नेहः—तेरा अपत्य-स्नेह पूर्ण रूप से प्रकट हो गया।

कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यतां—थोड़ी देर तक प्रतीक्षा कीजिए।

सहस्व मासद्वयं—दो महीने तक प्रतीक्षा कीजिए।

स्फुल्लिंगावस्थया वह्निरेधापेक्ष इव स्थितः—चिनगारी की दशा में स्थित आग इंधन की प्रतीक्षा कर रही है।

त्वत्तो न किमपि परिहास्यते—आप को किसी बात की कमी न रहेगी।

न कामचारो मयि शंकनीयः—यह शङ्का न कीजिएगा कि मैंने स्वच्छन्दता से आचरण किया है।

सूर्यातपं सेव्—घाम लेना, धूप का सेवन करना। **अग्न्यातपं सेव**—आग तापना।

वृद्धिक्षयौ—बढ़ना घटना।

अंतरा—रास्ते में। **परिपंथीभू**—विघ्न डालना। **किं स्वातंत्र्यमवलंबसे**—क्या तुम मनमानी कर रहे हो?

सर्वत्र नो वार्तमवेहि—हमारा सब प्रकार से कुशल जानो।

युज्यते, बाढं, तथा, इत्युक्त्वा—"बहुत अच्छा" कह कर।

छंदोऽनुवृत्तिः—दूसरे की इच्छा के अनुकूल आचरण करना।

ईश्वरेच्छा बलीयसी, प्रभवति भगवान् विधिः—ईश्वर की इच्छा बली होती है।

बलात्, हठात्, अकामतः—अनिच्छया, जबर्दस्ती।

अयशः प्रमृष्टम्—कलंक धुल गया।

कुंठितमतिः आसीत्, निरुत्तरीकृतः—वह निरुत्तर हो गया।

कष्टमभ्यापन्नः—विपदवस्था में पड़ा हुआ।

नैतच्चित्रं, किमत्र चित्रम्—इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। आश्चर्य ही क्या है?

सत्य-पलित-संगरः-संधः—प्रतिज्ञा पालन करने वाला।

लघुसंदेशपदा सरस्वती—संक्षिप्त संदेश। **सम्यग्ग्रथित-साधुविन्यस्त-पद**—जिसमें खूब अच्छी तरह से सोच-सोच कर शब्द रक्खे गए हों।

करुणार्थप्रथित—करुणा-जनक शब्दों से भरी हुई।

त्वं मम जीवितसर्वस्वीभूतः—तुम मेरे जीवन के सर्वस्व हो।

लौकिकज्ञ—संसार की रीति को जानने वाला।

न तर्हि प्रागवस्थायाः परिहीयसे—तो आप पहिले से बुरी दशा में नहीं हैं।

अनुरूपभर्तृगामिनी—अपने अनुरूप पति वाली।

वैरसाधनं-निर्यातनं—बदला लेना।

बाढम्, अथकिम्—हाँ। **तथेति उक्त्वा**—हाँ कह कर।

वैतसीं वृतिम् आश्रि—बलवान् शत्रु के सामने झुक जाना।

परिशिष्ट—२

शुद्ध करने के लिए वाक्य

१—अरण्येऽधिवस्तुं यतय इच्छन्ति ।
२—संन्यासी बहवो दिनान्येकस्थाने नावसेत् ।
३—यद्रामादंतरेणायोध्या शून्या दृश्यते तत्कैकेयीवचनस्य परिणामः ।
४—अस्य गिरेरभितो बहवोऽश्मानः सन्ति ।
५—अस्य वर्त्मनः परितः पलाशवृक्षा दृश्यंते ।
६—हा धिङ् मेऽन्यायाचरणं कुर्वते ।
७—स एवं विचारयन् सकला रात्रिर्व्यतीयाय ।
८—दुर्योधनः पांडवान्नास्निहयत् ।
९—शत्रवे बाणानहं क्षिपामि स तु महयं दशदो मुंचति ।
१०—मम वचनं स न विश्वसिति ।
११—सर्वेभ्यः पुत्रेभ्यो गोपालः पितुः श्रेष्ठः ।
१२—सर्वाभ्यो नदीभ्यो भागीरथी द्राघिष्ठा ।
१३—स भोजनादनु बहिरगच्छत् ।
१४—संसारसुखानि केवलं दुःखस्थानमस्तीति साधोरंतरेण जानाति ।
१५—इयं नगरी त्रयः क्रोशा आयता ।
१६—धनिनं द्रव्यं याचितं भिक्षुकैः ।
१७—अंभोनिधिं सुधा ममंथे देवैः ।
१८—तेषां मे च सख्यमस्ति ।
१९—अयं वित्तसंचयस्त एव ।
२०—तां वात्रानय मा वा तत्र नय ।
२१—हे जगन्नाथ मे सर्वाणि पापानि क्षमस्व ।

२२—ताः स्त्रिय आत्मनो निंदंति।
२३—सा युवतिरात्मानं हतप्रायाममन्यत।
२४—कुद्धः पुरुषः शिलायामप्यधिशेते।
२५—गोपालो वा रामोऽहं वा त्वं तत्कार्यं करिष्यथेति मां भाति।
२६—पथिक उत्थिते सति तस्य सार्धमहमगच्छम्।
२७—समागतेषु बालेषु तान्फलानि दातुमारभस्व।
२८—तस्मिन् राजनि वसुधामीशाने न कोऽपि सामंतस्तमभिभवितुं येते।
२९—अजासु क्षेत्रं नीयमानासु ताः शस्यमखादयत्।
३०—भार्याया आक्रोशंत्याः सा भर्त्रा प्रतिषिद्धा।
३१—दंभश्च पैशुन्यं च सदा गर्हणीयो।
३२—रूपवती भार्या सदा प्रीतिपात्रा भवति।
३३—पिता च माता च वार्द्धक्ये परिपालनीयः।
३४—यत्स एवमुवाच तत्तस्य दोष एव।
३५—यत्क्रौर्यमित्याचक्षते तत्प्रकृतिरेव खलानाम्।
३६—अन्येषां पुत्राणां राम एव पितुः प्रेयानासीत्।
३७—त्वं मम प्राणानामपि प्रियतरा अतस्त्वां सर्वं कथयामि।
३८—अहं तत्र गंतुं न शक्नोमि हि मध्य नद्यायातवती।
३९—वरं भिक्षां याचितु न परसेवाविधिम्।
४०—अहं वा त्वं तच्चकार।
४१—स गृहं प्रत्यागतो वा नेति मां सत्वरं निवेदय।
४२—राज्ञापराधिनं शता रुपकां दंड्याः।
४३—इन्द्रः स्वयशः किन्नरमिथुनैर्गापयामास।
४४—प्रासादस्य परितोऽमात्यं भिक्षुकान् स्थापयति राजा।
४५—क्षुधितेन वत्सेन पयः पायय तमन्नं वा खादय।
४६—राज्ञी वनात्पुष्पाणि दासीरानाययत्।
४७—अहं मम मित्रं मा पारितोषिकमदापयम्।
४८—गुणिषु पूजास्थानं गुणा एवास्ति न लिंगं वा न वयः।
४९—तस्या नार्या अवलोकनस्य पात्रं ते नरा बभूव।

५०—अत्र विषये ईश्वरो न दोषास्पदः ।
५१—सा तपस्विनी मत्कृपापात्रं जातम् ।
५२—गोविंदस्तस्य भार्या च स्तुत्यचरिते स्तः ।
५३—तपो दमो निःस्पृहता च सर्वे अमी यतिषु प्रशस्याः ।
५४—ऋते रामं जनकः कमपि नृपं शिवधनुर्भंजयितुं न शशाक ।

५५—अयं पर्वतोऽस्य ग्रामस्योत्तरः ।
५६—रामस्य पूर्वं गोविंद आगच्छतु ।
५७—तं दिवसमारभ्य मम मनः पर्याकुलं जातम् ।
५८—पुत्रविवाहस्यानन्तरं पिता ग्रामस्य बहिरावसथेऽध्युवास ।
५९—स शिष्येणोपनिषदं वेदयामास ।
६०—स्वामिना भृत्येनं धेनुं पयो दोह्यते ।
६१—भिक्षुकं श्रेष्ठिनं धनं याचयति ।
६२—स नरः पादस्य खंजः अयं तु नयनस्य काणः ।
६३—स जंबुद्वीपं नावि गतः शकटे च प्रत्यागतः ।
६४—यज्ञदत्तः कुंडिनपुराय प्रेषितः स मासद्वये प्रत्यागमिष्यति ।
६५—रथस्य एव बहु शोभसे तत्कृतमत्यादरस्य ।
६६—हिरण्यकश्चित्रग्रीवस्य प्राणा आसन् ।
६७—गोविंदो यूयं चैतदकुरुताम् ।
६८—अहं ते वीराश्च शत्रून् पराजयन् ।
६९—त्वमहं गोपालसूनवश्च तत्कृत्यं कुर्युः ।
७०—अयं बटुस्ते ब्राह्मणा वा ग्रामं गच्छतु ।
७१—यूयं वय वा नदीं गमिष्यथ ।
७२—अतस्त्वां दूरादेव नमः ।
७३—इमां वार्तामहं वयस्यं कथयामि ।
७४—यदि स त्वया पाठं नाध्यापयति तर्हि मा तन्निवेदय ।
७५—देवाः स्वभयकारणं ब्रह्माणमाचख्युः ।

७६—तस्मै अहं दूतं प्रहितवान्, किंतु पाटलिपुत्राय न कोप्यद्यापि विसृष्टः।

७७—अयं नरश्चौराणामतीव बिभेति।

७८—ममगमनस्य प्रागेव स गतः।

७९—अलं तं बहु ताडयितुं सोऽत्यशक्तः।

८०—अस्य पुस्तकस्य रामाय प्रयोजनं नास्ति।

८१—ये यतयोऽरण्येऽधिवसंति तेभ्यो नृपानुग्रहस्य क उपयोगः।

८२—भक्तिं देवो रोचते।

८३—अहं देवदत्तस्य शता रूपकं धारयामि।

८४—स मयि द्रुह्यति नाहं तस्मा अधिद्रुह्यामि।

८५—न किमपि त्वामधुना प्रत्याश्रृणोमि।

८६—राजस्योपरि चण्डवर्मा शास्ति।

८७—अहं शत्रुं हत्वा स प्रत्याजगाम।

८८—रामो रावणं हत्वा बिभीषणो लंकाराज्ये स्थापितः।

८९—त्वया प्रातरेव गां पयो दोग्धव्यमिति तमादिशन् रामोऽत्रागतवान्।

९०—गौतमीं वर्जं सर्वे निष्क्रांताः।

९१—अश्मभिर्घातं स शत्रुभिर्हतः।

९२—रामाय द्वौ पुत्रावास्ताम्।

९३—प्रभवति निजाय कन्यकाजनाय महाराजः।

९४—वासुकिः पातालतलस्येष्टे।

९५—मामग्रे किं तिष्ठसि।

९६—अस्य पर्वतस्य पूर्वं महावापो वर्तते।

९७—अस्मादुत्तरतस्तु रौद्रं श्मशानम्।

९८—दिवसे त्रिः संध्यामुपासीत।

९९—वर्षत्रये दशक्रत्वोऽपि मम गृहे त्वं नागच्छः।

१००—उपवनादक्षिणेनार्त्तरवं श्रुत्वा दुःखितान् शरणं प्रत्यश्रृणोत्।

५०—अत्र विषये ईश्वरो न दोषास्पदः ।
५१—सा तपस्विनी मत्कृपापात्रं जातम् ।
५२—गोविंदस्तस्य भार्या च स्तुत्यचरिते स्तः ।
५३—तपो दमो निःस्पृहता च सर्वे अमी यतिषु प्रशस्याः ।
५४—ऋते रामं जनकः कमपि नृपं शिवधनुर्भंजयितुं न शशाक ।

५५—अयं पर्वतोऽस्य ग्रामस्योत्तरः ।
५६—रामस्य पूर्वं गोविंद आगच्छतु ।
५७—तं दिवसमारभ्य मम मनः पर्याकुलं जातम् ।
५८—पुत्रविवाहस्यानन्तरं पिता ग्रामस्य बहिरावसथेऽध्युवास ।
५९—स शिष्येणोपनिषदं वेदयामास ।
६०—स्वामिना भृत्येनं धेनुं पयो दोहयते ।
६१—भिक्षुकं श्रेष्ठिनं धनं याचयति ।
६२—स नरः पादस्य खंजः अयं तु नयनस्य काणः ।
६३—स जंबुद्वीपं नावि गतः शकटे च प्रत्यागतः ।
६४—यज्ञदत्तः कुंडिनपुराय प्रेषितः स मासद्वये प्रत्यागमिष्यति ।
६५—रथस्य एव बहु शोभसे तत्कृतमत्यादरस्य ।
६६—हिरण्यकश्चित्रग्रीवस्य प्राणा आसन् ।
६७—गोविंदो यूयं चैतदकुरुताम् ।
६८—अहं ते वीराश्च शत्रून् पराजयन् ।
६९—त्वमहं गोपालसूनवश्च तत्कृत्यं कुर्युः ।
७०—अयं बटुस्ते ब्राह्मणा वा ग्रामं गच्छतु ।
७१—यूयं वय वा नदीं गमिष्यथ ।
७२—अतस्त्वां दूरादेव नमः ।
७३—इमां वार्तामहं वयस्यं कथयामि ।
७४—यदि स त्वया पाठं नाध्यापयति तर्हि मा तन्निवेदय ।
७५—देवाः स्वभयकारणं ब्रह्माणमाचख्युः ।

७६—तस्मै अहं दूतं प्रहितवान् , किंतु पाटलिपुत्राय न कोप्यद्यापि विसृष्टः ।

७७—अयं नरश्चौराणामतीव बिभेति ।

७८—ममगमनस्य प्रागेव स गतः ।

७९—अलं तं बहु ताडयितुं सोऽत्यशक्तः ।

८०—अस्य पुस्तकस्य रामाय प्रयोजनं नास्ति ।

८१—ये यतयोऽरण्येऽधिवसंति तेभ्यो नृपानुग्रहस्य क उपयोगः ।

८२—भक्ति देवो रोचते ।

८३—अहं देवदत्तस्य शता रूपकं धारयामि ।

८४—स मयि द्रुह्यति नाहं तस्मा अधिद्रुह्यामि ।

८५—न किमपि त्वामधुना प्रत्याश्रृणोमि ।

८६—राजस्योपरि चण्डवर्मा शास्ति ।

८७—अहं शत्रुं हत्वा स प्रत्याजगाम ।

८८—रामो रावणं हत्वा बिभोषणो लंकाराज्ये स्थापितः ।

८९—त्वया प्रातरेव गां पयो दोग्धव्यमिति तमादिशन् रामोऽत्रागतवान् ।

९०—गौतमीं वर्जं सर्वे निष्क्रांताः ।

९१—अश्मभिर्घातं स शत्रुभिर्हतः ।

९२—रामाय द्वौ पुत्रावास्ताम् ।

९३—प्रभवति निजाय कन्यकाजनाय महाराजः ।

९४—वासुकिः पातालतलस्येष्टे ।

९५—मामग्रे किं तिष्ठसि ।

९६—अस्य पर्वतस्य पूर्वं महावापो वर्तते ।

९७—अस्मादुत्तरतस्तु रौद्रं श्मशानम् ।

९८—दिवसे त्रिः संध्यामुपासीत ।

९९—वर्षत्रये दशकृत्वोऽपि मम गृहे त्वं नागच्छः ।

१००—उपवनादक्षिणेनार्त्तरवं श्रुत्वा दुःखितान् शरणं प्रत्यश्रृणोत् ।

१०१—अधुना सुवृष्टिर्भवति चेत्सुभिक्षं सर्वत्राजनिष्ट।
१०२—अपि नाम स राजास्मत्समीहितं संपादयिता।
१०३—अहं ह्यः पथि महांतं भुजगं ददर्श।
१०४—अत्र विषये तव संदेहो माऽभूत्।
१०५—मा चौरानभैष्ट।
१०६—यद्यहं तत्र बभूव तदा त्वं भ्रातुः सार्धं मा कलहमकृथा इति तमख्यम्।
१०७—स्वपुत्रं यथा अन्येषां पुत्रेभ्योऽपि प्रीतिः कर्तव्या।
१०८—अशीतिदिवसा यावत्स भृत्यो मामसेविष्ट।
१०९—यावद्धनमीश्वरेणास्मान् दीयते तस्मिन्संतोषो मान्यः।
११०—ते रथे कुसुमपुराय यातवंतः।
१११—सा मृतवतीत्याकर्ण्याहं दुःखितो जातवान्।
११२—शिशुना भाषितं स्मितं च पित्रोरानंदोत्पादकम्।
११३—अयं मम चिरंतनो वयस्यो भवितव्यः।
११४—त्वय्यस्माञ्शासति कथमस्माभिरभिभूतं भाव्यम्।
११५—कुमंत्रिणा नृपसभा न प्रवेष्टव्यम्।
११६—गोपालो नाम वयस्येन सहागच्छम्।
११७—जितोसौ मया षोडशसहस्राणां रूपकाणाम्।
११८—कांची नाम नगर्यां धनमित्रनाम वणिगवसत्।
११९—सुवर्णपुरं नाम नगरे द्वौ कौलिकौ वयस्यभावेन आवसतः।
१२०—चंदनमिव शीतले कदलीगृहेऽपि सा निर्वृतिं नालभत।
१२१—रामेतिनामा दशरथस्य पुत्र आसीत्।
१२२—उपला इव शत्रुष्वस्मानवस्कंदस्तु वयं किं कुर्यानेति न जज्ञिम।
१२३—सुरगुरुमिव प्रज्ञस्यास्य ब्राह्मणस्य दक्षिणां कि न दत्से।
१२४—तव च मे च सख्यमस्ति।
१२५—चेत्वं मम कार्यं करोषि त्वामहं मुद्रिकाशतं दास्यामि।
१२६—सा नारी रविरिव भ्राजमानं सुतमलब्धं तु इयं बहुकुरूपम्।

१२७—अश्वमारोढुं मे रोचते ।
१२८—त्वामावस्थातुं कथमहमनुमंस्ये ।
१२९—अहं त्वामेतत्कर्तुमिच्छामि ।
१३०—इमं ग्रंथं वाचयितुं न शक्यते ।
१३१—इममाम्रवृक्षमधः पातयितुं न सांप्रतम् ।
१३२—वरं देशमपि त्यक्तुं न तु नीचसेवां विधातुम् ।
१३३—दशरथाय त्रिभार्याभ्यः पुत्रचतुष्टयमुदपादि ।
१३४—विजयतु भवान् य एवं जनानानन्दयः ।
१३५—एनां भवतेऽनुरक्तां किं निष्कारणेन त्यजसि ।
१३६—इमं दिवसमारभ्य मासाद्विजया दशमी भवति ।

परिशिष्ट—२

शब्दकोष

अ

अंशमालिन्—(पुं०) सूर्य।
अकलित=(वि०) दुर्बोध।
अकिंचनत्वं—निर्धनता।
अक्षयत्वं—विनाश-हीनता।
अगुणः—बुरा गुण।
अगृध्नु—(वि०) लालची नहीं।
अग्निसात्कृ—जला देना।
अग्रजन्मन्—(पुं०) ब्राह्मण।
अग्रणी—नेता।
अग्र (वि०)—सर्वोत्तम।
अघं—पाप।
अंकः—धब्बा, दाग।
अंकुरः—अंकुर।
अंगम्—हिस्सा।
अंगरागः—सुगंधित लेप।
अंगुलि (स्त्री०)—उँगली।
अंगुलीयकः-कं—अंगूठी।
अचिंतनीय (वि०)—जो सोचा न जा सके।
अज (वि०)—जन्म न लेने वाला।
अंजनं—अंजन।
अतिक्रांत—बीता हुआ।
अतिगर्हित—अत्यन्त निन्दनीय।
अतिप्रसंगः—अत्यन्त जंगलीपन।
अतिभूमिः—पराकाष्ठा।
अतिमात्रं—बहुत ज्यादा।
अतिमुक्तलता—माधवी लता
अतियत्रणा—बहुत दुःख।
अतिलोल—अत्यन्त कमजोर।
अतिलोहित—बहुत लाल।
अतिह्रेपण—अत्यन्त लज्जाजनक।
अत्यादरः—बहुत ज्यादा आदर।
अत्रांतरे—इसी बीच में।
अदूरवर्तिन्—दूर नहीं।
अधिक्षिप्त— झिड़का गया हुआ, फटकारा हुआ।
अधिज्य—डोरी चढ़ा हुआ।
अधिराजः—महान् राजा।
अध्वरः—यज्ञ।
अनङ्गः—कामदेव।
अनतिपात्य—देरी न करने योग्य।
अननुदार—उपयुक्त पत्नी जिसके हो।
अनतर—लगातार

अनपायिन्—अनश्वर।
अनम्र—जो नम्र न हो, अभिमानी।
अनर्घत्वं—अमूल्य होना।
अनवगीत—आनन्दित
अनातप—ठंडा, धूप से सुरक्षित
अनातुर—जो बीमार न हो।
अनात्मज्ञ—बेवकूफ।
अनादि—जिसका आदि न हो।
अनायास—सरल।
अनामय—नीरोगता।
अनिर्वृत—दुखी।
अनीश—जिसका प्रभुत्व या अधिकार न हो।
अनुचरः—सेवक, पीछे-पीछे चलने वाला।
अनुजः—छोटा भाई।
अनुत्तम—जिससे बढ़कर कोई न हो।
अनुत्सेकः—अभिमानहीनता।
अनुत्सेकिन्—जो फूलकर कुप्पा न हो।
अनुबंधः—परम्परा, धारा।
अनुपक्रम्य—जो अच्छा न किया जा सके।
अनुपधि—छलहीन।
अनुमित—अनुमान किया गया हुआ।
अनुविद्ध—चारों ओर फैला हुआ।
अनुवृत्ति—अतीत का अनुभव।
अनृतं—मिथ्या।
अंतरात्मन्—अन्तरात्मा।
अंतरायः—विघ्न।
अंतरिक्षं—आकाश।
अंतरित—गायब हो गया।
अंतर्लीन—छिपा हुआ।
अन्तर्वेदिः—यमुना और गंगा के बीच का प्रदेश।
अपकारिन्—अपकार करने वाला।
अपचारः—अनुचित आचरण।
अपदेशः—बहाना।
अपयशस्—कलंक।
अपरिसमाप्त—जो कभी समाप्त न हो।
अपवादः—बदनामी, निन्दा।
अपहस्तित—व्यक्त
अपुनरुक्त—जो पुनरुक्त न हो। प्रतिदिन नया-नया।
अपूर्व—जिसकी समता का पहिले कभी न था।
अपोहनं—तर्क-शक्ति।
अप्रतिभट—जिसकी जोड़ का कोई न हो।
अप्रतिविधेय—जिसका कोई उपाय न हो।
अप्रतिहत—पूरा-पूरा।
अप्रत्यय—जिसको अपने ऊपर विश्वास न हो।
अप्रमेय—असंख्य।
अबला—स्त्री।
अब्जभूः—ब्रह्मा।
अभिख्या—शोभा।

अभिगमं—रति, मैथुन ।
अभिजनः—उच्च कुल में जन्म ।
अभिज्ञानः—पहिचान, चिन्हानी ।
अभिनव—नई, ताजी ।
अभिनिवेशः—लागू होना, श्रद्धा, रुचि ।
अभियुक्तः—विद्वान् ।
अभियोक्तृ—आक्रमणकारी ।
अभिरमणीय—अत्यन्त सुन्दर ।
अभिलाषः—इच्छा ।
अभिव्यक्त—स्पष्ट ।
अभिषेणय—सेना से मुठभेड़ करना ।
अभि(तिं)संधान—धोखा देना, ठगना ।
अभ्यवहार्य—भोजन ।
अभ्यागत—अतिथि ।
अभ्युपेत—हाथ में लिया हुआ ।
अमंगलं—अनर्थ, नीच विचार ।
अमर्षित—क्रुद्ध ।
अमल—निर्मल, शुभ ।
अमानुष—मनुष्यातीत ।
अमानुषी—निर्बुद्धि स्त्री ।
अमोघ—अचूक, अव्यर्थ ।
अम्बुवाहः—बादल ।
अयस—लोहा ।
अरुणः—सूर्य का सारथी ।
अरुन्धती—वसिष्ठ जी की पत्नी ।
अर्जनं—प्राप्ति, कामना ।
अर्थ्—(सम् पूर्वक) चुरादि आत्मने० ।
विचारना, कल्पना करना ।
(प्र पूर्वक) पीछा करना ।
अर्थ्य—अर्थयुक्त ।
अर्हत्—योग्य ।
अल्पमेधस्—मूर्ख ।
अवकल्प्य—विचारने योग्य ।
अवक्षयः—नाश ।
अवकाशः—गुंजाइश, कारण ।
अवताडनं—पेरना ।
अवपातः—शिकार पकड़ने के लिए गड्ढा ।
अवद्य—निन्द्य ।
अवधूत—घृणित ।
अवमानिन्—अपमान करने वाला ।
अवयवः—अंग ।
अवलोकिता—एक नौकरानी का नाम
अवसन्न—समाप्त ।
अवसान—अन्त ।
अवस्थित—टिका हुआ ।
अविक्षत—जो घायल न हुआ हो, कुशली ।
अविधवा—वह स्त्री जो विधवा न हो
अविनीत—उजड्ड ।
अव्यापन्न—न मरा हुआ, जिन्दा ।
अव्याहत—बिना रोक टोक ।
अशनिः—वज्र ।
अशनं—भोजन ।
अशरण—निस्सहाय ।
अशुभं—दुर्घटना ।

अशेषतः—पूर्णतया ।
अश्वमुखः—घोड़मुहा जन्तु ।
अश्वमेधः—एक प्रकार का यज्ञ जिसमें घोड़े का वध किया जाता है ।
अस् (उत् पूर्वक)—कर्मवाच्य पलट जाना; (विपरि पूर्वक) बदल जाना ।
असंविदान—अनभिज्ञ ।
असक्त—जो राग न रखता हो, बे-लगाव वाला ।
असदृश—अनुचित, अशोभन ।
असार—कमजोर, अयोग्य ।
असारता—कमजोरी, क्षणभंगुरता, अस्थिरता ।
असित—काला ।
असिपत्र—तलवार की धार ।
अस्ताचलः—वह पर्वत जिसके पीछे सूर्य छिप जाते हैं ।
अहंकारः—घमंड ।
अह्नाय—तुरन्त, शीघ्र ।

आ

आकरः—खाना ।
आकारः—स्वरूप
आकुल—भरा हुआ, परिपूर्ण, व्यथित पीड़ित ।
आक्रंदितं—रोना ।
आखण्डलः—इन्द्र ।
आखुः—चूहा ।
आख्यात—कहा हुआ, घोषित किया हुआ ।
आगंतुकः—अथिति, अनजान ।
आगमः—आना-वेद ।
आगमिन्—सिद्धान्तों में पारंगत ।
आशु—शीघ्र ।
आश्रमः—जीवन की एक मंजिल ।
आस्—(अनु पूर्वक—अदादि—आत्मने०)—सेवा करना ।
आसक्त—लगा हुआ ।
आसक्तिः—राग, लगाव ।
आस्तरणं—बिछौना ।
आस्थानं—परिषद् ।
आस्थान-मण्डप—परिषद्-भवन, सभाभवन ।
आहवः—युद्ध ।
आहारः—भोजन ।
आहितुंडिकः—बाजीगर ।

इ

इ (प्रति पूर्वक)—प्रेरणार्थक - विश्वास करना; (व्यप पूर्वक) अलग कर देना, अलग हो जाना ।
इक्ष्वाकुः—एक सूर्य-वंशी राजा, रघु ।
इंद्रियं—इन्द्रिय ।
इन्धन—ईंधन, जलाने की सामग्री ।
इरावती—एक स्त्री का नाम है ।

ई

ईक्ष् (अनुपूर्वक) भ्वादि—आत्मने० देख भाल करना।
ईक्षणं—नेत्र
ईप्सित—चाहा हुआ।
ईशः—मालिक, अधिपति, शिव।
ईश्वर (विशे०)—योग्य।
ईश्वरः—स्वामी।
ईह्—(भ्वादि० आत्मने०)—इच्छा करना

उ

उचित—साधारण, सामान्य, प्रथागत।
उच्छ्रित—ऊँचा उठा हुआ।
उत्कर्षः—ऊँचाई, अच्छाई।
उत्कुल—कुल में धब्बा लगाने वाला।
उत्कृष्टं—जोर की आवाज।
उत्खात—उखाड़ दिया गया हुआ, नष्ट किया हुआ।
उत्खातिन्—गड्ढों से भरा हुआ, ऊँचे नीचे स्थलों से भरा हुआ।
उत्तंसय—बाँधना, अलंकृत करना।
उत्तर (विशे०)—बाद वाला, पिछला।
उत्तरा—अभिमन्यु की पत्नी।
उत्तरोत्तर—सर्वदा बढ़ने वाला, आगे-आगे, दिनों-दिन।
उत्तान (विशे०)—शुद्ध कपट-रहित।
उत्तानित—खुला हुआ, फैला हुआ।
उत्पलिनी—कमलिनी।
उत्पीडः—माला, अलक।
उत्सवः—उल्लास, प्रसन्नता या आनन्द का अवसर।
उदंतः—वृत्तान्त, इतिहास।
उदयः—दर्शन।
उद्दामं—(क्रियाविशे०)—बे रोक, बं जोर से।
उद्यत—तुला हुआ, कमर कसे हुए लगा हुआ, तत्पर।
उद्यमः—इरादा, संकल्प।
उद्धत (विशे०)—घमंडी, ऊँचा।
उद्बाष्प (विशे०)—आँसू बहाता हुआ
उन्नतत्व—श्रेष्ठता, उत्तमता।
उन्नति (स्त्री०)—बड़प्पन, उदारता उच्चता, श्रेष्ठता।
उन्मुख (विशे०)—तैयार।
उपकंठः—सान्निध्य, सामीप्य, पड़ोस।
उपकारः—भलाई, नेकी।
उपकारिन्—उपकार करने वाला।
उपकार्या—राजा का शिविर।
उपघातः—नाश, क्षति।
उपचारः—बाह्य प्रदर्शन, ऊपरी लोकाचार

उपदेशः—शिक्षा, राय, सलाह ।
उपद्रवः—हानि
उपनत—आया हुआ, प्राप्त हुआ, पड़ गया हुआ ।
उपनिपातः—घटना, होना ।
उपपन्न(विशे०)—योग्य, उचित ।
उपमा—तुलना ।
उपरत—मरा हुआ ।
उपरागः—ग्रहण ।
उपरोधः—बाधा, क्षति ।
उपलक्षणं—लाक्षणिक, चिह्न ।
उपलंभः—पता लगाना ।
उपवासः—भोजन न करना, भूखा रहना ।
उपहृत—मरा हुआ, बरबाद किया हुआ ।
उपस्थित—जो समीप में आ गया है, जो पड़ गया है ।
उपहास्यता—हँसी का पात्र ।
उपाधिः—दशा, परिस्थिति ।
उपाध्यायः—आचार्य ।
उपालंभः—ताना, व्यंग्य ।
उपांशुः—(क्रियाविशे०)—एकान्त में ।
उपाश्रयः—आश्रय, शरण ।
उषस्—(स्त्री०) प्रातःकाल ।
उष्मन् (पुं०)—गर्मी ।
उष्णिमन् (पुं०)—गर्मी ।

ऊ

ऊरीकृत—हाथ में ले लिया हुआ ।
ऊरुः—जंघा ।
ऊर्जस्वल (विशे०)—बड़ा शक्तिशाली ।
ऊर्मि (स्त्री०)—लहर ।
ऊह् (अप पूर्वक) भ्वादि—परस्मै०—हटाना, नष्ट करना ।

ऋ

ऋजु(विशे०)—जो बुरा न हो, सीधा, मत्सररहित, स्वच्छ ।
ऋषिकल्प(विशे०)—ऋषितुल्य ।
ऋषिकुमारः—ऋषि का पुत्र ।
ऋष्यशृङ्गः—महाराज दशरथ के दामाद ।

ए

एकपदे(क्रिया-विशे०)२—यकायक ।
एकाग्र(विशे०)—एक चीज पर लगा हुआ ।
एकांत(वि०)—आत्यंतिक, चिरस्थायी, लगातार । (विशेषण के साथ) —बहुत ज्यादा ।
एकैकशः (क्रियाविशे०)—एक-एक करके ।
एधित—पाला पोसा गया हुआ, बड़ा किया गया हुआ ।
एनस—पाप ।

ऐ

ऐक्ष्वाक—इक्ष्वाकु का वंशज।

ऐरावतः—इंद्र का हाथी।

ओ

ओजस्विन्—प्रतापी, तेजस्वी।

औ

औदरिकः—भुक्खड़, पेटू।

औदासीन्यं—उदासीनता, तटस्थता।

क

ककुदं—कूबड़; (अलंकार) प्रधान, सर्वश्रेष्ठ।

कचः—बाल, केश।

कज्जलं—काजल।

कंठ्(उत्पूर्वक)—भ्वादि—आत्मने०—उत्सुक होना, उत्कंठित होना।

कतिपय—कुछ, थोड़े से।

कथमपि—(क्रियाविशेषण)—बड़ी कठिनाई से।

कदली—केले का वृक्ष।

कनकं—सुवर्ण।

कन्दरम्—गुफा।

कंदलः—समूह, पुञ्ज, राशि।

कमलयोनिः—ब्रह्मा।

कंप्(अनुपूर्वक)—तरस खाना, दया करना।

कर्ण्—(आपूर्वक चुरादि-उभयपदी) सुनाना।

कर्णधारः—मल्लाह।

कलकलः—शोर।

कलहंसः—हंस।

कलभः—हाथी का बच्चा।

कला—चन्द्रमा की कला।

कलिका—कली।

कलेवरम्—शरीर।

कल्पः—विधि, प्रकार।

कल्पांत—सृष्टि का अन्त या नाश।

कल्य—(विशे०) बड़े सवेरे।

कल्याण (विशे०)—श्रेष्ठ, उत्तम, धन्य, भाग्यवान्।

कल्याणिन्(विशे०)—धन्य, भाग्यवान्।

कष्ट (विशे०)—कठिन।

काकपक्षः-क्षकः—घुँघराले बाल।

कांचनं—सुवर्ण।

कामः—इच्छा, कामदेव।

कामगम—स्वेच्छानुसार चलने वाला।

कामतः (क्रियाविशे०)—वासना से अभिभूत

कामसू (विशे०)—इच्छाओं को पूरी करने वाली।

ब

बकः—बगुला ।
बटुः—युवक, लड़का ।
बंदी—कैदी ।
बंधुलः—वेश्या के घर का नौकर ।
बलं—सेना ।
बलिः—पूजा ।
बलीवर्द—बैल ।
बांधवः—रिश्तेदार, भाई बिरादरी ।
बालिशः—मूर्ख
बिंब—परछाईं ।
बीभत्समान—डरता हुआ, दुःखित होता हुआ ।
बुद्धिजीविन्—बुद्धि लगाने वाला ।
ब्रह्मर्षिः—ब्राह्मण ऋषि ।

भ

भग्नोद्यम—जिसके प्रयत्न विफल हो गये हों, हार गया हुआ ।
भज—भ्वादि उभयपदी-मनोरंजन करना, आशा करना, अभ्यास करना ।
भक्तिमत्—भक्तिवाला ।
भद्रः—सम्बोधन करने का एक ढंग है, महाशय जी, श्रीमान् जी ।
भद्रा—सभ्य वा शिष्ट स्त्री ।
भरणं—पोषण ।
भरतर्षभ—भरतवंशियों में सर्वश्रेष्ठ ।
भर्तृदारिका—राजकुमारी ।
भवः—उत्पत्ति, शंकर जी ।
भवनं—घर ।
भवितव्यता—होनहार, होनी, भाग्य ।
भागधेयं—भाग्य, तकदीर ।
भाग्यं—समृद्धि, ऐश्वर्य, सुख के दिन ।
भाजनं—पात्र ।
भाष्—(अपपूर्वक-भ्वादि-आत्मने०) निन्दा करना, गाली देना ।
भावः—भावना, प्रेम प्रकाश होना, विद्वान् व्यक्ति, सम्माननीय महोदय ।
भासुर—चमचमाता हुआ, चमकीला ।
भास्वत्—चमकता हुआ, सूर्य ।
भिक्षाशित्वं—भीख माँगकर जीवन निर्वाह करना ।
भीम—भयंकर, भयानक ।
भुजगः—साँप ।
भुवनं—संसार ।
भू—(विपूर्वक-प्रेरणार्थक) सोचना, सिद्ध करना, निर्णय करना, देखना, अभिज्ञ होना, जानना (सम् पूर्वक) पैदा होना ।
भूत—प्राणी ।
भूतधारिणी—पृथ्वी ।
भूमिका—पार्ट, नाटक का पात्र ।
भूमिदेवः—ब्राह्मण ।

भूयः—फिर।
भूयिष्ठं—खूब।
भूरिवसुः—व्यक्ति-वाचक संज्ञा, मालती का पिता।
भैक्ष्यं—भीख माँगना।
भोगः—भोग, विलास
भ्रंशः—हानि।
भ्रांतिमत्—घूमता हुआ, चक्कर काटता हुआ।

म

मंगलं—शुभ, शुभ कृत्य; (समासों में) शुभ; जैसे **मंगलतूर्यः**—शुभ नगाड़ा; **मंगलस्नानम्**—शुभ-स्नान।
मंजु—मीठा।
मंजुलः—एक प्रकार की लता।
मंडन—आभूषण, सजावट।
मद्—(उद् पूर्वक-प्रेरणार्थक) पागल कर देना, मतवाला कर देना।
मदः—नशा, प्रबल इच्छा, चूता हुआ रस।
मदमुच्—मद बहाने वाला।
मधु—शराब।
मधुर—सुन्दर, मीठा।
मधुमासः—वसन्त समय।
मधुसूदनः—कृष्ण, मधुनामक राक्षस को मारने वाले।
मध्यस्थ—निर्णायक।
मनस्विन्—बुद्धिमान्, दृढ़चित्त।
मनस्विनी—बुद्धिमती स्त्री।
मनीषिन्—बुद्धिमान् पुरुष, ऋषि।
मनोभूः / **मनसिजः** } कामदेव।
मंत्र्—(आ पूर्वक-चुरादि-आत्मने) विदा होना।
मंत्रकृत्—मंत्र बनाने वाला।
मंत्रवत्—मंत्रों से युक्त, मंत्र वाला।
मंथर—मन्द, धीमा।
मंद—कुन्द, कुंठित।
मंदभाग्य—मन्द भाग्य वाला, अभागा।
मंदायमान—पिछड़ा हुआ।
मंदीकृत—धीमा किया हुआ।
मंदौत्सुक्य—जिसका दिल दुःखी हो, निकाल दिया हुआ।
मन्मथः—कामदेव।
मन्यु—शोक, दुःख, क्रोध।
मरिचः—मिर्च।
मरीचिः—किरण।
मर्त्यः—मनुष्य, मरणशील।
मलयजं—चन्दन का रस।
महाजनः—भीड़, जनता।
महाभागः—भाग्यवान् पुरुष।
महातेजस्—बड़ा तेजस्वी।
महार्ह—महँगा, कीमती।
महीपालः—राजा।

महेंद्र—बड़े इन्द्र ।
महेश्वरः—बड़ा ईश्वर (पति) ।
महोक्षः—बैल ।
महौषधि—बड़ी दवा ।
मागधी—मुदक्षिणा, मगधदेश के राजा की लड़की ।
मातः—प्यार का शब्द ।
मानः—घमंड ।
मानिनी—घमंडी स्त्री ।
मानुष्यकं—मनुष्य प्रकृति ।
मारुतः—हवा ।
मालाकार—माली ।
माल्यम्—माला ।
मिश्र—प्रतिष्ठा-सूचक प्रत्यय जिसका अर्थ होता है, "सम्माननीय, योग्य" ।
मुक्ताफलं—मोती ।
मुग्ध—कपट-रहित, निरपराध ।
मुद्—(अनुपूर्वक-भ्वादि आत्मने०) अनुमोदन करना, समर्थन करना ।
मुद्रा—मुहर ।
मुरारिः—विष्णु ।
मूर्छ्—(भ्वादि परस्मै०) प्रभाव डालना, बल दिखलाना, बल पाना, मोटा पड़ना, घना पड़ना ।
मुसलं—मूसर या मूसल जिससे ओखली में अनाज काँड़ा जाता है ।
मुहुः—बारम्बार ।
मूर्तिमत्—मूर्तिमान् ।
मूर्धजः—केश, बाल ।
मृगतृष्णिका—मृगतृष्णा, झूठी आशा ।
मृणाल—कमल का रेशा ।
मृणालिनी—कमल ।
मृद्—मिट्टी ।
मृदु—कोमल चित्त वाला, कमजोर ।
मृष्—(चुरादि-परस्मै०) सहन करना ।
मृषा—व्यर्थ, गलती से ।
मृषोद्य—झूठ ।
मेखला—करधनी, पेटी ।
मेघनादः—व्यक्ति-वाचक संज्ञा । रावण के पुत्र का नाम ।
मेधा—बुद्धि, गुण ।
मेध्य—पवित्र ।
मैथिलेयः—मैथिली के पुत्र, कुश ।
मोक्षः—छुटकारा ।
मौल—पुराना नौकर, बाप-दादों के जमाने से चला आया हुआ नौकर ।
म्लेच्छः—बहिष्कृत जाति का व्यक्ति, जङ्गली, असभ्य ।

य

यजनं—यज्ञ ।
यत्किंचनकारिता—नीच काम करना । **यथार्थ**—अर्थ के अनुसार, ठीक-ठीक ।

यथावत्—(क्रिया-विशे०) उचित विधि के अनुसार, उचित रीति से।
यदृच्छया—(क्रिया-विशे०) स्वेच्छानुसार। अकस्मात्।
यम्—(निपूर्वक)—(भ्वादि-परस्मै०) हटाना।
यम—जुड़वाँ।
यष्टि (स्त्री०)—माला, हार।
यस्—(आ पूर्वक-प्रेरणार्थक)—दुःख देना, व्यथित करना।
या (प्रपूर्वक) अदादि-परस्मै०प्रस्थान करना, रवाना होना।
याच्ञा—दीन होकर माँगना।
यातुधानः—राक्षस।
यादृच्छिक—(विशे०) आकस्मिक।

यावदर्थ—(क्रियाविशे०) हर माने में।
युज्—(रुधादि-उभयपदी) इरादा करना, भाग्य में बदा होना। (निपूर्वक प्रेरणार्थक) साधना, जोतना, जोड़ देना, मेल कराना। (प्रपूर्वक आत्मने०) कार्य करना, नाटक-रूप में प्रदर्शित करना।
युध्—युद्ध।
युवराजः—युवराज।
योगः—मन को एकाग्र करने की विद्या।
योजन—आठ मील की दूरी।
योनिः—उद्गम-स्थान, मूल कारण।

र

रहस—(नपुं०) वेग, चाल।
रजनिचर—राक्षस।
रणरणकं—चिन्ता।
रंज्—(अपपूर्वक-कर्मवाच्य) असंतुष्ट हो जाना।
रणधुरा—समर का अग्रभाग।
रणशिक्षा—युद्ध-शास्त्र, युद्धकला।
रत्नाकर—समुद्र।
रंध्र—विवर, गड्ढा, छेद, सूराख।
रंभ्—(परि पूर्वक)—भ्वादि आत्मने० —गले लगाना, आलिंगन करना।
रयः—धारा, प्रवाह, वेग।

रश्मिः—लगाम।
रस्—(भ्वादि-परस्मै०)—गरजना।
रसः—रस (शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत)।
रसवत्तर—अधिक स्वादिष्ट।
रसातलं—पाताल।
रसालः—आम्रवृक्ष।
रसिक (विशे०)—शोभायुक्त, रमणीक, रस को समझने वाला।
रहस्यं—भेद, गुप्त बात।
रहस्यभेद—गुप्त बात का खुल जाना।

राक्षसः—नन्दवंशीय राजाओं के मंत्री का नाम "राक्षस" था।
रागः—वासना, उत्कट इच्छा।
राजन्वत्—(विशे०)—न्यायशील अथवा सज्जन राजा द्वारा शासित।
राजर्षि—क्षत्रिय ऋषि।
राजतंत्र—शासन-विद्या, शासन-शास्त्र,
रात्रिचरी—राक्षसी।
राध—(आ पूर्वक-प्रेरणार्थक) प्रसन्न करना, किसी की इच्छा के अनुसार व्यवहार करना।
रामगिरिः—एक पर्वत का नाम।
रुजा-ज्—(स्त्री०) पीड़ा, आधि, मनोव्यथा।
रुधिरं—रक्त।
रोगिन्—(विशे०)—रोगी, बीमार।
रोषण—(विशे०) क्रोधी।
रोषणता—क्रोधी प्रकृति।
रौरव—(विशे०)—रुरु नामक मृग की छाल से बना हुआ।

ल

लक्ष्मन्—(नपुं०)—धब्बा, दाग।
लक्ष्मीः—शोभा, द्युति।
लघय्—कम करना, घटाना।
लभ्—(उपपूर्वक)भ्वादि-आत्मने०—व्यंग्य बोलना, ताना मारना, कलंक लगाना। (प्रपूर्वक)-भ्वादि परस्मै०—बड़बड़ाना, जल्पना।
ललामन् (नपुं०)—एक आभूषण।
ललामम्—एक आभूषण।
लवंगिका—मालती की सौतेली बहिन।
लवणांभस्—(पुं०)-समुद्र (खारे पानी वाला)।
लाघवं—नैराश्य, हीनता, बेइज्जती, नीचा देखना।
लांछनं—निशानी। **कठपद-लांछन-**"श्रीकण्ठ" शब्द से प्रसिद्ध।
लिख्—(वि पूर्वक) तदादि-परस्मै०—गाड़ देना, लगा देना, बींध देना।
लिखित—लेख, दस्तावेज।
लुभ्—(प्र पूर्वक प्रेरणार्थक) प्रलोभित करना, उसकाना (विपूर्वक-प्रेरणार्थक) किसी के चित्त को उभाड़ना या प्रलोभित करना।
लोध्र-लोध्रम्—लोध्र नाम का वृक्ष, अथवा लोध्र वृक्ष का फूल।
लोल—(विशे०) उत्सुक।

व

वंश्यः—वंशज।
वध्यस्थानं—फाँसी-घर
वत्सः—बछड़ा।
वत्सतरी—बछिया।

वनज्योत्स्ना—माधवी लता ।
वनदेवता—वन की देवता ।
वनस्पतिः—वृक्ष ।
वन्य—जंगली ।
वप्—(निर् पूर्वक-भ्वादि-परस्मै०)-देना, उपहार देना ।
वप्तृ—(पुं०) बोने वाला ।
वम्—(उत् पूर्वक-भ्वादि-परस्मै०)-कै करना, उँडेलना, निकालना ।
वयस्—(नपुं०) कौआ, पक्षी ।
वर—(विशे०)-सर्व-श्रेष्ठ, सर्व-प्रथम ।
वरः—दूल्हा ।
वराक—(विशे०) बेचारा, दयनीय ।
वरीयस्—(विशे०) अच्छा, बड़ा ।
वर्णः—जाति ।
वर्ग्यः—किसी गुट्ट का, किसी वर्ग का ।
वर्ग्याः—नाटकीय पात्रों का समुदाय ।
वर्णिन्—ब्रह्मचारी ।
वल्कलं—पेड़ की छाल का वस्त्र ।
वल्गितं—उछाल, कुदाव ।
वल्मीकः-कं—बाँबी, बिबौंटा ।
वल्लभ—प्रिय, इष्ट । **वल्लभा**—पत्नी ।
वशः—अधीनता ।
वशिन्—(विशे०) ऋषि, जिसने इन्द्रियों को जीत लिया हो ।
वश्या—आज्ञाकारिणी पत्नी ।
वस्—(अध्यापूर्वक-भ्वादि-परस्मै०) आबाद करना, बसाना, प्रवेश करना ।
वसति (स्त्री०)—निवास-स्थान ।
वसंतोत्सवः—वसन्त ऋतु का उत्सव ।
वह्—(प्रेरणार्थक) जाना, भ्रमण करना (निर् पूर्वक प्रेरणार्थक) करना, व्यवस्था करना ।
वाच्यं—कलंक ।
वाजिन्—घोड़ा ।
वादः—अफवाह, बातचीत ।
वाम—उलटे आचरण वाला, विरुद्ध आचरण वाला ।
वायसः—कौआ ।
वारणः—हाथी ।
वारयोषित्—वेश्या ।
वाराणसी—बनारस, काशी ।
वारिधरः—बादल ।
वारियंत्रं—जल-चक्र जल को ऊँचा उठाने वाली एक घूमती हुई पहिया ।
वार्तं—कुशल, कल्याण ।
वार्धकं—वृद्धावस्था ।
वासगृहं—मकान का भीतरी हिस्सा ।
विकसित—बढ़ा हुआ, फैला हुआ ।
विकारः—रोग, बीमारी ।
विकारहेतुः—प्रलोभन ।
विक्रमः—पराक्रम, वीरता ।
विक्लव—डरा हुआ, दुःखित, चकराया हुआ ।
विगुण—बुरा, अयोग्य ।

विग्रहः—शरीर, झगड़ा, शत्रुता ।
विघातः—विघ्न, रुकावट, अड़चन ।
विचक्षण—विद्वान्, निपुण, चतुर ।
विजया—(और जया) - एक प्रकार का मन्त्र जिससे भूख-प्यास की व्यथा दूर हो जाती है और अद्भुत शक्ति मिलती है ।
विजिह्म—टेढ़ा, कुटिल ।
विज्ञापना—प्रार्थना ।
विटपः—शाखा, डाली ।
विप्रलब्ध—धोखा खाया हुआ, ठगा हुआ ।
विप्लवः—उलट-फेर, विरुद्धता ।
विभवः—जायदाद, ऐश्वर्य, धन ।
विभावरी—रात्रि ।
विभुः—स्वामी, अधिपति ।
विभ्रमः—घबराहट, हानि ।
विमनस्—रंजीदा, दुखी, खिन्न ।
विमानित—अपमानित ।
विमार्गः—गलतरास्ता,अनुचित मार्ग।
विडम्ब्—(चुरादि-परस्मै०) नकल करना ।
वियुक्त—अलग हो गया हुआ ।
वितथ—झूठा ।
वितीर्ण—पैदा हुआ, उतरा हुआ, दिया हुआ ।
विदग्धता—चतुरता ।
विदेशः—विदेश, पराया देश ।
विद्युत्वत्—बादल ।
विद्विष्—शत्रु ।
विधातृ—सृष्टि-कर्ता ।
विधृत—रक्षित ।
विधेयः—नौकर ।
विधेयज्ञ—जो अपना कर्तव्य जानता है, आज्ञाकारी ।
विनशनः—दिल्ली के उत्तर-पश्चिम में एक देश ।
विनिमयः—अदला-बदली ।
विपक्षः—शत्रु ।
विपश्चित्—बुद्धिमान्, विद्वान् पुरुष ।
विपिनं—जगत् ।
विरत—समाप्त, बन्द ।
विरागः—असन्तोष ।
विरामः—बन्द हो जाना, समाप्ति ।
विरोधः—वैर ।
शाश्वत-विरोध—सहज वैर ।
विलासः—भोग-शृंगार-पूर्ण मनो-विनोद ।
विवृत—खुला हुआ ।
विवेकः-विचार, बुरा-भला पहिचानने की सामर्थ्य, निर्णय ।
विश्—(अभिनि पूर्वक) तुदादि-आत्मने—घुसना । (सम् पूर्वक) —सोना ।
विशुद्धि—शुद्धता, पवित्रता ।
विशेषः—अन्तर ।
विश्रब्ध—(क्रिया विशे०) विश्वास-पूर्वक ।
विश्रंभः—विश्वास ।

विश्रम्भस्थानम्—विश्वास का पात्र ।
विश्रामः—आराम ।
विश्वंभरा—पृथ्वी ।
विश्वंसनीयता—विश्वास पैदा कर देने की शक्ति ।
विषण्ण—खिन्न ।
विषम—उलटा, कठिन ।
विषयः—क्षेत्र, प्रान्त, इन्द्रियों के भोग्य पदार्थ, इन्द्रिय-सुख ।
विषाणः-णं—सींग ।
विषादः—शोक, भय, दुःख ।
विष्टरः—आसन ।
विसरः—राशि ।
विसृष्ट—बिदा किया हुआ, भेज दिया गया हुआ ।
विस्तीर्ण—चौड़ा, फैला हुआ ।
विस्फारित—फैला हुआ ।
विहितं—डिगरी, आज्ञा ।
विह्वल—व्याकुल, दुखित, शोकाभिभूत ।
विह्वलता—व्यथा ।
वीरसूः—वीर पुत्र पैदा करने वाली ।
वृ—चुरादिपरस्मै०—माँगना ।
वृकोदरः—भीम ।
वृज्—(चुरादि-परस्मै०-निकालना, (आपूर्वक) झुकाना, (वि पूर्वक)-रहित होना, हीन होना ।
वृत्—(निर् पूर्वक प्रेरणार्थक) खतम करना । (परि पूर्वक) चक्कर काटना, (प्र पूर्वक) पैदा होना, उठना, शुरू होना (व्यपपूर्वक) पीछे को घूम जाना ।
वृत्तिः—(स्त्री०) जीविका, व्यवहार, आचरण ।
वृद्धि—(स्त्री०) बढ़ती, बढ़ना ।
वृषलः—शूद्र, चन्द्रगुप्त की पदवी ।
वृषांकः—शिवजी (जिनके ध्वज पर बैल का चिह्न है ।
वृष्टि—वर्षा ।
वेगः—तेजी ।
वेगानिलः—तेज हवा का झोका ।
वेणुलता—बाँस की छड़ी ।
वेतसः—बेंत, नरकुल ।
वेदि-दी—वेदी, यज्ञ की वेदी, होम करने की वेदी ।
वेधस्—ब्रह्मा ।
वेशवनिता—वेश्या ।
वेश्मन्—घर ।
वेष्टनं—पगड़ी ।
वैकृतं—अशुभ लक्षण ।
वैतान—यज्ञ-सम्बन्धी, पवित्र ।
वैतानिक—पवित्र, यज्ञ में अर्पित ।
वैतालिकाः—भाट ।
वैदेही—सीता ।
वैद्युतानलः—बिजली की आग ।
वैरिन्—शत्रु ।
वैहायसं—हवा में स्थित, हवाई ।
व्रत—आचरण-पद्धति ।

व्रीडित—लज्जित ।
व्यक्ति—(स्त्री०)—प्राकट्य, आविर्भाव ।
व्यक्त—(क्रियाविशे०) स्पष्ट ही है ।
व्यग्रत्वं—किसी चीज में लगा होना ।
व्यजनं—पंखा ।
व्यतिकरः—घटना ।
व्यपदेशः—कुल, नाम, जाति ।
व्ययः—खर्च, विघ्न, रुकावट, हानि ।
व्यलीकं—दुःख, शोक ।
व्यवहारः—अदालती तरीका ।
व्यवहारासनं—न्यायालय ।

व्यवहित—अलग किया हुआ ।
व्यसनं—दुःख, आवश्यकता, कठिनता, खूब दृढ़ता-पूर्वक लगन ।
व्याकुल—गहरे से अथवा ध्यानपूर्वक लगा हुआ ।
व्यालः—साँप ।
व्याधः—बहेलिया, शिकारी ।
व्याहारः, व्याहृति } शब्द, वाणी ।

श

शकल—टुकड़ा ।
शक्ति—एक अद्भुत अस्त्र ।
शक्रः—इन्द्र ।
शची—इन्द्र की पत्नी ।
शंकुः—काँटा, बाण ।
शप्—(भ्वादि-उभयपदी)-निन्दा करना ।
शबरः—पहाड़ी जाति का व्यक्ति ।
शब्दः—शब्द, पदवी ।
शम्—(नि पूर्वक) दिवादि-परस्मै०—सुनना, पाना । (प्रेरणार्थक) हटाना, दबाना, दमन करना, (प्र पूर्वक-प्रेरणार्थक) तै करना, ठीक करना ।
शमयितृ—नाश-कर्ता ।
शरजन्मन्—कार्तिकेय, षण्मुख ।
शरणं—घर ।
शरणागत—शरण में आया हुआ, रक्षार्थ आया हुआ ।
शरद्—(स्त्री०) वर्ष, साल ।
शरव्यं—निशाना, लक्ष्य ।
शर्मन्—सुख ।
शर्वरी—रात्रि ।
शरासनं—धनुष ।
शरीरिन्—शरीरधारी, प्राणी ।
शल्यं—बाण ।
शशः—खरगोश ।
शश्वत्—(क्रिया विशे०) हमेशा के लिए ।
शस्त्रभृत्—अस्त्रधारी, योद्धा ।
शाखामृगः—बन्दर ।
शांत—हलका हो गया हुआ, घट गया हुआ, हटा हुआ ।
शांति—नाश, हटाव ।
शालिः—एक प्रकार का धान ।

शालिन्—युक्त ।
शावः—शावकः—बच्चा ।
शास्—(अनुपूर्वक) अदादि-परस्मै०—राय देना ।
शाश्वत—चिरस्थायी, नित्य ।
शासनं—आज्ञा ।
शिक्षा—राय, उपदेश ।
शिखा—लपक, ज्वाला ।
शिखिन्—मयूर ।
शिथिलय्—ढंढा कर देना, शिथिल कर देना, ढील कर देना, कमजोर कर देना ।
शिरोधरः—गर्दन ।
शिल्पं—कला, चातुरी ।
शिलापट्टः—पत्थर की पटिया ।
शिलोच्चयः—पहाड़, पत्थरों का समूह ।
शिवं—कल्याण, भलाई ।
शिष्—वि पूर्वक (प्रेरणार्थक) मात कर देना, बढ़ जाना ।
शुक्तिः—सीप ।
शुच्—(स्त्री०) शोक, दुःख ।
शुद्धांतः—राजा का रनिवास, रनिवास के निवासी अर्थात् रानी अथवा रानियाँ ।
शुश्रुष्—सेवा करना ।
शुभशंसिन्—शुभ-सूचक ।
शूलिन्—(पुं०)—शिवजी ।
शृणि—(स्त्री०)—चाबुक, अंकुश ।
शैलः—पहाड़ ।
शैवलं—काई ।
शोण—(विशे०)—लाल ।
शोणितं—खून ।
शोभा—छवि, सुन्दरता ।
श्रीशः—विष्णु ।
श्रुत—प्रसिद्ध, ख्याति ।
श्रुति—कान ।
श्रेयस्—सुख, सौभाग्य, कल्याण, (विशे०) अच्छा, अधिक, प्रशंसापात्र ।
श्रेष्ठिन्—(पुं०)—सेठ, सौदागर ।
श्रोत्रियः—विद्वान् ब्राह्मण ।
श्वापदः—शिकारी जानवर, जङ्गली जानवर ।
श्वेतमान—(विशे०) सफेद ।

ष

षंडः—समूह ।

स

संयमनं—रोकना, खैंचना ।
संयोगः—मेल, जोड़ ।
संरंभः—क्रोध, उग्र प्रकृति ।
संवादः—होलिया ।
संव्यवहारः—सौदागरी, व्यापार, तिजारत ।

संविभक्त—हिस्सा बाँटा हुआ, अल-गाया हुआ।
संश्रयः—अवलम्ब, सहारा।
संसर्गः—सम्पर्क, लगाव, सम्बन्ध।
संसारः—संसार।
संस्तीर्ण—बिखेरा हुआ।
संस्थापनं—नींव जमाना।
संस्थित—मरा हुआ, खतम हो गया हुआ।
संहारः—संसार का विनाश, प्रलय।
सकल—सम्पूर्ण, अक्षत।
सकाम—जिसकी इच्छाएँ पूरी हो गई हों, सन्तुष्ट।
सक्त—जारी, शुरू किया हुआ।
संकरः—जातियों का गड़-बड़सड़बड़ मिल जाना।
संकल्प—विचार।
संकल्पयोनिः—कामदेव।
संकुल—भरा हुआ।
संकोचः—अंगों को सिकोड़ लेना।
संगः—लगाव, सम्बन्ध, आसक्ति।
संघः—समूह।
सचकित—(विशे०) चौंका हुआ।
सज्ज—(विशे०) तैयार।
संज्—(प्र पूर्वक)-भ्वादि-परस्मै०—आसक्त होना। (व्यति पूर्वक) जोड़ना।
संजीवनौषधि—(स्त्री०) पुनरुजीवित करने वाली जड़ी।
सत्केतुः—अच्छा ध्वज।
सत्क्रिया—गुण, भलाई, नेकी, सत्कार।
सत्त्वं—जीव, प्राणी।
सद्—भ्वादि परस्मै०—डूबना, गिरना, (वि पूर्वक) खिन्न होना, उदास होना, (उत् पूर्वक) डूबना, विपत्ति में पड़ जाना।
सदस्या—यज्ञ में सहायक।
संतति—(स्त्री०) **सन्तानं**—औलाद, बाल-बच्चे।
संदिष्ट—आज्ञप्त।
सन्धानम्—ठीक करना, निशान लगाना।
संधिः—जोड़।
सन्निकर्षः—पास, पड़ोस, सान्निध्य।
सन्निपातः—समूह।
सपत्नः—शत्रु।
सपत्नी—सौत।
सफल—(विशे०) फल-युक्त।
सम्राज—चुरादि-परस्मै० सम्मान करना।
सम्राज—चक्रवर्ती राजा।
समक्षं—(क्रियाविशे०) सामने।
समर—युद्ध।
समवस्था—दशा।
समवायः—समुदाय।
समाधिः—मन की एकाग्रता।
समापत्ति—घटना, आकस्मिक अवसर।

समाश्रयः--सहारा, अवलम्ब ।
समिति--(स्त्री०) युद्ध ।
समिद्धत्--(विशे०)-यज्ञीय इन्धन खिलाया गया हुआ ।
समीपं--(क्रिया विशे०) नजदीक ।
समुन्नति--(स्त्री०) ऊँचाई ।
समुच्चयः--समूह, समुदाय ।
समुत्सुक--(विशे०) बेहद उत्सुक, बेचैन ।
समृद्धि--बढ़ा चढ़ा हुआ ।
समृद्धि--(स्त्री०) उन्नति, अभिवृद्धि ।
संपत्ति--(स्त्री०) गुणों का उत्कर्ष ।
संपन्न--युक्त, तैयार किया हुआ, बना हुआ, हो गया हुआ ।
संप्रतिपत्ति--(स्त्री०) कबूलना, मानना ।
सम्बन्धः--सम्बन्ध ।
सम्बन्धिन्--सम्बन्धी, रिश्तेदार ।
संभृत--इकट्ठा किया हुआ ।
संभोगः--आनन्द उड़ाना ।
संभ्रमः--डर, घबराहट ।
संमोहः--अज्ञान ।
सरणि--विधि, प्रकार, ढङ्ग ।
सरसिजम्--कमल ।
सरोषम्--(क्रियाविशे०) क्रोध-पूर्वक ।
सर्गः--सृष्टि ।
सर्वथा--(क्रियाविशे०) सब प्रकार से ।
सर्वदमनः--सब को दमन करने वाला ।
सर्वांगीण--(विशे०) सारे शरीर पर लिपा हुआ ।
सलिलं--जल ।
सशब्दम्--(क्रियाविशे०)--शब्द (आवाज) करता हुआ ।
सस्यं--फसल ।
सह्--(उत् पूर्वक) भ्वादि-आत्मने०--हिम्मत करना ।
सहकारः--आम्रवृक्ष ।
सहज--(विशे०)--प्राकृतिक ।
सहस्रकिरणः) सूर्य (एक हजार
सहस्रधामन्) किरण वाले) ।
सहायः--साथी, मित्र ।
सहोदरः--सगा भाई ।
साक्ष्यम्--गवाही ।
सादः--दुबलापन, पतलापन ।
सादृश्य--तुलना, बराबरी, उपमा ।
साध्--(प्रपूर्वक-प्रेरणार्थक) आगे बढ़ाना, और आगे उठा देना ।
साधनम्--सेना ।
साध्वसं--डर ।
सानु--(नपुं०)--शिखर, चोटी ।
सानुमत्--(पुं०) पहाड़ ।
सानुराग--(विशे०)--भक्त, अनुरक्त ।
सांप्रतिक--(विशे०)--उचित ।
सारः--ताकत, बल, शक्ति ।
सारिका--एक प्रकार का पक्षी, मैना ।
सार्थः--समूह, समुदाय ।
सार्थवाहः--समूह का नेता ।
सावधान--(विशे०)--ध्यान देने वाला ।

साहसकारिन् (विशे०)—ढीठ, साहसी, वीर ।
साहित्यं—साहित्यिक प्रबन्ध ।
सित— (विशे०)—सफेद ।
सिध् (निपूर्वक)—भ्वादि-परस्मै०—मना करना, रोकना ।
सिद्धः—अर्द्ध देव ।
सिंधुः—समुद्र ।
सीरध्वजः—जनक जी को "सीर-ध्वज" कहते हैं ।
सुख—(विशे०) सुखदायी ।
सुतीक्ष्णः—एक ऋषि का नाम ।
सुधा—अमृत । **सुधास्यन्दिन्** (विशे०)—अमृत बरसाने वाला या अमृत टपकता हुआ ।
सुभगम्—(क्रियाविशे०) सुन्दरता-पूर्वक ।
सुश्लिष्टम्—(विशे०) अच्छी तरह ठीक किया हुआ या रक्खा हुआ ।
सुयोधनः—दुर्योधन का नाम ।
सुरद्विष्—(पुं०) देवताओं का शत्रु ।
सहृद्भेदः—मित्रों का अलग होना, "हितोपदेश" नामक ग्रन्थ का द्वितीय भाग ।
सूक्तं—उत्तम शब्द, मीठे शब्द ।
सूत्रधारः—बढ़ई ।
सृ—(भ्वादि-परस्मै०-उप पूर्वक) पास जाना
सृज—(वि० पूर्वक प्रेरणार्थक) भेजना, विदा करना ।
सेतुः—पुल ।
सैंह (विशे०)—सिंह का ।
सो—(व्यव पूर्वक) दिवादि-परस्मै०—प्रयत्न करना, सोचना ।
सोदर्यः—सगा भाई ।
सौजन्य—उत्तम स्वभाव या प्रकृति ।
सौदामिनी—बिजली ।
सौभाग्यविलोपिन् (विशे०)—शोभा को नष्ट करने वाला ।
सौहार्द—मित्रता, मैत्री ।
स्कंधवार—सेना का एक विभाग ।
स्तंबकारिता—गृह या समूह बनाना ।
स्तनितं—बादलों की गड़गड़ाहट, कड़कड़ाहट की आवाज ।
स्त्रैणं—स्त्री जाति ।
स्थलवर्त्मन् (नपुं०)—स्थल मार्ग ।
स्थली—प्रदेश, स्थान ।
स्था (आ पूर्वक)—आश्रक लेना ।
स्थाणुः—शिव जी ।
स्थायिन् (विशे०)—स्थायी, नित्य ।
स्थिति (स्त्री०)—स्थिरता, स्थायित्व, औचित्य ।
स्थिर (विशे०)—दृढ़ ।
स्थिरीकृ (तनादि उभपदी)—धैर्य धारण करना ।
स्थास्नु (विशे०)—दृढ़ स्थायी ।
स्थैर्य—स्थिरता ।
स्नातकः—दीक्षाप्राप्त ब्राह्मण गृहस्थ ।

स्नानीयं वस्त्रं—नहाने के समय पहिना जाने वाला कपड़ा।

स्निग्ध—प्रिय, स्नेह, मित्रपक्षीय।

स्निग्धदृष्टि (विशे०)—गौर से ताकने वाला, टकटकी लगा कर देखने वाला।

स्फटिकमणि—"स्फटिक मणि" एक विशेष प्रकार की मणि है।

स्फुट (विशे०)—साफ, दृश्य, स्पष्ट।

स्मय—गुस्ताखी, अभिमान।

स्यंद्—(अभिपूर्वक) भ्वादि-उभयपदी) बहना, चूना, रिसना, पिघल जाना।

स्रोतोवहा—नदी।

स्वच्छंदम्—(क्रियाविशे०) स्वेच्छानुसार, मनमानी।

स्वद्—भ्वादि - आत्मने०—पसन्द करना।

स्वभावज (विशे०)—प्राकृतिक।

स्वस्थ (विशे०)—नीरोग, तन्दुरुस्त।

स्वाधीन (विशे०)—स्वतन्त्र।

स्वास्थ्यं—आराम, शान्ति व चैन।

स्वेच्छया (क्रियाविशे०)—स्वेच्छानुसार पेट भर।

ह

हतक (विशे०)—अभागा।

हन् (अदादि परस्मै० अपपूर्वक)—नष्ट करना। (प्रति पूर्वक) हटा देना, मार के बदले में मारना।

हरिः—इन्द्र।

हरिचंदन—एक प्रकार का पीला चन्दन।

हरिणीदृश् (विशे०)—हिरन के समान नेत्र वाली।

हव्यं—हवन किया जाने वाला पदार्थ।

हस् (भ्वादि परस्मै०)—उज्ज्वल कर देना, विमल कर देना

हारीतः—प्रकार का एक कबूतर।

हार्दिक्यः—एक योद्धा का नाम।

हितः—हित चाहने वाला।

हितवादिन्—हितैषी।

हिम—बर्फ।

हिमवत् (पुं०)—हिमालय पहाड़।

हिमरश्मिः / **हिमांशुः**—चन्द्रमा (शीतल किरणों वाला)।

हुँकारः—"हुँ" की आवाज।

हृ—(अभ्यवपूर्वक) भ्वादि-परस्मै०—खाना; (उत् पूर्वक) जड़ से उखाड़ना, उन्मूलन करना, (निर् पूर्वक) निकालना, खैंचना, (सम् पूर्वक) गिराना, काट देना, कम कर देना, ह्रस्व कर देना, रोक देना, दमन करना, नियंत्रित करना; (व्या पूर्वक) बोलना।

हृषीकेशः—कृष्ण।

हेमंत—ठंढा।

हैम—बर्फ से पैदा हुआ।

ह्रदः—जल का गहरा तालाब, झील।

परिशिष्ट ४

शब्दकोष

हिन्दी से संस्कृत

अपकीर्ति--अपयशस् (नपुं०),अकीर्तिः (स्त्री०)

अपकीर्ति से मैली--अयशोदूषित, अपमान-मलीमस।

अपना—स्व।

अपने हाथ में कर लेना—आत्मसात् कृ (तनादि उभय०)।

अपमान--निकृतिः (स्त्री०) मानभंग।

अपराधी--अपराधिन्, दण्ड्य।

अप्सरा--अप्सरस् (स्त्री०), अप्सराः अप्सरसौ अप्सरसः।

अभागा--मन्दभाग्यः, दैवोपहतः।

अभ्यास--प्रयोगः।

अमङ्गलकारी—अभद्र।

अवश्य--नियतम्, नूनं खलु।

अवहेलना करना--अवधीर् (चुरादि परस्मै०), अवमन् (दिवादि आत्मने०)।

असम्भव—अशक्य, दुस्साध्य।

असर--प्रभावः।

असल—तात्त्विक।

असहाय—अनाथ, अशरण, दीन।

असाधारण--असाधारण, लोकोत्तर।

आ

आकर्षित करना--वि+लुभ् (प्रेरणा०), हृ (भ्वादि परस्मै०)।

आक्रमण करना--आ+क्रम् (भ्वादि उभय०)।

आगा पीछा करना--आ+शंक् (भ्वादि आत्मने०)।

आजकल--सम्प्रति, इदानीम्, एषु दिवसेषु।

आजकल का--अर्वाचीन, आधुनिक।

आनन्द पहुँचाने वाला--प्रामोदिक, आनन्दन।

(परस्मै०)।, उप+नम् (भ्वादि परस्मै०)।

आश्चर्यजनक--विस्मयावह, आश्चर्यकर।

आश्वासन देना—पर्यवस्था (प्रेरणा०) संस्तम्भ (प्रेरणा०)।

आश्रय लेना—आ+श्रि (भ्वादि उभय०)

आज्ञाकारिता—आज्ञाधारकत्वम्, अनुविधायित्वम्, आज्ञानुरोध।

आना (संज्ञा)—आगमनम्, उपस्थिति (स्त्री०)।
आना (क्रिया)—आ+गम्।
आ पड़ना—आ+पत् (भ्वादि०)

आज्ञा पालन करना, आज्ञा मानना } अनु+रुध् (दिवादि आत्मने०)।
अनु+सृ (भ्वादि परस्मै०)।

इ

इच्छा के विरुद्ध, इच्छा न होते हुए भी } अनिच्छया अकामतः, बलात्, बलेन, अनिच्छतोऽपि-तस्य।

इन्त जार करना—प्रतिपाल (चुरादि परस्मै०), प्रति+ईक्ष् (भ्वादि आत्मने०)।
इरादा—सङ्कल्प, चिन्ता।
इज्जत—प्रतिष्ठा, गौरवम्, आभिजान्यम्।
इज्जत करना—सम्+भू (प्रेरणा०)।
इज्जत के साथ—सगौरवम्, प्रतिपत्ति-पूर्वकम्।
इस प्रकार—इत्थम्।
इसमें कोई आश्चर्य नहीं—नैतत् चित्रम्, किमत्र चित्रम्।
इस समय—सम्प्रति, इदानीम्।
इस-इस प्रकार—एवमादि।

ई

ईख—इक्षुः।
ईंधन—इन्धनम्।
ईमानदारी—आर्जवम्, निष्कापट्यम्
ईंट—इष्टका।

उ

उचित—युक्त, अनुरूप, योग्य, सदृश।
उचित रीति से—सम्यक्, यथावत्, तत्त्वतः।
उजाड़ देना—अव+स्कन्द् (भ्वादि परस्मै०)।
उत्तराधिकारी—युवराजः।
उत्साह—उत्साहः, भक्तिः (स्त्री०)।
उदार—वदान्य, त्यागिन्।
उपाय—प्रतिकारः, प्रतीकारः, प्रतिपत्तिः (स्त्री०)।
उम्दा—शोभनम्।
उलाहना—उपालम्भः।

ऊ

ऊँचा—उन्नत, अभिजात, तुंग, उच्छ्रित, प्रांशु।
ऊँचे साहस वाला—उरुसत्त्व।

ए

एक मन वाले, एक चित्त वाले } एकमनस्।
एकान्त स्थान—विविक्त, विजन।
एकदम—युगपत्, समकालम्।

ऐ

ऐसा सुना जाता है—इति श्रूयते; इति जनप्रवादः ; इति किंवदन्ती श्रूयते ।

ओ

ओछा—क्षुद्र, कदर्य ।
ओझल होना—तिरो+धा (जुहोत्यादि उ०), अन्तर्धा (जुहोत्यादि उ०); तिरोभू (भ्वादि प०) ।
ओठ—ओष्ठः ।
ओझल—वेष्ट् (भ्वादि आ०); परिवेष्ट्, आच्छद् (चुरादि प०) ।
ओला—वर्षोपलः, करका, करकः, करकम् ।
ओस—नीहारः, तुषारः, प्रालेयम् ।

अं

अँगूठा—अङ्गुलीयकम्; मुद्रिका ।

क

कक्षा—वर्गः ।
कछुआ—कूर्मः, कमठः ।
कठिन—दुष्कर, दुस्साध्य ।
कठिनाई—आपद् (स्त्री०), कृच्छ्रम्
कठोरतापूर्वक—परुषम्, बलवत् ।
कड़ाहा—पिठरम् ।
कन्धा—स्कन्धः, अंसः ।
कमी—अभाव ।
कमीना—अधम, क्षुद्र, तुच्छ, नीच ।
करना—आ+चर् (भ्वा-परस्मै०), कृ (तनादि उभय०) ।
करुण विलाप—आर्तस्वरः, करुणपरिदेवितम्, करुणविलापः ।
कल्याणकारी—श्रेयस्, श्लाघ्यतर ।
कसम खाना—शप् (भ्वादि उभय०) ।
कसाईखाना—वधस्थानम्, वधगृहम् ।
कसूर—अपराधः ।
कसूरवार—अपराधिन्, दण्ड्य ।
कसौटी—निकषः ।
कहना—कथ् (चुरादि परस्मै०), आ+चक्ष् (अदादि आत्मने०) ।
कान—श्रवणम्, कर्णौ ।
कानों तक पहुँचना—कर्णविषयम् या (अदादि परस्मै०), श्रुतिपथम् आपत् (भ्वादि परस्मै०) ।

काम—चरितम्, चेष्टितम् ।
कारोबार—उद्यमः, अध्यवसायः
किफायत से—मितव्ययेन ।
किला—दुर्गः, दुर्गम् ।
कीमत—व्ययः, मूल्यम् ।
कुटुम्बी—कुटुम्बिन्, गृहमेधिन् ।
कुशलपूर्वक—क्षेमेण ।
कृतज्ञता—कृतज्ञता, कृतवेदित्वम् ।
कैदी—बन्दिः (स्त्री०), बन्दी (स्त्री०) ।
कोपल—पल्लवः, किसलयम् ।
कोमल—मृदु ।
कामयाबी—साफल्यम्, सिद्धिः । कार्याभियोगः ।
कोयल—परभृतः, कोकिलः ।
कोश—कोशः ।
क्रीडापर्वत—क्रीडाशैलः ।
क्रुद्ध—सामर्ष, प्रकोपित ।
क्रोधी स्वभाव वाला—कोपनः, सुलभकोपः ।
क्लेश—क्लेशः, दुःखम् ।
क्या कहना—का कथा, का गणना ।

ख

खतम करना—समाप् (प्रेरणा०), अव+सो (दिवादि परस्मै०), अवस्यति अवस्यतः अवस्यन्ति ।
खतम न होने वाला—अनन्त, शाश्वत, सनातन ।
खतरनाक समय—जीवित-संशयकाल
खतरा—संकटम्, आपद् (स्त्री०), कृच्छ्रम्
खतरे में डालना—सन्देहे पातय (चुरादि०), संशये पातय् (चुरादि०)।
खबर—उदन्तः, वृत्तान्तः ।
खानदानी देवता—कुलदेवता ।
खाने योग्य पदार्थ—भक्ष्यम्, अभ्यवहार्यम् ।
खिलाफ—पराङ्मुख, विरुद्ध ।
खिलाना—भुज् (प्रेरणा०)
खेत—क्षेत्रम् ।
खेद—निर्वेदः ।
खेलना—क्रीड् ।
खोफिया—चरः ।
ख्याल—विचारः, चिन्ता, संकल्पः ।

ग

गड़रिया—मेषपालः ।
गन्दा करना—मलिनीकृ (तनादि उभय०) ।
गर्मी—आतपः, उष्णम् ।
गहरा—अगध, उत्कट, गाढ, पर, गम्भीर ।
गिरना—पत् (भ्वादि परस्मै०) ।
गिराना—नि+पत् (प्रेरणा०), अवसद् (प्रेरणा०) ।
गिराया हुआ—निपातित ।
गुजरा हुआ—अतीत, गत ।

गहरे से--गाढम्, निर्भरम्।
गलत समझ लेना--अन्यथा ग्रह् (क्र्यादि परस्मै०), मिथ्या सम्भू (प्रेरणा), मिथ्या क्लृप् (प्रेरणा)।
गृहस्थ--कुटुम्बिन्, गृहमेधिन्।
गुजारना--गम् (प्रेरणा०), नी (भ्वादि परस्मै०), अति+वह् (प्रेरणा)।
गुञ्जाइश--अवसरः, अवकाशः।
गुस्साया हुआ--सामर्ष, प्रकोपित।
गोष्ठी--समागमः, सङ्गः।

घ

घमण्ड--दर्पः, अभिमानम्, गर्वः, अवलेपः
घमण्ड करना--प्रगल्भ् (भ्वादि-आत्मने०), विकत्थ् (भ्वादि आत्मने०)
घमण्डी--उत्सिक्त, अवलिप्त।
घमण्ड से-सदर्पम्, उद्धतम्, सावलेपम्।
घर--गृहम्।
घर के कार्य--गृहकार्याणि, कुटुम्बभारः।
घबराहट--सम्भ्रमः, क्षोभः। घूमना
घबराहट पैदा करने वाला--उद्वेग-कारिन्।
घना अन्धकार--सूचिभेद्य तमस्।
घाव--निर्घातः, प्रहारः।
घास--घासः, शष्पम्, तृणम्।
घाटी--द्रोणी।
घिरा हुआ--आच्छन्न, आवृत।
घुटना--जानु (नपुं०)।
घुरघुराना--घर्घरारवं कृ (तनादि उभय०)।
घूमना-फिरना--परि+अट् (भ्वादि परस्मै०), वि+चर् (भ्वादि परस्मै०)।
घोड़ा-वाजिन् (पुं०), अश्वः, हयः।
घोड़ी--वडवा वामी।

च १

चकवा--चक्रवाकः, कोकः, रथाङ्गः।
चकोर--चकोरः।
चखना--स्वद् (भ्वा० आत्मने०), स्वाद् (चुरादि उभय०), आस्वाद् (चुरादि उभय०)
चचेरा भाई--पितृव्यजः।
चटनी--अवलेहः, लालसीकः।
चटाई--कटः, आस्तरणम्।
चढ़ना--रुह्, आरुह, अधिरुह् (भ्वादि प०)
चढ़ाई--यानम्।
चतुर--बुद्धिमत्, पटुमति, दक्ष, निपुण, विदग्ध, चतुर, पटु।
चन्दा--प्रवापणम्, उद्धारदानम्।
चञ्चल--तरल, चपल।
चद्दर--उत्तरासङ्गः।
चन्दन--मलयजम्, चन्दनम्।

च २

चना—चणकः
चपरासी—प्रतिहारः, सन्देशहारकः।
चपाती—पिष्टापूपः।
चमकना—द्युत् (भ्वादि आत्म०), भा (अदादि प०), 'दिव्' (दिवादि प०), राज् (भ्वादि उभय०)।
चमकीला—भास्वर, भासुर, देदीप्यमान, भ्राजमान।
चमड़ा—त्वक्, चर्मन्।
चमार—चर्मकारः।
चरबी—मेदस् (नपुं०), वसा (स्त्री०), मेदः (पुं०)
चरवाहा—गोपालः।
चाचा—पितृव्यः, कनिष्ठतातः
चाची—पितृव्या।
चाँदनी—ज्योत्स्ना, कौमुदी, चन्द्रप्रभा, चन्द्रिका।
चाँदी—कलधौतम्, रजतम्।
चितकबरा—पिङ्गल।
चित्र बनाने वाला—चित्रकरः, आलेखकः।
चापलूसी करना—चाटुकारैः आराधू (प्रेरणा०), उप+स्था (भ्वादि उभय०)

च ३

चित्र—चित्रम्, आलेख्यम्।
चिथड़ा—चीरम्।
चिथड़े पहिने हुए—चीरवासस्, परिहितचीर।
चिन्तित—आकुल, सचिन्त।
चिह्न—लक्षणम्, व्यंजनम्।
चुकता करना—शुध् (प्रेरणा०), निर्यत् (प्रेरणा०)।
चुगली—परोक्षनिन्दा, पैशुन्यम्।
चुगलखोर—पिशुन, दुःशील।
चुराना—मुष् (क्र्यादि प०)चुर् (चुरादि उ०)।
चुप—तूष्णीम्, मौनम्, जोषम्
चूहा—मूषिकः।
चेतावनी—प्रबोधनम्।
चेहरा—आकृतिः।
चोंच—चंचुः (स्त्री०)।
चोट—प्रहारः, आघातः।
चौड़ा—पृथु, विस्तीर्ण, आयत।

च ४

चोटी—शिखा।
चौराहा—शृङ्गाटम्, चतुष्पथम्।
चौरस जमीन—समभूभागः, समस्थली।

छ

छड़ी—यष्टिः, लगुडः।
छाता—आतपत्रम्, छत्रम्।
छिपाना—गूह् (भ्वादि उभय०), प्रच्छद् (चुरादि उभय०)।
छुट्टी—अनध्यायः, अवकाशः।
छूना—स्पृश् (तुदादि प०), आ+मृश् (तुदादि प०)।
छोटा भाई—अनुजः, कनिष्ठसहोदरः।
छोड़ना—परित्यज् (भ्वादि प०) हा (जुहोत्यादि प०), मुच् (तुदादि प०)।
छोटे विचार वाला—कृपणमतिः।

ज

जगाना—प्रतिबुध् (प्रेरणा०)।
जंगली—वन्य, मत्त।
जबर्दस्ती—बलात्, बलेन।
जरा भी—स्तोकांशेनापि।
जल्दबाज—सरभस।
जल्दी से—सरभसम्, सत्वरम्।
जलन—मात्सर्य।
जहाज—पोतः।
जहाँ तक सम्भव हो—यावच्छक्यम्।
ज्यादा कल्याणकारी—श्रेयस्, श्लाघ्यम्।
जाँच-पड़ताल—व्यवहारः।
जानने वाला—अभिज्ञ, ज्ञ।
जायदाद—रिक्थम्।
जाहिर करना—व्यञ्ज् (प्रेरणा०), द्युत् (प्रेरणा०)।
जीत लेना—वश नी (भ्वादि प०)।
जीविका निर्वाह करना—वृत्तिं कृ (तनादि उभय०), जीवितं धृ (चुरादि प०)।
जुड़ जाना—सम्+गम् (भ्वादि आत्मने०), संयुज् (कर्मवाच्य)।
जुर्माना—दण्डः।
जोरों से—वेगेन, प्रसह्य, प्रसभम्।

झ

झगड़ा—विवादः, कलहः।
झगड़ा करना—वि+वद् (भ्वादि आत्मने०)।
झण्डा—ध्वजः, पताका।
झपट्टा मारना—सहसा अभि+सृ (भ्वादि पर०), आ+क्रम्।
(भ्वादि पर०)।
झुण्ड—निकरः, सङ्घः।
झुलसाने वाली—तिग्म, तीव्र, प्रखर।
झूठ—असत्यम्, अनृतम्, मृषा।
झूला—हिन्दोलम्; आन्दोलिका।

ट

टकटकी लगाकर देखना—स्तिमितदृष्ट्या प्रेक्ष् (भ्वादि आत्मने०), दृष्टिभिः अथवा लोचनैः पिब् (भ्वादि परस्मै०)।
टकराना—संघट्ट् (भ्वादि आत्म०), संघृष् (भ्वादि परस्मै०)।
टहलना—विहारः, विहरणम्।
टँगा हुआ—अवलम्बित, अवसक्त।
टुकड़ा—शकलम्, खण्डः, खण्डम्।
टेढ़ा—वक्र, विजिह्म।
टोकरी—पिटः।

ठ

ठग—धूर्तः कितवः, जाल्मः, शठः।
ठगना—वञ्च् (चुरादि परस्मै०), वि+प्र+लभ् (भ्वादि आत्मने०)।

ड

डर—साध्वसम्, शङ्का, भीतिः, भयम्।
डरना—शङ्क् (भ्वादि आत्मने०), भी (जुहोत्यादि पर०)।
डसना—दश् (भ्वादि पर०)।
डराया हुआ—त्रसित।
डाटना—निर्+भर्त्स् (चुरादि आत्मने०), उपालंभ् (भ्वादि आत्मने०)।
डाढ़—दंष्ट्रा, दशनः।
डाह—मात्सर्यम्।
डिक्शनरी—कोशः, शब्दाभिधानम्।
डींग मारना—श्लाघ (भ्वादि आत्मने०), विकत्थ् (भ्वादि आत्मने०)।
डींग मारने वाला—विकत्थनः, आत्मश्लाघिन्।
डूबा रहना—निमज्ज् (तुदादि परस्मै०)।
डूबा हुआ—निमग्न, आकुल।
डेहरी—देहली।
डोरी चढ़ाना—अधिज्यं कृ, (तनादि उभय०), आततज्यं कृ (तनादि उभय०)।

ढ

ढकना—पिधानम्, आवरणम्।
ढका हुआ—आच्छन्न, आवृत।
ढीठ—अविनीत।
ढिठाई—अविनयः।
ढीला—शिथिल, श्लथ।

त

तदबीर—उपायः ।
तरफ—पक्षः ।
तरफदारी करना—पक्षंग्रह् (क्र्यादि उभय) ।
तड़फड़ाना—परितप् (कर्मवाच्य)—परितप्यते । क्षुभ् (कर्मवाच्य)—क्षुभ्यते) ।
तसवीर—चित्रम्, आलेखः ।
तसवीर बनाने वाला—चित्रकरः, आलेखकः ।
तरह-तरह का—नानाविध, बहुविध, विविध ।
ताना—उपालम्भः ।
तिरस्कार करना—अव+मन् (दिवादि आत्मने०) ।
तिरस्कार-पूर्वक—सावज्ञम् ।
तुरन्त ही—सपद्येव, त्वरितमेव, सत्वरमेव ।
तुला हुआ—पर, तत्पर, परायण, (ये सभी शब्द समास में आते हैं), विहित-प्रतिज्ञ, कृतसङ्कल्प ।
तेज—उद्यत, तत्पर, दक्ष, निशित, तीक्ष्ण ।
तेजी—रयः, वेगः ।
तेज बुद्धि वाला—तीक्ष्णमतिः, कुशाग्रबुद्धिः ।
तैयार—सज्जीभूत, सन्नद्ध ।
तैयारी—संविधा ।
तैश—साहसम्, क्षिप्रकारिता ।
तैशबाज—क्षिप्रकारिन्, अविमृश्यकारिन् ।
तोड़ना—सन्धिच्छेदं कृ (तनादि उभय), भञ्ज् (रुधादि परस्मै०) ।

थ

थकावट—परिश्रमः, खेदः, आयासः ।
थका हुआ—परिश्रान्तः, खिन्नः ।
थाती रखना—निक्षिप् (तुदादि परस्मै०) न्यासीकृ (तनादि उभय०) ।

द १

दयनीय—करुण, अनुकम्प्य ।
दरबार—सभा ।
दाग—कलङ्कः ।
दानी—वदान्य, त्यागिन्, उदार ।
दार्शनिक—तत्त्वविद्, तत्त्वज्ञः ।
दाम—व्ययः, मूल्यम् ।
दुःख—निर्वेदः ।
दुःखी—पीडित, व्यथित, शोकापन्न, दुःखार्त, निर्विण्ण ।
दुःख देना—उपक्लु (भ्वादि आत्मने०) भृशं पीड् (चुरादि परस्मै०), वि+प्र+कृ (तनादि उभय०) ।

दुःखदायी—कष्टप्रद, क्लेशावह।
दृढ़ चित्त वाला—धीर।
दुष्ट—दुष्ट, दुरात्मन्, दुराशय।
दुष्ट पुरुष—नरापसद, नरहतक।
दूर किया हुआ—निरस्त।
देखने वाला—प्रेक्षकः द्रष्टृ।
देर करना—चिरायति, विलम्ब् (भ्वादि आत्मने०)।

द २

देर—विलम्बः, कालातिपातः।
देना—दा (जुहोत्यादि, उभय०), समर्प् (प्रेरणा०)।
देखना—दृश् (भ्वादि परस्मै०), निरूप् (चुरादि परस्मै०), पर्यालोच् (चुरादि परस्मै०)।
देशनिकाला—विवासनम्, निर्वासनम्
देशनिवासी—स्वदेशजः, देशबन्धुः।
देवता-सम्बन्धी—दिव्य।
दैवमारा—दैवोपहत।
दौड़ना—द्रु (भ्वादि परस्मै०), पलाय् (भ्वादि आत्मने), धाव् (भ्वादि परस्मै०)।

ध १

धन—वित्तम्, विभवः।
धड़—कबन्धः।
धब्बा—कलङ्कः।
धर्मात्मा—धर्मनिष्ठः।
ध्वजा—ध्वजः, पताका।
धार्मिक—धर्म्य।
धार्मिक क्रिया—धर्मक्रिया।
धीरे-धीरे—मन्दम्-मन्दम्, शनैः-शनैः।

ध २

धूल—धूलिः (स्त्री०), धूली (स्त्री०), पांशु (पुं०)पांसु (नपुं०) रजस (नपुं०)।
धूप—आतपः, उष्णम्।
धोबी—रजकः।
धोखा देना—वञ्च् (चुरादि परस्मै०), वि+प्र+लभ् (भ्वादि आत्मने०)।
धोखेबाज—जाल्मः, कितवः, शठः,
धोना—प्र+क्षल् (चुरादि परस्मै०), प्र+मृज् (अदादि परस्मै०)—प्रमार्ष्टि प्रमृष्टः प्रमृजन्ति-प्रमार्जन्ति, प्रमार्क्षि प्रमृष्टः प्रमृष्ठ, प्रमार्ज्मि प्रमृज्वः प्रमृज्मः।
धूर्तः।

न १

न खतम होने वाला—अनन्त, शाश्वत, सनातन।
नंगा—नग्न।
नपुंसक के समान—क्लीववत्, नष्टपौर्यवत्।
नरकुल—वेतसः।

नष्ट करना—नश (प्रेरणा०)।
नहाना—स्ना (अदादि परस्मै०) अवगाह (भ्वादि आत्मने०)।
नाराज करना—अपराध (दिवादि परस्मै०)।
नारियल—नारिकेलः।

न २

नाशः—प्रणाशः।
निकल जाना / निकलना—निर्गम् (भ्वादि परस्मै०); निष्क्रम् (भ्वादि परस्मै०); (दिवादि परस्मै०)
निकाला हुआ—निरस्तः।
निद्राहीन—उन्निद्र।
निपुण—प्रवीण, पारंगत, पारदृश्वन्।
निन्दा के योग्य—गर्हणीय, निन्द्य।
निर्दयतापूर्वक—निर्घृणम्, निर्दयम्।
निरादर के साथ—सावज्ञम्।
निरादर करना—निराकृ (तनादि उभय), प्रत्यादिश् (तुदादि परस्मै०)
निश्चित—ध्रुव, नियत।
निमग्न होना—नि+मज्ज् (तुदादि परस्मै०)।
निवेदन करना—नि+विद् (प्रेरणा०), वि+ज्ञा (प्रेरणा०)।

न ३

निष्फल होना—विफलीभू (भ्वादि परस्मै०), मोघीभू (भ्वादि परस्मै०)।
नीच—अधम, क्षुद्र, तुच्छ, नीच।
नीच पुरुष—नरासपदः, नरहतकः।
नील का बर्तन—नीलीभाण्डम्।
नौकर—भृत्यः, दासः, परिजनः, अनुचरः, किङ्करः, सेवकः।
नौकर-चाकर—परिजनः परिवारः।

प १

पकड़ना—आ+सद् (प्रेरणा०)
पड़ोस—उपान्तः परिसरः।
परिणत होना—भावेन परिणम् (भ्वादि परस्मै०)।
पवित्र करने वाला—पावन।
पलटन—सैन्यम्, अनीकम्, सेना।
परिश्रम-पूर्वक—सोद्यमम्।

प २

परछाईं—प्रतिबिम्बम्, प्रतिफलम्।
परिचित कराना—ज्ञा (प्रेरणा०)।
परिवर्तन—परिवर्तः, विपर्यासः।
प्रकाण्ड पंडित हो जाना—पारं गम् (भ्वादि परस्मै०), पारं दृश् (भ्वादि परस्मै०)।

प्रतीक्षा करना—प्रतिपालय् (चुरादि परस्मै०), प्रति+ईक्ष् (भ्वादि आत्मने०)।
प्रशंसनीय—प्रशस्य, श्लाघ्य।
प्रसन्न—प्रमुदित, सानन्द।
प्रसन्न करना—अनुरञ्जय् (प्रेरणा०)।
प्रसिद्ध—विख्यात।
प्रतिष्ठा—प्रतिष्ठा, गौरवम्, आभिजात्यम्।
पानी—जलम्, पानीयम्, वारि, अम्भस्, अप्।
पाने का इच्छुक—लिप्सुः, ईप्सुः।
पार कर ले जाना—उत्+तॄ (भ्वादि परस्मै०)।
पारी—पर्यायः, वारः।
पाला-पोसा हुआ—संवर्धित, परिपोषित।
पिघलना—द्रु (भ्वादि परस्मै०), मृदुतां गम् (भ्वादि परस्मै०), काठिन्यं त्यज् (भ्वादि परस्मै०)।
पिघल जाना (दया से)—दयार्द्रीभू (भ्वादि परस्मै०), करुणया विद्रु (भ्वादि परस्मै०)

प ३

प्राण खो दिया—अपगतासुः बभूव।
प्राण-घातक—अन्तकर, मृत्युजनन, प्राणहर।
प्यारा—प्रिय, कान्त, वल्लभ।
प्यासा—पिपासु, तृषार्त।
पुरखे—पितरः, स्वधाभुजः।
पीठ-पीछे—परोक्षे, असन्निधाने।
पुराना—प्राक्कालीन, पुरातन, प्राचीन।
पूछना—प्रच्छ् (तुदादि परस्मै०)।
पूछताछ—व्यवहार।
पूरा करना—सम्पद् (प्रेरणा०), साध् (स्वादि परस्मै०)।
पूरी—पूर्ण, सफल।
पूरी तौर से—निःशेषम्, अशेषतः, एकान्ततः, सर्वात्मना।
पेशा—व्यापारः, व्यवसायः।
प्रेम का एक-मात्र पात्र—स्नेहस्यैकायनीभूत।

प ४

पैदा करना—जन् (प्रेरणा०)।
पैदा होना—उद्भू (भ्वादि परस्मै०) उत्पद् (दिवादि आत्मने०)।
पैदा हुआ—उद्भूत, सम्भूत।

फ १

फटकारना—निर+भर्त्स् (चुरादि आत्मने०), उपालंभ् (भ्वादि आत्मने०)।
फायदा—लाभः, हितम्।
फिर—पुनः, भूयः।
फिर से प्राप्त करना—आ+पद्। (दिवादि आत्मने०), प्रति+पद् (दिवादि आत्मने०)।
फेंकना—क्षिप् (तुदादि परस्मै०), अस् (दिवादि परस्मै०)।

फ २

फेंका हुआ—क्षिप्त, निपातित।
फैलना—प्र+सृ (भ्वादि परस्मै०)
फैलाना—प्र+सृ (प्रेरणा०)।
फैलाव—विस्तारः।
फैला हुआ—विस्तीर्ण।
फौज—सैन्यम्, अनीकम्, सेना।

ब १

बचाना—रक्ष् (भ्वादि परस्मै ०); त्रै (भ्वादि आ०)।
बचाने वाला—त्रातृ (पुं०); रक्षक।
बहुत ज्यादा—भृशम; नितराम्, अतिमात्रम्।
बहेलिया—व्याधः।
बपौती—पैतृक।
बर्तन—पात्रम्।
बदमाश—जाल्मः; शठः; धूर्तः; कितवः।
बदल जाना—विपर्यासं या (अदादि०)
परस्मै०)।
बदलाव—परिवर्तः, विपर्यासः।
बन्द करना—पिधा (जुहोत्यादि उभय०); नि+रुध् (रुधादि उभय०)।
बहाना—व्याजः, व्यपदेशः।
बहाना करना—अप+दिश् (तुदादि०)
बताना—नि+विद् (प्रेरणा०)।
बदला लेन—वैरनिर्यातनं कृ (तनादि उभय०), वैरसाधनं कृ (तनादि उभय०)।

ब २

बगल—पार्श्व।
बड़बड़ाना—प्रलप् (भ्वादि परस्मै०)।
बड़ा विशाल, स्थूल।
बड़े रूबेरे—महति प्रत्यूषे।
बड़ी मुश्किल से—कथं कथमपि।
बड़े लोग—गुरुजनः, गुरवः।
बरखास्त किया हुआ—विसर्जित।
बहुत बढ़िया / बहुत अच्छा —विशिष्ट; प्रकृष्टतनम

ब ३

बगावत करना / बलवा करना—अभिद्रुह् (दिवादि परस्मै०) द्वितीया विभक्ति के साथ।

बढ़कर होना (किसी से)—अति-रिच् (कर्मवाच्य), विशिष् (कर्मवाच्य), अतिशी (अदादि आत्मने०)।

बकरा—छागः।

बनिया—वणिज् (पुं०), श्रेष्ठिन् (पुं०)

बहनोई—आवुत्तः, भगिनीपतिः।

बहा ले जाना—अपवह (प्रेरणा०)

बहुत हो जाना—बहुलीभू (भ्वादि परस्मै०)।

बर्ताव करना—व्यवह् (भ्वादि परस्मै०), आचर् (भ्वादि परस्मै०), भावम् आपद् (दिवादि आत्मने०)।

बाद में भी जिन्दा रहना—अतिजीव् (भ्वादि परस्मै०), अनुजीव् (भ्वादि परस्मै०)।

बाजार—आपणः, पण्यवीथिका

बिना विघ्न-बाधा के—निर्विघ्नम्।

ब ४

बारीक—सूक्ष्म।

बाँटना—विभज् (भ्वादि परस्मै०)।

बिताना—गम् (प्रेरणा०), नी (भ्वादि परस्मै०), अति+वह्।

बिदाई लेना—आमन्त्र् (चुरादि आत्मने०), आ+प्रच्छ् (तुदादि आत्मने०)।

बीता हुआ—अतीत, गत।

बीमार—अस्वस्थ शरीर।

बीमारी—अस्वास्थ्यम्, विकारः।

बीत जाना—व्यति+इ (अदादि परस्मै०), अति+क्रम् (भ्वादि परस्मै०, दिवादि परस्मै०)।

बुड्ढा—वृद्ध, स्थविर, प्रवयस् चिरन्तन, पुराण।

बूचड़खाना—वधस्थानम्, वधगृहम्।

बेंचना—वि+क्रा (क्रयादि आत्मने०)।

बेचैन—पर्याकुल, पारिप्लव।

बेंत—वेतसः।

बेहोश—निःसंज्ञः, अपगतचेतनः।

ब ५

बेइज्जती करना—अव+मन् (दिवादि आत्मने०)।

बेइज्जती के साथ—सावज्ञम्।

भ १

भगाना—वि+द्रु (प्रेरणा०) वि+ध्वंस् (प्रेरणा०)।
भयानक—भयावह, भयप्रद, उग्र, भीषण।
भरना—पूरय् (चुरादि परस्मै०)।
भरा हुआ—निषेवित, समाश्रित।
भले बुरे का विचार—विवेकः, परिच्छेदः।
भागना—पला+अय् (भ्वादि आत्मने०)।
भाग्यहीन—मन्दभाग्य।
भारी—गुरु, स्थूल।

भ २

भ्रमण करना—परि+अट् (भ्वादि परस्मै०) वि+चर् (भ्वादि परस्मै०)
भाषा-चातुरी—वाक्पटुत्वम् वाक्-प्रबन्धः।
भिन्न होना—भिद् (कर्मवाच्य)।
भेंट—उपहारः, उपायनम्।
भेड़िया—वृकः।
भेद—रहस्यम्।
भौंचक्का—किंकर्तव्यतामूढ, किंप्रतिपत्तिमूढ।

म १

मशहूर—विख्यात, प्रसिद्ध।
महसूल—बलिः, करः।
मन्दिर—देवालयः, देवतायतनम्।
मन लगाना—मनो निविश् (प्रेरणा०), मनो युज् (प्रेरणा०), मनो बन्ध् (क्र्यादि परस्मै०)।

म २

मर्जी—छन्दस् (नपुं०)।
मन्त्रणा करके—सम्मन्त्र्य, संवाद्य।
मर्म को भेदना—मर्माणि स्पृश् (तुदादि०)।
मालिक—स्वामिन्।
मानसिक चिन्ता—आधिः।
मांसभक्षी—क्रव्याद, पिशिताशन।
मानना—मन् (दिवादि आत्मने०)।
माफिक—अनुरूप, सदृश।
मामला—अर्थः, विषयः।
मालकिन—भट्टिनी, भर्तृदारिका।
मिलना—सम्+गम् (भ्वादि आत्मने०), संयुज् (कर्मवाच्य)।
मिहनत से—सोद्यमम्।
मिहनत—परिश्रमः, आयासः।
मीठा—मधुर, मिष्ट।

म ३

मुद्दई—अर्थिन् (पुं०), अभियोक्तृ (पुं०)
मुलायम होना—मृदुतां गम् (भ्वादि-परस्मै०), काठिन्यं त्यज् (भ्वादि-परस्मै०)
मुँदरी—अंगुलीयकम्।
मुश्किल—दुष्कर, दुस्साध्य।
मूर्ख—जडमति, मन्दबुद्धि।
मुक्त हो जाना—मुच् (कर्मवाच्य)
मुकदमे की सुनवाई—व्यवहारदर्शनम्।
मैदान—क्षेत्रम्, समभूभागः, समस्थली।
मैला करना—मलिनीकृ (तनादि उभय०)।
मोटा—स्थूल, दृढ़ (प्रेरणा०)।
मौका—अवसरः, अवकाशः।

य

यश—यशस् (नपुं०), कीर्ति (स्त्री०)
योग्यतम—पटुतम, प्राज्ञतम।
यकायक—सहसा, दैवात्, दैववशात्।
युक्त—सम्पन्न।
योग्य—अनुरूप, सदृश।

र १

रञ्ज—निर्वेदः।
रञ्जीदा—निर्विण्ण।
रफ्तार—वेगः, रय।
रक्षा करना—त्रै (भ्वादि आत्म०), रक्ष् (भ्वादि पर०)।
रक्षा करने वाला—त्रातृ (पुं०), रक्षकः।
राख कर देना—भस्मीकृ (तनादि उभय०), भस्मसात्कृ (तनादि उभय०)।
राज-दरबार—राजसभा, नृपसभा।
राज्य के मामले—राज्यकार्याणि।
राय करके—सम्मन्त्र्य, संवाद्य।
रात्रि-सम्बन्धी—नैश।
रिश्तेदार—ज्ञातिः, बन्धुः।
रुक जाना (किसी काम से)—व्यापारात् विरम् (भ्वादि परस्मै०)।

र २

रेशमी—कौशेय।
रोक—निग्रहः, संयमः।
रोकना—प्रति + सिध् (भ्वादि परस्मै०)

ल

लकड़हारा--काष्ठच्छिद् (पुं०), काष्ठतक्ष् (पुं०)।
लगन--तत्परता, निष्ठा।
लगाना—युज् (रुधादि उभय०), निविश् (प्रेरणा०)।
लगा हुआ--आसक्त, तत्पर।
लाठी--लगुडः, यष्टिः (स्त्री०)।
लाभ--लाभः, हितम्।
लालच--लोभः, गृध्नुता।
लिहाज—गौरवम्, सम्भावना।

व १

वर्षा ऋतु--प्रावृष् (स्त्री०), वर्षा (स्त्री० नित्य बहुवचनान्त)।
वश में कर लेना--वशीकृ (तनादि उभय०), वशं नी (भ्वादि परस्मै०)।
वसन्त ऋतु--मधुमासः, वसन्त-समयः।
व्याकुल—पर्याकुलः।
व्यर्थ कर देना--मोघीकृ (तनादि उभय०), पथि निवृत् (भ्वादि, आत्मने०)।
वाद विवाद के विषय पर लौटना—प्रकृतम् अनुसृ (भ्वादि परस्मै०), प्रकृतम् अनुसन्धा (जुहोत्यादि उभय०)।
वादी--अर्थिन् (पुं०), अभियोक्तृ (पुं०)।

व २

वारिस--युवराजः।
विचार--विवेकः, परिच्छेदः।
विघ्नबाधारहित—निर्विघ्नम्।
विरुद्ध—पराङ्मुख।
विशेषता--विशेषः।
विषयक--सम्बन्धिन्, गत।
विद्यार्थी--छात्रः, विद्यार्थिन्, अध्येतृ (पुं०)।
विवरण--विस्तरः, विशेषः।
विश्वास पैदा करना--विश्वास नी (भ्वादि परस्मै०), विश्वास (प्रेरणा०)।
वीरान बना देना--निर्जनीकृ (तनादि उभय०), उत्+ध्वंस् (प्रेरणा०)।
वृद्धावस्था से झुका हुआ--जरा-नमितकायः।

व ३

वेग--रयः, वेगः।
वेष बनाकर / **वेष धारणकर** } वेषं परिदधानः।
वेद--श्रुतिः (स्त्री०), निगमः।
वेधना--निर्+व्यध् दिवादि परस्मै०)।

श १

शक्ल—स्वरूपम्, रूपम्, दर्शनम्।
शहद भरा हुआ—सुधास्यन्दिन्, मधुमय, मधुमधुर।
शरीरधारी—शरीरिन्; मूर्त।
शानदार—शोभन, चारु, उत्तुङ्ग, विशाल।

श २

शुद्ध करने वाला—पावन।
शुरू से—आमूलात्, आदितः।
शून्य हृदय वाला—शून्यहृदयः।
शोर—कलकलः।

स १

सच्चा—तात्त्विक।
सचमुच—वस्तुतः, परमार्थतः।
सङ्गत—सङ्गतिः, सङ्गः।
सफलता—सिद्धिः।
समझाना—बोधयति, बोधयतः, बोधयन्ति।
समर्थन करना—अभिनन्द् (भ्वादि परस्मै०)।
सहायता करना—साहाय्यं कृ, साहाय्यं दा।
समाप्त करना—समाप् (प्रेरणा०), अव+सो (दिवादि परस्मै०), अवस्यति, अवस्यतः, आदि।
समझना—मन् (दिवादि आत्मने०)।
सम्मान-पूर्वक—सगौरवम्, सादरम्, प्रतिपत्तिपूर्वकम्।

स २

समाचार—उदन्तः, वृत्तान्तः।
सम्बन्धी—ज्ञातिः, बन्धुः।
समूह—जालम्, पटलम्।
सङ्कीर्ण विचार वाला—कृपणमति।
सहना—सह् (भ्वादि आत्मने०), तितिक्ष् (भ्वादि आत्मने०)।
सहनशीलता—सहिष्णुता, क्षमित्वम्।
सहारा लेना—अंगीकृ (तनादि उभय०), आ+स्था (भ्वादि उभय०)।
संयोग से—दैववशात्, सहसा, दैवात्।
सवार—अश्वारोहः, अश्वसादिन्।
सदाचारी—साधुवृत्त, धर्मशील।
सत्य बोलने की आदत—सत्यवादित्वम्।
समझ में न आने वाला—दुरवगाह, दुर्बोध।
सही सलामत—क्षेमेण।
स्पर्धा करना—स्पर्ध् (भ्वादि आत्मने०) तुल् (चुरादि परस्मै०)।
स्वाभाविक—सहज, नैसर्गिक।

स ३

स्वागत करना--प्रत्युद्गम् (भ्वादि परस्मै०), प्रत्युद्व्रज् (भ्वादि परस्मै०)।
स्वभावतः--अवश्यमेव, नूनं खलु, प्रकृत्या।
समृद्ध--सम्पन्न।
सावधानी से--प्रयत्नेन, सादरम्।
साफ करना--प्र+क्षल् (चुरादि परस्मै०), प्र+मृज् (अदादि परस्मै०), प्रमार्ष्टि, प्रमृष्टः, प्रमार्जन्ति-प्रमृजन्ति, प्रमार्क्षि, प्रमृष्टः, प्रमृष्ठ, प्रमार्ज्मि, प्रमृज्वः, प्रमृज्मः।
साहसपूर्ण कार्य--चरितम्, चेष्टितम्।
साथ--समागमः, सङ्गः।

स ४

सान्निध्य--उपान्तः, परिसरः।
साधारण बढ़ा हुआ--असाधारण, लोकोत्तर।
स्वर्ग-सम्बन्धी--दिव्य।
सिंहासन--पीठम्, सिंहासनम्।
सिकुड़ा हुआ--सङ्कुचित, सम्पिण्डित।
सीधे--सरलमार्गेण, अत्रानागत्य।
सीमित--परिच्छिन्न, अल्पविषय।
सुखदायक--सुखावह।
सुन्दर--चारुगात्र, कमनीय, मधुराकृति (उद्यानादि के लिए 'रमणीय' 'रम्य' प्रयोग में आता है)।
सूरत--रूपम्, स्वरूपम्, दर्शनम्।
सोचना--चिन्त् (चुरादि परस्मै०), प्र+क्लृप् (प्रेरणा०), युज् (प्रेरणा०)।
सूनसान--निर्जन, घोर।

स ५

सूनसानपन--निर्जनत्वम्, शून्यत्वम्।
सूखा हुआ--उच्छोषित, पीत।
सेठ--श्रेष्ठिन् (पुं०)।
सौदागर--वणिज् (पुं०), श्रेष्ठिन् (पुं०)।
सेना--सेना, सैन्यम्, अनीकम्।

ह १

हठपूर्वक कहना--अनुबन्ध् (क्र्यादि परस्मै०), निर्बन्धेन प्रच्छ्।
हथिया लेना--आत्मसात् कृ।
हटाना--अप+नी (भ्वादि उभय०), अपहृ (भ्वादि परस्मै०)।
हराना--वशं नी (भ्वादि परस्मै०), मूर्ध्नि पादं निधा (जुहोत्यादि उभय०)।
हराभरा--हरित, शाद्वल।
हरना--हृ (भ्वादि परस्मै०), अ+कृष् (भ्वादि परस्मै०), वि+लुभ् (प्रेरणा०)।

हमला करना--आ+क्रम् (भ्वादि उभय०)।
हटाया हुआ--निरस्त।
हाजिर जवाब--प्रत्युत्पन्नमति, प्रतिभानवत्।
हाथ खोले हुए--मुक्तहस्त।
हालत--अवस्था, स्थिति।
होना--भू (भ्वादि परस्मै०), अस् (अदादि परस्मै०)।

ह २

होश--संज्ञा, चेतना।
होश हवास के साथ--बोध-पूर्वम्, सचेतनवत्।
होशियार--बुद्धिमत्, पटुमति।
होशियारी से--प्रयत्नेन, सादरम्।
हिचकिचाना--आ+शङ्क (भ्वादि आत्मने०)।
हृदय को भेदने वाला--हृदयभेदिन्, अरुन्तुद्।